शरतचन्द्र

चरित्रहीन

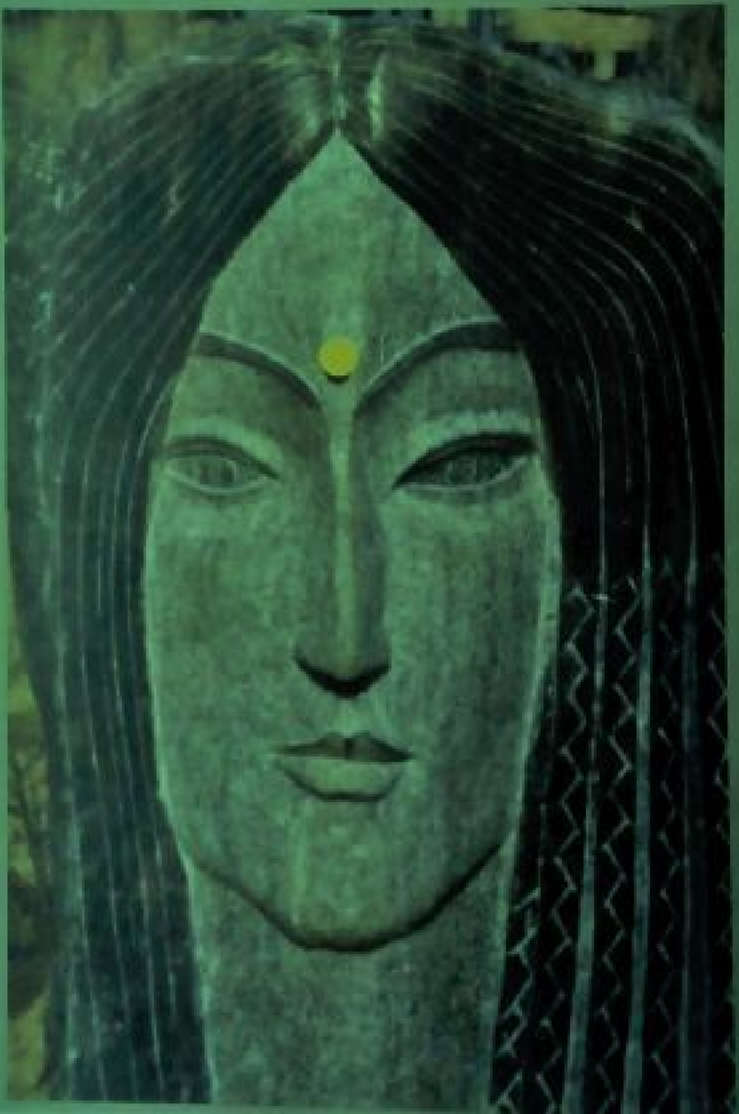

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय लिखित

चरित्रहीन

यह उपन्यास परिकल्पना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाया जा रहा है। हालांकि अभी ये स्टॉक में नहीं है पर आप जनचेतना द्वारा वितरित किया जा रहा अन्य प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य दिये गये अमेजन लिंक से खरीद सकते हैं।

अमेजन लिंक : https://goo.gl/bxmZR5

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए

- देश–दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- सुबह–सुबह प्रगतिशील कविता, कहानियां, उपन्यास, गीत–संगीत, हर रविवार पुस्तकों की पीडीएफ
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ व यूनिकोड फॉर्मेट में

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें –

9326439916

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

चरित्रहीन

(उपन्यास)

चरित्रहीन

(उपन्यास)

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

मूल्य : रु. 70.00

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2006

परिकल्पना प्रकाशन
डी–68, निरालानगर, लखनऊ–226 020 द्वारा प्रकाशित

कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा टाइपसेटिंग

क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस–28, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : **रामबाबू**

CHARITRAHEEN by **Sharatchandra Chattopadhyay**

ISBN 978-81-87425-12-0 (Paperback)

एक

पछाँह जैसे बड़े नगर में इन दिनों जाड़े का मौसम आ गया था। रामकृष्ण परमहंस के एक शिष्य किसी एक शुभ कार्य के लिए धन संग्रह करने इस शहर में आये थे। उनके भाषणों की सभा में उपेन्द्र को सभापति बनना होगा, और उस पद की मर्यादा के अनुकूल जो कुछ कर्त्तव्य है, उनका भी अनुष्ठान पूरा करना होगा, इसी प्रस्ताव को लेकर एक दिन सबेरे कालेज के विद्यार्थियों का दल उपेन्द्र के पास पहुँच गया।

उपेन्द्र ने पूछा – "शुभ कार्य क्या है, ज़रा मैं भी तो सुनूँ।"

उन लोगों ने बताया कि अभी तक इस बात को वे भी नहीं जान पाये। स्वामी जी ने कहा है, इसी बात को वे सभा मे ठीक तरह से समझाकर बतायेंगे और सभा बुलाने की तैयारी और आवश्यकता बहुत अंशों में इसी के लिए है।

उपेन्द्र आगे कोई प्रश्न बिना पूछे इस बात पर सहमत हो गये। ऐसी थी उनकी आदत। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को उन्होंने इतनी अच्छी तरह उत्तीर्ण कर लिया था कि छात्रों की मण्डली में उनकी प्रतिष्ठा की कोई सीमा नहीं थी। इसे वे जानते थे इसलिए, काम-काज, आपद-विपद में वे लोग जब कभी आ जाते थे, तब वे उनके निवेदन और अनुरोधों की उपेक्षा, उनके प्रति ममता के कारण नहीं कर सकते थे। विश्वविद्यालय की सरस्वती को पार करके अदालत की लक्ष्मी की सेवा में नियुक्त हो जाने के पश्चात भी, लड़कों के जिमनास्टिक के अखाड़े से लेकर फुटबाल, क्रिकेट और डिबेटिंग क्लब तक के ऊँचे स्थान पर उनको ही बैठना होता था।

लेकिन इस स्थान पर सिर्फ़ चुपचाप बैठे रहना ही नहीं था, कुछ बोलना आवश्यक था। एक लड़के की ओर देखकर उन्होंने कहा, "कुछ बोलना तो अवश्य पड़ेगा। सभापति बनकर सभा के उद्देश्य के सम्बन्ध में एकदम ही अनभिज्ञ रहना तो मुझे अच्छा नहीं लगता, क्या कहते हैं आप लोग?"

बात तो ठीक थी। लेकिन उनमें से किसी को भी कुछ मालूम नहीं था। बाहर के आँगन में, फूलों से लदे एक पुराने अड़हुल के पेड़ के नीचे, लड़कों का यह दल जब उपेन्द्र को बीच में बैठाकर दुनिया के सभी सम्भव-असम्भव अच्छे कामों की सूची तैयार करने में व्यस्त हो उठा था, उसी समय दिवाकर के कमरे से एक आदमी सबकी नज़रों से बचकर बाहर चला आया। दिवाकर उपेन्द्र का ममेरा भाई है। बचपन में मातृ-पितृहीन होकर मामा के घर रहकर गुज़ारा कर रहा था। बाहर की एक छोटी-सी कोठरी में पढ़ना-लिखना और रात को सोना था। अवस्था प्रायः उन्नीस की थी। एफ़.ए. उत्तीर्ण करके वह बी. ए. में पढ़ रहा था।

इस भगोड़े पर उपेन्द्र की ज्यों ही नज़र पड़ी त्यों ही उन्होंने पुकारकर कहा, “सतीश, तू भागा कहाँ जा रहा है? इधर आ!’

पकड़ में आ जाने पर सतीश भयभीत सा पास आकर खड़ा हो गया। उपेन्द्र ने पूछा, “इतने दिन तुम थे कहाँ?”

अपने अप्रतिभ भाव को छोड़ सतीश हँसकर बोला, “इतने दिन मैं यहाँ था ही नहीं, उपेन भैया। अपने चाचा के यहाँ इलाहाबाद गया हुआ था।”

बात ठीक तरह पूरी भी न हो सकी थी कि एक युवक, जिसकी दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट थी, टेढ़ी माँग, चश्माधारी था, आँखों को तनिक दबाकर दाँत निकालकर बोल उठा, “मन के दुख के कारण ही क्या सतीश?”

हाईस्कूल की परीक्षा में इस बार भी उसे भेजा नहीं गया, इस बात को सभी जानते थे। इसलिए यह बात ऐसी भद्दी सुनायी पड़ी कि सभी उपस्थित लोग लज्जा से मुँह नीचे झुकाकर मन ही मन छीः छीः करने लगे। अपने परिहास का उत्तर न पाने के कारण युवक की हँसी गायब हो गयी। लेकिन सतीश अपना हँसता हुआ चेहरा लेकर बोला, “भूपति बाबू, मन रहने से ही मन में दुख होता है। पास करने की आशा कहिए या इच्छा ही कहिए, मैंने ठीक तरह होश सम्भालते ही छोड़ दी थी। केवल बाबूजी ही छोड़ नहीं सके थे। इस कारण मन के दुख से किसी को यदि घर छोड़ना पड़े तो उसका ही छोड़ना उचित होता, फिर भी वे अटल रह अपनी वकालत करते रहे हैं! लेकिन तुम कुछ भी क्यों न कहो, उपेन भैया, इस बार उनकी आँखें खुल गयी हैं।”

सब लोग हँस पड़े। इसमें हँसने की कोई बात नहीं थी। लेकिन भूपति बाबू के अभद्र परिहास से सतीश नाराज़ नहीं हुआ। इससे सभी को सन्तोष हुआ।

उपेन्द्र ने पूछा, “क्या इस बार तूने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया?”

सतीश ने कहा, “मैंने उसे कब पकड़ रखा था कि आज छोड़ देता? मैंने नहीं उपेन भैया, लिखने-पढ़ने के धन्धे ने ही मुझे पकड़ रखा था। इस बार मैं आत्मरक्षा करूँगा। ऐसे देश में जाकर रहूँगा जहाँ स्कूल ही न हो।”

उपेन्द्र ने कहा, “लेकिन कुछ करना तो आवश्यक है, मनुष्य एकदम चुपचाप रह भी नहीं सकता। यह भी ठीक नहीं है।”

सतीश बोला, “नहीं, चुपचाप नहीं बैठूँगा। इलाहाबाद से एक नया मतलब प्राप्त कर आया हूँ। इस बार अच्छी तरह प्रयत्न करके देखूँगा कि उसका मैं क्या कर सकता हूँ।”

विस्तारित विवरण सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रहे हैं देखकर वह लज्जायुक्त हँसी के साथ बोला – “मेरे गाँव मे जिस तरह मलेरिया है, उसी तरह हैजा भी है। पाँच-सात गाँवों में ठीक वक़्त पर शायद एक भी डाक्टर नहीं मिलता। मैं उसी स्थान पर जाकर होमियोपैथी चिकित्सा शुरू कर दूँगा। माँ अपनी मृत्यु के पहले मुझे कई हज़ार रुपये दे गयी हैं। वह रक़म मेरे पास है। उन्हीं से अपने गाँव के घर पर बैठकखाने में एक चिकित्सालय खोल दूँगा। हँसो मत, उपेन भैया, तुम देख लेना, इस काम को मैं अवश्य करूँगा। बाबूजी

को मैंने राज़ी कर लिया है। एक महीना बीत जाने के बाद ही मैं कलकत्ता जाकर होमियोपैथी स्कूल में दाख़िल हो जाऊँगा।"

उपेन्द्र ने पूछा, "एक महीने के बाद ही क्यों?"

सतीश ने कहा, "कुछ काम है। दक्खिन टोले में नवनाट्य समाज को तोड़कर एक लफड़ा निकल पड़ा है। हमारे विपिन बाबू उस दल के नायक हैं। तार पर तार भेजकर उन्होंने ही मुझे बुलाया है। मैंने कह दिया है कि उनकी कन्सर्ट पार्टी को ठीक करके ही किसी दूसरे कार्य में जुटूँगा।"

यह सुनकर सभी ठहाका मारकर हँसने लगे। सतीश भी हँसने लगा। थोड़ी देर में हँसी का वेग जब कुछ शान्त पड़ गया तब सतीश बोला, "एक बंसीवादक का अभाव था, इसीलिए मैं आज दिवाकर के पास आया था। अगर नाटक की रात को वह मेरा उद्धार कर दे तो और अधिक दौड़-धूप नहीं करनी पड़ेगी।"

उपेन्द्र ने पूछा, "वह कहता क्या है?"

सतीश ने कहा, "वह कहेगा ही क्या? कहता है कि परीक्षा नज़दीक है। यह बात मेरे दिमाग़ में घुसती नहीं उपेन भैया, कि दो साल तक पढ़ने-लिखने के बाद दी जाने वाली परीक्षा किस तरह लोगों की एक ही रात की अवहेलना से नष्ट हो जाती है। मैं कहता हूँ, जिनकी सचमुच ही नष्ट हो जाती है, उनकी वह नष्ट हो जाये तो उचित ही है। इस तरह पास करने की मर्यादा जिनके लिए हो उनको ही रहे, मेरे लिए तो नहीं है। तुम इस बात से रुष्ट न हो सकोगे उपेन भैया, मैं तुम को जितना जानता हूँ ये लोग उसका चौथाई भी नहीं जानते। जिमनास्टिक अखाड़े से लेकर फुटबाल, क्रिकेट तक बहुत दिन मैंने तुम्हारी शागिर्दी की है, साथ-साथ घूमकर बहुत दिन, बहुत तरह से, तुम्हारा समय नष्ट होते मैंने देखा है, अनेक परीक्षाओं में भाग लेते भी तुमको देखा है और विधिपूर्वक स्कालरशिप के साथ तुम्हें पास करते भी देखा, लेकिन किसी दिन तुमको परीक्षा की दुहाई देते नहीं सुना।"

इस बात को यहीं दबा देने के उद्देश्य से उपेन्द्र ने कहा, "मुझे तो बाँसुरी बजाना नहीं आता।"

सतीश ने कहा, "मैं भी अक्सर यही बात सोचता हूँ। संसार की यह चीज़ तुमने क्यों नहीं जाना, मुझे इस पर आश्चर्य होता है। लेकिन छोड़ो इस बात को – दुपहरिया की धूप में तुम लोगों की यह बैठक किसलिए?"

जाड़े की धूप की तरफ़ पीठ किये माथे पर चादर लपेटकर इन लोगों की यह बैठक ख़ूब ही जम गयी थी। दिन इतना चढ़ आया है इस ओर किसी ने भी लक्ष्य नहीं किया था। सतीश की बात से समय का ध्यान आते ही सभी चौंककर खड़े हो गये। सभा भंग होते ही भूपति ने पूछा, "उपेन्द्र बाबू, तब क्या होगा?"

उपेन्द्र ने कहा, "मैंने तो कह दिया है, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन तुम लोगों के स्वामीजी का उद्देश्य अगर पहले ही कुछ मालूम हो जाता तो अच्छा होता। एकदम मूर्ख की तरह जाने में संकोच लगता है।

भूपति ने कहा, "लेकिन एक भी बात वे नहीं बताते। बल्कि ऐसा कहते हैं, जो जटिल और दुर्बोध्य हैं, उसको विशद रूप से साफ़ तौर से समझाकर बताने का अवसर और सुविधा न मिलने तक बिलकुल ही न बताना अच्छा है। इससे अधिकांश समय सुफल के बदले कुफल ही होता है।"

चलते-चलते बातचीत हो रही थी। इतनी देर में सभी बाहर आ खड़े हुए।

सतीश ने कहा, "क्या बात है उपेन भैया?"

उपेन्द्र को बाधा देकर भूपति बीच में बोल पड़ा, "सतीश बाबू, आपको भी चन्दे के खाते में दस्तख़त करना पड़ेगा। इसका कारण इस समय हम लोग ठीक तौर से बता न सकेंगे। परसों अपराह्न में कालेज के हाल में स्वामीजी खुद ही समझाकर बतायेंगे।"

सतीश ने कहा, "तब तो मेरा समझना नहीं होगा भूपति बाबू। परसों हम लोगों का रिहर्सल होगा। मेरे अनुपस्थित रहने से काम न चलेगा।"

आश्चर्य में पड़कर भूपति ने कहा, "यह कैसी बात आप कह रहे हैं सतीश बाबू! थियेटर की मामूली हानि होने के डर से ऐसे महान कार्य में आप सम्मिलित न होंगे। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?"

सतीश बोला, "लोग न सुनने पर भी बहुत सी बातें कहते हैं। बात यह नहीं है। बात आप लोगों को लेकर है। कुछ भी जानकारी न रहने पर भी आप लोग सन्देह छोड़ इस अनुष्ठान को जीतना महान कहकर विश्वास कर सके हैं यदि मैं उतना न कर सकूँ तो मुझे आप लोग दोष मत दीजियेगा। बल्कि, जिसको मैं जानता हूँ, जिस काम की भलाई-बुराई को समझता हूँ, उसकी उपेक्षा करके, उसको हानि पहुँचाकर, एक अनिश्चित महत्व के पीछे-पीछे दौड़ना मुझे अच्छा नहीं मालूम देता।"

उपस्थित छात्र-मण्डली में आयु और शिक्षा की दृष्टि से भूपति ही सबसे अधिक श्रेष्ठ थे, इसलिए वे ही बातचीत कर रहे थे। सतीश की बात सुनकर उन्होंने हँसकर कहा, "सतीश बाबू, स्वामी जी की तरह महान व्यक्ति अच्छी ही बात कहेंगे, उसका उद्देश्य अच्छा ही होगा, इस पर विश्वास करना तो कठिन नहीं है।"

सतीश ने कहा, "व्यक्ति विशेष के लिए यह कठिन नहीं है, यह मैं मानता हूँ। यही देखिये न, हाईस्कूल पास कर लेना कोई कठिन काम नहीं है, फिर भी पास करना तो दूर की बात; तीन-चार वर्षों में मैं उसके पास तक भी पहुँच न सका। अच्छा, बताइये तो स्वामी जी नामक मनुष्य को पहले कभी आपने देखा है, या इनके सम्बन्ध में किसी दिन आपने कुछ सुना है।"

किसी को भी कुछ मालूम नहीं है, यह बात सभी ने स्वीकार किया।

सतीश बोला, "यह देखिये, एक गेरुआ कपड़े के अलावा उनका और कोई सर्टिफिकेट नहीं है, फिर भी आप लोग पागल-से हो उठे हैं, और स्वयं अपने काम का नुकसान कर उनका भाषण मैं सुनना नहीं चाहता, इसके लिए आप नाराज़ हो रहे हैं।"

भूपति ने कहा, "पागल क्या यों ही हो रहे हैं। ये गेरुआ वस्त्रधारी संसार को बहुत

कुछ दे गये हैं। जो कुछ भी हो, मैं नाराज़ नहीं होता, दुख अनुभव करता हूँ। संसार की सभी वस्तुएँ सफाई और गवाही साथ लेकर हाज़िर नहीं हो सकतीं, इस कारण अगर उन्हें झूठ समझकर छोड़ देना पड़े तो बहुत-सी अच्छी चीज़ों से ही हम लोगों को वंचित रह जाना पड़ेगा। आप ही बताइये, जिस समय आप संगीत में सा-रे-गा-मा साधते थे, उस समय आपको कितने रस का स्वाद मिलता था? उसकी कितनी अच्छाई-बुराई आपकी समझ में आयी थी?"

सतीश बोला, "मैं भी यही बात कह रहा हूँ। संगीत का एक आदर्श यदि मेरे सामने न रहता, मीठे रस का स्वाद पीने की आशा यदि मैं न करता, तो उस दशा में इतना कष्ट उठाकर मैं सा-रे-गा-मा को साधने नही जाता। वकालत के पेशे में रुपये की गन्ध अगर आप इतने अधिक परिमाण में नहीं पाते, तो एक बार फेल होते ही, रुक जाते, बार-बार इस तरह जी-तोड़ मेहनत करके क़ानून की किताबों को कण्ठस्थ नहीं करते। उपेन भैया भी शायद किसी स्कूल में अध्यापकी पाकर ही इतने दिनों में सन्तुष्ट हो गये होते।"

उपेन्द्र हँसने लगे, लेकिन भूपति का मुँह लाल हो गया। एक खोंचे का जवाब दस गुना करके दिया था। यह बात वे सभी समझ गये।

क्रोध दबाकर भूपति ने कहा, "आपके साथ बहस करना बेकार है। एक ही वस्तु की अच्छाई-बुराई कितने तरह से हो सकती है, शायद इसे आप नहीं जानते।"

सब लोग रास्ते के किनारे उकडूं बैठ गये थे। सतीश उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, "क्षमा कीजिये भूपति बाबू! छः तरह के प्रमाणों और छत्तीस प्रकार के प्रत्यक्षों की आलोचना इतनी धूप में सही नहीं जा सकती। इससे तो अच्छा यही है कि संध्या के बाद आप बाबूजी की बैठक में आइयेगा, जहाँ आँधी रात तक तर्क-वितर्क चल सकेंगे। प्रोफ़ेसर नवीन बाबू, सदर आला गोविन्द बाबू, और घर के भट्टाचार्यजी तक ऐसे ही विषयों पर आधी रात तक बहस किया करते हैं। उनके पास वाले कमरे में मैं रहता हूँ। हेरफेर के दाँव-पेंच की बातों से मेरे कान अभी तक पूरे पके तो नहीं हैं, लेकिन मुझ पर रंग चढ़ने लगा है। लेकिन असमय में पेड़ों के नीचे गिरकर, सियार-कुत्तों के पेट में जाना मैं नहीं चाहता। इसलिए इस विषय को छोड़कर अगर और कुछ कहना हो तो कहिये, नहीं तो आज्ञा दें, चलूँ।"

सतीश का हाथ जोड़कर बातें करने का तरीक़ा देखकर सभी हँसने लगे। नाराज़ भूपति दोगुने उत्तेजित हो उठे। क्रोध के आवेश मे तर्क का सूत्र खो गया, और ऐसी दशा में जो मुँह से निकलता है उसी की गर्जना करके वे कह उठे, "मैं देख रहा हूँ आप ईश्वर को भी नहीं मानते।'

यह बात बहुत ही असम्बद्ध और बच्चों की-सी निकल पड़ी। स्वयं भूपति बाबू के भी कानों में यह बात खटके बिना न रह सकी।

भूपति के लाल चेहरे पर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि डालकर फिर उपेन्द्र के चेहरे की तरफ़ देख सतीश खिलखिलाकर हँस पड़ा और भूपति की तरफ़ देखकर वह बोला, "आपने ठीक ही किया है भूपति बाबू, 'चोर-चोर' के खेल में दौड़ने में लाचार हाने पर 'खड्डों' को छू देना

ही अच्छा होता है।"

इस अपवाद से आगबबूला होकर भूपति ज्यों ही उठ खड़े हुए त्यों ही उपेन्द्र ने हाथ पकड़कर कहा, "तुम चुप रहो भूपति, मैं अभी इस मनुष्य को ठीक करता हूँ। 'खड्डों, को छू देना, ठिकाने जा पहुँचना, ये सब कैसी बातें हैं रे सतीश! वास्तव में मेरा तेरे जैसा संशयी स्वभाव है, इससे सन्देह हो सकता है कि तू ईश्वर तक को भी नहीं मानता।"

सतीश ने आश्चर्य प्रकट कर कहा, "हाय रे मेरा भाग्य! मैं ईश्वर को नहीं मानता! खूब मानता हूँ! थियेटर का खेल समाप्त होने के बाद आधी रात को क़ब्रिस्तान के पास से लौटता हूँ! कोई भी आदमी नहीं रहता, विश्वास के ज़ोर से छाती का खून बर्फ़ बन जाता है। तुम लोग अच्छे आदमी हो इसका ख़बर नहीं रखते। हँस रहे हो उपेन भैया, भूत-प्रेत मानता हूँ, और ईश्वर को मैं नहीं मानता?"

उसकी बात सुनकर क्रुद्ध भूपति भी हँसने लगे। बोले, "सतीश बाबू, भूत का भय करने से ही ईश्वर को स्वीकार करना होता है ये दोनों बातें क्या आपके विचार से एक ही हैं?"

सतीश ने कहा, "हाँ, बिल्कुल एक ही हैं। आसपास रख देने से पहचानने का उपाय नहीं हैं। केवल मेरे निकट ही नहीं, आपके निकट भी यही बात लागू है, उपेन भैया के निकट भी बल्कि, जो भी लोग शास्त्र लिखते हैं, उनके निकट भी! वह एक ही बात है। नहीं मानते तो अलग बात है, लेकिन मान लेने के बाद जान नहीं बचती है। चोट-वोट में, आफत विपद में, बहुत तरह से मैंने सोचकर देख लिया है, वाग्वितण्डा भी खूब सुन लिया है।, लेकिन जो अन्धकार था, वही अन्धकार है। छोटा-सा एक निराकार ब्रह्म मानो, या हाथ-पाँव धारी तैंतीस करोड़ देवताओं को ही स्वीकार करो – कोई युक्ति नहीं लगती। सभी एक ही जंजीर में बँधे हुए हैं। एक को खींचने से सभी आकर उपस्थित हो जाते हैं। स्वर्ग-नरक आ जायेंगे, इहकाल-परकाल आ जायेंगे, अमर आत्मा आ जायेगी, तब क़ब्रिस्तान के देवताओं को किस चीज़ से रोकोगे? कालीघाट के कंगालों की तरह। चुपके-चुपके तुम किसी एक आदमी को कुछ देकर क्या छुटकारा पा जाओगे? पल भर में जो जहाँ था, वहीं से आकर तुमको घेर लेंगे? ईश्वर को मानूँ और भूत से डरूँ नहीं...?" ऐसा नहीं हो सकता भूपति बाबू।"

जिस ढंग से उसने बातें कीं उससे सभी ठठाकर हँसने लगे। दो छोटे बच्चों के हास्य कोलाहल से रविवार का अलस दोपहर चंचल हो उठा।

उपेन्द्र की पत्नी सुरबाला से प्रेरित दूर खड़ा भूतो अपने मन में भुनभुना रहा था। वह भी हल्के भाव से हँसने लगा।

झगड़े के जो बादल घिर आये थे, इस सब हँसी की आँधी से न जाने कहाँ विलीन हो गये।

किसी को होश नहीं आ रहा कि दुपहरिया बहुत पहले बीत चुकी है और इतनी देर हो जाने से घर के भीतर भूख-प्यास से बेचैन नौकरानियाँ आँगन में चिल्लाहट मचा रही थीं और रसोईघर में रसोइया काम छोड़ देने के दृढ़ संकल्प की बार-बार घोषणा कर रहा था।

दो

तीन महीने के बाद कलकत्ता के एक मकान में एक दिन सबेरे नींद टूटने पर सतीश ने करवटें बदलते हुए अचानक यह निश्चय कर लिया कि आज स्कूल न जाऊँगा। वह होमियोपैथिक स्कूल में पढ़ रहा था। ग़ैरहाज़िर रहने की इस प्रतिज्ञा ने उसके तन में अमृत की वर्षा कर दी और दम भर में उसने अपने विकल मन को सबल बना डाला। वह प्रसन्नचित्त बैठ गया और तम्बाकू के लिए चीख़-पुकार करने लगा।

सावित्री कमरे में आकर पास ही फ़र्श पर बैठ गयी। हँसते हुए उसने पूछा, "नींख खुल गयी बाबू?"

सावित्री इस बासा की नौकरानी और गृहिणी दोनों हैं। चोरी नहीं करती थी इसलिए खर्च के रुपये-पैसे सब उसी के पास रहते थे। एकहरा बदन अत्यन्त सुन्दर गठन। उम्र इक्कीस-बाईस की होगी, लेकिन चेहरा देखने से और भी कम उम्र की मालूम होती थी। सावित्री सफ़ेद वस्त्र पहनती थी, और दोनों होंठ पान और तम्बाकू के रस से दिन-रात लाल बनाये रहती थी। वह हँसकर बातचीत करना तो जानती ही थी, उस हँसी का मूल्य भी ठीक उसी तरह समझती थी। गृहसुख से वंचित डेरे के सभी लोगों पर उसके मन में आन्तरिक स्नेह-ममता थी। फिर भी, कोई उसकी प्रशंसा करता तो वह कहती कि आदर न करने की दशा में आप लोग मुझे रखेंगे क्यों बाबू! इसके अलावा घर जाकर स्त्रियों से निन्दा करके कहेंगे, डेरे पर ऐसी नौकरानी है जो भर पेट दोनों वक्त खाने को भी नहीं देती। उस अपयश की अपेक्षा थोड़ी-सी मेहनत अच्छी है। यह कहकर वह हँसती हुई अपने काम को चली जाती थी। डेरे में एक सतीश ही ऐसा था, जो उसका नाम लेकर पुकारता था। जब तब उसके साथ हँसी-मज़ाक करता था और कभी इनाम भी दे देता था। उसका भी सतीश पर स्नेह कुछ अधिक मात्रा में था। सारा दिन सभी काम-काजों में व्यस्त रहने पर भी इसीलिए सदा एक आँख और एक कान सुगठित सुन्दर युवक की तरफ़ लगाये रहती थी। बासा के सभी लोग इस बात को जानते थे और कोई-कोई कौतुक के साथ इसका इशारा करने से भी बाज नहीं आते थे। सावित्री जवाब न देकर, मुस्कराती हुई काम पर चली जाती थी।

सतीश ने कहा, "हाँ नींद खुल गयी।" इतना कहकर तकिये के नीचे से उसने एक रुपया निकालकर उसके सामने फेंक दिया।

सावित्री ने रुपया उठाकर कहा, "सबेरे फिर क्या ले आने की ज़रूरत हो गयी?"

सतीश ने कहा, "सन्देश! लेकिन मेरे लिए नहीं। अभी तुम रख लो, रात को अपने बाबू के लिए ख़रीदकर ले जाना।"

सावित्री ने नाराज़ होकर रुपये को बिछौने पर फेंककर कहा, "रख लीजिये अपने रुपये को। मेरा बाबू सन्देश नहीं खाता।"

रुपये को फिर फेंककर अनुरोध के स्वर में सतीश ने कहा, "मेरे सिर की सौगन्ध सावित्री, इस रुपये को तुम किसी प्रकार भी वापस न कर सकोगी। मैंने सचमुच ही तुम्हारे

बाबू को सन्देश खाने के लिए दिया है।"

सावित्री ने मुँह उदास बनाकर कहा, "जब-तब आप स्त्रियों की तरह सिर की सौगन्ध दिलाते रहते हैं, यह बड़ा अन्याय है। बाबू-वाबू मेरे नहीं हैं। मेरे बाबू आप लोग हैं।"

सतीश ने हँसकर कहा, "अच्छा दे दो रुपया। लेकिन बताओ, मेरे सिवा अगर और कोई बाबू हो तो मैं उसका सिर खाऊँ।"

सावित्री हँसकर बोली, "मेरा बाबू क्या आप का सौत है जो सिर खा रहे हैं?"

सतीश ने कहा, "मैं उनका सिर खा रहा हूँ, या वे ही मेरा सिर खा रहे हैं? बल्कि मैं तो उनको सन्देश खिला रहा हूँ।"

सावित्री ने अपनी हँसी को रोककर कहा, "नौकर-नौकरानियों के साथ इस तरह बातचीत करने से छोटे आदमियों को प्रश्रय मिल जाता है, फिर वे मुंह लग जाते हैं, ज़रा समझ-बूझकर बातें करनी होती हैं बाबू, नहीं तो लोग निन्दा करते हैं।" यह कहकर रुपया उठा लिया और फिर कमरे से बाहर चली गयी। थोड़ी ही देर बाद फिर लौटकर बोली – "इस समय क्या बनेगा?"

भोजन सम्बन्धी सभी बातों में सतीश एक गुणवान आदमी है, इसका परिचय सावित्री पहले ही पा चुकी थी। इसी के लिए प्रतिदिन प्रातःकाल वह एक बार आ जाती थी और सतीश की आज्ञा लेकर चली जाती थी, और खुद ही खड़ी रहकर महाराज से सभी कामों को ख़ूब अच्छी तरह पूरा करा लेती थी। इसी समय नौकर तम्बाकू दे गया था, सतीश फिर एक बार करवट लेकर बोला, "जो मन हो वही बनवाओ।"

सावित्री बोली, "क्रोध भी है, देखती हूँ।"

दीवाल की तरफ़ मुँह फेरकर तम्बाकू खींचते हुए सतीश बोला, "पुरुष ही ठहरा, क्रोध क्यों नहीं रहेगा? आज मैं भोजन भी नहीं करूँगा।"

सावित्री बोली, "शायद और कहीं ठिकाना लग गया है। किन्तु कुछ भी हो, सतीश बाबू, स्कूल आपको जाना पड़ेगा, यह कहे देती हूँ।"

इतने थोड़े समय के बीच ही नियमित रूप से स्कूल जाने की बात फिर सतीश को भार-सा बनकर दबाता जा रहा था, और तरह-तरह के बहाने, तरह-तरह के कारण निकालकर उसने अनुपस्थित होना शुरू कर दिया था। आज उस बहानेबाजी की पुनरावृत्ति का सूत्रपात होते ही वह समझ गयी।

सतीश हड़बड़ाकर उठ बैठा और बनावटी क्रोध के स्वर में बोला, "शुभ कार्य के शुरू में ही टोको मत।"

सावित्री ने कहा, "यह तो आप कहेंगे ही। लेकिन एण्ट्रेंस पास करने में चौबीस साल बीत गये, यह डाक्टरी पास करने में चौसठ साल बीत जायेंगे।"

सतीश ने क्रोध भाव से कहा, "झूठी बात मत कहो सावित्री। मैंने एन्ट्रेंस पास नहीं किया?"

सावित्री हँसने लगी। बोली, "इसको भी पास नहीं किया?"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं। ईर्ष्यालु मास्टरों ने मुझे पास करने के लिए परीक्षा में बैठने ही नहीं दिया।"

सावित्री कपड़े से मुँह को दबाकर हँसती हुई बोली – "तो क्या इसकी भी वही हालत होगी?"

"किसकी?"

"इस डाक्टरी की?"

सतीश ने कहा, "अच्छा सावित्री, गधों की तरह जितने लोग हैं, वे परीक्षा पास करके क्या करते हैं, तुम बता सकती हो?"

सावित्री हँसी के वेग को दबाकर बोली, "गधों की तरह, लेकिन गधे हैं नहीं। जो लोग वास्तव में गधे हैं, वे पास ही नहीं कर सकते।"

सतीश ने दरवाज़े के बाहर झाँककर एक बार देख लिया। फिर स्थिर भाव से बैठ गया और गम्भीर होकर बोला, "अगर कोई सुन लेगा तो वह सचमुच ही निन्दा करेगा। मेरे मुँह पर ही मुझे गधा कह रही हो। इसकी सफाई नहीं दी जा सकती।"

हाय रे! कर्मों के दोष से आज सावित्री घर की सेविका है। इसी कारण वह इस आघात को सहकर बोली, "ठीक ही तो है।" यह कहकर वह चली गयी।

सतीश फिर आलसी की भाँति बिछौने पर लेट गया। उसके मन में कर्मविहीन समूचे दिन का जो चित्र उज्ज्वल होकर उठ रहा था, सावित्री की बातों की चोट से उसका अधिकांश मलीन हो गया, और मन की जिस व्यथा को लेकर सावित्री स्वयं चली गयी, वह भी उसकी छुट्टी के आनन्द को बढ़ाकर नहीं गया। यद्यपि वह मन ही मन समझ गया, आज फिर नागा करने से लाभ नहीं होगा, तो भी कुछ न करने का लोभ भी वह छोड़ न सकने पर आलस्य भरे विरक्त चेहरे से बिछौने पर ही लेट रहा। लेकिन ठीक समय पर स्नान के लिए तक़ाज़ा आ पड़ा; सतीश उठा नहीं, बोला – "जल्दी क्या है? आज मैं बाहर जाऊँगा नहीं।"

सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, "यह नहीं हो सकता। आपको स्कूल जाना ही पड़ेगा। जाइये, स्नान करके भोजन कीजिये।"

सतीश ने कहा, "तुमको क्या मेरा संरक्षक नियुक्त किया गया है जो तंग कर रही हो। आज मैं पादमेकम् न गच्छामि।"

सावित्री तनिक हँसकर बोली, "नहीं जाना है तो स्नान तो कर लीजिये। आपके आलस्य से नौकर-नौकरानियों को दुख होता है, इसे क्या आप नहीं देखते?"

सतीश ने कहा, "ये कैसे नौकर-नौकरानियाँ हैं जो नौ बजते न बजते ही दुख पाने लगते हैं। अब इस डेरे को ही बदल देना पड़ेगा। अन्यथा यह शरीर ठीक नहीं रहेगा।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "तब तो मुझे ही बदल देना पड़ेगा।" लेकिन तुरन्त ही वह बात को दबाकर बोल उठी, "तब तक आप को इसी डेरे का नियम मानकर चलना पड़ेगा, स्कूल में भी जाना पड़ेगा। उठिये, दिन चढ़ता जा रहा है।" इतना कहकर सतीश की धोती और अंगोछा स्नानघर में रख आने के लिए चल गड़ी।

सतीश नियमित संध्या-वन्दन किया करता था। आज वह स्नान करके आया और पूजा के आसन पर बैठकर देर करने लगा। सावित्री दो-तीन बार आकर देख गयी और दरवाज़े के बाहर से पुकारती हुई बोली, – "अब देर क्यों, परोसा हुआ भात ठण्डा होकर पानी हो रहा है। स्कूल जाना नहीं पड़ेगा। दो कौर खाकर हम लोगों को ज़रा रिहाई तो दीजिये।"

सतीश और भी पाँच मिनट चुपचाप बैठा रहा, फिर खड़ा होकर बोला, "संध्या-पूजा के समय गड़बड़ी मचाने से जानती हो, क्या होता है?"

सावित्री ने कहा, "गंगाजली और पंचपात्र सामने रखकर ढोंग रचाने से क्या होता है, जानते हैं?"

सतीश ने आँखें फैलाकर कहा, "मैं ढोंग रच रहा था! कदापि नहीं।"

सावित्री कुछ कहने जा रही थी, फिर रुक गयी। उसके बाद बोली, "यह तो आप ही जानते हैं। लेकिन आपको भी तो किसी दिन इतनी देरी नहीं होती थी। जाइये, भात परोस दिया गया है।" यह कहकर चल दी।

आज जाड़े के मधुर मध्याह्न में डेरा निर्जन और निस्तब्ध था। इस डेरे में रहने वाले सभी नौकरी करते हैं। वे लोग दफ़्तर गये हैं। रसोइया घूमने गया है, बिहारी बाज़ार से सौदा लाने गया है, सावित्री की भी कोई आहट-आवाज़ नहीं सुनायी पड़ती। सतीश ने अपने कमरे में पहले दिवा-निद्रा की मिथ्या चेष्टा की। फिर उठकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा। सिरहाने की खिड़की बन्द थी। उसको खोलकर सामने की खुली छत की तरफ़ देखते ही इसी क्षण उसने उसको बन्द कर लिया। छत के एक छोर पर बैठकर सावित्री अपने बाल सुखा रही थी और झुककर कोई पुस्तक देख रही थी। खिड़की खोलने, बन्द करने की आवाज़ से उसने चौंककर माथे पर आँचल डालकर खड़ी होकर देखा, खिड़की बन्द हो गयी थी। थोड़ी देर बाद उसने कमरे में प्रवेश कर कहा, "बाबू, आप मुझे बुला रहे थे?"

सतीश ने कहा, "नहीं। नहीं बुलाया।"

"आपके लिए पान और जल ले आऊँ?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ले आओ।"

सावित्री ने पान और जल लाकर बिछौने पर रख दिया और फ़र्श पर बैठते हुए कहा, "जाऊँ, आपके लिए तम्बाकू लाऊँ।"

सतीश ने पूछा, "बिहारी कहाँ है?"

"बाज़ार गया है।" कहकर सावित्री चली गयी और थोड़ी देर के बाद तम्बाकू भरकर ले आयी। बोली, "आज झूठ-मूठ आपने नागा कर दिया।"

सतीश ने कहा, "यही सत्य है। मेरा स्वभाव कुछ स्वतंत्र है, इसलिए बीच-बीच में ऐसा न करने से बीमारी पकड़ लेती है। इसके सिवा मैं विधिवत डाक्टर बनना भी नहीं चाहता। इधर-उधर की कुछ बातें सीखकर अपने गाँव के मकान पर एक बिना पैसे वाला मुफ़्त दवाखाना खोल दूँगा। चिकित्सा के अभाव से देश-गाँव के ग़रीब दुखी हैजे की बीमारी से उजड़ते जाते हैं, उन लोगों की चिकित्सा करना ही मेरा उद्देश्य है।"

सावित्री ने कहा, "बिना पैसे की चिकित्सा में शायद अच्छी तरह सीखने की आवश्यकता नहीं है। अच्छे डाक्टर केवल बड़े आदमियों के लिए होते हैं, और ग़रीबों के लिए गँवार? लेकिन ऐसा भी होगा कैसे? आपके चले जाने से विपिन बाबू भारी कठिनाई में पड़ जायेंगे?"

विपिन बाबू का ज़िक्र होने से सतीश लज्जित होकर बोला, "मेरे जैसे मित्र उनको बहुत मिल जायेंगे। इसके अलावा अब मैं वहाँ जाता भी नहीं।"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "जाते नहीं हैं! तो फिर उनको गाना-बजाना सिखाता कौन है?"

सतीश ने चिढ़कर कहा, "गाना-बजाना क्या मैं सिखाता हूँ?'

सावित्री बोली, "क्या मालूम बाबू, लोग यही कहते हैं।"

"कोई नहीं कहता, यह तुम्हारी मनगढ़न्त बात है।"

"आपको विपिन बाबू का मुसाहिब कहते हैं। यह भी क्या मेरी मनगढ़न्त बात है?"

यह बात सुनकर सतीश आपे के बाहर हो उठा। विपिन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध का बाहर के लोगों की चर्चा का विषय होने पर उसका फल साधारणतः क्या होता है इसकी जानकारी उसको थी। कलकत्तावासी विपिन की सांसारिक अवस्था और उसके आमोद-प्रमोद की अपर्याप्त साज सरंजाम के बीच प्रवासी सतीश का स्थान लोगों की दृष्टि से नीचे ही उतर आयेगा, सतीश के दिल का यह सन्देह सावित्री की तीक्ष्ण प्रहार से बिल्कुल ही उग्र मूर्ति धारण करके बाहर निकल आया। वह दोनों नेत्रों के सतेज बनाकर गरज उठा, "मैं मुसाहिब हूँ? कौन कहता है, बताओ तो?"

मन ही मन मुस्कराकर सावित्री बोली, – "किसका नाम बताऊँ? जाऊँ, राखाल बाबू का बिछौना धूप में डाल आऊँ।"

"बिछौना छोड़ो, नाम बताओ!"

"कुमुदिनी।" सावित्री ने हँसकर कहा।

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "उसको तुम किस तरह जान गयी?"

सावित्री बोली, "उन्होंने मुझे काम करने के लिए बुला भेजा था।"

"तुमको? साहस तो कम नहीं है। तुमने क्या कहा?"

"अभी तक मैंने कुछ कहा नहीं है, सोच रही हूँ, वेतन ज़्यादा है, काम कम है, इसीलिए लोभ हो रहा है।"

सतीश की आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने कहा, "यह है विपिन की करतूत! तुम्हारा नाम वह अक्सर लेता रहता है।"

सावित्री ने हँसी को दबाकर कहा, "लेते हैं? तब तो मालूम पड़ता है मेरे ऊपर दिल लग गया है?"

सावित्री की ओर क्रूर दृष्टि से देखने के बाद सतीश ने कहा – "लगवाता हूँ। सौ रुपये जुर्माना देने के बाद से किसी को आज तक पीटा नहीं, "अच्छा तुम जाओ!"

सावित्री चली गयी। राखाल के बिछौने को धूप में डालकर झटपट वापस आकर खिड़की

के सूराख से झाँककर उसने देखा, सतीश कुरता पहन चुका है और बक्स में से एक बण्डल नोट जेब में रख रहा है। सावित्री दोनों चौखटों पर हाथ रखकर रास्ता रोककर खड़ी हो गयी। बोली, "कहाँ जाइयेगा?"

"काम है, रास्ता छोड़ दो।"

"क्या काम है, सुनूँ तो।"

सतीश ने नाराज़ होकर कहा, "हटो!"

सावित्री हटी नहीं। हँसकर बोली, "भगवान ने आप को किसी गुण से वंचित नहीं रखा है। इसके पहले आप जुर्माना भी दे चुके हैं।"

सतीश ने आँखें तरेर लीं, कुछ बोला नहीं।

सावित्री बोली, "यह आपका भारी अन्याय है। कहाँ मैं काम करूँ, कहाँ न करूँ, यह मेरी इच्छा पर है, आप क्यों झगड़ा करना चाहते हैं।"

सतीश बोला, "मैं झगड़ा करूँ या न करूँ यह मेरी इच्छा की बात है, तुम क्यों रास्ता रोक रही हो?"

सावित्री ने हाथ जोड़कर कहा, "ज़रा इन्तज़ार कीजिये मेरे आने पर जाइयेगा!"

सतीश ज्यों ही लौटकर खटिया पर बैठ गया, त्यों ही सावित्री ने बाहर जाकर दरवाज़े की जंजीर चढ़ा दी। धीरे-धीरे कहती गयी, "जब तक आप शान्त न होइयेगा, दरवाज़ा न खोलूँगी। नीचे जा रही हूँ।" यह कहकर वह नीचे चली गयी। बाहर न जा सकने के कारण सतीश अपने कुरते को ज़मीन पर फेंककर चित लेट गया।

विपिन के साथ उसका परिचय इलाहाबाद में हुआ था। कलकत्ता जाकर यथेष्ट घनिष्ठ हो जाने पर भी इस डेरे में उसका जब-तब आना-जाना बढ़ता चला जा रहा था। इसे वह अनुभव कर रहा था। सावित्री की बातों से वह कारण बिल्कुल ही सुस्पष्ट हो उठा। सतीश का मित्र और बड़ा आदमी होने से इस डेरे में उसका बहुत सम्मान था। सतीश की अनुपस्थिति में भी उसके प्रति आदर-सत्कार की जिससे त्रुटि न होने पाये, इसका भार सतीश ने सावित्री को सौंप दिया था। इस आदर-सत्कार को विपिन बाबू पूरी मात्रा में वसूल करते जा रहे थे, यह ख़बर डेरे पर लौट आने पर सतीश जब-तब पा रहा था। अपने मन की इस सरल उदारता की तुलना में विपिन की उस भद्दी क्षुद्रता ने भारी कृतघ्नता की भाँति आज उसको बाँध दिया और सभी निमंत्रण-आमंत्रण, सौन्दर्य, घनिष्ठता एक ही पल में उसके लिए विष के समान बन गये। बाहरी तौर से वह चुपचाप बना रहा, लेकिन मर्मान्तक क्रोध, पिंजड़े में बन्द सिंह पशु की भाँति उसके हृदय में इस कोने से उस कोने तक घूमने लगा।

एक घण्टे के बाद वापस आने पर सावित्री ने खिड़की के बाहर से धीरे-धीरे पूछा, "क्रोध शान्त हो गया बाबू?"

सतीश चुप रहा।

दरवाज़ा खोलकर सावित्री कमरे में आकर बोली, "अच्छा, यह कैसा अत्याचार है, बताइये न?"

सतीश ने किसी तरफ़ न देखकर पूछा, "कैसा अत्याचार?"

सावित्री ने कहा, "सभी अपनी भलाई खोजते हैं, मैं भी अगर कहीं कोई अच्छा काम पाऊँ, तो उसमें आप नाराज़ क्यों होते हैं?"

सतीश ने उदास भाव से कहा, "नाराज़ क्यों होऊँगा? तुम्हारी इच्छा होगी तो ज़रूर जाओगी।"

सावित्री ने कहा, "फिर मेरे नये मालिक को मारने-पीटने की तैयारी आप क्यों कर रहे हैं?"

सतीश बोला, "यदि तुम्हारी चीज़ को कोई भुलावा देकर ले जाय, तुम क्या करोगी?"

"लेकिन मैं क्या आपकी चीज़ हूँ?" कहकर सावित्री हँस पड़ी।

सतीश ने लजाकर कहा, "धत! यह बात नहीं है, लेकिन...।"

सावित्री ने कहा, "लेकिन की अब ज़रूरत नहीं है, मैं जाऊँगी नहीं।"

सतीश का कुरता धरती पर पड़ा था, सावित्री ने उसको उठा लिया और जेब से नोटों का बण्डल निकाल लिया। बक्स में चाभी लगी हुई थी, नोटों को अन्दर रखकर ताला बन्द करके चाभी अपेन रिंग में पहनाते हुए बोली, "मेरे ही पास रहेगी। रुपये की ज़रूरत पड़ने पर माँग लेना।"

सतीश ने कहा, "अगर तुम चोरी करो तो?"

सावित्री हँस पड़ी, आँचल में बँधे हुए चाभियों के गुच्छे को पीठ पर फेंककर बोली, "मैं चोरी करूँगी तो आपको कोई चोट न पहुँचेगी।"

सतीश सावित्री के चेहरे की तरफ़ थोड़ी देर तक ताकता रहा। उस क्षणकाल की दृष्टि से उसने क्या देख लिया, वही जानता है, चौंककर वह बोल उठा, "सावित्री, तुम्हारा घर कहाँ है?"

"बंगाल में।"

"इससे ज़्यादा और कुछ न बताओगी?"

"नहीं।"

"घर कहाँ है, भले ही न बताओ, जाति क्या है, यह तो बताओ।"

सावित्री ने तनिक हँसकर कहा, "यह जान लेने से भी क्या होगा? मेरे हाथ का पकाया भात तो आप खायेंगे नहीं।"

थोड़ी देर तक सोचकर सतीश बोला, "सम्भव नहीं है। लेकिन ज़ोर के साथ बिल्ककुल 'नहीं' भी मैं नहीं कह सकता।"

अपनी चमकीली आँखों को सतीश के चेहरे पर डालकर क्षण भर बाद ही वह हँस पड़ी। बालिका की तरह सिर हिलाकर अपने कण्ठ स्वर में अनिर्वचनीय प्यार घोलकर बोली, "नहीं कर नहीं सकते, क्यों, बताइये न?"

सतीश के सिर पर मानो भूत सवार हो गया। उसकी छाती का रक्त उथल-पुथल करने लगा। वह बोल उठा, "क्यों, मैं नहीं जानता सावित्री, लेकिन तुम पकाकर दोगी तो मैं खाऊँगा

नहीं, यह कह देना कठिन है।"

"कठिन है? अच्छा, यह एक दिन देख लिया जायेगा। ओह! राखाल बाबू का तकिया धूप में डालना भूल गयी।" कहकर चल पड़ी।

"एक बात सुनती जाओ।" कहकर सतीश एकाएक सामने की ओर झुक पड़ा और हाथ बढ़ाकर उसके आँचल का छोर उसने थाम लिया। अपनी आँखों से बिजली की वर्षा करती सावित्री बोली, "छिः! आ रही हूँ।" और झटके से आँचल छुड़ा लेने के बाद ओझल हो गयी।

अचानक मानो कोई एक काण्ड हो गया। उसका यह अकस्मात त्रासयुक्त पलायन, यह दबे हुए कण्ठ की 'आ रही हूँ' की आवाज़ और इस आँख की बिजली ने वज्राग्नि की तरह सतीश की समस्त दुर्बुद्धि को एक ही पल में जलाकर राख बना डाला। कुत्सित लज्जा के धिक्कार से उसका सारा शरीर शूल से बिंधे हुए साँप की भाँति मरोड़-मरोड़कर उठने लगा। उसके मन में यह ख़्याल आया कि इस जन्म में वह फिर सावित्री को अपना मुँह न दिखा सकेगा। किसी ज़रूरत से वह फिर आ न जाय इस आशंका से वह उसी क्षण एक शाल खींचकर तूफ़ान के वेग से बाहर निकल गया। तीन-चार सीढ़ियाँ बाकी ही थीं कि उसी समय सतीश ने सावित्री के कण्ठ की आवाज़ फिर सुन ली। वह रसोईघर से दौड़कर चली आयी थी और पुकारकर कह रही थी, "खाना खाकर घूमने जाइये बाबू, वरना वापस आने में देर होने से सब नष्ट हो जायेगा।

मानो सुनायी ही नहीं पड़ा, इस भाव से सतीश बाहर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जिस समय सावित्री रसोई के बारे में पूछने के लिए गयी, सतीश ने धीरे-धीरे कहा, "मन में कुछ ख़्याल मत करना।"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "क्या ख़्याल मन में न लाऊँगी?"

सतीश सिर झुकाकर चुप हो रहा।

मीठी हँसी हँसकर सावित्री ने कहा, "अच्छा, जो कुछ भी हो, मेरे पास समय नहीं है – क्या रसोई बनेगी, बताइये न?"

"मैं नहीं जानता – तुम्हारी जो इच्छा हो।"

"अच्छा!" कहकर सावित्री चली गयी, उसने द्वितीय प्रश्न नहीं पूछा।

दो घण्टे के बाद लौटकर बोली, "कैसा काण्ड मचा रखा है, बताइये तो! आज भी 'पादमेंकम् न गच्छामि' ही रहेगा?"

सतीश फिर भी चुप रहा।

सावित्री ने कहा, "नौ बज चुके हैं।"

समय बीत जाने की ख़बर से सतीश रत्तीभर भी घबराहट न दिखाकर बोला, "बज जायें, मुझे और कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

आलस्य में बेकार समय नष्ट करना सावित्री बिल्कुल ही सह नहीं सकती थी। इसी कारण वह कुछ दिनों से भीतर ही भीतर कुपित असहिष्णु होती जा रही थी। ज़रा रूखे कण्ठ

से उसने पूछा, "क्या अच्छा नहीं लग रहा है? पढ़ने जाना?"

सतीश भी स्वयं मन ही मन चिढ़ता जा रहा था। जवाब नहीं दिया। उसके चेहरे की तरफ़ देखकर सावित्री यह समझ गयी, और एक क्षण चुप रहकर अपने कण्ठ के स्वर को कोमल बनाकर बोली "लिखना-पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा है! अब शायद औरतों का आँचल पकड़कर खींचातानी करना अच्छा लग रहा है। स्कूल जाइये। बेकार उपद्रव मत कीजिये।"

उसके तिरस्कार में यद्यपि हार्दिक स्नेह और एकान्त कल्याणेच्छा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था किन्तु बातों के तरीके ने सतीश के सर्वांग में मानो केवाँच पोत दिया। देखते-देखते उसकी आँखें और चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। वह बोला, "जो भी बात मुँह में आती है, तुम वह कह डालती हो। प्रश्रय पा लेने पर केवल कुत्ते ही सिर नहीं चढ़ जाते, मनुष्य को भी वह बात याद दिलानी पड़ती है।"

"यह तो है गाली-गलौज!" सावित्री पल भर चुप रही, फिर कण्ठ-स्वर को और धीमा कर बोली, "पड़ता तो है ज़रूर! नहीं तो आपको ही याद दिलाने की क्यों ज़रूरत पड़ेगी कि यह है भले आदमियों का मकान, वृन्दावन नहीं है।"

इतना कहकर वह तेज़ कदम बढ़ाये चली गयी। आश्चर्य से सतीश स्तम्भित हो रहा। सावित्री उसको इस तरह बींध सकती है, इस बात को तो वह अपने मन में स्थान भी नहीं दे सकता था। कुछ देर तक एक ही दशा में बैठा रहकर वह हठात उठ खड़ा हुआ और किसी तरह स्नान-भोजन करके पढ़ने के बहाने बाहर निकल गया।

उस दिन उसका अपमान से आहत चित्त उसकी प्रवृत्तियों पर शासन करने लगा और वह जितना ही अपने अचिन्तनीय अद्‌भुत व्यवहार का तात्पर्य खोजकर भी न पा सका, उतना ही उसके मन में एक बात बार-बार चक्कर काटने लगी। किसलिए उसने आँचल पकड़ लिया था, कौन-सी बात उसको कहने की आवश्यकता पड़ी थी और सावित्री इस तरह भागकर न चली जाती तो वह क्या कहता? क्या करता? उसका अपदस्थ क्रुद्ध अन्तःकरण निरन्तर इस तिक्त प्रश्न को लेकर सावित्री से अधिक निष्ठुर भाव से उसे बींधने लगा। इसी प्रकार सारा दिन वह अपने ही हथियार से स्वयं क्षतविक्षत होकर संध्या समय गंगाजी के किनारे जाकर निर्जीव की भाँति एक पत्थर पर बैठ गया।

कल जिस समय सावित्री के सामने मन की दुर्बलता अचानक प्रकट हो जाने पर वह लज्जा के मारे मकान से लम्बी साँस भरता हुआ भाग गया था, इस समय उस लज्जा में मानो कुछ मिठास मिली हुई थी। मानो आड़ में रहकर किसी ने उसमें भाग ले लिया था लेकिन आज सावित्री के व्यंग्य-वचन की आग से उस रस की अन्तिम बूँद तक सूख गयी और निस्संग लज्जा बिल्कुल ही शुष्क कठिन होकर उसके हृदय में बद्धमूल होकर बैठ गयी। उस दिन उसके आत्मसम्मान ने केवल सिर झुका दिया था, आज वह उसके कन्धे पर टूट पड़ा, फिर सबसे बढ़कर यह दुख चोट पहुँचाने लगा कि इस स्त्री से उसने इतने दिन जितने परिहास किये हैं, उन सभी का आज एक गन्दा अर्थ निकाला जायेगा। कल प्रातःकाल तक सचमुच ही उसके परिहास में व्यंग्य के अलावा कोई दूसरा अर्थ नहीं था, निर्जन मध्याह्न

के इतने ही असमय के बाद उस बात को तो जबान पर लाने का भी अब मार्ग नहीं रहा। आसक्ति बहुत दिनों से छिपी हुई दशा में प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी, यह बात तो सावित्री किसी तरह भी विश्वास न करेगी। वह कहेगी, इसके मन में यही बात थी! लेकिन उसके मन में तो कुछ भी नहीं था। इस सत्य को समझाकर बता देने का सुअवसर उसको कब मिलेगा? वह अच्छा लड़का नहीं है, इसकी लज्जा भी उसको बहुत अधिक नहीं थी लेकिन पाखण्डी का अपवाद वह कैसे सहेगा, उसने मन-ही-मन कहा, "यदि वह चोर है तो चोर की तरह सेंध काटते समय ही रंगे हाथों क्यों न पकड़ लिया गया। सावित्री मानो मन-ही-मन हँसकर कहेगी, यह साधु जटा कमण्डल पीठ पर लादे त्रिशूल से सेंध काट रहा था, पकड़ा गया है। इस अपवाद की कल्पना उसको जलाने लगी। इसी प्रकार बैठे रहने पर रात कितनी बीत गयी, इसको वह जान भी न सका। कब भाटा समाप्त होकर ज्वार का पानी उसके पैरों से टकराने लगा, कब कलकत्ता गैस की रोशनी से उज्ज्वल हो उठा, कब सिर के ऊपर काले आसमान में तारे झिलमिलाने लगे, इसका पता नहीं चला। जाड़े को कोप होने से जब उसको जाड़ा लगने लगा और उस पर चटकल की घड़ी में जब बारह बज गये तब सतीश उठ पड़ा और अपने घर की तरफ़ रवाना हो गया। कुछ क्षण के लिए मानो वह अपनी काल्पनिक बातों को भूल गया था, लेकिन चलते-चलते मकान की दूरी जितनी ही घटने लगी, उसका मन फिर उसी अनुपात से छोटा होने लगा। अन्त में गली के मोड़ के पास आ जाने पर उसके क़दम उठ ही नहीं रहे थे। धीरे-धीरे किसी तरह वह मकान के दरवाज़े के सामने आकर चुपचाप खड़ा रहा। कहीं भी कोई जाग रहा है, ऐसा मालूम नहीं हुआ। और यद्यपि वह जानता था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने घर लौट गयी होगी तो भी दरवाज़ा खटखटाने, पुकारने का साहस उसको नहीं हुआ। भय होने लगा कि कहीं वही आकर दरवाज़ा न खोल दे। ठीक उसी समय किवाड़ आप ही खुल गये। एक क्षण सतीश चुप रहा। फिर बोला, "कौन? बिहारी?"

"हाँ बाबू!"

"सब खा चुके?"

"जी, हाँ!"

"नौकरानी चली गयी?"

"जी हाँ, मुझे बैठे रहने को कहकर अभी चली गयी।"

यह सुनकर सतीश मानो बच गया। खुश होकर उसको दरवाज़ा बन्द करने को कहकर ऊपर चला गया।

बिहारी आकर बोला, "बाबू आपका खाना?"

"खाना रहने दो बिहारी, मैं खाकर आया हूँ।"

बिहारी ने कहा, "आपके लिए पान और जल इस मेज़ पर रखा है।"

"अच्छा, तू जाकर सो जा।"

बिहारी चला गया। सतीश बिछौने पर पड़कर सो गया।

झगड़ा कर चुकने के बाद सावित्री का भी मन अच्छा नहीं था। सतीश की कटक्ति क्लेश देता रहा। इसलिए दिन में किसी समय एकान्त में क्षमा-याचना कर लेने की आशा में शाम हो गयी, तब आशा आशंका के रूप में परिणत होने लगी। वह जानती थी कि इस कलकत्ता में विपिन के यहाँ जाने के सिवा सतीश के लिए और कोई स्थान नहीं है। इसलिए सबसे पहले यह भय उत्पन्न हो गया कि वह उस दल में सम्मिलित हो गया होगा। क्रमशः रात बढ़ने लगी। सतीश नहीं आया। वह और कहीं जा सकता है ऐसा विचार भी उसके मन में नहीं आया। सन्देह दृढ़ होकर जब विश्वास में परिणत हो उठा, तब प्रतीक्षा करना भी उसके लिए असम्भव हो उठा। वास्तव में उसको घृणा होने लगी कि क्षमा माँगने के लिए वह ऐसे आदमी की राह देख रही है। इस कारण बिहारी को बैठने को कहकर सावित्री बड़ी रात को घर लौट गयी। अपने घर जाकर वह बिस्तर पर लेट तो रही, लेकिन आँखों में नींद नहीं आयी! सारा शरीर बेचैनी से सबेरा होने की प्रतीक्षा में छटपटाने लगा। कमरे में रखी घड़ी में एक-एक कर सब घण्टें बज गये – जागती हुई वह सब सुन रही थी। प्रभात के लिए और प्रतीक्षा न कर सकने पर अँधेरा रहते ही वह कपड़े बदलकर, हाथ-मुँह धोने के पश्चात चल पड़ी। रास्ते में उस समय मारवाड़ी स्त्रियाँ गाते-गाते गंगा स्नान करने जा रही थीं। सावित्री ने कहा, "गंगा मैया, जाकर सब अच्छा ही देखूँ।" उसके दोनों होंठ काँपने लगे। आँसू से दोनों आँखें भर गयीं और इस कल्पित आशंका से अपने सम्पूर्ण मन को भर वह राह में तेज़ क़दम से चलते-चलते हज़ारों बार मन ही मन उच्चारण करने लगी, "सकुशल रहें। जो ही मन हो, करें लेकिन अच्छे रहें"। मकान पर पहुँचने पर पुकारने के बाद बिहारी ने दरवाज़ा खोलने के साथ ही कहा, "सतीश बाबू बड़ी रात को आये और मालूम नहीं कहाँ से खाना खाकर आये।" यह ख़बर पहले देने की ज़रूरत है, यह बात इस बूढ़े से छिपी नहीं थी। सावित्री ऊपर जा रही थी, ठिठककर खड़ी हो गयी। भौंहों को सिकोड़कर उसने कहा, "शायद बाबू ने खाया नहीं?"

"नहीं, उनका खाना तो ढँका हुआ रखा है।"

सावित्री 'हूँ' कहकर ऊपर चली गयी। उसका दुश्चिन्ता से ग्रस्त मन निर्भय होने के साथ फिर ईर्ष्या से जल उठा।

प्रातः दिन चढ़ आने पर जब सतीश की नींद टूटी, ठीक उस समय सावित्री आ खड़ी हुई। उसके मुँह की तरफ़ देख लेने के साथ ही सतीश ने सिर झुका लिया। कुछ देर बाद सावित्री ने कहा, "क्या रसोई बनेगी, यह जान लेने के लिए आयी हूँ।"

सतीश ने किसी ओर बिना देखे कहा – "रोज़ जो बनती है वही बनने दो।"

"अच्छा!" कहकर सावित्री जाने को तैयार होते ही फिर खड़ी हो गयी। बोली, "लिखने-पढ़ने की तरह बाबू को क्या खाना-पीना भी अब अच्छा नहीं लगता?"

सतीश ने धीरे से कहा, "मैं खा आया था।"

उसने डर से झूठी बात कह दी। लेकिन कहाँ, इस बात को भी सावित्री ने घृणा के कारण नहीं पूछा। थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "आज दो दिन से आप भागते हुए घूम रहे

हैं किस बात के डर से, सुनूँ तो? मेरे कारण अगर असुविधा होती हो तो आप जवाब दे सकते हैं।"

सतीश ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "तुम्हारा अपराध क्या है? इसके अलावा मैं तो जवाब देने का मालिक भी नहीं हूँ, यह बासा तो केवल मेरा अकेले का नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "अकेले का होता तो शायद जवाब दे देते। अच्छा, तो मैं खुद ही चली जा रही हूँ।"

सतीश चुप ही रहा। यह देखकर सावित्री मन ही मन और भी जल उठी, बोली, "मेरे जाने से आप खुश होते हैं? आपके पैरों पर गिरती हूँ सतीश बाबू, हाँ या नहीं, एक जवाब दीजिये।"

फिर भी सतीश चुप ही रहा। सावित्री इस बासे पर अपना कितना हक रखती है, इस बात को वह जानता था और इस प्रकार उसके चले जाने से कोई भी बात छिपी न रहेगी, तब सभी बातें एक मुँह से दूसरे मुँह में बढ़ते-बढ़ते कैसी घृणित आकृति धारण कर लेंगी, इसका निश्चित अनुमार करके वह डर गया। क्षण भर चुप रहकर उसने मीठे स्वर से कहा, "मुझे क्षमा करो सावित्री! जब तक मैं यहाँ हूँ, कम से कम तब तक तो कभी मत जाओ।"

कोई दूसरा समय होता तो वह तुरन्त क्षमा कर देती, लेकिन सतीश के सम्बन्ध में वह शायद एक निराधार सन्देह का मन ही मन पोषण कर रही थी, इसलिए इस मृदु कण्ठ-स्वर को कपटाचरण समझकर वह निर्दय हो उठी, और उसके ही गले को अनुकरण करके वह उसी क्षण बोल उठी, "आप इतना आडम्बर करके क्षमा माँगकर साधु बनने जा रहे हैं, किसलिए? मुझ जैसी नीच स्त्री का आँचल पकड़कर ऐसा क्या आपने नया काम किया है कि लज्जा से बिल्कुल ही मरे हा रहे हैं। इससे अच्छा यह है कि आप अपने घर चले जाइये। लिखना-पढ़ना आप का काम नहीं है।"

जो सतीश अपने उग्र स्वभाव के कारण किसी की भी परवाह नहीं करता था, बातों को सह लेना जिसका स्वभाव नहीं था, वह इस समय इतने बड़े अपमान की बात से चुप हो रहा। उसका अपराधी मन भारी बोझ से दबे हुए बोझ ढोने वाले पशु की तरह इस प्रकार निरुपाय दशा में राह में संकोच से पड़ा हुआ था कि सावित्री के इस बार के निष्ठुर आघात से भी वह किसी तरह अपना मस्तक ऊपर उठाकर खड़ा न हो सका। किन्तु सावित्री भी चौंक उठी। उसकी स्पर्धा क्रोध को भी पार कर गयी, यह बात उसके अपने कानों में भी जा लगी। बड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गयी।

तीन

सावित्री आज भी काम-धन्धों में व्यस्त रहती हुई दिन-भर उत्कण्ठित बनी रही। सतीश यदि कल की तरह आज भी क्रोध करता अथवा एक भी बात का जवाब देता तो अच्छा होता, लेकिन उसने कुछ भी नहीं किया। उदास मुख से नियमानुसार भोजन करके पढ़ने चला गया और ठीक समय पर लौट आकर चुपचाप अपने कमरे में बैठा रहा। आड़ में रहकर सावित्री सब कुछ लक्ष्य करने लगी, लेकिन किसी तरह का बहाना करके भी आज उसके कमरे में घुसने का उसने साहस नहीं किया। प्रतिदिन संध्या के बाद वह उसके कमरे में झाड़ू लगा आती थी, आज बिहारी को भेज दिया और संध्या के बाद वही बत्ती जला आया।

नित्य इसी समय राखाल बाबू के कमरे में शतरंज का अड्डा जमता था, आज भी जम गया। सामने की खुली छत पर कोई भी नहीं था। सावित्री इधर-उधर देखकर अपने सारे संकोच को बलपूर्वक हटाकर चुपके-चुपके पैर बढ़ाती हुई सतीश के कमरे में जा पहुँची। सतीश बिछौने पर चित लेटा हुआ शायद छत की कड़ियों को गिन रहा था। अब उठकर बैठ गया। सावित्री, ने कहा, "आपके लिए संध्या-पूजा का स्थान ठीक कर दूँ।"

सतीश ने कहा, "अच्छा, कर दो।"

फिर सावित्री को चुप हो जाना पड़ा। लेकिन कुछ देर बाद ही वह बोल उठी, "अच्छा, लोग क्या कहेंगे बताइये तो?"

सतीश ने कुछ जवाब न दिया।

सावित्री बोली, "आपने मुझे रहने को कहा, लेकिन स्वयं कैसा उत्पात मचा रहे हैं, बताइये तो?"

सतीश ने गम्भीर भाव से कहा, "मैंने कोई भी उत्पात नहीं मचाया; केवल चुपचाप पड़ा हुआ हूँ।"

सावित्री बोली, "यही चुपचाप पड़ा रहना तो सबसे अधिक बुरा है। जब सभी चुपचाप पड़े नहीं हैं तब आपके चुपचाप पड़े रहने से ही चर्चा होने लगेगी, यही क्या आपकी इच्छा है?" थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर बोली, "वही जो चुभोकर घाव कर देने की कहावत है, आप ठीक वही कर रहे हैं। दोष नहीं है, फिर भी दोषी बनकर बैठे हुए हैं। इस बात को लेकर पाँच आदमी कानाफूसी करेंगे, हँसी-मज़ाक करेंगे, यह आप सह सकेंगे, मुझसे तो सहा न जायेगा। मुझे यहाँ से चला जाना पड़ेगा।"

सतीश ने मन में सोचा, "दोष क्या, मैंने तो कुछ भी नहीं किया?"

सावित्री ने कहा, "नहीं! अच्छी तरह विचार कर देखिये तो, मन आप ही आप साफ़ हो जायेगा। मेरे सम्बन्ध में आपकी तरह दोष.....।" सावित्री फिर कुछ बोल न सकी। दौड़ता हुआ घोड़ा अचानक गहरे खन्दक के किनारे जाकर अपने दोनों पैरों को गड़ाकर जिस तरह जी-जान से रुककर खड़ा हो जाता है, सावित्री की चलती हुई जबान ठीक उसी तरह रुक गयी। उसकी इस आकस्मिक निस्तब्धता से आश्चर्य में पड़ा हुआ सतीश ज्यों ही मुँह ऊपर उठाकर देखने लगा त्यों ही आपस में आँखें लड़ गयीं। अपनी लज्जा से सावित्री आप ही मर गयी। वह जो यही बात कहने गयी थी कि उसकी तरह नारी के सम्बन्ध में इस प्रकार

के अपराध में लज्जा का कारण नहीं है, इस लज्जा से उसके केश तक काँप उठे।

सतीश कोई बात कहने जा रहा था, लेकिन सावित्री ने उसको रोककर कहा, “चुप रहिये, आप भी समझ लें। झूठ-मूठ तिल का ताड़ बनाकर कष्ट मत भोगिये। ऐ बिहारी, बाबू के लिए संध्या-पूजा का स्थान ज़रा जल्दी से धो डालो, मैं देर से आसन लिए खड़ी हूँ।”

बिहारी किसी बात से इसी तरफ़ आ रहा था, तुरन्त जल लाने के लिए जब वह लौट गया, तब सावित्री ने लांछित अपमान के स्वर में कहा, “आपके बर्ताव से आज दो दिनों से मैं कितनी परेशान हो उठी हूँ, इसको क्या आप आँखें उठाकर एक बार देख भी नहीं पा रहे हैं? आश्चर्य है!”

उसकी इतनी शीघ्रता में कही हुई बातों को ठीक से समझ लेने का अवकाश सतीश को मिला नहीं, तो भी उसके अन्दर की ग्लानि मानो स्वच्छ होकर चली आयी और दूसरे ही क्षण क्षमा पाये हुए अपराधी की भाँति पछतावे क स्वर में उसने कहा, “लेकिन मैंने क्या तुम्हारा अपमान नहीं किया?”

सावित्री ने कहा, “न समझने से मैं आपको समझाऊँगी कैसे? सौ बार, हज़ार बार कहती हूँ, उससे मेरी तरह की स्त्रियों को कोई अपमान नहीं होता। कृपा करके शान्त हो जाइये, केवल इतनी ही विनती आपसे आपके चरणों में कर रही हूँ।”

सतीश कुछ कहने जा रहा था, लेकिन सावित्री अपनी दोनों भौंहों को सिकोड़कर संकेत में मना करके बोली, “बिहारी आ गया!”

बिहारी लोटे में पानी लेकर आ गया था। सावित्री ने उसके हाथ से लोटा लेकर, कमरे के एक कोने को अच्छी तरह धोकर आँचल से पोंछकर सतीश से कहा, “आप जाइये, हाथ-पाँव धोकर संध्या करने के लिए बैठ जाइये। पूजा की सामग्री आदि उस ताख में है।” इतना कहकर सतीश के दुर्विष पूर्ण हृदय-भार को चुपचाप दूर करती हुई बिहारी को साथ लेकर वह धीरे-धीरे बाहर चली गयी।

ध्यान लगाकर सांध्यकृत्य समाप्त करके उठने के साथ ही सतीश ने देखा, इस बीच कोई चुपके से बाहर आकर आसन बिछाकर उसके लिए भोजन रख गया है। यद्यपि कमरे में कोई नहीं था, तो भी वह निश्चित रूप से समझ गया कि वह अकेला नहीं है। आसन पर बैठकर उसने कहा, “अभी इतना अधिक खा लेने से फिर तो रात को न खा सकूँगा।”

बाहर से उत्तर आया, “खाना भी न पड़ेगा, विपिन बाबू के यहाँ से आदमी निमन्त्रण दे गया है।”

सतीश हँस पड़ा। बोला, “जाओ, जलाओ मत, मैं कहीं भी जा न सकूँगा।”

सावित्री आड़ से ही बोली, “ऐसा कैसे होगा। कह गये हैं, शायद कहीं जाना होगा, आप जानते ही होंगे और न जाने उन लोगों का सब कुछ भरभण्ड हो जायेगा। गाना-बजाना।”

“होने दो।” इतना कहकर सतीश इस विषय की चर्चा बन्द करके चुपचाप भोजन करने लगा और समाप्त हो जाने पर बिछौने के सिरहाने बत्ती लाकर भले लड़के की भाँति एक डाक्टरी कि किताब खोलकर लेट गया। लेकिन उस तरफ़ किसी भी दशा में मन न लग

सका। उसका व्याकुल मन बन्धन से छूटे हुए घोड़े की तरह बेकार सर्वत्र दौड़ने लगा।

रसोई को ढककर रसोइया महाराज बिहारी से गांजा मँगवा रहा था और राखाल बाबू के कमरे में शतरंज खेल का कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था।

सतीश ने पुकारा, "सावित्री!"

सावित्री उस समय भी चौखट के बाहर बैठी थी, बोली, "कहिये!"

सतीश बोला, "विपिन बाबू के निमंत्रण में जाना महापाप है। बिना समझे पाप कर डाला है अवश्य, लेकिन समझकर न करूँगा।"

सावित्री ने बाहर से पूछा, "पाप क्यों?"

सतीश ने कहा, "मैं जानता हूँ किस स्थान पर उनके गाने-बजाने की तैयारी चल रही है। केवल उस स्थान पर जाना ही पाप का काम है।"

"ठीक बात है। ऐसे स्थान पर न जायें।"

सतीश उत्तेजित होकर बोला, "सचमुच ही न जाऊँगा। लेकिन वे लोग सहज ही में मुझे छुटकारा देंगे, ऐसा मालूम नहीं होता। इसीलिए तुम्हें पहले से सावधान कर दे रहा हूँ, अगर कोई आये तो कह देना मैं घर पर नहीं हूँ, रात को भी न जाऊँगा। समझ गयी न!"

सावित्री बोली, "समझ गयी।"

सतीश ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया सोचकर एक गहरी साँस ली। क्षणभर चुप रहकर सतीश ने कहा, "कहाँ से तेज हवा आ रही है सावित्री, खिड़कियाँ बन्द कर दो।"

सावित्री आकर खिड़कियाँ बन्द करने लगी। सतीश एकटक देखता रहा। देखते-देखते अकस्मात कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया। बोला, "अच्छा, सावित्री, तुम अपने को नीच स्त्री क्यों कहा करती हो?"

सावित्री बोली, "जो बात सच है, वह क्या कहूँगी नहीं?"

सतीश ने कहा, "यह बात किसी तरह भी सच नहीं है, तुम गले तक गंगाजल में खड़ी होकर बोलोगी तो भी मैं विश्वास न करूँगा।"

सावित्री मुस्कराकर बोली, "क्यों नहीं करोगे?"

"यह नहीं मालूम। शायद सच नहीं है, इसीलिए। नीच की तरह तुम्हारा व्यवहार नहीं है, बातचीत का तरीक़ा नहीं हैं, आकृति नहीं है, इतना लिखना-पढ़ना भी तुमने कहाँ सीखा?"

वह फ़र्श पर दूर बैठी थी। सावित्री हँसकर बोली, "इतना, कितना सुनूँ तो?"

सतीश कुछ करने ही जा रहा था कि खुली पुस्तक को एक ओर रख थमक गया। बाहर से जूतों की आवाज़ आ रही थी। दूसरे ही क्षण उन्मत्त कण्ठ से पुकार आयी, "सतीश बाबू!"

सतीश जान गया, यह विपिन का दल है उसको ही पकड़ने आया है। और कोई बात उसने नहीं सोची। बत्ती बुझाकर झट सो रहा। पास ही फ़र्श पर बैठी हुई सावित्री व्याकुल भाव से बोली, "यह क्या कर डाला?"

दूसरे ही क्षण अँधेरे दरवाज़े के सामने दो मूर्तियाँ आकर खड़ी हो गयीं। एक ने कहा,

"यही तो कमरा है सतीश बाबू का!"

दूसरे ने कहा, "नौकर ने कहा कि बाबू कमरे में हैं।"

पहले व्यक्ति ने क्रोध करके कहा, "कमरे में तो अँधेरा है। कोई भला आदमी क्या कभी शाम को डेरे पर रहता है? तुम्हारा जितना..... ।"

दसरा व्यक्ति उसके उत्तर में धीमी आवाज़ में कुछ कहकर जेब टटोलकर दियासलाई निकाल कर बत्ती जलाने को तैयार हुआ।

इधर बिछौने के भीतर सतीश के शरीर का खून पानी हो गया। वह विलायती कम्बल ओढ़कर पसीने से तरबतर होने लगा, और फ़र्श के ऊपर सावित्री लज्जा और घृणा से काठ-सी बनकर बैठ रही।

दीपशलाका जल उठी। 'यहाँ यह कौन बैठा हुआ है?' पहले व्यक्ति ने ज्यों ही कमरे में घुसकर ढूँढ़कर बत्ती जलायी त्यों ही वह उठ खड़ी हुई।

दूसरे व्यक्ति ने कुछ हटकर खड़े होकर पूछा, "कहाँ हैं सतीश बाबू।"

सावित्री इशारे से बिछौना दिखाकर चली गयी। उसके चले जाने के साथ ही दोनों मतवालों ने ठठाकर हँसना शुरू किया। उस हँसी की आवाज़ और उसका अर्थ सावित्री के कानों में जा पहुँचा, और कम्बल में पड़ा हुआ सतीश बार-बार अपनी मृत्यु की कामना करने लगा।

उन लोगों ने सतीश को खींचकर उठा लिया, और बलपूर्वक पकड़कर उसे ले चले और जब तक इन लोगों की विकट हास्य-ध्वनि मकान के बाहर पूर्णरूप से विलीन न हो गयी तब तक सावित्री एक अँधेरे कोने में दिवाल पर माथा धरकर वज्राहत की भाँति कठोर होकर खड़ी रही।

लेकिन उस मकान का कोई भी कुछ न जान सका। रसोईघर में रसोइया महाराज अभी गांजे की चिलम खत्म करके इसमें मोक्ष प्रदान करने की आश्चर्यजन शक्ति वेद में किस तरह लिखी हुई है, यही बात भक्त बिहारी को समझाकर कह रहा था, और उस कमरे में राखाल बाबू का दल हड्डी का पासा मनुष्य की चिल्लाहट सुन सकता है या नहीं इसकी ही मीमांसा में लगा था।

बाहर आकर तीनों एक गाड़ी पर बैठ गये। इन लोगों की उन्मत्त हँसी को सहन न कर सकने के कारण सतीश ने तीखे स्वर से कहा, "या तो आप लोग चुप हो रहिये, या माफ़ कीजिये, मैं उतर जाऊँ।"

पहला व्यक्ति "अच्छा" कहकर भयंकर रूप से हँस पड़ा और उसका साथी उसको धमकाकर रुक जाने को कहकर उससे भी अधिक ज़ोर लगाकर हँस उठा। इन दोनों शराबियों के साथ बात करना बेकार समझकर सतीश निष्फल क्रोध से खिड़की से बाहर झाँकने लगा।

रात में अँधेरे में सावित्री चुपचाप बैठी हुई थी, शायद कल की लज्जाजनक घटना की वह मन ही मन आलोचना कर रही थी। उसी समय बिहारी आकर बोला, "माँजी सबका

खाना हो चुका, महाराजजी आपको जलखावा के लिए बुला रहे हैं।"

सावित्री ने उदास भाव से कहा, "आज मैं खाऊँगी नहीं, बिहारी।"

बिहारी सावित्री को स्नेह करता था, सम्मान करता था। चिन्तित होकर उसने पूछा, "खाओगी क्यों नहीं माँ, क्या तबीयत ठीक नहीं है?"

"ठीक है, किन्तु खाने की इच्छा नहीं है। तुम लोग जाकर खा लो।"

बिहारी ने कहा, "तो चलो, तुम को पहुँचा आऊँ।"

सावित्री ने कहा, "अच्छा चलो। लेकिन एक बात है बिहारी, सतीश बाबू अभी तक लौटकर आये नहीं हैं, तुम लोग जागते रह सकोगे न?"

बिहारी घबराकर बोला, "मैं! लेकिन मेरी कमर में तो वह गठिया दर्द.... ।"

"तब क्या होगा बिहारी?"

बिहारी ने तनिक सोचकर कहा, "रसोइया महाराज को हुकुम देकर....... ।"

सावित्री ने झटपट कहा, "यह नहीं होगा बिहारी। ब्राह्मण आदमी को मैं जाड़े में कष्ट न दे सकूँगी।"

इच्छा न रहने पर भी बिहारी कुछ देर चुप रहकर बोला, "अच्छा, तो मैं ही रह जाऊँगा। चलो, तुमको पहुँचा आऊँ।"

सावित्री उठ खड़ी हुई। दो-एक कदम आगे बढ़कर रुककर वह बोली, "ज़रूरत नहीं है बिहारी, तुम जाओ, खा लो, मैं उसके बाद ही जाऊँगी।"

बिहारी के चले जाने पर सावित्री उसी स्थान पर वापस बैठ गयी, और अँधेरे आकाश की तरफ़ देखकर चुप हो रही। आज सतीश के सम्बन्ध में उसके मन में यथेष्ट आशंका थी। वह शराबियों के हाथ में पड़ गया है, इस घटना को अपनी आँखों से देखकर उसको किसी तरह भी घर वापस जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। यद्यपि उसकी ही बुद्धिहीनता से घोर लांछित होकर जलन से छटपटाते हुए उसने खूब भोर में ही काम छोड़ देने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, तथापि आज रातभर के लिये इस आदमी को मन ही मन क्षमा न करके, उसकी अवश्यम्भावी दुर्दशा का कोई एक उपाय किये बिना वह किसी प्रकार भी अपने घर जाने को तैयार न हो सकी। बिहारी खाकर आया तो उसने कहा, "तुम सोने के लिए चले जाओ बिहारी, मैं ही यहाँ रहती हूँ।"

बिहारी ने आश्चर्य से कहा, "तुम क्या अपने घर जाओगी नहीं?"

"बाबू को लौट आने दो। उसके बाद क्या तुम मुझे पहुँचाने न जा सकोगे?"

"पहुँचा क्यों न सकूँगा? अवश्य ही पहुँचा सकूँगा।"

"तो फिर वही अच्छा है। मैं ही यहाँ हूँ, तुम जाकर सो जाओ।"

बिहारी के खुश होकर चले जाने पर सावित्री वहाँ ही एक रैपर ओढ़कर बैठ गयी। दोनों शराबी जो कुछ देख गये हैं, उसे वे लोग खोलकर कर देंगे ही इसमें भी उसको लेशमात्र भी सन्देह नहीं रहा। विपिन बाबू कैसा आदमी है, यह बात सावित्री जानती थी। वह इस बात को अवश्य सुनेगा और इस मकान में जबकि उसका आना-जाना है, तब कोई भी जाने

बिना न रहेगा। उसके बाद फिर किस मुँह से सतीश एक क्षण भी रहेगा। इस निन्दा की लज्जा वह किस तरह सहेगा। संयोगवश, जो कुछ हो गया, वह तो हो ही गया। अपने सम्बन्ध में वह यहीं तक सोचकर रुक तो गयी, लेकिन बार-बार आलोचना करके भी सतीश के सम्बन्ध में कोई उपाय खोजने पर उसे नहीं मिला।

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी, लेकिन सतीश दिखायी नहीं पड़ा। किसी पड़ोसी के मकान की घड़ी में टन्-टन् करके दो बज गये। निस्तब्ध गम्भीर रात्रि में वह आवाज़ साफ़ सुनायी पड़ी। अस्तव्यस्त बहने वाली ठण्डी हवा खुली छत के ऊपर से आकर उसकी दोनों आँखों को नींद से दबाने लगी, तो भी वह जागती रह कर बाहर दरवाज़े पर कान लगाये रही। इस तरह लेटकर, बैठकर, समय बिताने पर जब रात अधिक नहीं रही तब एक गाड़ी की आवाज़ से वह चौंककर ज्यों ही उठ बैठी, त्यों ही समझ गयी कि गाड़ी उसी मकान के सामने खड़ी हुई है। सावित्री चुपचाप नीचे उतर गयी और दरवाज़े के पास जाकर सावधान होकर खड़ी हो गयी। पीछे कोई दूसरा आदमी न हो, इस भय से एकाएक द्वार खोल देने का उसको साहस नहीं हुआ। देर होने लगी, किसी ने दरवाज़ा खटखटाया नहीं। जो गाड़ी आयी थी वह भी लौट गयी। अकस्मात आशंका से परिपूर्ण होकर सावित्री ने तेज़ी से सिटकनी खोल दी। सतीश बाहर की चौखट पर ओठंग कर पीले मुख, बन्द किये बैठा हुआ था। उसके कपड़े और चादर पर कीचड़ भरा था, माथे पर लहू की रेखा को पास ही गैस के प्रकाश से देख लेने पर सावित्रि रोने लगी। सामने आकर घुटने टेककर वह बैठ गयी। अपने हाथों से सतीश के मुँह को ऊपर उठाकर बोली, "बाबू, चलिये ऊपर।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मैं अच्छी तरह हूँ।"

सावित्री ने आँख पोंछकर कहा, "कहीं चोट तो नहीं लगी?

"नहीं लगी है, ठीक हूँ।"

"यह तो रास्ता है, घर चलिए।"

सतीश ने पहले की तरह सिर हिलाकर कहा, "नहीं, जाऊँगा नहीं, अच्छी तरह हूँ।"

सावित्री ने डाँटकर कहा, "उठिये, कह रही हूँ।"

डाँट खाकर सतीश विह्वल लाल आँखों से थोड़ी देर तक देखता रहा, उसकी तरफ़ अपने दोनों हाथ बढ़ाकर बोला, "अच्छा चलो।"

तब उसके कन्धे पर हाथ टेककर सतीश उठ खड़ा हुआ और बहुत कष्ट से हिलते-डुलते अँधेरे में सीढ़ियों से चढ़कर कमरे में जाकर लेट गया। भर्राई आवाज़ से वह बोला, "सावित्री, मैं तुम्हारा ऋण किसी जन्म में भी न चुका पाऊँगा।"

सावित्री ने कहा, "अच्छा, आप सो रहिये।"

सतीश उठकर बोला, "क्या? मैं सोऊँगा? कभी नहीं।"

सावित्री पुनः धमकाती हुई बोली, "फिर?"

थोड़ी देर लेटे रहने के बाद बोला, "लेकिन तुम्हारा ऋण.....।"

सावित्री "अच्छा" कहकर उठ गयी और चिराग़ उसके पास लाकर ज़ख़्म की जाँच करके

उसको धोकर उसने पूछा, "गिर कहाँ गये थे।"

सतीश सिर हिलाकर बोला, "नहीं, गिरा तो नहीं।"

सावित्री ने व्यथित कण्ठ से कहा, "फिर कभी शराब न पीजियेगा नहीं तो आपके पैरों पर सिर पटककर मर जाऊँगी।"

सतीश ने तुरन्त कहा, "अब कभी न पीऊँगा।"

"मुझे छूकर शपथ लीजिये।" कहकर अपना दायाँ हाथ बढ़ा दिया।

सतीश ने अपने दोनों हाथों से उसके शीतल हाथ को खींचकर कहा, "शपथ ले रहा हूँ।"

सावित्री अपना हाथ खींचकर बोली, "याद रहेगी न यह बात?"

"याद न रहने पर तुम दिला देना।"

"अच्छा; मैं जा रही हूँ, आप सो रहिये।" इतना कहकर सावित्री धीरे से किवाड़ बन्द करके बाहर जा खड़ी हुई। शुक्रतारे की तरफ़ देखकर सावित्री अपने दोनों हाथ जोड़कर रोती हुई बोली, "देवता! तुम साक्षी रहना।"

उस समय अन्धकार स्वच्छ होता जा रहा था। उसे भेदकर बैलगाड़ियों तथा पड़ोस के मैदा-कारख़ाने की सीटी की आवाज़ें आ रही थीं। सावित्री नीचे उतरकर रसोई में एक कोने में रैपर ओढ़कर सो रही। थोड़ी ही देर में गहरी नींद में खो गयी।

चार

दिन के दस बजने के बाद किसी तरह स्नान-पूजा समाप्त करके दिवाकर रसोईघर के सामने खड़ा होकर पुकारने लगा – "ऐ महाराजजी, जल्दी भात परोसिये, काफ़ी दिन चढ़ आया है।"

पास ही भण्डारघर था। उसकी आवाज़ सुनकर उसकी ममेरी बड़ी बहन महेश्वरी बाहर आकर बोली, 'ऐ दीबू, मैं तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ, भैया, ठाकुरजी की पूजा तो कर आओ! सारा इन्तज़ाम कर आयी हूँ, मेरे राजा भइया।"

महेश्वरी इस घर की बड़ी लड़की है और मालकिन है। चार वर्ष पहले विधवा होकर पिता के घर आ गयी है।

दिवाकर स्तम्भित हो गया। कुछ देर चुप होकर बोला, "मैं यह काम न कर सकूँगा। मेरे कॉलेज का पहला घण्टा ख़राब हो जायेगा।"

महेश्वरी हँसकर बोली, "तेरा पहला घण्टा ख़राब हो जायेगा, इसलिए क्या ठाकुरजी की पूजा नहीं होगी?"

दिवाकर ने पूछा, "भट्टाचार्यजी कहाँ हैं? उनको क्या हो गया है?"

महेश्वरी बोली, "वह बाबूजी के साथ चौसर खेलने के लिए बैठे हुए हैं। अब कितना

दिन चढ़ने पर वे उठेंगे, इसका ठिकाना क्या है?"

दिवाकर ने कहा, "मझले भैया से कह दो, आज उनकी कचहरी बन्द हैं।"

महेश्वरी ने कहा, "कल से धीरेन्द्र की तबीयत ठीक नहीं है। वह स्नान करेगा नहीं, पूजा करेगा तो किस तरह?"

"तब तुम छोटे भइया से कहो। वह बारह बजने के बाद कचहरी के लिए निकलते हैं, अभी उनको बहुत देर है।"

महेश्वरी ने दुःखी होकर कहा, "तू कैसा तर्क करने लगता है, इसका कोई ठिकाना ही नहीं। कल रात को उपेन थियेटर देखने गया था, अभी तक वह सोकर नहीं उठा। अभी तक न मुँह धोया और न चाय पी। रात भर जागने से क्या उसकी तबीयत ठीक है? इसके सिवा वह किसी दिन पूजा करता है जो आज पूजा करेगा?"

इधर रसोइया भात परोसकर पुकार रहा था। दिवाकर ने कहा, "किसी काम से एक न एक बाधा आ पड़ने से प्रायः मेरा पहला घण्टा जाता रहता है, मैं परीक्षा दूँगा तो कैसे?"

महेश्वरी का क्रोध बढ़ता जा रहा था, वह बोली, "परीक्षा न देने से भी काम चल सकता है, देवता की पूजा न होने से चल नहीं सकता। तुम्हारे साथ तर्क करने का वक्त मेरे पास नहीं है, और भी काम है।"

रसोइया चिल्लाकर बोला, "दिवाकर बाबू, भात परोसकर मैं खड़ा हूँ जल्दी आइये।"

महेश्वरी ने झिड़ककर कहा, "तुमको कुछ भी समझ नहीं है महाराज! मैं इसको पूजा के लिए भेज रही हूँ, तुम इसे पुकार रहे हो। भात ले जाओ, पूजा करके आने पर देना।" कह कर भण्डारघर में चली गयी।

दिवाकर कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे-धीरे ऊपर चला गया। वहाँ पूजा की सामग्री थी। घर में शालिग्राम शिला की प्रतिष्ठा हुई थी। उसकी नित्य पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त हैं। वह इसी घर में रहते हैं। मालिक शिव प्रसाद की तरह उनकी भी चौसर की तरफ़ दिलचस्पी है। कुछ दिन हुए शिव प्रसाद सरकारी नौकरी से पेंशन लेकर अपने पछाह वाले मकान पर आकर रहने लगे हैं। सबेरे चाय पी लेने के बाद ही पुजारीजी की बुलाहट होती है, 'भूतो, भट्टाचार्यजी को एक बार बुलाओ। एक बाजी हो जाये।" बाद को एक बाजी, दो बाजी करते-करते दिन चढ़ जाता है, पुजारी जी को पूजा करने का समय नहीं मिलता। महेश्वरी नौकर को भेजा करती थी, लेकिन उठता हूँ, करते-करते भी उठना नहीं होता था – पूजा का समय बहुत बीत जाता था, किसी को होश नहीं रहता था। इन दिनों पिता की तबीयत ठीक नहीं है, फिर भी खेल की धुन में लगे रहते हैं इस ख़्याल से अब महेश्वरी पुजारीजी को नहीं बुलाती – इनसे-उनसे जिस किसी से, अर्थात दिवाकर से पूजा करा लेती है।

प्रायः चाय पीने का अभ्यास और अवकाश दिवाकर को नहीं था। क्योंकि इस समय उसको नौकर के साथ बाज़ार जाना पड़ता था। आज बाज़ार से लौटकर नित्यकर्म पूरा करके वह भात खाने के लिए आया था।

दिवाकर पूजा के लिए चला गया। लेकिन आसन पर बैठकर सोचने लगा, दूसरे के घर में रहने का यही सुख है। यद्यपि अच्छी तरह होश सम्भालने के बाद ही दूसरे के घर में रहता आया है, और उसे अनके दुःखों को सह लेने की आदत भी पड़ गयी है, लेकिन मनुष्य की जो वस्तु किसी दुःख से भी नहीं मरती – वही भविष्य की आशा – आघात खाकर उसके हृदय से बाहर निकल सिर उठाकर खड़ी हो गयी। क्रोध से उसकी सारी देह जल रही थी, सिंहासन से ठाकुरजी को उतारकर उसने ताम्रकुण्ड के ऊपर फेंक दिया, और मंत्र पढ़े बिना शरीर पर जल डालकर भीगे हुए देवता को उठाकर रख दिया। फूल चढ़ाने, तुलसीपत्र सजाकर रखने, घण्टी बजाने आदि हाथ के काम अभ्यास के अनुसार होने लगे अवश्य, किन्तु विद्वेष की जलन से उसके कण्ठ से एक भी मंत्र नहीं निकला।

इस तरह पूजा का तमाशा ख़त्म करके जब उठ खड़ा हुआ, तब यह ध्यान आया कि पूजा बिल्कुल नहीं हुई, फिर से पूजा करने बैठ जाऊँ या नहीं, यह दुविधा एक बार उसके मन में जाग उठी, किन्तु उसके साथ ही उसको यह बात याद पड़ गयी कि कॉलेज का पहला घण्टा बीत रहा है, वह तेज़ क़दमों से सीढ़ियों से नीचे उतरकर सीधे बाहर जा रहा था, महेश्वरी ने भण्डारघर से उसे देखा तो बुलाकर कहा, "बिना भोजन किये जा रहा है?"

"भोजन का समय नहीं है।"

महेश्वरी ने कहा, "तो कॉलेज से कुछ समय पहले ही लौट आना। ब्राह्मण ठाकुरजी, दिवा बाबू के लिए सब ठीक रहे।"

दिवाकर ने कोई उत्तर न दिया। वह अपनी बाहरी कोठरी में आकर कपड़े पहनने लगा तो नेत्रों में जल भर आया।

सामने के बैठक से उस वक्त तक शतरंज खेलने की हुंकार आ रही थीं अचानक पीछे से दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आयी।

दिवाकर ने पीछे घूमकर देखा – नौकरानी खड़ी है। नेत्र पोंछकर उसने पूछा, "क्या बात है?"

नौकरानी बोली, "छोटी बहू ने आपको बुलाया है।"

"चलो, मैं आ रहा हूँ।"

सुरबाला अपने कमरे के सामने ही दिवाकर की प्रतिक्षा कर रही थी। दिवाकर ने आकर कहा, "क्या बात है?"

सुरबाला प्रकट रूप से नहीं, आड़ में रहकर बाते करती थी। सिर के कपड़े को ज़रा खींचकर बोली, "ज़रा कमरे में आओ।"

इतना कहकर कमरे में जाकर उसने दिखा दिया – फ़र्श पर आसन बिछा हुआ था, एक कटोरा दूध, तश्तरी में दो-चार सन्देश रखे हुए थे। सुरबाला ने कहा, "खाकर ही कॉलेज जाना।"

दिवाकर चुपचाप खाने के लिए बैठ गया।

पास ही बिछौने पर उसके छोटे भाई उपेन्द्रनाथ उस समय भी निद्रित मनुष्य की भाँति

लेटे हुए थे। दिवाकर के खाना खाकर चले जाने के बाद ही सिर ऊपर उठाकर पत्नी को बुलाकर कहा, "यह फिर क्या?"

सुरबाला भोजन किये स्थान को साफ़ कर रही भी, चौंककर बोली, "क्या तुम जाग रहे हो?"

"दो घण्टे से जाग रहा हूँ, ग्यारह बचे तक कोई मनुष्य सो सकता है?"

सुरबाला हँसकर बोली, "तुम सब कर सकते हो। वरना कोई मनुष्य क्या ग्यारह बजे तक पड़ा रह सकता है?"

उपेन्द्र ने कहा, "सभी नहीं कर सकते, लेकिन मैं कर सकता हूँ। इस का कारण यह है कि लेटकर पड़े रहने जैसी अच्छी वस्तु मैं कुछ भी जगत में नहीं देख पाता। कुछ भी हो, दिवाकर के....।"

सुरबाला ने कहा, "बबुआजी नाराज़ होकर बिना खाये कॉलेज जा रहे थे, इसी से मैंने उनको बुलाया था।"

"इसका कारण?"

सुरबाला ने कहा, "क्रोध होता ही है। उस बेचारे को प्रातः पढ़ने का समय नहीं है – बाज़ार जाना, लौटकर ठाकुरजी की पूजा करनी पड़ती है। किसी दिन ग्यारह-बारह बजे आता है। बताओ तो किस समय वह खाना खाये और किस समय पढ़ने जाये?"

"बात ठीक समझ में नहीं आयी? भट्टाचार्य को बुखार है क्या?"

सुरबाला ने कहा, "बुखार क्यों होगा! बाबूजी के साथ चौसर पर बैठे हैं! और उनका भी क्या दोष है? बाबूजी के बुलाने पर वह ना तो कर सकते नहीं।"

उपेन्द्र ने कहा, "यह तो वह नहीं कर सकते, लेकिन पहले वह नौकर के साथ सबेरे बाज़ार जाया करते थे न?"

सुरबाला बोली, "कुछ दिनों तक शौक़ करके जाया करते थे। नहीं तो बबुआजी को ही रोज़ जाना पड़ता है।"

उस दिन ठाकुरजी की पूजा नहीं हुई, यही सोचते-सोचते दिवाकर अप्रसन्न रूप से धीरे-धीरे कॉलेज जा रहा था। मकान में अभी-अभी जो सब घटनाएँ हो गयीं, उस आलोचना को छोड़कर उसे बड़ी चिन्ता यह थी कि ठाकुरजी की पूजा आज नहीं हुई। बहुत दिनों की बहुत असुविधाओं के रहते हुए भी इस काम की अवहेलना नहीं की थी, करने की बात भी मन में किसी दिन उठी नहीं थी। खासकर आज की बात सोचकर मन में पीड़ा अनुभव करने लगा। यद्यपि युक्ति तर्कों से वह बारम्बार अपने मन को सान्त्वना देने लगा कि भगवान केवल एक ही स्थान में आबद्ध नहीं है, इसलिए एक स्थान से भोग न लगा तो भी अन्यत्र लगा होगा। लेकिन वही जो उनके बिना खाये हुए गृहदेवता अपनी नित्यपूजा और भोग से वंचित होकर क्रोधायुक्त मुख सिंहासन पर बैठे रह गये, उसकी प्रतिहिंसा की आशंका उसके मन से किसी प्रकार भी हटना नहीं चाहती थी।

कालेज आने पर पता लगा कि प्रोफ़ेसर की तबीयत ख़राब हो जाने के कारण पहले

घण्टे में क्लास नहीं लगी – सुनकर दिवाकर को खुशी हुई। परीक्षा निकट आ रही है इस कारण छात्रों ने हाजिरी के हिसाब के लिए कॉलेज के क्लर्क को तंग कर डाला है। आज दूसरे छात्र जब इसी उद्देश्य से ऑफ़िस के कमरे की तरफ़ जाने की तैयारी कर रहे थे, तब दिवाकर भी तैयार हो गया। लेकिन ऑफ़िस के सामने आकर ठाकुरजी की पूजा न करने की बात याद करके वह ठिठककर खड़ा हो गया।

एक ने उससे पूछा, "खड़े क्यों हो गये?"

दिवाकर ने उत्तर दिया, "आज रहने दो।"

"रहने दो क्यों, चलो आज देख लें।"

"नहीं, रहने दो।" – कहकर वह लौट गया। हाजिरी के सम्बन्ध में उसके मन में बहुत सन्देह था, उस सन्देह की मीमांसा करने का साहस आज उसे नहीं हुआ।

भोजन न करके आने पर भी उसको घर लौटने की कोई जल्दी नहीं थी। छुट्टी के बाद कॉलेज के फाटक के पास आकर उसने देखा, बी.ए. क्लास के छात्रों का दल दूर खड़ा तर्क-कोलाहल कर रहा है, दिवाकर दूसरी ओर मुँह फेरकर हट गया, और जो रास्ता सीधा गंगाजी की तरफ़ गया है, उसी तरफ़ चल दिया। टूटा हुआ पक्का घाट, मुर्दे के कंकाल की भाँति पड़ा हुआ है। किसी दिन इसका शरीर था, सौन्दर्य था, प्राण था, जगह-जगह पड़ी हुई टूटी-फूटी ईंटों के ढेर यही बात कह रहे थे। और कुछ नहीं कहते। तब किसने बनवाया था, कौन लोग आकर बैठते थे, कौन लोग स्नान करते थे, कहीं भी कोई साक्षी मौजूद नहीं है। जाड़े के दिनों की पतली गंगा उसी के किनारे से अविराम समुद्र की ओर चली जा रही है। किनारे पर खेतों में जौ के बाल सिर उठाकर धूप की गरमी और गंगाजी की वायु सेवन कर रहे हैं। उसके ही एक तरफ़ रेतीला तंग रास्ता पकड़कर चलता हुआ दिवाकर घाट पर आ पहुँचा। ईंटों के ढेर के पास जूता खोलकर रख दिया। उसके बाद पंजाबी कुरते को उतारकर भारी जिल्ददार किताबों से दबा दिया। फिर जल में उतरकर हाथ-मुँह धोकर सिर पर गंगाजी का जल छिड़ककर उसने बिना खाये हुए गृह देवता को स्मरण किया। आदि से अन्त तक सभी मंत्रों को सावधानी से उच्चारण करके गंगाजी में जलांजलि प्रवाहित करके प्रणाम करके जब वह उठा, तब उसके हृदय का बोझ बहुत हलका हो गया था। कुरता पहनकर, किताब लेकर जब वह चला तब दिन ढल रहा था। उस उक्त भी हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ घाट के एक किनारे पर बैठकर सिर पर सज्जी मिट्टी मल रही थीं।

पाँच

छोटी बहू सुरबाला के पिता ने ठेकेदारी के काम में काफ़ी दौलत पैदा करके आजकल बक्सर वाले मकान में रहने लगे। उनकी दो लड़कियाँ थीं। सुरबाला बड़ी थी, और शची छोटी। शची की अभी तक शादी नहीं हुई थी, बक्सर में पिता के घर पर ही रहती थी।

पिता के घर में सुरबाला को पशुराज के नाम से पुकारते थे। यह नाम उसके पितामह

ने रखा था। मुहल्ले के अन्धे-लंगड़े, बिल्ली-कुत्ते, बिलायती चूहे, कबूतर, गौरैया मिलकर प्रायः सौ से अधिक प्राणी उसके आश्रय में पलते थे। उनमें से किसी को भी किसी दिन ममतावश वह छोड़ न सकी। अभी तक वे शची की कृपा से पल रहे हैं। सुरबाला के नाम का विवरण महेश्वरी जानती थी, उसके द्वारा यहाँ भी वह नाम प्रचलित हो गया था। जो लोग बड़े थे, वे संक्षेप में पशु कहकर पुकारते थे, नौकर-नौकरानी भी कोई तो पशु बहू, कोई छोटी बहूजी कहकर पुकारती थी।

काफ़ी रात को काम-काज हो चुकने पर सुरबाला जब कमरे में आयी तो उपेन्द्र ने कहा, "पशु, बाबूजी ने शची के लिए वह खोजकर ठीक करने के लिए तकाजे का पत्र लिखा है। शची आयु में तुमसे कितनी छोटी है, मालूम है?"

सुरबाला ने कहा, "मालूम क्यों नहीं है। मेरे बाद एक भाई होकर सौरी में ही चल बसा, उसके बाद ही शची का जन्म हुआ। इस प्रकार वह मुझसे आयु में छः-सात वर्ष छोटी है?"

"इस हिसाब से तो उसकी आयु बारह-तेरह वर्ष की होगी।"

"इतनी तो होगी ही। दुबली-पतली होने के कारण ही केवल इतने दिनों तक क्वारी रखी गयी। मेरी तरह बड़े-बड़े हाथ-पाँव वाली होती तो भारी कठिनाई होती।"

उपेन्द्र हँसकर बोला, "कठिनाई किस लिए? तुम्हारे बाबूजी को तो रुपये की कमी नहीं है, रुपये रहने से सभी वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं। तुम्हारे समय में मैं जिस तरह हड़बड़ाकर जा पहुँचा था, उस तरह हड़बड़कर जाने वाले आदमियों की संसार में कमी नहीं है।"

सुरबाला ने कहा, "क्या तुम बाबूजी के रुपये देखकर गये थे?"

"तुम्हारे सामने 'नहीं' कहने से ही प्रतिष्ठा है, लेकिन झूठी बात ही कैसे कहूँ?"

"लेकिन यह झूठ है।"

"झूठी बात क्यों?"

"असत्य होने के कारण ही असत्य बात है। तुम जब-तब कहते रहते हो अवश्य, लेकिन तुम बाबूजी का रुपया देखकर नहीं गये थे। बाबूजी के पास रुपये रहते या नहीं रहते, तुमको जाना ही पड़ता। मैं जिस जगह, जिस घर जन्म लेती, मुझे लाने के लिए तुमको वहाँ जाना ही पड़ता, समझे?"

उपेन्द्र ने गम्भीरता धारण कर कहा, "कुछ-कुछ समझ रहा हूँ। लेकिन मान लो, अगर तुमने कायस्थ के घर में जन्म लिया होता तो?"

सुरबाला हँसकर बोली, "वाह, खूब कहा तुमने! ब्राह्मण के घर की कन्या क्या कभी कायस्थ के घर जन्म लेती है? इसी दिमाग़ को लेकर तुम वक़ालत करते हो?"

उपेन्द्र ने गम्भीर होकर कहा, "यह भी ठीक है। शायद इस कारण उन्नति नहीं हो रही है।"

सुरबाला अपनी बातों से व्यथित होकर सान्त्वना के स्वर में जल्द बोली, "उन्नति क्यों नहीं होगी, खूब उन्नति होगी। लेकिन कुछ देर हो सकती है, यही न। लेकिन मैं यह भी कहती हूँ, तम्हारी उन्नति की ज़रूरत ही क्या है।" हँसकर बोली, "बारह से चार बजे तक

मेरे सामने हाजिर रहने से मैं तुमको पाँच सौ रुपये के हिसाब से दे सकती हूँ। बाबूजी मुझे हर महीने ढाई सौ रुपये भेजते हैं और ढाई सौ उनसे माँग लूँगी।"

उपेन्द्र ने कहा, "मान लिया कि तुम ले लोगी, लेकिन मुझको क्या करना पड़ेगा? बारह बजे से चार बजे तक तुम्हारे सामने खड़ा रहना पड़ेगा?"

सुरबाला बोली, "हाँ, यदि तुम खड़े न रह सके तो बैठ भी सकते हो।"

"और बैठ नहीं सकने पर लेट नहीं जाऊँगा? क्या कहती हो?"

सुरबाला मुसकराकर बोली, "सो नहीं कर सकोगे। बैठ न सकने पर फिर खड़ा हो जाना पड़ेगा। हाकिम के सामने बेअदबी करने से तुमको फाइन देना पड़ेगा।"

"फाइन न दे सकने पर?"

"नज़रबन्द रहना पड़ेगा। चार बजने के बाद भी तुम बाहर न जा सकोगे, समझ गये?"

उपेन्द्र से सिर हिलाकर कहा, "समझ गया, हाकिम कुछ सख़्त है, नौकरी बची रह सके तो यही गनीमत!"

सुरबाला ने अपनी दोनों कोमल भुजाओं से पति के गले को घेरकर कहा, "हाकिम सख़्त नहीं है। तुम्हारी नौकरी सुरक्षित रहेगी, एक दिन केवल परीक्षा करके ही देख लो न।" कुछ देर बाद सुरबाला ने अपने को मुक्त कर लेने के बाद पूछा, "बाबूजी के पत्र का उत्तर दोगे?"

उपेन्द्र ने कहा, "खोजने की आवश्यकता नहीं है। पात्र खुद ही हाजिर हो जायेगा, यही उत्तर दूँगा।"

"छिः! यह कैसी बात! उनके साथ परिहास करना उचित है?"

"इतनी देर से क्या तुम मेरे साथ परिहास कर रही थीं!"

सुरबाला घबराकर बोली, "देखो, मैंने परिहास नहीं किया। लेकिन बाबूजी को यह बात लिखने की आवश्यकता नहीं है, सचमुच ही मैं विश्वास करती हूँ कि शची के लिए वर ठीक हो ही चुका है इसके अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं है। लेकिन तुम्हारे ही मुँह से यह बात सुन लेने से बाबूजी नाराज़ होंगे।"

उपेन्द्र हँसकर बोला, "वास्तव में शची के लिए वर ठीक हो चुका है। उन को मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो।"

सुरबाला ने उत्सुक होकर पूछा, "कौन है, बताओ तो।"

उपेन्द्र बोला, "अभी नहीं। सब ठीक-ठाक करने के बाद बताऊँगा।"

सुरबाला ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "अच्छा! लेकिन एक बात तुमको मैं बता दूँ, शची में एक दोष को छिपाकर वह ठीक करना उचित नहीं है। उससे फल अच्छा न होगा।"

उपेन्द्र ने घबराकर पूछा, "दोष क्या है?"

सुरबाला ने कहा, "बताती हूँ। शायद बाबूजी की इच्छा उस दोष को गुप्त रखने की है। नहीं तो वह खुद ही तुमको बता देते। शची देखने-सुनने में लिखने-पढ़ने में अच्छी ही है, बाबूजी के पास रुपये भी है। लेकिन क्या तुमने शची को ठीक तरह देखा नहीं है?"

उपेन्द्र बोला, "देखा है, लेकिन अच्छी तरह देख लेने का साहस....।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। पहले मेरी बात सुन लो। उसके बाद जैसी खुशी हो, जवाब देना। तुम तो जानते ही हो, शची बचपन से ही दुबली-पतली है। दो-तीन बार भारी बीमारियों से मरते-मरते बची है। एक बार उसकी बीमारी तो अच्छी हो गयी लेकिन दायाँ पैर नीचे से ऊपर तक फूलकर पक गया। डाक्टर ने शल्योपचार करके उसको बचा लिया अवश्य, लेकिन पैर सीधा नहीं हुआ। उसी समय से वह ज़रा लंगड़ाकर चलती हे। डाक्टर ने कहा था, 'उम्र बढ़ जाने पर वह अच्छी हो सकती है।' लेकिन इस आश्वासन पर विश्वास करके कौन विवाह करने को तैयार होगा। जो सचमुच ही अच्छा लड़का है, उसके लिए अच्छी लड़की भी मिल जायेगी, जान-बूझकर वह शची जैसी लड़की से शादी न करेगा। और जो लड़का धन के लोभ से राजी होगा वह कुपात्र होगा।"

उपेन्द्र ने ध्यानपूर्वक सुनकर कहा, "मैंने तो शची को कई बार देखा है, लेकिन किसी दिन लंगड़ाकर चलते नहीं देखा।"

सुरबाला हँसकर बोली, "पुरुषों को कौन-सी चीज़ दिखायी पड़ती है! लेकिन स्त्रियों की आँखों को तो धोखा देना चल नहीं सकता, वे तो एक ही क्षण में दोष जान लेती हैं।"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन उसको तो स्त्रियों के साथ शादी न करनी पड़ेगी कि स्त्रियों की आँखों से डरना पड़ेगा।"

"यह कैसी बात! धोखा देकर शादी कराने की इच्छा रहने पर तो अन्धी लड़की की भी शादी की जा सकती है लेकिन बाद को!"

उपेन्द्र कुछ सोच रहे थे, बोले नहीं।

सुरबाला फिर बोली, "पिछली दुर्गापूजा के समय हमारे बक्सर के मकान पर ठीक उसी तरह की बातें हुई थीं। बुआजी और माँ दोनों ने ही कहा था कि शादी के पहले इन सब आलोचनाओं की आवश्यकता नहीं है। हो जाने के बाद दामाद को बता देने से ही काम चल जायेगा।"

उपेन्द्र ने कहा, "ठीक ही तो है।"

"नहीं, ठीक नहीं है। मैं कहती हूँ कि सास-ननद को छोड़ अकेले दामाद को विश्वास में लेने से काम नहीं चलता। शची को जो पति मिलेगा वह उसको प्रेम करेगा ही। लेकिन एक तुच्छ त्रुटि के कारण पहले ही यदि वह उसकी विद्वेषभरी दृष्टि में पड़ जायेगी तो किसी दिन सुख से घर-गृहस्थी न कर सकेगी।"

उपेन्द्र ने कहा, "कर सकेगी। क्योंकि दिवाकर तुम्हारी बहिन को लापरवाही से न रखेगा, तुम अथवा बहिन भी शची को झिड़कियाँ न सुनावेंगी।"

यह बात सुनकर सुरबाला चुप हो गयी। बहुत देर तक स्थिर भाव से बैठी रहकर वह बोली, "तुम क्या बबुआ के साथ शादी....!"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ।"

"लेकिन बाबूजी तो सहमत न होंगे!"

"क्यों?"

"उसके माँ-बाप नहीं है, घर-द्वार नहीं है, कुछ भी नहीं है।"

उपेन्द्र ने संक्षेप में कहा, "सब है, क्योंकि मैं हूँ।"

सुरबाला ने कहा, "तो भी बाबूजी राजी न होंगे।"

उपेन्द्र ने कहा, "तुम भी राजी नहीं होगी, असल बात शायद यही है।"

उपेन्द्र चुप रहकर दूसरी तरफ़ करवट बदलकर अत्यन्त नीरस कण्ठ से बोले, "अच्छा, रात बहुत हो गयी, अब तुम सो जाओ।"

उस रात को सुरबाला बड़ी देर तक जागती रही। एकाएक जब उसको निश्चित रूप से मालूम हो गया कि पतिदेव निर्विघ्न सो रहे हैं, तब उसके दोनों नेत्रों में गर्म जल भर उठा। पति के स्नेह पर वह सन्देह नहीं रखती, लेकिन रोते-रोते वह यही बात सोचने लगी कि इन सात-आठ वर्षों के घनिष्ठ मिलन के बाद भी क्यों वह इस मनुष्य का स्वभाव समझ न सकी! पहले पहल उसने अनेक बार मन में विचार किया था कि इस मनमौजी मनुष्य के मिज़ाज़ का कुछ भी ठीक नहीं है। किस समय किस कारण से इसका क्रोध उमड़ पड़ेगा, वह जान लेने या समझ लेने का उपाय नहीं हैं। लेकिन अन्त में एक बार पूछताछ कर इतनी ही बात वह समझ सकी थी कि इसको पूरे तौर से समझने की शक्ति मुझे किसी दिन हो या न हो, इसका कोई काम या इसकी कोई भी बात अकारण या अनिश्चित प्रकृति के मनुष्यों की-सी नहीं है। विशेष रूप से इसी कारण इस दुर्बोध पति को लेकर उसके मन में भय और चिन्ता की कोई सीमा नहीं थी। मन में चोट खाकर वह जब-तब यही दुःख किया करती थी कि भगवान ने उसके भाग्य को यदि ऐसा अच्छा ही बना डाला तो उस समय के अनुसार चलने योग्य बुद्धि, उन्होंने उसको क्यों नहीं दी? आज भी वह मन ही मन इस बात की आलोचना कर अन्दर ही अन्दर इसका कारण खोजने लगी। उतना ही अपना कोई दोष न पाकर हताश हो गयी। बहन के बारे में बहन की यह स्वाभाविक आशंका किस वजह से दोषपूर्ण है, इसका जवाब वह किसी प्रकार खोज नहीं सकी।

बाहर जाड़े की लम्बी अँधियारी रात स्तब्ध थी और कचहरी का घण्टा एक के बाद एक क्रम से बजता गया।

छः

अगले दिन दोपहर के बाद महेश्वरी भोजन करने के लिए बैठी तो उपेन्द्र कमरे में घुसकर पास ही फ़र्श पर बैठ गया। महेश्वरी ने उसकी तरफ़ ध्यान से देखकर कहा, "मझली बहू, उपेन के लिए आसन बिछा दो।"

उपेन्द्र ने कहा, "आसन रहने दो दीदी, तुमसे एक बात पूछने आया हूँ।"

बात सुनने के लिए महेश्वरी उसके मुँह की ओर ताकने लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "ससुरजी ने शची के लिए वर ठीक करने के लिए परसों एक पत्र लिखा है। तुम लोगों की सारी बातें जानती हो, इसलिए मैं पूछ रहा हूँ कि शची के शरीर में क्या

कोई दोष है?"

महेश्वरी के पति ने स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर अन्त में क़रीब चार-पाँच साल बक्सर में प्रैक्टिस की थी। वहाँ रहते समय सुरबाला के पिता का ही एक मकान किराये पर लेकर आस-पास रहती थी, इसलिए दोनों परिवारों में अत्यन्त घनिष्ठता हो गयी थी। सुरबाला के विवाह का सम्बन्ध महेश्वरी ने ही ठीक किया था। महेश्वरी एक क्षण उपेन्द्र के मुँह की ओर ताकती ही रहकर बोली, "पशु क्या कहती है?"

"वह कहती है, शची कुछ लंगड़ी है।"

महेश्वरी ने तनिक हँसकर कहा, "लंगड़ी नहीं है। बचपन में शल्योपचार होने से वह बायें पैर से कुछ खींचकर चलतीं थी – इतने दिनों में शायद वह ठीक हो गया हो।"

"और कोई दोष नहीं है?"

"नहीं।"

सुनता हूँ कि ससुरजी की विपुल सम्पत्ति है। तुमको क्या जान पड़ता है दीदी?"

"मुझे भी यही जान पड़ता है।"

तब उपेन्द्र और कुछ पास खिसककर आ गया और अपने कण्ठ का स्वर कुछ धीमा बनाकर बोला, "तो मैं तुमको एक बात कहता हूँ दीदी। शची और उसकी बहिन दोनों ही जब भविष्य में सम्पत्ति की उत्तराधिकरिणी होंगी, तब इतनी बड़ी सम्पत्ति हाथ से निकल जाने देना बुद्धिमानी का काम नहीं है।"

महेश्वरी ने हँसकर कहा, "बात तो ठीक ही है, लेकिन उपाय ही क्या है सुनूँ तो?" इतना कहकर वह हँस पड़ी।

उपेन्द्र बोला, "हँसने की बात नहीं है। पशु के चिढ़ने के लिए यह बात मैंने नहीं कही। मैंने दिवा के बारे में सोच लिया है।"

सुनते ही महेश्वरी का चेहरा उतर गया। वह दिवाकर को सह नहीं सकती थी। उपेन्द्र ने कहा, "क्या कहती हो बहिन?"

महेश्वरी मुँह झुकाए किसी चिन्ता में रहने का स्वांग दिखाकर भात परोस रही थी, मुँह ऊपर उठाकर हँसकर बोली, "अच्छी बात तो है।"

उपेन्द्र ने कहा, "केवल अच्छी बात कह देने से तो काम नहीं चलेगा बहिन, यह काम तुम्हारा ही है। पशु की शादी तुमने ही की थी, अब वह कहती है उसकी तरह सौभाग्यवती सभी हों। मेरा विश्वास है, तुम जिसमें हाथ डालोगी, उसमें ही सोना फलेगा।"

महेश्वरी ने कहा, "लेकिन शची में ज़रा-सा दोष तो है?"

उपेन्द्र ने कहा, "है, इसलिए तुमसे हाथ डालने के लिए कर रहा हूँ। तुम्हारे पुण्य से सब दोष मिट जायेंगे।"

उपेन्द्र की बातों से महेश्वरी की दिल पसीजता जा रहा था। उसने कहा, "लेकिन उपेन, दिवाकर का मिज़ाज़ मेरी समझ में नहीं आता। घर में रहते हुए भी वह मानो घर छोड़ने वाला पराया है। इसी कारण डर लगता है, पीछे कहीं इतनी ही त्रृटि को लेकर अन्त में

एक भारी अशान्ति न खड़ी हो जाये, फिर एक बात और है, क्या दिवाकर राजी होगा?"

"होगा क्यों नहीं दीदी! इस संसार में उसका अपना तो कोई भी नहीं है। यह सुविधा छोड़ देना केवल मूर्खता ही नहीं, पाप भी है।"

महेश्वरी हँसकर बोली, "यह क्या तुम्हारा वक़ालत का पेशा है उपेन कि केवल मुवक्किल के रुपयों पर दृष्टि रखकर और सब तरह से मुँह फेर लोगे, पसन्द-नापसन्द भी तो कुछ है।"

उपेन्द्र बोला, "है तो रहने दो, दीदी। जो लोग इसी को लेकर उलट-फेर करना चाहते हैं वे भले ही करें, लेकिन हम लोग उस दल में जाना नहीं चाहते। और शची जैसी लड़की जिसे पसन्द न हो उसका तो विवाह करना चल ही नहीं सकता।"

उपेन्द्र की व्यग्रता को देखकर महेश्वरी ने कहा, "शायद वह आज कॉलेज नहीं गया! एक बार उससे ही पूछकर देख लो न, उसकी क्या राय है? शायद वह अपनी कोठरी में ही है।"

"है? अरे कौन है वहाँ? भूतो? एक बार दिवाकर बाबू को बुला दे, कहना कि जीजी बुला रही है।"

थोड़ी ही देर बाद दिवाकर के कमरे में घुसते ही उपेन्द्र बोल उठे, "तेरी शादी की बात मैंने ठीक कर दी है दिवाये परीक्षा के बाद तिथि निश्चित की जायगी! बहिन, भट्टाचार्यजी से पत्रा देखने को कह देना, और बाबूजी से पूछकर एक बार उनकी राय भी तो जान लेना। शची के साथ ब्याह होगा, सुनकर वे बहुत खुश होंगे। तू मुँह बाये क्या देख रहा है? तेरी छोटी भाभी की छोटी बहिन है शची – उसको तूने देखा नहीं हैं? देखा नहीं है तो शची को देखने की आवश्यकता भी नहीं है। अभी थोड़ी ही देर पहले मैं बहिन से कह रहा था कि वैसी लड़की को जो पसन्द नहीं करता, उसे शादी ही नहीं करनी चाहिए। बचपन में बायें पैर में घाव की चीरफाड़ हुई थी, इसलिए उस पैर को ज़रा खींचकर चलती थी। उस बात पर अभी-अभी मैं बहिन से कहने जा रहा था कि ज़रा-सा दोष, थोड़ी सी त्रुटि, यदि आत्मीय होकर दिवाकर क्षमा नहीं कर सकता तो, दूसरा कोई कैसे करेगा? इसके अलावा छोटे-मोटे दोष को लेकर हल्ला-गुल्ला मचाना तो उच्च शिक्षा का फल नहीं है, यह तो नीचता है। निर्दोष त्रुटिहीन इस जगत में कोई चीज़ मिलती ही नहीं, ऐसी चीज़ की आशा करके बैठे रहना और पागलपन एक ही बात है, दिवा इस को समझता है। और तुमसे कहता ही क्या है बहिन, दिवाकर के साथ शादी होगी, सुन लेने पर सुरबाला के आनन्द की सीमा ही नहीं रहेगी। ओह! शायद तेरा समय नष्ट हो रहा है। तो इस समय तू जा, मैं भी ससुरजी को पत्र लिखता हूँ।" इतना कहकर उपेन्द्र उठे और महेश्वरी को इशारा करके चले गये।

महेश्वरी मुँह नीचा किये भात चलाने लगी और दिवाकर अवाक होकर खड़ा रहा। बड़ा तूफ़ान जैसे खर-पतवार, धूल-बालू सब उड़ाकर ले जाता है, उपेन्द्र वैसे ही विध्नबाधा, आपत्ति अस्वीकृति को अपनी इच्छा के अनुसार उड़ाकर लेते गये। मौन होकर दोनों यही सोचने लगे। बहुत देर तक भी जब कोई बात नहीं उठी, तब दिवाकर बोला, "यह सब क्या

है जीजी?"

महेश्वरी ने बिना मुँह ऊपर उठाये कहा, "सब तो तूने सुन ही लिया?"

दिवाकर ने पूछा, "इतनी हड़बड़ी क्यों?"

महेश्वरी ने कहा, "शची के विवाह की उमर बीत रही है और अगले वर्ष एकदम ही लगन नहीं है!"

इसके बाद दिवाकर के दिमाग़ में कोई भी बात नहीं आयी, किन्तु उसको याद आया कि उपेन्द्र इस समय पत्र लिख रहे हैं। थोड़ी देर बाद ही आवश्यक पत्र को लेकर नौकर डाकखाने दौड़ जायेगा। वह किसी दिन भी विवाह न करेगा यही उसके जीवन का संकल्प रहा है। वह संकल्प इस तरह एकाएक एक लमहे में उड़ता चला जा रहा है। यह स्मरण आते ही वह घबराकर उपेन्द्र के कमरे की ओर चला गया। कमरे में घुसते ही सुरबाला अपने अप्रसन्न मुँह पर सिर का कपड़ा खींचकर आलमारी के किनारे हट गयी। उपेन्द्र मेज़ के पास काग़ज़-क़लम लेकर बैठे हुए थे। मुँह उठाकर उन्होंने पूछा, "फिर क्या?" दिवाकर जो कुछ कहने आया था, उसको अच्छी तरह सोचने-विचारने का समय भी उसे नहीं मिला और आँचल का एक छोर आलमारी के एक तरफ़ दिखायी देने लगा। वह चुपचाप खड़ा रहा।

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या है रे?"

दिवाकर ने कुछ कहकर आलमारी की तरफ़ दृष्टि फेरी।

उपेन्द्र ने उस संकेत को देखते हुए भी नहीं देखा, बोले, "मेरे पास वक़्त नहीं है दिवा...।"

दिवाकर ने पास आकर कहा, "इतनी जल्दबाजी किसलिए?"

उपेन्द्र बोले, "नहीं, जल्दीबाजी तो नहीं है। अब भी जैसे ही हो, क़रीब दो महीने का वक़्त है, तेरा इम्तहान हो जाने पर...।"

"तो फिर आज ही पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है? कुछ दिन बाद लिखने से भी तो काम चल सकता है।"

"चल सकता है। लेकिन कुछ दिन बाद लिखने से क्या सुविधा होगी?"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "सोच-विचार कर देख लेना उचित है।"

उपेन्द्र ने कहा, "उचित तो है ही! तुम ब्याह की चिन्ता में सोच-विचार करो, तुम्हारे इम्तहान की चिन्ता मैं करूँ.....।"

"लेकिन ऐसा दायित्व ग्रहण करने के पहले...।"

"विज्ञ व्यक्ति की भाँति कुछ कहना आवश्यक हे, अच्छा तुम कुर्सी पर बैठ जाओ। सोच-विचार करके क्या देखना चाहते हो, मैं भी तो सुनूँ?"

दिवाकर चुप ही रहा।

उपेन्द्र ने कहा, "देखो दिवाकर, कोई भी बात क्यों न ली जाय, अन्त तक सोच-विचार करना मनुष्य की शक्ति में नहीं है। कितने ही बड़े विद्वान पण्डित क्यों न हों, अन्तिम फल भगवान के हाथ से ही लेना पड़ता है। फिर भी, पहले से जो कुछ सोच-विचार करके देख लिया जा सकता है उसके लिए तो आधा घण्टा से अधिक समय नहीं लगता, कुछ दिनों

का समय चाहते हो न?"

दिवाकर बोला, "सभी क्या इतनी जल्दी सोच-विचार कर सकते हैं?"

"कर सकते हैं, लेकिन यह याद रखने की आवश्यकता है, बिखरी हुई इधर-उधर की चिन्ताओं का अन्त भी नहीं है और उसकी मीमासा भी नहीं होती। दो-चार दिनों में ही क्यों, दो-चार वर्षों में भी निश्चय नहीं होता। फिर भी इस सम्बन्ध में मोटे तौर से जो कुछ लोग विचार करके देखते हैं, वह यही है कि प्रतिपादन कर सकूँगा या नहीं। लेकिन शची से ब्याह कर लेने पर यह चिन्ता तो तुमको किसी दिन भी करनी न पड़ेगी। दूसरी बात है नापसन्द की, गोकि निर्णय एक की ओर से दूसरा नहीं कर सकता। क्या तू यही बात सोच रहा है।"

शची की सुन्दरता का संकेत होने से दिवाकर को बहुत ही लज्जा मालूम हुई। वह बोल उठा, "नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"तब तो ठीक ही हुआ। क्योंकि वह बात कितनी ही अन्तः सार-शून्य क्यों न हो, बाह्य आडम्बर ही तो है। पहले ही सुन्दरता की जो बात आ जाती है, वह मनुष्य के अन्दर और बाहर ऐसा जादू कर देती है कि उसकी अच्छाई-बुराई का अत्यन्त सावधानी से निर्णय करना ही मुख्य वस्तु हो जाती है। असल में वह तो कुछ भी नहीं। जिस वस्तु को न पाकर लोग सारा जीवन हाय-हाय करते हैं वह आड़ में ही रह जाता है। पसन्द करने की जो सारी सामग्री है, उस वस्तु को प्राप्त न करने से संसार विफल हो जाता है, उसके ऊपर तो ज़ोर नहीं चल सकता, इसके लिए बिना परीक्षा के ही बिना विचार के ही भगवान की दुहाई देकर लोग ग्रहण करते हैं, और जो कुछ भी नहीं है, दो-चार दिनों में ही जो वस्तु नष्ट हो सकती है, नेत्र उठाकर देखने से ही जिसके दोष-गुण पकड़े जा सकते हैं उसकी परीक्षा का फिर कोई अन्त ही नहीं रहता। दिवाकर साढ़े पन्द्रह आना की ओर से यदि आँखें बन्द कर सकते हो, तो शेष दो पैसे के लिए गुरुजनों का अबाध्य होकर विरोध मत करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम्हार भविष्य उज्जवल से उज्जवलतर हो। किसी दिन तुम इस बात को मत भूलना कि सुन्दरता ही मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है, या सिर्फ़ सुन्दरता का ज़िक्र करना ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।"

दिवाकर सिर झुकाकर चुप हो रहा। उपेन्द्र भी बड़ी देर तक चुप रहकर अन्त में बोले, "तो अब तू यहाँ से जा।"

दिवाकर ने सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा, "मेरी रुचि नहीं है छोटे भैया, मुझे क्षमा करो। खासकर बड़े आदमी की लड़की.....।"

इस तरह के उत्तर ने पलभर के लिए उपेन्द्र को अभिभूत कर दिया। वह अल्पभाषी दिवाकर की बातों का गुरुत्व समझते थे। लेकिन किसी विषय में असफल होना भी उनका स्वभाव नहीं है। सामने के काग़ज़-क़लम को एक तरफ़ हटाकर बोले, "रुचि नहीं है! वह नहीं भी रह सकती है, लेकिन बड़े आदमी की लड़की का क्या अपराध है?"

दिवाकर ने कहा, "अपराध नहीं है, लेकिन मैं ग़रीब हूँ।"

उपेन्द्र ने कहा, "इसका मतलब तो यह है कि ग़रीब के घर की लड़की तुम्हारा जैसा

सम्मान या भक्ति करेगी, धनवान की लड़की वैसा न करेगी। लेकिन मैं पूछता हूँ, स्त्री का सम्मान या भक्ति पाने की कितनी समझ तुमको है? यह जिद पकड़ लोगे कि ब्याह करोगे ही नहीं, तो वह दूसरी बात है, लेकिन दोष का भार दूसरे के कन्धे पर रखकर अपनी ग़रीबी को जिम्मेदार मत ठहराओ। पुराण-इतिहास तो पढ़ चुके हो। उनमें सीता-सावित्री प्रभृति साध्वी स्त्रियों का जो उल्लेख है, वे राजा-महाराजा के घरों की लड़कियाँ होते हुए भी किसी दरिद्र घर की लड़की की अपेक्षा गुणों में कम नहीं थी। बड़े लोगों के घरों की लड़कियों के विरुद्ध एक कहावत प्रचलित है, इसलिए उसको बिना विचार के ही मान लेना पड़ेगा इसका कोई कारण मुझे दिखायी नहीं देता।"

दिवाकर के अलावा एक और श्रोता अत्यन्त ध्यान लगाकर आड़ में रहकर सुन रही थी। उसके आँचल के छोर पर दृष्टि पड़ने के साथ ही उपेन्द्र बोल बैठे, "बड़े आदमी के घर की एक और लड़की इस मकान में ही है, इसका आधा रूप-गुण लेकर भी यदि शची आ जायेगी, तो किसी भी पति को अपना सौभाग्य ही मान लेना चाहिए।" कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोले, "रुचि नहीं है। तूने कहा था!" बचपन में पाठशाला जाने की रुचि तुममें नहीं थी, यह देख चुका हूँ। धर्म-कर्म में किसी-किसी की रुचि नहीं रहती। जन्मभूमि पर किसी को अरुचि रहती है। इसका यह अर्थ नहीं कि इन्हें प्रश्रय दिया जाय।"

अचानक उसी समय आलमारी के पीछे से चूड़ियों की आवाज़ सुनकर चकित होकर दिवाकर उठ खड़ा हुआ। क्षण भर में उसने क्या निश्चय किया, यह वही जाने। सुरबाला के पास जाकर बोला, "भाभी, तुम कहो तो मैं छोटे भैया को पत्र लिखने को कह दूँ?"

सुरबाला ध्यान से पति की बातें सुन रही थी। एक अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति की तरंग उसकी समस्त इच्छाओं, समस्त कामनाओं और समस्त स्वतंत्रताओं को बहाकर पति की इच्छाओं के चरणों के नीचे आत्मसमर्पण करती जा रही थी। उसने कुछ भी निश्चय नहीं किया था, लेकिन आँचल से नेत्र पोंछकर पति को लक्ष्य करके एकान्त चित्त से कहा – "वह कभी झूठ नहीं बोलते। मैं कह रही हूँ बबुआ, तुम लोगों का भला होगा और मैं भी सुखी होऊँगी।"

दिवाकर ने उपेन्द्र के मुँह की ओर ध्यान से देखा। खुली खिड़की से काफ़ी प्रकाश उनके मुँह पर आ रहा था। उनके चेहरे पर न उद्वेग है और न दुश्चिन्ता। अत्यन्त पवित्र और मंगलमय प्रतीत हुआ।

दिवाकर ने कहा, "तुम जो अच्छा समझो, वही करो। मेरा समय नष्ट हो रहा है, मैं जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया। उसके चले जाने पर सामने की आरामकुर्सी पर आकर सुरबाला बैठ गयी। दोनों सजल नेत्रों को पति के मुँह पर रखकर बोली, "तुम क्षमा करो। मैंने गलत समझ लिया था, तुम जो कुछ करना चाहते हो उससे शची की भलाई होगी। इस बार तुम मुझे माफ़ कर दो।"

उपेन्द्र ने पत्र समाप्त करते हुए हँसकर कहा, "अच्छा!"

सात

उसके बाद से दिवाकर सिर्फ़ विवाह की बात सोचने लगा। शची कैसी है, क्या करती है, क्या सोचती है, क्या पढ़ती है, उसके साथ विवाह होने से कैसा व्यवहार करेगी, यही सब। रात के समय पढ़ने-लिखने में बहुत ही बाधाएँ पड़ने लगीं। आज उसका मन मतवाला हो उठा। स्पष्ट रूप से कुछ उपलब्ध न कर सका। केवल आकाश-कुसुम की तरफ़ मन उछलता रहा। किसी काम में मन न लगा।

परीक्षा के भय ने चाबुक की तरह जितनी बार उसको वापस लाकर पढ़ने में नियुक्त किया, उतनी बार ही वह उससे भागकर और दूसरी तरफ़ स्वप्नों की रचना करने लगा। बहुत देर तक इस विद्रोही मन के पीछे-पीछे दौड़-धूप करके कुछ भी न पा सकने पर दिवाकर अनुमान करने लगा कि उसका समय व्यर्थ नष्ट होता जा रहा है। लेकिन क्या ही अभूतपूर्ण परिवर्तन था! किस चीज़ के नशे ने उसको एकाएक ऐसा मतवाला बना दिया। उसका कारण ढूँढे जाने पर जो बात उसे याद पड़ गयी, अत्यन्त लज्जा के साथ दिवाकर ने उसका प्रतिवाद करके दृढ़ भाव से यही बात कही कि इसमें मेरी इच्छा नहीं है, अत्यन्त घृणा और अरुचि है! यदि पूजनीय किसी की मान की रक्षा करनी पड़े तो अत्यन्त उदास भाव से करेगा।

इतना कहकर उसने दोगुने आग्रह के साथ ऊँचे स्वर से पढ़ना आरम्भ कर दिया। लेकिन आज मन को संयम में रखना कठिन हो गया। जिस खेल के बीच से चला आ रहा है, जिस आकाश-कुसुम की आधी माला गूँथकर फेंक रखी है और बेबसी में सबक याद कर रहा है, उसको ख़त्म करने का अवसर वह प्रतिक्षण खोजता हुआ घूमने लगा। इसके अलावा यह जो कल्पना की वसन्ती हवा अभी-अभी उसके शरीर को स्पर्श कर गयी है – वह कितना मधुर है! उसके चारों ओर सौन्दर्य की सृष्टि हो रही थी, वह कितना सुन्दर है। सूर्य की ओर मुँह उठाकर आँखें बन्द कर लेने पर जिस प्रकार प्रकाश का संचार विचित्र वर्णों में अनुभव होता है, पढ़ने की तैयारी के बीच अस्पष्ट माधुर्य धीरे-धीरे उसके शरीर में व्याप्त होता गया। कण्ठ स्वर मन्द से मन्दतर और दृष्टि क्षीण से क्षीणतर होता गया। यह धड़पकड़, वाद-विवाद के बीच वह एक नये खेल में मशगूल हो गया। उसकी आँखों के सामने असंख्य प्रकाश, कानों के पास अगणित वाद्य और मन के बीच विवाह का विराट समारोह अवतीर्ण हो गया। इसके केन्द्रस्थल में अपने को दूल्हा के रूप में कल्पना कर रोमाँचित हो उठा। इसके बाद जो कुछ सुना था, जो कुछ देखा था, वह सब जादू की तरह मन के भीतर से विभिन्न रंगों में, बहुत तेज़ी से उड़ गया। कहीं भी वह स्थिर न रह सका, कुछ ठीक तौर से हृदयंगम न कर सका, केवल आश्चर्य-भरे पुलक से स्वप्नाविष्ट की भाँति स्तब्ध होकर बैठ गया।

आठ

विपिन के निमंत्रण से लौटकर आने के बाद दूसरे दिन आकण्ठ प्यास लिए सतीश नींद टूटने पर जब बिछौने पर उठ बैठा, तब दिन के दस बज चुके थे। तब भी उसका कमरा बन्द था। आज प्रातःकाल से ही मेघशून्य आकाश में धूप अत्यन्त प्रखर होकर उग चुकी थी, उस तेज़ गरमी से जंगले-दरवाज़े गरम हो जाने से इस बन्द कमरे का भीतरी भाग कैसा असहनीय हो उठा था, इसका पता स्वयं उसको न रहने पर भी उसका सारा शरीर इसका प्रमाण दे रहा था। पूरा बिछौना पसीने से भीग चुका था। सतीश उठ बैठा, और घबराकर सिरहाने की खिड़की खोल देने के साथ ही एक झलक धूप उसके चेहरे और शरीर पर पड़कर उसको एक क्षण में तपाकर चली गयी।

रात भर नशे में मतवाला रहने के बाद सबेरे दस बजे नींद टूटने की ग्लानि शराबी ही समझ पाते हैं। इस ग्लानि को दूर करने के लिए सतीश ने पुकारा, "बिहारी।"

बिहारी दौड़कर हाज़िर हुआ।

सतीश बोला, "जल्दी से एक गिलास पानी तो ले आ!"

बिहारी ने पूछा, "तम्बाकू देने की आवश्यकता न पड़ेगी?"

"नहीं, पानी ले आ।"

"स्नान नहीं कीजियेगा?"

"अभी नहीं, तू पानी ले आ।"

फिर भी बिहारी नहीं गया, बोला, "संध्या उपासना का?"

संध्या-उपासना के संकेत से सतीश आगबबूला होकर बोला, "बदमाश कहीं का! जा पानी ले आ!"

डाँट खाकर बिहारी पानी लाने के लिए नीचे चला गया। रसोईघर के बरामदे में बेठकर सावित्री सुपारी काट रही थी, मुस्कराहट के साथ उसने पूछा, "सतीश बाबू ने तम्बाकू देने को कहा है?"

बिहारी ने मुँह बनाकर कहा, "नहीं, पानी चाहिए।"

"स्नान किया नहीं, संध्या की नहीं, फिर पानी क्या होगा।"

बिहारी ने व्यथित होकर कहा, "मैं क्या जानूँ! हुक़्म हुआ कि पानी चाहिए, ले जा रहा हूँ।

सावित्री सरौता रखकर उठ खड़ी हुई। बोली, "अच्छा, मैं ही ले जा रही हूँ, तुम थोड़ी सी बर्फ़ ले आओ।"

बिहारी पैसे लेकर बर्फ़ लेने चला गया।

सावित्री ने ऊपर जाकर कहा, "जाइये, स्नान कर आइये, मैं तब तक संध्या का स्थान ठीक कर रखती हूँ।"

सतीश मन ही मन झुँझलाकर बोला, "कहाँ है बिहारी!"

सावित्री हँसी रोककर बोली, "वह बर्फ़ लेने गया है। बाबू, अपराध करके सजा भोगना अच्छा है, इससे प्रायश्चित हो जाता है। आप क्या संध्या-पूजा किये बिना किसी दिन पानी

पीते हैं कि आज ही पानी के लिए हल्ला कर रहे हैं! जाइये, देर न कीजिये।”

सावित्री के सामने प्रतिवाद करना निरर्थक समझकर सतीश उठ पड़ा और तौलिया कन्धे पर रखकर स्नान करने के लिए चल दिया।

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार ज्यों ही सो रहने की तैयारी करने लगा त्यों ही सावित्री आकर दरवाज़े के बाहर खड़ी हो गयी। उसको जैसे देखा ही नहीं है, ऐसा रुख दिखाकर सतीश दीवार की ओर मुँह फेरकर सो रहा।

सावित्री ने मन ही मन हँसकर कहा, “रात की सारी बातें बाबू को याद है या नहीं, यह जान लेने के लिए मैं आयी हूँ।”

सतीश चुप रहा।

सावित्री ने कहा, “नींद टूटने पर एक बार बुला लीजियेगा, उन सबको एक बार याद करा जाऊँगी।” इतना कहकर वह चली गयी।

पिछली रात की सारी घटनाएँ याद रखना सतीश के लिए सम्भव भी नहीं है, वे याद भी नहीं थीं। विपिन बाबू के जलसे से वह किस तरह आया था, किसके साथ आया था, आकर क्या किया था, वे सारी बातें उसके मन में इधर-उधर बिखर गयी थीं, और अस्पष्ट हो गयी थीं। इस अस्पष्टता को स्पष्ट कर कह देने की इच्छा, उसको बिल्कुल ही न रही हो, ऐसी बात नहीं है लेकिन एक अनिश्चित लज्जा उसको मानो किसी प्रकार भी क़दम बढ़ाने नहीं दे रही थी। उसको संध्याकाल की घटना ही याद थी। यही अब तक उसकी मेघाच्छन्न स्मृति के आकाश में शुक्रतारा की भाँति चमक रही थी, लेकिन अधिकतर ज्योतिष्मान दुष्ट ग्रह भी उस बादल की ओट में ही उगा हुआ है, उसकी ओर सावित्री के इंगित ने उँगली का संकेत करने के साथ ही उसकी नींद मरुभूमि की भाप की तरह उड़ गयी। कल संध्या को हतबुद्धि होकर उसने चिराग़ बुझा दिया था इसक फल अन्त तक किस तरह प्रकट होगा, उस सम्बन्ध में उसके मन में यथेष्ट उत्कण्ठा बनी हुई थी, फिर भी उसमें उसका दोष कुछ भी नहीं था, इस कारण उसको दुर्भाग्य कहकर वह एक तरह सान्त्वना प्राप्त कर रहा था और अपराध न करने में जो एक सच्ची शक्ति छिपी रहती है वह शक्ति उसके अनजाने में भी उसको प्रश्रय दे रही थी, लेकिन सावित्री इस समय जो बात कह गयी, जिस अन्धकार के बीच रास्ता दिखा गयी, उसके बीच प्रवेश करने का साहस उसको कहाँ था? उसका मतवाला बन जाने की अभिज्ञता थी ज़रूर, पर बेहोश हो जाने की अभिज्ञता वह कहाँ से लाता? वह किस तरह अनुमान करे कि उसने क्या किया था, क्या नहीं किया था! कितने ही मतवालों को कितने ही विचित्र कार्य करते हुए उसने अपने नेत्रों से देखा है, अब अपने बारे में किस काम को वह किस साहस से असम्भव कहकर दूर हटा देगा? इसीलिए सम्भव-असम्भव समस्या उसके लिए जितनी जटिल बनती गयी, उसका दुखी मन उतना ही सम्भव-असम्भव के बीच रेखा खींच देने के लिए प्रयत्न करने लगा। फिर उसके दिमाग़ से आग जल उठी। वह फिर एक बार उठ बैठा और जीवन में शराब न छूने की प्रतिज्ञा पुनः एक बार करके उसने प्रायश्चित किया।

खिड़की में से सतीश ने पुकारा, “बिहारी!”

बिहारी राखाल बाबू के बिछौने को धूप में डाल रहा था, आवाज़ सुनकर वह पास आकर खड़ा हो गया।

सतीश ने कहा, “अच्छा, तू जो काम कर रहा है, कर। सावित्री से कह दे, एक गिलास पानी दे जाये।”

बिहारी ने कहा, “मैं ही ला देता हूँ, वह अभी संध्या-पूजा कर रही हैं।”

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, “क्या, संध्या कर रही है!”

“जी हाँ, वह तो नित्य करती हैं। एकादशी के दिन एक बूँद पानी भी नहीं पीती, मछली भी नहीं खाती, भले घर की लड़की है न।”

सतीश ने आश्चर्य के साथ पूछा, “भले घर की? क्या कह रहा है?”

“हाँ बाबू, भले घर की ।” इतना कहकर बिहारी पानी लाने जा ही रहा था कि सतीश ने पुकारकर पूछा, “सावित्री यदि रात को भात नहीं खाती तो क्या खाती है?”

“और क्या खायेंगी बाबू, कुछ रहने से किसी दिन थोड़ा सा जल भी पी लेती हैं – न रहने पर कुछ भी नहीं खाती-पीतीं।”

“बासे का और कोई यह बात जानता है?”

“बिहारी ने कहा, “रसोइया महाराज जानता है, मैं जानता हूँ और कोई नहीं जानता। उन्होंने बताने की मनाही कर रखी है।”

सतीश ने कहा, “अच्छा तू जाकर पानी ले आ।”

बिहारी के दो-एक क़दम जाते ही सतीश ने फिर पुकारा, “बिहारी!”

“जी।”

“भले घर की है, तूने यह बात कैसे जानी?”

“जानता हूँ बाबू। भले घर की लड़की है। केवल किस्मत के चक्कर से – ”

“अच्छा, अच्छा, तू जा पानी ले आ।”

बिहारी के चले जाने पर सतीश बिछौने पर औंधा होकर लेट रहा। सावित्री को साधारण दासी की श्रेणी में मानने से उसके मन में एक तरह की व्यथा पहुँची थी। किसलिए उसका मन हीनता और गुप्त लांछना के दबाव से चुपचाप सिर झुका लेता था, उसको वह कुछ भी समझने में समर्थ नहीं हो रहा था। आज बिहारी के मुँह से केवल इतना ही परिचय पाकर आनन्दपूर्ण आश्चर्य से ही नहीं, बल्कि उसका समूचा मन मानो किसी अपरिचित के बाहुपाश से अकस्मात मुक्ति पाकर पवित्र होकर बच गया। उसने बिहारी की बात को सम्पूर्ण सत्य कहकर ग्रहण करने में एक क्षण की दुविधा भी नहीं की।

पानी लाने में विलम्ब हो रहा है सोचकर वह थोड़ी देर तक चुप हो रहा तो भी बिहारी दिखायी न पड़ा। प्यास के मारे उसे कष्ट मालूम होने लगा। फिर एक बार बिहारी को बुलाने की इच्छा करके वह जैसे ही उठ बैठा, वैसे ही उसने देखा कि पानी का गिलास लिये सावित्री आ रही है। इस आचार-परायण अभागिनी को उसने आज नयी आँखों से देखा और उस

क्षणभर के दृष्टिपात से ही उसका हृदय करुणा और श्रद्धा से भर उठा। जो बात किसी दूसरे समय उसके मुँह से निकलने में रुकावट पड़ती, इस समय रुकावट नहीं पड़ी। पानी पीकर वह बोला, "बहुत बातें हैं।"

सावित्री चुपचाप देखती रही।

सतीश ने कहा, "पहली बात है, मुझे क्षमा करना पड़ेगा।"

सावित्री ने शान्त स्वर से पूछा, "दूसरी बात?"

सतीश ने कहा, "कल कब किस तरह मैं आया था, बताना पड़ेगा।"

सावित्री ने जवाब दिया, "रात के अन्तिम प्रहर में गाड़ी पर चढ़कर।"

"उसके बाद?"

"रास्ते पर ही सो रहने का प्रबन्ध किया था।"

"अच्छा काम नही किया। उठाकर कौन ले आया?"

"मैं।"

"और कौन था? इतने बड़े जड़ पदार्थ को किस तरह ऊपर उठाया गया?"

सावित्री ने हँसकर कहा, "आप डरें नहीं, बासा में किसी को कुछ मालूम नहीं।"

सतीश ने गहरी साँस लेकर कहा, "मैं बच गया। लेकिन तुम्हारे साथ मैंने किसी तरह का दुर्व्यवहार तो नहीं किया?"

"नहीं।"

"सतीश ने खुश होकर कहा, "तो फिर किस बात की याद दिला देना चाहती थीं?"

"आपकी शपथ। आपने शराब न छूने की शपथ ली थी।"

"शपथ मैं क्यों लेने गया? इस तरह दुर्बुद्धि तो मुझे होने की बात नहीं है।"

"शायद मेरी बात से हो गयी थी।"

सतीश ने अपने कण्ठ-स्वर को धीमा करके कहा, "मुझे याद आ रही है सावित्री, मैंने तुमको छूकर शपथ ली थी न?"

सावित्री निरुत्तर रही।

सतीश ने कहा, "यही होगा। लेकिन कल संध्या की बातें याद हैं।"

इस बार सावित्री हँस पड़ी। गर्दन हिलाकर बोली, "हाँ, है।"

"लोग जान लेंगे शायद, फिर क्या उपाय होगा?"

सावित्री ने सहसा गम्भीर होकर कहा, "होगा फिर क्या! किसी दूसरे बासा पर, या अपने घर चले, जाइये!"

"तुम?"

सावित्री के मुख पर किसी प्रकार की घबराहट नहीं दिखायी पड़ी। शान्त भाव से वह बोली, "मुझे चिन्ता नहीं। इस बासे के बाबू लोग रखें तो अच्छा ही है, न रखेंगे तो और कहीं काम की चेष्टा करके चली जाऊँगी। जहाँ मेहनत करूँगी, वहीं दो कौर खाना पा जाऊँगी। और कुछ कहना है?"

सतीश का समस्त मन जैसे पहाड़ से लुढ़ककर नीचे जड़ में गिरकर बिल्कुल ही चूर-चूर हो गया। उसके यहाँ रहने न रहने से सावित्री का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इस सम्बन्ध में वह बिल्कुल ही उदासीन है। उसने गरदन हिलाकर बताया और उसको कोई बात कहनी नहीं है; क्योंकि सावित्री के इस निःशंक संक्षिप्त उत्तर के बाद और कोई प्रश्न ही उसके मुँह में नहीं आया। जबकि, कितनी ही बातें उसको कहनी थीं। सावित्री खाली गिलास लेकर चली गयी। सतीश चुपचाप बैठा रहा।

हाय रे मनुष्य का मन! यह किस चीज़ से टूट जाता है, किससे बन जाता है, इसका कोई तत्व खोजने पर नहीं मिलता। यह कितने आघात से बिल्कुल ही धरती पर लोट जाता है, फिर कितने प्रचण्ड आघात को भी हँसते हुए सह लेता है, इसका कोई हिसाब ही नहीं मिलता। फिर भी, इसी मन को लेकर मनुष्य के अहंकार की सीमा नहीं है। जिसको वश में नहीं किया जाता, जिसको पहचाना तक नहीं जाता, किस तरह अपना कहकर उसके मन को खुश रखा जा सकता है! कैसे उसे लेकर घर सम्भालने का काम चल सकता है।

सावित्री के चले जाने पर भी सतीश वैसे ही बैठा रहा। उसका हृदय दुख-कष्ट से नहीं, किसी प्रकार की एक जलन से मानो जलने लगा। जिसको प्यार करता हूँ, वह यदि प्यार न करे, यहाँ तक कि घृणा भी करे तो वह घृणा भी सही जा सकती है, लेकिन जिसका प्यार मुझको मिल गया है, ऐसा विश्वास हो जाने पर फिर उस विश्वास का टूट जाना ही सबसे शोचनीय अवस्था होती है! पूर्व स्थिति व्यथा ही देती है, लेकिन दूसरी स्थिति व्यथा भी देती है अपमान भी करती है। फिर इस व्यथा का प्रतिकार नहीं है, इस अपमान की शिकायत नहीं है। वेदना का कारण खोजने पर जब मिलता ही नहीं है तभी व्यथा ऐसी असहनीय हो जाती है।

बहरहाल, सावित्री के इस निश्चित और सरल कर्त्तव्य-निर्धारण ने सिर्फ़ एक बार उसके ही हृदय के चित्र को खोल नहीं दिया, उसने सतीश के हृदय के चित्र को भी खींचकर बाहर के प्रकाश में पहुँचा दिया। इन दोनों चित्रों को आसपास रखकर वह स्तम्भित हो रहा। उसने निश्चित रूप से जान लिया था, सावित्री प्यार करती है, वह प्यार नहीं करता। अब उसने देखा, ठीक उसका उल्टा; वह प्यार करता है, सावित्री नहीं करती। इस घृणित बात को स्वीकार करने में केवल लज्जा से ही उसका सिर नीचा नहीं हुआ, बल्कि अपने मन की इस नीच प्रवृत्ति से उसको अपने ऊपर घृणा उत्पन्न हो गयी। उसकी पिछली रात के सब काम लज्जाजनक थे इसमें सन्देह नहीं है; उसके जीवन में ऐसी अनेक रातों की अनेक लज्जाएँ जमा होकर पड़ी हुई हैं यह सच है। लेकिन इस नीचता की तुलना में वे सभी तुच्छ हो गयीं।

इस बासे में तो एक दिन ही रहना चल नहीं सकता। यहाँ रहने न रहने के सम्बन्ध में वह बिल्कुल ही उदासीन नहीं है, यह बात तो वह किसी तरह भी स्वीकार न कर सकेगा। वह कठोर प्रतिज्ञा कर बैठा कि वेदना के भारी बोझ से अगर उसका मन टूटकर टुकड़े-टुकड़े भी हो जाये तो भी नहीं। किसी प्रकार भी इस नीचता को प्रश्रय देकर वह नीचे के पथ

में नहीं जायेगा।

दिन ढलता जा रहा था, लेकिन कमरे के अन्दर सतीश को इसका होश नहीं था। एकाएक बासे पर लौटने वाले केरानियों तथा पास-पड़ोस की आहट से वह चकित-सा होकर खिड़की के बाहर झाँक लेने के लिए बिछौना छोड़कर उठ पड़ा और उसी दम एक कुरता पहनकर चादर कन्धे पर डालकर नज़र बचाये चुपके से बाहर निकल गया। अभी तुरन्त ही हाथ-मुँह धोने का आग्रह लेकर सावित्री आ जायेगी और जलपान के लिए हठ करने लगेगी। आज उसको ज़रा सी भी भूख नहीं थी लेकिन सावित्री इस बात पर किसी तरह भी विश्वास न करेगी, अनुरोध करेगी, परेशान करेगी, हो सकता है कि अन्त में क्रोध करके चली जायेगी। यह सब मौखिक स्नेह के वागवितण्डा से आज पहली बार अपने को अकृत्रिम घृणा के साथ दूर हटा ले गया।

रास्ते में घूमते-घूमते संध्या के ठीक पहले एक गली के मोड़ पर एकाएक पीछे से उसने परिचित कण्ठ की पुकार सुनी "छोटे बाबू हैं क्या?"

सतीश खड़ा हो गया, बोला, "हाँ, मोक्षदा हो क्या?"

बहुत दिन पहले मोक्षदा उसके पछाँह के मकान में दासी का काम करती थी, छुट्टी लेकर कलकत्ता आने पर फिर वापस न जा सकी। उसने कहा, "हाँ बाबू, मैं हूँ। मेरा एक पत्र आप पढ़ देंगे?"

सतीश हँसकर बोला, "इतने बड़े शहर में एक पत्र पढ़वाने के लिए तुझे और कोई आदमी नहीं मिला दाई? पत्र कहाँ है?"

मोक्षदा ने कहा, "पत्र मेरे घर पर ही है बाबू। किसी अनजान आदमी से पढ़वाने का साहस नहीं हुआ। न जाने इसमें क्या लिखा हो। यों तो हमारे घर में ही एक लड़की है, वह पढ़ना-लिखना जानती है, लेकिन उसको भी आज दो दिन से नहीं देखा, इतनी अधिक रात को वह घर लौटती है कि वक़्त नहीं मिलता।"

सतीश ने पूछा, "कितनी दूर है तुम्हारा मकान?"

दासी ने कहा, "यहाँ से थोड़ी ही दूर है। बड़े रास्ते के उस तरफ़ एक गली में है। अगर अपना पता-ठिकाना बता दें, तो किसी को साथ लेकर कल मैं ही चली आऊँ और पत्र पढ़वा जाऊँ।"

सतीश ने 'अच्छा' कहकर अपना शोभा बाज़ार वाला पता बता दिया और कहाँ से किस तरफ़ जाना पड़ता है, समझाकर बताते-बताते राह चलने लगा। कुछ देर चलने के बाद दासी एक जगह अचानक खड़ी हो गयी और बोली, "कहने का साहस मुझे नहीं होता बाबू, अगर एक बार चरणों की धूलि आप दे दें, घर यहाँ से और अधिक दूर नहीं है।"

सतीश ने थोड़ी देर कुछ सोचकर कहा, "अच्छा, चलो।"

आज डेरे पर लौट जाने का उसका बिल्कुल ही मन नहीं था। रास्ते में घूमते-घूमते रात अधिक हो जाने पर सावित्री अपने घर चली जायेगी तो अपने डेरे पर लौट जाऊँगा, यह निश्चय करके ही वह बाहर निकला था। इसीलिए, सहज ही में सम्मति देकर, दो गलियों

को पार करके वे दोनों मिट्टी के बने दुमंजिले मकान के सामने जा खड़े हुए।

"तनिक खड़े रहिये।" कहकर मोक्षदा अन्दर घुसी और शीघ्र ही एक मिट्टी के तेल की डिबिया हाथ में लिये लौट आयी और रास्ता दिखाती हुई सतीश को अपने साथ ले गयी। उस तरफ़ के कोने के कमरे में एक छोटे स्टूल पर डिबिया में बत्ती जल रही थी, उसी कमरे को दिखाकर उसने कहा, "ज़रा बैठिये, मैं तम्बाकू चढ़ा लाऊँ।"

इस छोटे से कमरे की सफाई देखकर सतीश ने आराम अनुभव किया। एक तरफ़ छोटी-सी चौकी पर मंजे-घिसे कितने ही पीतल-कांसे के बर्तन चमक रहे थे और उसके पास ही एक रस्सी पर कुछ कपड़े व्यवस्थित टंगे हुए थे। ताख़ पर एक टाइमपीस रखी थी, जिसमे आठ बजे थे। सतीश ने चौखट के बाहर जूते खोलकर रख दिये, चौकी पर बिछे हुए सफ़ेद बिछौने पर जाकर बैठ गया और कमरे के दूसरे असबाबों की मन ही मन जाँच करने लगा। पहले ही दृष्टि पड़ गयी एक छोटी सी आलमारी पर। उसमें कुछ पुस्तकें सजाकर रक्खी हुई थीं। सतीश उठकर गया और एक पुस्तक ले आया, और पहला पन्ना उलटने के साथ ही उसने देख लिया कि अंग्रेजी में भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय लिखा हुआ है, उस पुस्तक को रखकर और तीन-चार पुस्तकें, वही एक नाम देखकर पुस्तकें यथास्थान रखकर वह फिर बैठ गया।

मोक्षदा हुक्के पर तम्बाकू चढ़ाकर ले आयी।

सतीश ने हुक्का थामकर कहा, "तुम्हारा कमरा बहुत साफ़-सुथरा है, उठने का मन नहीं होता।"

मोक्षदा ने मुसकराकर कहा, "उठियेगा क्यों बाबू, बैठिये। यह कमरा मेरा नहीं है, यह एक दूसरी लड़की का है।"

सतीश ने पूछा, "वह कहाँ हैं?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगों के एक डेरे पर काम करती है। लौटने में प्रायः ही रात हो जाती है, इसीलिए कमरे की चाभी मेरे ही पास रहती है। मुझे मौसी कहकर पुकारती है।"

सतीश ने कहा, "भले ही पुकारती हो, लेकिन भुवन बाबू कब आयेंगे?"

दासी ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "कौन भुवन बाबू?"

"भुवन मुखर्जी – पहचानती नहीं हो?"

सहसा दासी ने दोनों भौंहें चढ़ाकर कहा, "ओह! हमारे मुखर्जी? नहीं, नहीं, उनको आना नहीं पड़ेगा।"

"क्यों? क्या मर गये हैं?"

दोनों आँखें चमकाकर मोक्षदा ने कहा, "नहीं, मर नहीं गये, लेकिन मर जाने से ही अच्छा होता। ठहरे ब्राह्मण, वर्णों के गुरु, हम लोगों के मस्तक के मणि हैं। नारायण तुल्य हैं, उनके प्रति अभक्ति नहीं करती, उनके चरणों की धूलि लेती हूँ, लेकिन किसी दिन भेंट होने पर तीन झाड़ू गिनकर मुँह पर मारूँगी, तभी मेरा नाम मोक्षदा है।"

सतीश हँसकर बोला, "क्रोध के आवेश में ब्राह्मण आदमी की अभक्ति करके कहीं मार मत बैठना! खूब भक्ति के साथ गिनकर मारोगी तो पाप न लगेगा। लेकिन वह हैं कौन?"

मोक्षदा ने कहा, "उस आदमी का परिचय क्या दूँ बाबू, वह आदमी नहीं जानवर हैं। इस लड़की को जिस राह में वह बिठा गये, बाबू, यह कोई अपने आदमी का काम है? छि! छि! गले में डालने को रस्सी नहीं मिली?"

सतीश ने कौतूहल के साथ पूछा, "वह हैं कौन? उन्होंने क्या किया है?"

सहसा कमरे के बाहर से जवाब आया, "जिस आदमी को आप नहीं पहचानते, उनके विषय में सिर्फ़ जान लेने से क्या लाभ होगा?"

सतीश चौंक पड़ा।

मोक्षदा ने मुँह फेरकर कहा, "साबी है क्या? कब आयी तू?"

सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, "अभी आयी हूँ, बाबू को तुम कहाँ पा गयी मौसी?"

मोक्षदा ने कहा, "ये ही हमारे छोटे बाबू हैं, सावित्री? आज दो दिन हुए बहू जी का एक पत्र मुझे मिला है, उसको पढ़वा नहीं सकी, इसलिए कहा – अगर बाबू दया करके चरण-रज दे दें....।"

सावित्री ने कहा, "तो चरण-रज तुम्हारे कमरे में न देकर मेरे कमरे में क्यों?"

मोक्षदा ने नाराज़ होकर कहा, "तो फिर क्रोध क्यों करती हो सावित्री। मेरे कमरे में तो भले आदमी को बैठाया नहीं जा सकता, इसीलिए तेरे कमरे में बैठाया है। कितने बड़े घराने के ये लोग हैं, यह तो खुशी की बात है, नाराज़ क्यों हो रही है?"

सावित्री ने हँसकर कहा, "क्यों नाराज़ होऊँगी मौसी! लेकिन खाली चरण-रज लेने से तो पाप होता है। जलपान कराना उचित है – हाँ ब्राह्मण महाराज, क्या आपको भूख लगी है?"

सतीश संकुचित हुआ बैठा था, सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

सावित्री के अशिष्ट प्रश्न से विरक्त होकर मोक्षदा ने कहा, "यह बात करने का कैसा तरीक़ा है सावित्री? भले आदमी के साथ क्या इस तरह बातें की जाती हैं?"

सावित्री ने बलपूर्वक हँसी दबाकर कहा, "यह कौन-सी ख़राब बात है मौसी? अच्छा, अब उनकी भूख के बारे में कुछ पूछूँगी ही नहीं, तुम दुकान से कुछ जलपान खरीद लाओ, तब तक मैं जगह ठीक कर रखती हूँ।"

मोक्षदा भुनभुनाती हुई बकते-बकते तेज़ कदम बढ़ाकर चली गयी तो सावित्री ने कहा, "कल रात से ही तो एक तरह उपवास ही चल रहा है। शाम को किस तरह आप भागकर चले आये, इसका भी पता मुझे नहीं चला। अब उठिये, संध्या-पूजा करके कुछ खा लीजिये। इस अरगनी पर धुले कपड़े हैं, पहिन कर मेरे साथ आइये, देर न करें, उठिये।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "मुझे भूख नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "न रहने पर भी खाना पड़ेगा। इसका कारण है कि, भूख नहीं है, इस बात पर मैंने विश्वास नहीं किया, दूसरा कारण?"

सतीश ने अपने मुँह का भाव अत्यन्त कड़ा बनाकर कहा, "दूसरा कारण तो झूठ ही

है, वही पहला सब कुछ है। सभी बातों में तुम्हारी जिद और ज़बर्दस्ती रहती है। इस जिद के सामने किसी का उपाय नहीं चलता।"

सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर ज़रा हँसकर कहा, "तो फिर झूठ-मूठ की चेष्टा क्यों कर रहे हैं?"

सतीश ने और भी गम्भीर होकर कहा, "यह बात नहीं है सावित्री! आज मेरी चेष्टा किसी तरह भी झूठ न होगी। या तो, अपना दूसरा कारण बताओ, नहीं तो सच कह रहा हूँ तुमसे, मैं किसी तरह भी यहाँ कुछ न खाऊँगा।"

सतीश की जिद देखकर सावित्री चुपचाप हँसने लगी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली, "मैं सोच रही हूँ, आज आप आ कैसे गये? आज है मेरा जन्मदिवस। जबकि आपने दासी के घर में चरण-रज दी है तब ख़ाली-ख़ाली आपको मैं नहीं छोड़ सकती।" इतना कहकर सावित्री सहसा रुक गयी, लेकिन उसके हृदय की गुप्त व्यथा उसी के कण्ठ-स्वर के मुक्त मार्ग से इस तरह अचानक सतीश के सामने आकर खड़ी हो गयी कि कुछ देर के लिए सतीश की बोधशक्ति अचल हो गयी। बुद्धिमती सावित्री इसको क्षणभर में अनुभव करके सभी बातों का सहज परिहास करके हँसकर बोली, "भगवान ने आज आपको मेरा अतिथि बनाकर भेजा है, इसलिए खाना भी पड़ेगा और दक्षिणा भी लेनी पड़ेगी। देखती हूँ, आज बिल्कुल ही जात नष्ट हो जायेगी।"

इतनी देर में सतीश की स्वाभाविक शक्ति लौट आयी थी। उसने पूछा, "सचमुच ही क्या आज तुम्हारा जन्मदिन है?"

सावित्री ने कहा, "सचमुच।"

सतीश ने कहा, "तो ऐसे दिन अगर मैं आ ही पड़ा हूँ तो दुकान की कुछ बासी मिठाइयाँ खाकर पेट न भराऊँगा। इसके अलावा ये सब चीज़ें तो मैं कभी खाता नहीं!"

सावित्री भी यह बात जानती थी। मन ही मन लज्जित होकर उसने कहा, "लेकिन अब तो रात हो गयी है!"

सतीश ने कहा, "हो जाये रात! आज डेरे पर वापस जाकर झिड़कियाँ तो खानी न पड़ेगी। फिर आज ज़्यादा रात होने से डरूँ क्यों? कुछ भी क्यों न हो, किसी प्रकार भी मैं नहीं खाऊँगा।"

"तुमसे पार पाने का कोई रास्ता नहीं है।" कहकर सावित्री उठकर चली गयी।

सतीश बैठा हुआ था, अब लेट गया। यह सुन्दर कुटी और यह निर्मल सफ़ेद शय्या छोड़कर किसी तरह भी जाने की उसे इच्छा नहीं हो रही थी, फिर भी आत्मसम्मान को अक्षुण्ण रखकर बैठ रहने का भी कोई अच्छा-सा कारण नहीं मिल रहा था। अब खाना तैयार होने की देर की सम्भावना उसको भावी आसन्न कठिन उत्तरदायित्व में मानो छुटकारा दे गयी। चलते समय सावित्री बाहर से जंजीर चढ़ा गयी थी, इसको भी जैसे वह जान गया था, उसके 'तुम' सम्भाषण को भी उसने उसी तरह लक्ष्य किया था। निर्जन कमरे में ये नवलब्ध दो तथ्य, जादूगर और उसकी जादू की लकड़ी की तरह अपूर्व इन्द्रजाल की रचना

करने लगे। आज ही दुपहरिया को जो सब प्यार के कूड़ा-कर्कट उसके मन के भीतर से भाटे के खिंचाव से बाहर की तरफ़ बह गये थे, ज्वार के उल्टे स्रोत से फिर वे एक-एक करके वापस आकर प्रकट होने लगे। आज ही दोपहर को आत्माभिमान के आघात की तीखी ज्वाला ने अपने मन की नीच प्रवृत्तियों की तरफ़ उसके नेत्रों को खोल दिया था, ज्वाला के ठण्डा होने के साथ ही साथ वे नेत्र आप ही आप बन्द हो गये। इसी तरह अपने को लेकर खिलवाड़ करते-करते किसी समय शायद वह ज़रा-सा सो गया था। एकाएक द्वार खुल जाने की आवाज़ से वह जाग उठा और देखा कि सावित्री मोक्षदा को साथ लिये कमरे में घुस रही है। मोक्षदा ने पत्र सतीश के हाथ में देकर कहा, “देखिये तो बाबू, बहू ने लिखा क्या है!”

सतीश ने पढ़कर कहा, “उन लोगों के लौटने में अभी दो महीने की देर है।”

मोक्षदा ने पूछा, “और कोई बात नहीं है?”

सतीश ने पत्र लौटाकर कहा, “नहीं, विशेष कुछ बात नहीं है।”

“मेरी तनखा के बारे में बाबू?”

“नहीं, वह बात नहीं लिखी है।”

रुपये की बात नहीं लिखी है सुनकर मोक्षदा ने मन ही मन अत्यन्त कुढ़कर पत्र के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, “यह बात रहेगी क्यों? रहेंगी जितनी सब बेकार की बातें! दीजिये पत्र। सावित्री कल पत्र का उत्तर लिख देना तो। हाँ, बाबू को खाना कब दोगी? रात नहीं हुई है क्या?” सावित्री ने कहा, “यह ठहरे, ब्राह्मण महाराज, संध्या-पूजा करेंगे या यों ही खा लेंगे?”

मोक्षदा ने कहा, “यह क्या अपने पुरोहित महाराज हैं, या बाबाजी हैं कि पूजा-आह्निक करके खायेंगे?”

सतीश हँसकर बोला, “क्या दाई, तुम सब भूल गयी! मैं तो सदा ही संध्या-पूजा करता हूँ।”

मोक्षदा को शायद एकाएक बात याद पड़ गयी। झेंपकर बोली, “हाँ-हाँ, ठीक बात है।” सावित्री की तरफ़ घूमकर बोली, “देख तो बेटी, जल्दी बाबू के लिए जगह ठीक कर दे। तेरे घर में तो सब ही ठीक-ठाक है।” कहकर माक्षदा चली गयी।

एक घण्टे के बाद सतीश के भोजन के वक़्त कमरे में कोई भी मौजूद नहीं था – अँधेरे बरामदे से यह देखकर मोक्षदा एकदम जल उठी। रसोईघर में जाकर देखा, सावित्री चुपचाप बैठी हुई है।

रुष्ट कण्ठ से उसने कहा, “यह तेरी कैसी बुद्धि है सावित्री? यह क्या कंगाली भोजन हो रहा है कि जो कुछ भी है, खाने के लिए सामने डालकर निश्चिन्त होकर बैठी हुई हो?”

सावित्री कुछ सोच रही थी, चौंककर बोली, “आवश्यकता पड़ने पर वह खुद ही माँग लेंगे।”

“ऐसी बुद्धि न रहती तो फिर तू दासी का काम करने जाती! तू तो खुद ही

नौकर-नौकरानी रख लेती!"

सावित्री ने हँसकर कहा, "खुद ही नौकरानी बनी हुई हूँ। इसमें भी क्या दोष है मौसी, मेहनत करके खाने में तो शर्म नहीं है!"

मोक्षदा ने कुपित होकर कहा, "कौन कहता है कि है। मेरी उम्र में भले ही न रहे, लेकिन तेरी उम्र में तो ज़रूर ही है। अच्छा रहे या न रहे, बाबू को जबकि खाने को कह दिया है, तब बैठकर खिलाओ। मनुष्य का भाग्य बदलने में अधिक देर नहीं लगती।"

सावित्री जाने को तैयार होते-होते ठिठककर खड़ी हो गयी, बोली, "क्या बक रही हो मौसी। वह सुन लेंगे तो?"

मोक्षदा ने तुरन्त ही अपना कण्ठ धीमा कर के कहा, "नहीं-नहीं, सुन लेंगे क्यों! और एक बात तुझसे कहे रखती हूँ बेटी। भगवान ने जो दो आँखें दी हैं, उन दोनों को ज़रा खोल रखना, घड़ी की चेन, हीरे की अँगूठी न रहने से ही किसी आदमी को छोटा मत समझ लेना।"

"अच्छा!" कहकर सावित्री हँसती हुई चली जा रही थी। मोक्षदा ने फिर पीछे से पुकारकर कहा, "सुनो तो सावित्री!"

सावित्री घूमकर खड़ी हो गयी, बोली, "क्या है?"

"मेरे कमरे में चल, एक ढाका की साड़ी निकाल दूँ, पहनकर जा।"

सावित्री ने हँसी रोककर कहा, "तुम निकाल लाओ मौसी, मैं अभी आ रही हूँ।"

सतीश का खाना प्रायः समाप्त हो आया था, सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, "आँखें बन्द करके खा रहे हो क्या?"

सतीश ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "नहीं।"

"लेकिन देखती हूँ दोनों आँखें तो नींद से ढलती जा रही हैं!"

असल में उसे कड़ी नींद आ रही थी। पिछली रात का उच्छृंखल अत्याचार आज असमय में ही उसकी आँखों की दोनों पलकों को भारी बनाता जा रहा था, सलज्ज हँसी से स्वीकार करके उसने कहा, "हाँ, बड़ी नींद आ रही है।"

सावित्री ने पूछा, "और कुछ चाहिए?"

सतीश तुरन्त बोल उठा, "कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं खा चुका।"

बाहर पैरों की आहट सुनकर सावित्री जान गयी कि मोक्षदा आकर खड़ी है, बोली, "बाबू, मुझे एक ढाका की साड़ी खरीद देनी पड़ेगी।"

वह कभी कुछ नहीं माँगती, इसलिए इस बात का मतलब न समझ सकने के कारण सतीश आश्चर्य में पड़ गया। मोक्षदा के आने का उसे पता नहीं था। उसने पूछा, "सचमुच ही चाहिए?"

"सचमुच ही तो!"

"कब पहनोगी?"

"आज पहनने की स्थिति नहीं है, इसलिए किसी दिन भी वह स्थिति नहीं होगी, ऐसी

क्या बात है! इसके अलावा एक और बात है। मैं मेहनत करके खाती हूँ, इसके लिए मौसी दुःख कर रही थी। इसलिए सोच रही हूँ अब मेहनत करके न खाऊँगी – अब से बैठी-बैठी खाऊँगी।"

सतीश ने हँसकर कहा, "अच्छी बात तो है।"

"सिर्फ़ अच्छी बात होने से ही तो न होगा, उसके साथ एक नौकरानी न रहने से भी तो मान नहीं रहता – उसको भी आपको रख देना पड़ेगा।"

अपनी बात को वह ख़त्म भी न कर सकी – मुँह में आँचल ठूँसकर हँसी का वेग रोकने लगी।

मोक्षदा कोई कच्ची औरत नहीं थी। एक ही क्षण में सब कुछ समझकर कमरे में घुसकर उसने कहा, "बाबू, शायद सावित्री को पहचानते हैं?"

सावित्री की तरफ़ घूमकर बोली, "मौसी के साथ अब तक शायद मज़ाक हो रहा था? यह तो अच्छी बात है, खुशी की बात है। पहले कहने से ही तो काम हो जाता।" कहकर हँसकर वह चली गयी।

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार बिछौने पर आकर बैठ गया। सावित्री डिब्बे में भरकर पान लायी और बँधे हुक्के पर तम्बाकू चढ़ाकर सतीश के हाथ में दे दिया, पैरों के पास धरती पर बैठकर एकाएक मुसकराकर सिर झुका लिया। सतीश के दिल में आँधी बहने लगी। सारे शरीर में रोंगटे खड़े होकर मानो जाड़ा लगने लगा। क्षणकाल के लिए उसको हुक्का खींचने की शक्ति तक नहीं रही। दो मिनट के बाद सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "रात हो गयी, बासे पर नहीं जाओगे?"

सतीश ने सूखे कण्ठ से कहा, "नहीं जाऊँगा तो रहूँगा कहाँ?"

'यहीं रहोगे। न जा सको तो ज़रूरत नहीं है – मौसी अभी तक जाग रही है। मैं उनके बिछौने पर ही सो जाऊँगी।"

एक क्षण के लिए सतीश चुप ही रहा लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सम्भालकर बिल्कुल ही खड़ा होकर कहा, "नहीं.... जा रहा हूँ।"

"अच्छा, और ज़रा बैठो।" कहकर सावित्री उठकर चली गयी और सतीश के जूते बाहर से उठा लायी और आँचल से पैर पोंछकर जूतों का फीता बाँधते-बाँधते धीरे-धीरे बाली, "बासा के लोग अगर जान जायें तो?"

"जानेंगे कैसे?"

"मैं अगर बता दूँ?"

"तुम क्या बताओगी? बताने की कोई बात ही नहीं है।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "कुछ भी नहीं है, सच कहते हो?"

सतीश निरुत्तर हो रहा।

सावित्री ने धीमे स्वर में कहा, "बताने की बात न रहने से कौन जाने आज मैं तुमको छोड़ सकती थी या नहीं।" यह कहकर वह एकाएक चुप हो गयी। लेकिन दूसरे ही क्षण

प्रबल बेग से सिर हिलाकर बोल उठी, "नहीं, तुम बासे पर चले जाओ। अगर दुर्बुद्धि न छोड़ोगे तो एक दिन सब ही खोल दूँगी, बताये देती हूँ।"

यह कैसा रहस्य है! इसके अन्दर की बात ठीक न समझ सकने के कारण सतीश क्षणभर चुप रहकर खड़ा रहा। बोला, "भले ही बता दोगी बासे के लोग तो मेरे संरक्षक हैं नहीं।"

सावित्री ने कहा, "जानती हूँ, नहीं हैं। लेकिन मेरी मौसी यह काम भी अनायास ही ले सकेगी। उसकी जबान को कैसे रोक रखोगे?"

मोक्षदा का नाम सुनकर सतीश मन ही मन डर गया, पर बोला, "रुपये देकर।"

सावित्री ने कहा, "उससे केवल रुपया बरबाद होगा, काम नहीं होगा। इसके सिवा, मौसी को न हो रुपये से वश में कर लोगे, लेकिन मुझे क्या देकर वश में करोगे?"

सतीश तुरन्त बोल उठा, "प्रेम देकर!"

सावित्री के होंठों पर हँसी की रेखा दिखायी पड़ी, बोली, "इसको लेकर चार बार हो गये।"

"यानी?"

"यानी इसके पहले और भी तीन आदमियों ने इसी चीज़ को देना चाहा था।"

"तुमने लिया नहीं?"

"नहीं। कूड़ा-करकट जमा करके रखने के लिए मेरे पास जगह नहीं।"

सतीश स्थिर होकर बैठा रहा। सावित्री की व्यंग्य-भरी हँसी और उसके कण्ठ का स्वर कुछ भी उसके लक्ष्य से बच नहीं सका। इसीलिए उसकी दोपहर की बातें याद आ गयीं और याद आने के साथ ही प्रेम की नदी में ज्वार खत्म होकर भाटे का खिंचाव शुरू हो गया। सावित्री की बातों को उसने व्यंग्य समझ लेने की गलती नहीं की। कड़े स्वर में बोल उठा, 'वे लोग हैं बेवक़ूफ़! उन लोगों को ऐसी चीज़ देने का प्रस्ताव करना उचित था जिसको बक्स में उठा रखना किसी को कूड़ा-करकट न मालूम हो। मैं भी कम मूर्ख नहीं हूँ, क्योंकि मैं भी भूल गया था कि वह चीज़ तुम लोगों के लिए कितनी अवहेलना की चीज़ है। इतनी उम्र में इतनी बड़ी भूल हो जाना मेरे लिए उचित नहीं था! अच्छा मैं चलता हूँ।"

यह बात सावित्री को शूल की तरह बींध गया, "तुम लोगों के लिए" कहकर सतीश ने उसको किन लोगों के साथ अभिन्न बनाकर देखा, इसे समझना सावित्री को बाकी नहीं रहा। किन्तु परिहास को झगड़े में परिणत होते देखकर वह चुप रह गयी। सतीश रुक नहीं सका, बोला, "शिकारी बंसी में मछली को गूँथकर-नचाकर जैसे आनन्द मानता है, सम्भवतः इतने दिनों से मुझे लेकर तुम वही मज़ाक कर रही थीं न?"

सावित्री और सहन न कर सकी। बिजली की-सी गति से वह उठ खड़ी हुई, बोली, "बंसी में गूँथकर तुमको ही खींचकर उठाया जा सकता है – नचाकर उठाने लायक बड़ी मछली तुम नहीं हो।"

सतीश ने निष्ठुर भाव से व्यंग्य करके कहा, "नहीं हूँ मैं?"

सावित्री ने कहा, "नहीं हो।" उसके होंठ सिकुड़ गये।

सतीश के चेहरे की तरफ़ तीव्र दृष्टिपात करके वह कहने लगी, “दुश्चरित्र, मेरी तरह एक स्त्री को प्यार करके प्रेम की बड़ाई करने में तुमको लज्जा नहीं मालूम होती? जाओ तुम.... मेरे घर में खड़े होकर झूठमूठ मेरा अपमान मत करो।”

इस अपमान से सतीश और भी निर्दयी हो उठा। इस बार अक्षम्य कुत्सित व्यंग्य करके उसने कहा, “मैं दुश्चरित हूँ! किन्तु जो कुछ भी कहो सावित्री! तुम्हारा नाम तुम्हारे माँ-बाप ने सार्थक रखा था।”

सावित्री हटकर चली गयी, चौखट पकड़कर क्षणकाल स्थिर भाव से खड़ी रहकर बोली, “जाओ!” उसका चेहरा पीला बदरंग हो गया था।

अपमान और क्रोध की असहनीय जलन से उस तरफ़ नज़र तक भी न डालकर सतीश बोला, “किन्तु जाने के पहले एक बार फिर आँचल से पैर पोंछ न दोगी? अथवा और कोई खेल और कोई नाटक।”

एकाएक दोनों की आँखें लड़ गयीं।

सावित्री ने एक कदम आगे बढ़कर कहा, “तुम कसाई से भी निष्ठुर हो – तुम जाओ! तुम जाओ! तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ, न जाओगे तो सिर पटक कर मर जाऊँगी – तुम जाओ।”

उसके कण्ठ-स्वर की उत्तरोत्तर और अस्वाभाविक तीव्रता से अकस्मात सतीश डर गया, फिर एक भी बात न कहकर बाहर चला गया। किन्तु अँधेरे बरामदे में अन्त तक आकर उसे रुक जाना पड़ा। किस तरफ़ सीढ़ी है, किस तरफ़ रास्ता है, अँधेरे में कुछ भी दिखायी नहीं पड़ा था। जेब में हाथ डालकर उसने देखा, दियासलाई नहीं थी। इस निरुपाय अवस्था में पड़कर वह पाँच मिनट चुपचाप खड़ा रहा। फिर उसे सावित्री के कमरे की तरफ़ लौट आना पड़ा। बाहर से उसने देखा, सावित्री फ़र्श पर औंधी पड़ी हुई है, धीरे-धीरे उसने पुकारा, “सावित्री!” सावित्री ने उत्तर नहीं दिया, फिर पुकारने पर उत्तर न मिलने पर सतीश ने कमरे में जाकर सावित्री के माथे पर हाथ रखा। झुककर देखा, आँखें मुँदी हुई हैं और उसके मुँह में उँगली डालकर समझ गया, सावित्री मूर्च्छित हो गयी है। क्षणभर के लिए मन में एक भय और संकोच का उदय हो गया ज़रूर, किन्तु दूसरे क्षण सावित्री का अचेतन शरीर उठाकर बिछौने पर उसने लिटा दिया और चादर का एक हिस्सा गगरी के जल से भिगोकर मुँह पर, आँखों पर छिड़कने लगा। फिर पंखा हाथ में लेकर हवा झलने लगा। दो-तीन मिनट के बाद ही सावित्री ने आँखें खोलकर माथे पर का कपड़ा खींचकर करवट बदलकर कहा, “तुम गये नहीं?”

सतीश चुप रहकर हवा झलने लगा।

सावित्री बिछौने से उठकर चिराग़ हाथ में लेकर बाहर जा खड़ी हुई। बोली, “चलो, चलो तुम्हारे लिए दरवाज़ा खोल आऊँ।”

उसके बाद चुपचाप रास्ता दिखाती हुई वह नीचे उतर गयी और दरवाज़ा खोलकर किनारे खड़ी हो गयी।

मूर्च्छित सावित्री को बिछौने पर ले जकर लिटाने के लिए उसके अचेतन शरीर को जो गोद में लेना पड़ा था, उसी समय से सतीश मानो अन्यमनस्क-सा हो गया था। अब दरवाज़े के पास आते ही वह अपने में आ गया और कोई बात कहने के लिए मुँह ऊँचा उठा ही रहा था कि सावित्री बोल उठी, "नहीं, और एक बात भी नहीं, अपने शरीर को तुमने पहले ही नष्ट कर डाला है किन्तु वह तो किसी दिन जलकर खाक़ भी हो जायगा, किन्तु एक अस्पृश्य कुलटा को प्यार करके भगवान के दिये हुए मन के गाल पर अब स्याही मत पोत देना। या तो, तुम कल ही उस डेरे को छोड़कर चले जाओ या मैं वहाँ अब नहीं जाऊँगी।" इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा न करके सावित्री ने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

नौ

सतीश हतबुद्धि सा हो गया था। क्यों सावित्री अविश्राम आकर्षित करती है और क्यों पास आने पर इस तरह निष्ठुर आघात करके दूर हटा देती है? उस दिन सारी रात बराबर सोचते रहने पर भी, इसका कोई स्पष्ट कारण खोजकर वह न पा सका। पिछली रात की एक बात अब तक उसकी हड्डियों में झनझनाती हुई बज रही थी। इस कारण वह भोर में बाहर निकल पड़ा, और किराये का एक मकान ठीक करके आकर मज़दूर बुलाकर अपना सामान लदवाने लगा। यह काम देखकर बासा के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये। अधिक आश्चर्य में पड़ा बिहारी। उसने पास आकर धीरे-धीरे पूछा, "बाबू क्या घर जा रहे हैं?"

सतीश ने उसके हाथ में पाँच रुपये देकर कहा, "नहीं बिहारी, घर पर नहीं स्कूल के पास ही एक मकान पा गया हूँ, इसलिए जा रहा हूँ।"

बिहारी ने कहा, "किन्तु वह तो अभी तक आयी नहीं है बाबू?"

सतीश ने मुँह ऊपर उठाये बिना ही कहा, "आयी नहीं है? अच्छा तू मेरे बिछौने को बाँध दे, मैं तब तक राखाल बाबू के कमरे से आ रहा हूँ।" यह कह कर बासे का देना-पावना चुका देने के लिए वह राखाल बाबू के कमरे में चला गया। उस कमरे में बहुत से लोग उपस्थित थे। शायद यही आलोचना चल रही थी क्योंकि उसको देखते ही सभी निस्तब्ध हो गये। राखाल ने ज़रा हँसने की चेष्टा करके कहा, "सतीश बाबू, इस तरह अचानक कैसे?"

सतीश ने हाथ के रुपयों को मेज़ के एक किनारे रखकर कहा, "अचानक एक दिन मैं आया भी था, अचानक एक दिन जा रहा हूँ। इन्हीं रुपयों से शायद आपका हिसाब चुकता हो जायेगा, यदि न हो, तो हिसाब हो जाने पर मुझे ख़बरकर दीजियेगा, बाकी रुपये भेज दूँगा।"

राखाल ने कहा, "ख़बर कहाँ दूँगा?"

"मेरे स्कूल के पते से एक कार्ड लिखकर भेज दीजियेगा, मुझे मिल जायेगा।" यह कहकर सतीश और किसी सवाल-जवाब की प्रतीक्षा न करके बाहर चला गया। कमरे के अन्दर एक

दबी हुई हँसी की आवाज़ सतीश के कानों में आ पहुँची। बिहारी निकट ही खड़ा था। कमरे में घुसकर हाथ की छोटी-सी गठरी किवाड़ की आड़ में उतारकर रख देने के बाद राखाल को लक्ष्य करके बोला, "बाबू, मेरा सत्रह दिन का वेतन हिसाब करके दे दीजिये, मुझे इसी दम बाबू के साथ जाना पड़ेगा।"

राखाल ने विस्मित और क्रुद्ध होकर कहा, "तू जायगा, यहाँ काम करेगा कौन? जाऊँगा कह देने से ही तो जाना नहीं होता।"

बिहारी ने कहा, "होगा क्यों नहीं बाबू? मुझे तो जाना ही पड़ेगा।"

राखाल ने अग्नि की तरह जलकर कहा, "जाना पड़ेगा कह देने से ही हो जायेगा? नियमानुसार नोटिस देना चाहिए, मालूम है?"

बिहारी ने कहा, "वह एक दिन समयानुसार आकर दे जाऊँगा। अभी वेतन दे दीजिये, मुझे माल-असबाब जुटाना पड़ेगा।"

राखाल और कुछ न कहकर तूफ़ान की गति से बाहर आया और सतीश के कमरे में घुसते ही बोल उठा, "सतीश बाबू, ये सब कैसे काम हैं?"

सतीश बिछौना बाँधते हुए बोला, "कौन सब?"'

राखाल ने उद्दण्ड भाव से कहा, "नौकरानी नहीं आयी, वह तो पहले ही चली गयी है। देख रहा हूँ, बिहारी को भी ले जाना चाहते हैं, क्यों? अपराध किया आपने, दण्ड हम लोग भोगेंगे?"

सतीश ने कहा, "आपकी बात मेरी समझ में नहीं आयी।"

राखाल ने कण्ठ का स्वर ऊँचा करके कहा, "समझेंगे क्यों? न समझने में ही तो सुविधा है। खुद न जाने से तो आपको निकाल बाहर करना ही पड़ता, लेकिन जो कुछ भी हो, एक सहज शिष्टता का बोध भी क्या नहीं रहना चाहिए?"

सतीश की दोनों आँखें जल उठीं। पास आकर वह बोला, "आप यह सब क्या कह रहे हैं, राखाल बाबू?"

ईर्ष्या की आग राखाल को जला रही थी। बोला, "ठीक कह रहा हूँ, आप भी ठीक समझ रहे हैं! सतीश बाबू, कोई भी बात हम लोगों से छिपी नहीं है। अच्छा, जाइये आप – क्या ही काला साँप मकान में लाया गया था। ऐसे बासे को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

सतीश ने राखाल का एक हाथ थामकर कहा, "आप क्या कह रहे हैं, राखाल बाबू?"

राखाल ज़बरदस्ती अपना हाथ छुड़ाकर गरज उठा, "जाइये, ढोंग मत रचिये। जाइये आप, दूर हट जाइये!"

बिहारी ने कमरे में आकर कहा, "सतीश बाबू, जाने दें उनको, उनका मोह कहाँ है और कहाँ है उनकी जलन, यह बात मैं एक दिन आपको बताऊँगा। मैं सब जानता हूँ। आइये, हम लोग चीज़-सामान ठीक कर डालें।"

राखाल अपने पैरों की आवाज़ से मकान कँपा कर बाहर चला गया। सतीश ने चौकी पर बैठकर कहा, "यह सब क्या है बिहारी?"

बिहारी ने कहा, “मैं आपके साथ जाऊँगा, यहाँ रह न सकूँगा।”

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, “मेरे साथ? यहाँ काम कौन करेगा?”

बिहारी ने अविचलित दृढ़ता के साथ कहा, “जिसकी इच्छा हो वह करे, मैं साथ ही जाऊँगा! नौकर के बिना तो आपका काम चलेगा नहीं।”

इतनी देर में मामला समझ सकने पर सतीश पल भर चुप रहकर बोला, “यह बात पहले कह देने से ही तो ठीक रहता बिहारी।”

बिहारी कुछ नहीं बोला, चुपचाप चीज़-सामान बाँध-बटोरकर मज़दूर के सिर पर उठाने लगा। वह जायेगा ही इसमें और सन्देह नहीं रहा।

सतीश नये बासे पर आकर सोच रहा था, मैं कैसा हो गया हूँ? किस तरह ऐरा-गैरा कोई भी मेरा अपमान करने का साहस करता है। यही नहीं, अपमान करके स्वच्छन्दता से परित्राण पा जाता है, क्यों? मेरी असाधारण शारीरिक शक्ति एक तिल भी कम नहीं हुई है, फिर भी मैं क्यों मुँह ऊपर उठाकर ज़ोर लगाकर बात नहीं कह सकता? क्यों मैं सिर झुकाये ही सब सह लेता हूँ। अपने मन की यह शोचनीय दुर्बलता आज उसको बड़ी चोट पहुँचाने लगी और उससे भी अधिक चोट लगी इस दुःख की कि प्रतिकार करने का सामर्थ्य भी मानोआज उसक हाथ से निकल गया। राखाल की क्रोध भरी भाषा ने उस रात की घटना का ही उल्लेख किया है! इसमें सन्देह मात्र नहीं है कि इसी को याद करके सतीश लज्जा से गड़ गया। विपिन के आदमियों ने उसको किस तरह किस भाव से पकड़ लिया था। अँधेरे कमरे में किस तरह वह डर से मुर्दे की तरह पड़ा हुआ था, वे लोग बुद्धिमान थे और किस तरह सारी चालाकी समझ लेने पर ओढ़ने के अन्दर से उसे खींचकर ले गये थे इत्यादि चित्तग्राही दुर्लभ विवरण का सत्य-मिथ्या के अलंकार-आडम्बर से लपेटकर जो वर्णन किया गया होगा, उपस्थित सब लोगों ने किस प्रकार उत्कट आनन्द, आग्रह और ऊँची हँसी के साथ उसका उपभोग किया होगा, उसका आदि से अन्त तक कल्पना करके उसका चेहरा इतना ज़्यादा मर्मान्तक और वीभत्स हो कर दिखायी पड़ा कि अकेले कमरे के अन्दर भी सतीश का पूरा चेहरा वेदना से विकृत हो उठा। फिर उन्हीं लोगों के सामने ही राखवाल ने उसका अपमान करके विदा कर दिया, वह एक बात भी कह नहीं सका, यह सुनकर सावित्री क्या सोचेगी!

वह कुछ न कहेगी। सब सह लेगी, एक जवाब भी न देगी। उसका आत्मसम्मान- बोध कितना बड़ा है, इसको भी वह जैसे असंदिग्ध भाव से समझ गया था, उसके व्यथित चेहरे की आकृति वह कल्पना में आज स्पष्ट देखने लगा। सतीश ने मन ही मन कहा कि ज़रूर मेरी निर्बुद्धिता से जो आज दुर्घटना हो गयी है असहाय सावित्री को उसके बीच छोड़कर चला आना उचित नहीं हुआ। लेकिन उचित क्या हो सकता था, यह किसी तरह सोचने पर भी वह समझ नहीं सका। लेकिन सावित्री ने क्या खुद ही उसको चले जाने को नहीं कहा? उसने क्या गर्व के साथ ही नहीं सका। लेकिन सावित्री ने क्या खुद ही उसको चले जाने को नहीं कहा? उसने क्या गर्व के साथ ही नहीं कहा, इसमें वह कोई अपमान नहीं

समझती।

बिहारी ने आकर कहा, "बाबू आपके स्नान का समय हो गया है।" आज उसके कण्ठस्वर में विशेष अर्थ था।

सतीश लज्जित होकर झटपट उठा और तौलिया कन्धे पर रखकर स्नान करने चला गया।

हाय रे, जब हृदय चूर-चूर हो रहा था तब भी नित्य के काम में लापरवाही करने का उपाय नहीं था। उस दिन वह स्कूल गया, लेकिन क्लास में न जा सका। बाहर घूम-घूमकर ही बासे पर लौट आया और कमरे में घुसते ही किसी तरह की निराशा से मानो उसका पूरा हृदय परिपूर्ण हो उठा। इस नये कमरे को सजाकर, सरियाकर ठीक-ठाक करने में बिहारी ने खूब परिश्रम किया है, यह बात समझ में आ गयी। लेकिन अपटु हाथ की प्रथम चेष्टा कहीं भी छिपी नहीं है, यह भी उसी तरह दृष्टि में पड़ गयी। बिहारी शरबत ले आया, तम्बाकू चढ़ाकर दिया और दुकान से पान का दोना खरीदकर ले आया। वृद्ध की अनभ्यस्त इन सब सेवाओं की चेष्टा से सतीश मन ही मन हँसने जा रहा था, पर रुलाई आ गयी और उसने नेत्र पोंछ डाले। रात को बिछौने पर लेटकर सतीश सोचने लगा, 'जो कुछ होना था हो गया, इन सब बातों को वह अब मन में भी न लायेगा। लिखने-पढ़ने के लिए वह कलकत्ता आया था। तो इसी को लेकर रहेगा या घर लौट जायेगा। 'लेकिन उस दिन मूर्च्छिता नारी के गरम शरीर के स्पर्श को लेकर वह घर लौट आया था, वह गरमी उसके समस्त संयम की चेष्टा को गलाकर खतम करने लगी। बिहारी मन ही मन सब समझ रहा था, लेकिन सान्त्वना देने का साहस उसको नहीं था। इसी कारण वह उदास चेहरे से चुपचाप दरवाज़े के बाहर बैठा रहा। प्रायः दस बज रहे थे। उसने धीरे-धीरे मुँह बढ़ाकर कहा, "बाबू बत्ती बुझा दूँ?"

सतीश ने कहा, "बुझा दे, लेकिन तू सोयेगा कहाँ बिहारी?"

"मैं यहीं हूँ बाबू! मैंने अपनी चटाई दरवाज़े पर ही बिछा दी है।"

सतीश ने पूछा, "क्या इस मकान में नौकरों के लिए सोने की जगह नहीं है?"

बिहारी ने कहा, "नीचे एक कमरा खाली है, शायद आपको कोई ज़रूरत पड़ जाये इसीलिए यहीं रहूँगा।"

सतीश ने व्यग्र होकर कहा, "यह कैसी बात?" तू वहीं सोने चला जा। बूढ़ा आदमी है, ओस में मत रहो।"

"ओस कहाँ बाबू!" कहकर बिहारी वहीं पर चादर ओढ़कर सो रहा।

कुछ क्षण चुप रहकर सतीश ने पूछा, "रात कितनी हो गयी रे?"

"ज़्यादा नहीं हुई है बाबू, शायद दस बजे हैं।"

सतीश फिर चुप सो रहा। कुछ क्षण बाद मृदु कण्ठ से उसने पूछा, "अच्छा, तू सावित्री का घर जानता है बिहारी?"

बिहारी उठकर बैठ गया। बोला, "जानता तो हूँ बाबू! काफ़ी दिनों तक उसे घर तक

पहुँचा आया हूँ।"

सतीश और कुछ न बोला। बिहारी ने कहा, "एक बार जाकर देख आऊँ क्या?"

इस बार सतीश घबराबर बोल उठा, "नहीं, नहीं, तू जायेगा कहाँ? वह तो बहुत ही दूर है!"

बिहारी ने कहा, "दूर बिल्कुल नहीं है बाबू।

सतीश कुछ सोचने लगा, बोला नहीं।

बिहारी ने धीरे-धीरे कहा, "बाबू, यदि एक घण्टे की छुट्टी दें तो देख आऊँ। सबेरे वह काम पर आयी नहीं थी, शायद बीमार पड़ गयी है।"

फिर भी सतीश कुछ नहीं बोला।

बिहारी मन ही मन घबड़ा उठा। आज सारा दिन वह अपनी आदत के अनुसार बातें नहीं कह सका था, उस पर से कहने के लिए विषय इतने अधिक जमा हो चुके थे कि वह एक बार फिर बोला, "एक नयी जगह में नींद नहीं लग रही है बाबू, फिर एक बार तम्बाकू चढ़ा दूँ?"

वह अन्यमनस्क हो गया था, इसलिए उत्तर नहीं दिया। तो भी बिहारी कुछ देर तक उत्सुक होकर प्रतीक्षा करता रहा, अन्त में वह वहीं सो गया।

दूसरे दिन ठीक वक़्त पर सतीश स्कूल गया। दोपहर को बिहारी सब काम-काज पूरा करके हाल में ही रखे गये पाण्डे महाराज के ऊपर डेरे की देखभाल करने का भार देकर बाहर चला गया, और सत्रह दिन का वेतन वसूल करने के बहाने पुराने डेरे पर जा पहुँचा। फिर भी, उसको यह भय था कि राखाल बाबू, कहीं ऑफिस न गये हों। इसीलिए मकान में घुसते ही नये नौकर से ख़बर जान लेने पर वह निर्भय होकर रसोईघर के सामने चला गया, उसने कण्ठ का स्वर ऊँचा करके कहा, "महाराजजी, प्रणाम!"

महाराजजी गांजा पीकर दीवाल पर ओठंग कर नेत्र बन्द किये ध्यान कर रहे थे। चौंक उठे और बोले, "कल्याण हो!" उसके बाद माथा सीधा करके नेत्र खोलकर बोले, "कौन है, बिहारी, आ बैठ जा।"

बिहारी पास आकर पैरों की धूलि को सिर पर चढ़ाकर बैठ गया। चक्रवर्ती ने अंगोछे की खूँट खोलकर थोड़ा-सा गांजा निकाल बिहारी के हाथ में देकर कहा, "उस मकान में अब रसोई कौन बनाता है?"

बिहारी उठकर चला गया, हथेली में दो-चार बूँद पानी लेकर लौट आया और बोला, "एक गँवार ब्राह्मण! एकदम जानवर है!"

चक्रवर्ती ने खुश होकर सिर हिलाकर कहा, "भगवान उन लोगों को पूँछ देना भूल गये हैं, यही आश्चर्य की बात है। इसके बाद डेरे के नये नौकर को लक्ष्य करके बोले, "हमारे यहाँ कल ही एक भूत को पकड़ लाया गया है, उसकी समझ कैसी है उसको तो भला देखो बिहारी, आज सबेरे एक चिलम निकालकर मैंने उसे दी और कहा – 'तैयार करके लाओ तो भैया! मैंने सोचा इसकी विद्या एक बार देख लेने से ही ठीक होगा। कहने से तू विश्वास

न करेगा बिहारी, उल्लू ने चीज़ को मिट्ट में मिला दिया। पर तुम लोगों को वहाँ कष्ट न होगा। मेरी सावित्री चतुर लड़की है, दो ही दिन में सिखा-पढ़ाकर पक्का बना देगी।"

उसकी अपनी पन्द्रह आना विद्या भी उसी गुरु से सीखी हुई थी। उस बात को दबाकर वह झट बोला, "लेकिन मैं यह भी कहता हूँ, बिहारी, पकड़ बैठने से ही कुछ नहीं होता, भैया बाबू लोगों को खुश करना, उनकी थाली में परोस देना बहुत साधारण विद्या नहीं है। इसमें बभनई का ज़ोर चाहिए, ऐरे-गैरे क्या करेंगे लेकिन मेरा यहाँ काम करना अब हो नहीं सकता, यह तुझे पहले ही कहे देता हूँ, तू कह देना तो भला, मेरा नाम लेकर सावित्री से। वह उसी क्षण कहेगी, जाओ बिहारी, चक्रवर्ती को बुला लाओ, भले ही वह रुपया वेतन अधिक लेगा। सतीश बाबू भी कभी 'नहीं' न कहेंगे। मैं उनका मिजाज जानता हूँ। लेकिन बड़ी बात यह है कि ब्राह्मणस्य ब्राह्मण गति। मैं दो रुपया अधिक पाऊँगा तो वह कुपात्र में नहीं पड़ेगा।" इतना कह कर चक्रवर्ती महाराज हँसने लगे।

बिहारी अवाक होकर बोला, "महाराजजी सावित्री तो वहाँ नहीं है।"

चक्रवर्ती ने अविश्वास की हँसी हँसकर कहा, "अच्छा, नहीं है। तू मेरा नाम लेकर कह देना, उसके बाद जो कुछ होना होगा, मैं देख लूँगा।"

बिहारी बायें हाथ के पदार्थ को दायें हाथ में लेकर बोला, "तुम्हें छू कर शपथ ले रहा हूँ देवता, वह नहीं जाती वहाँ।"

इतनी बड़ी शपथ के बाद चक्रवर्ती फिर सन्देह न कर सके। आश्चर्य में पड़कर कहा, "तू कहता क्या है बिहारी! वह तो यहाँ भी नहीं आती! फिर चौबीसों घण्टे राखाल बाबू बेचारे सतीश बाबू को जो, अच्छा तू जा, एक बार उसको देख तो आ उसके बाद मैं हूँ और राखाल बाबू हैं। मुझे जैसा-तैसा ब्राह्मण मत समझ लेना बिहारी!"

उसके ब्राह्मणत्व में बिहारी की अगाध श्रद्धा थी। उसने चक्रवर्ती के हाथ में चिलम देकर पूछा, "अच्छा, सतीश बाबू ही क्यों चले गये? कहते हैं स्कूल दूर पड़ता है, लेकिन यह बात सही नहीं है।"

चक्रवर्ती ने कहा, "नहीं, इसके अन्दर कोई बात है।" इसके बाद दोनों ने मिलकर चिलम खत्म कर दी। बिहारी उठ पड़ा और उद्विग्न मुख से सावित्री के घर की तरफ़ चला। उसको विश्वास हो गया कि सावित्री बीमार हो गयी है।

सावित्री के घर का सदर दरवाज़ा खुला हुआ था। बिहारी चुपचाप अन्दर चला गया। प्रायः सभी कमरों के दरवाज़े बन्द थे, किरायेदार दिवानिद्रा में पड़े हुए थे। बिहारी धीरे-धीरे सावित्री के कमरे के सामने जाकर वज्राहत की भाँति स्तब्ध हो गया। किवाड़ का एक पल्ला बन्द था। बिहारी ने देखा उसकी आड़ में सावित्री धरती पर चुपचाप बैठी हुई है, और पास ही चौकी पर बिछौने पर विपिन शराब पीकर मतवाला बना हुआ सो रहा है। पाँव की आवाज़ से सावित्री मुँह बढ़ाकर अचानक बिहारी को देखकर एक ही क्षण में मानो बदहवास हो गयी। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सम्भालकर बाहर आकर ज़ोर से हँसकर बोली, "आओ, बिहारी, बैठो।" उसको अपने साथ ले जाकर रसोईघर के बरामदे में उसने चटाई बिछा दी,

और बड़े आदर से बिठाकर खुद पास ही फ़र्श पर बैठकर उसने पूछा, “समाचार सब अच्छा है बिहारी!” बिहारीने सिर हिलाकर बतलाया कि अच्छा है। उसके बाद सावित्री के मुँह से फिर बात नहीं निकली। दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद बिहारी एकाएक उठ जाने को तैयारे होकर बोला, “मैं जा रहा हूँ मुझे बहुत काम करने हैं।”

सावित्री ने पूछा, “अभी ही जाओगे! बैठो न।”

बिहारी ने सिर उठाकर कहा, “नहीं, जा रहा हूँ।”

सावित्री साथ ही साथ सदर दरवाज़े तक जाकर बोली, “हाँ बिहारी, बाबू लोग तो बहुत नाराज़ हो गये हैं!”

बिहारी ने चलते-चलते कहा, “मैं तो जानता नहीं हूँ, हम लोग वहाँ अब नहीं रहते।”

सावित्री ने व्यग्र होकर प्रश्न किया, “नहीं रहते! वह मेस क्या टूट गया है?”

बिहारी ने कहा, “नहीं टूटा तो नहीं है। सिर्फ़ सतीश बाबू उसे छोड़कर चले गये और मैं उनके साथ आया हूँ।”

“तुम लोग क्यों चले गये बिहारी!”

“ये सब बहुत बातें हैं।” कहकर फिर बिहारी चलने को तैयार हुआ तो सावित्री ने दोनों हाथों से उसका हाथ पकड़कर अनुनय के स्वर में कहा, “और एक बार चलकर बैठना पड़ेगा बिहारी।”

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, “नहीं, मुझे समय नहीं है।”

“कल एक बार फिर आओगे, वचन दो।”

बिहारी ने पहले की भाँति कहा, “नहीं, मुझे समय न मिलेगा।”

क्षणभर सावित्री ने उसके चेहरे की ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करके हाथ छोड़ दिया। अभिमान से समस्त छाती को भरकर शान्त भाव से वह बोली, “अच्छा तो जाओ। यह बात उनसे कह देना।”

इस बात से बिहारी को ठेस लगी। उसने मुँह ऊपर उठाकर कहा, “उन्होंने तो तुम्हारे सम्बन्ध में जानना नहीं चाहा।”

“नहीं चाहा।”

“नहीं।”

सावित्री स्थिर भाव से प्रतिघात सहकर रूखे स्वर से बोली, “किसी दिन जान लेना चाहेंगे तो शायद कह दोगे!”

बिहारी ने कहा, “नहीं, मैं औरत नहीं हूँ, मेरे शरीर में दया-माया है।” कहकर और किसी प्रश्न की प्रतीक्षा न करके तेजी से छोटी गली को पार करके वह चला गया।

सावित्री उसी जगह चौखट पर स्तब्ध होकर बैठ गयी। उसके अन्दर-बाहर फिर एक बार आग धधक उठी।

आज वह सबेरे घर में नहीं थी। कालीजी के दर्शन के लिए काली घाट गयी थी। इसी अवकाश में विपिन यार-दोस्तों को साथ लिए शराब पीये मतवाला बना आ गया और मोक्षदा

के हाथ में दो नोट देकर सावित्री के कमरे का ताला खोलकर बिस्तर पर बैठ गया। और शराब मँगाकर घर भर के सभी लोगों को उसने पिलाई, पीकर सभी मतवाले हो गये। इन बातों को सावित्री कुछ भी जानती नहीं थी। दिन में बारह बजे उसने अपने मकान में घुसकर देखा, इस मकान की दो पुरानी किरायेदारिन शराब के नशे में ग़ाली-ग़लौज कर रही हैं, और उसकी मौसी मोक्षदा सामने के बरामदे में पड़ी हुई टूटी-फूटी आवाज़ में मौज से 'विद्या सुन्दर' पद गा रही है। सारे मकान में कहीं फरुही, कहीं उरद का दाना, कहीं बत्तख के अण्डों के छिलके, कहीं मछलियों के कांटे, कहीं केंकड़ों की हड्डी बिखरी पड़ी हैं – पैर रखने तक का स्थान भी नहीं है। मोक्षदा सावित्री को देखते ही अपने ढीले कपड़ों को कमर पर लपेटती उठ खड़ी हुई और उसका गला पकड़कर रोने लगी, "बेटी, ऐसे-ऐसे बाबू जिसके हैं, उसको फिर कष्ट कैसा? उसको फिर दूसरों की नौकरी करनी चाहिए? पर मैं तेरी ग़रीब मौसी हूँ, सावित्री।" उसके मुँह से शराब की गन्ध आ रही थी, गालों पर, माथे पर कपड़ों पर समूचे अंग पर हल्दी के पीले दाग़ पड़े थे, श्वास में कच्ची प्याज़ की तीव्र गन्ध थी। असहनीय घृणा से सावित्री उसको ज़ोर से ढकेलकर बोल पड़ी, "मौसी, तुम शराब पीती हो? तुम भी मतवाली हो रही हो?"

धक्का खाकर मोक्षदा रोना बन्द कर और आँखें लाल कर चिल्लाई, "मतवाली? ज़रूर मतवाली! मुहल्ले के लोगों से जाकर पूछ ले, वे कहेंगे मतवाली है। मेरा भी एक दिन था रे, मेरा भी एक दिन था। मेरा भी एक दिन था जब कि चौबीसों घण्टे शराब में डूबी रहती थी? तू इसका हाल क्या जानेगी, कल की छोकरी है तू"

उनके गर्जन-तर्जन से कुण्ठित होकर सावित्री ने शान्त करने के अभिप्राय से कहा, "लेकिन तुम पीती नहीं हो, आज एकाएक पीने क्यों गयी!"

मोक्षदा ने और भी व्यथित होकर कहा, "एकाएक फिर क्या! मैं एकाएक पीने वाली नहीं हूँ। जाकर पूछ ले अपने बाबू से, जो एक गिलास पीकर औंधा पड़ा हुआ है। अरे, मर जाऊँगी तो भी अपनी मान-मर्यादा न खोऊँगी, "आँचल में दो नोट बाँध दिये हैं, तभी मैंने गिलास पकड़ा है।" यह कहकर गर्व के साथ आँचल को उठाकर कहा, "ज़रा-सा कह देने से ही दौड़कर पी जाऊँगी, वैसी मोक्षदा मैं नहीं हूँ।"

सावित्री ने चौंककर पूछा, "क्या बाबू आ गये हैं!"

मोक्षदा ने कहा, "नहीं तो इतना काण्ड करता कौन! यह भी कहती हूँ, पी लो कह देने से ही क्यों पीऊँगी! मान-इज्जत क्या नहीं है!"

इसके पहले बरामदे के उस किनारे की औरतें आपस में लड़-झगड़ रही थीं, गले की ऊँची आवाज़ सुनकर झगड़े का आभास पाकर वे पास ही आ खड़ी हुई। विधु ने कहा, "अजी, मान-इज्जत हम लोगों की भी है, ताने की बात हम लोग भी समझती हैं। फिर सावित्री तो लड़की की तरह है, उसका बाबू, मेरा हाथ पकड़कर अनुनय करने लगा, इसीलिए पीना पड़ा नहीं तो...।"

उसकी बात पूरी भी नहीं हो पाई कि मोक्षदा गरज उठी, "भले ही हो सावित्री का बाबू।

भले ही हो दामाद। बीस रुपये आँचल में बाँध लिए हैं, तभी हाथ में गिलास छुआ है।"

ये बातें सुनकर सावित्री लज्जा और घृणा से मरती जा रही थी। बोल उठी, "चुप रहो मौसी!"

मोक्षदा ने कहा, "चुप क्यों रहूँगी! जो कुछ कहूँगी सामने ही कहूँगी। सब जानते हैं, साफ़ कहने वाली यदि कोई है, तो वह है मुकी।"

इस बार विधु ने भी कण्ठ का स्वर ऊँचा बनाकर कहा, "साफ़ कहना केवल तू ही जानती है, ऐसी बात नहीं है, हम भी जानती हैं, दामाद से दो नोट लेकर शराब पी गयी हो, तीन पा लेने से न जाने...।"

मोक्षदा उछल पड़ी। बोली, "छोटे मुँह बड़ी बात!" और बोल न सकी। सावित्री ने हाथ से उसका मुँह बन्द कर दिया और ज़बर्दस्ती उसे घसीट कर अपने कमरे में ढकेलकर जंजीर चढ़ा दी। वहीं से मोक्षदा न सुनने योग्य भाषा लगातार बरसाने लगी।

लौट आने पर सावित्री विधु के दोनों हाथ पकड़कर बोली, "मौसी, मुझे क्षमा करो। सब दोष मेरा है।"

उसकी नम्र बातों से शान्त होकर विधु ने कहा, "तेरा दोष क्या है साबी? मोक्षदा को सदा से जानती हूँ, ज़रा सी पी लेने के साथ ही फिर रक्षा नहीं, कमर कसकर झगड़ा करने लगती है, यही उसका स्वभाव है। जा, तू अपने कमरे में जा।" यह कहकर वह चली गयी।

सावित्री काठ की तरह खड़ी रही। रोष और क्षोभ से आत्मघात करने की उसकी इच्छा हो रही थी। सतीश इतना निर्लज्ज हो सकता है, खुले तौर पर दिन दहाड़े ऐसा उन्मत्त आचरण कर सकता है, यह तो वह सपने में भी सोच नहीं सकती थी। इसलिए काल्पनिक नहीं, एक सच्ची वेदना उसके हृदय के अन्दर विशाल तरंग की भाँति लुढ़कती हुई घूमने लगी। उसको मालूम होने लगा मानो उसका प्रियतम अकस्मात उसी के नेत्रों के सामने मर गया, जिसको केवल दो ही दिन पहले वह कड़ी बातों से अपमानित करके विदा करने को बाध्य हुई थी। वही जब कि इतना शीघ्र, इतने सहज भाव से अपने समस्त आत्मसम्मान को विसर्जित करके ऐसा हीन, ऐसा वीभत्स होकर वापस आ गया, तब भरोसा करने का, विश्वास करने का उसको और कुछ भी नहीं रह गया। उसकी दोनों आँखें जलने लगीं लेकिन एक बूँद भी आँसू की नहीं निकली। उसका सर्वस्व, उसका देवता, उसकी कल्पना का स्वर्ग, उसके भ्रष्ट जीवन का ध्रुवतारा, उसका इहकाल परकाल सब कुछ एक ही क्षण में उस इधर-उधर बिखरी हुई गन्दी चीज़ों, जूठन के ढेरों के बीच लोटने लगे। सावित्री स्थिर होकर खड़ी रही, कमरे की तरफ़ जाने के लिए किसी तरह भी उसके पैर नहीं उठे। उसे याद पड़ गया कि अभी उस दिन रात को उसको छूकर सतीश ने शपथ ली थी। आज ही इतनी जल्दी जब कि सब भूलकर मतवाला बनकर उसके बिछौने पर पड़ा हुआ है तब उसके मुँह की तरफ़ वह और देखेगी कैसे?

उसी समय नीचे मकान मालकिन के कण्ठ की आवाज़ सुनायी पड़ी। वह भी आज मकान में नहीं थीं। आते ही एक के मुँह से मोक्षदा और विधु का विवरण उसके साथ ही

और जो कुछ भी रहा सब सुन लेने पर क्रोध के साथ ऊपर चढ़ रही थीं, कि एकाएक सामने जूठे काँटे देखकर स्थिर होकर खड़ी हो गयी। हाल में प्रयाग से सिर मुड़ा आने के बाद से उनके आचार-विचार का अन्त नहीं था। सावित्री को उस अवस्था में देखकर वह बोलीं, "साबी, तुझे तो मैं अच्छी लड़की ही जानती थी – यह सब कैसा अनर्थ का काम है, बता तो बच्ची!"

सावित्री ने संक्षेप में कहा, "मैं घर में नहीं थी।"

मकान मालकिन ने कहा, "इस समय तो तू है। अब सफाई करे कौन? मैं? नहीं बच्ची, मेरे मकान में यह सब दुराचार नहीं चलेगा। अपने-अपने कमरे में बैठकर जिसकी जो इच्छा हो करो, मैं कहने न जाऊँगी। लेकिन बाहर बैठाकर यह सब काण्ड नहीं होगा। मैं इस पर से पैर रखकर चलूँगी, छूआछूत करके जाति जन्म बिगाड़ूँगी, यह मैं न कर सकूँगी।" यह कहकर वह दीवाल से सट-सटकर लाँघ-लाँघकर किसी तरह अपने उस तरफ़ के कमरे में चली गयीं। सावित्री फिर खड़ी नहीं रही, जूठन साफ़ कर सारी जगह धो-पोंछकर फिर स्नान करके आ गयी, और एक सूखे कपड़े के लिए कमरे में चली गयी। अन्दर जाकर बिछौने की तरफ़ देखते ही वह भय से, आश्चर्य से चिल्ला उठी, "माँ रे, यह तो विपिन बाबू हैं!"

शराबी गहरी नींद में डूबा हुआ था। वह जागा नहीं। बाहर का कोई यह आवाज़ सुन नहीं सका। सावित्री दो कदम पीछे हट आयी, उसका सारा शरीर काँपने लगा और माथे में हठात मूर्च्छा का लक्षण अनुभव करके दरवाज़े की आड़ में माथा रखकर निर्जीव की भाँति बैठ गयी।

कुछ देर बाद उसकी वह दशा बीत ज़रूर गयी लेकिन सिर ऊपर उठाकर सीधी होकर वह बैठ न सकी। इसके पहले जिस क्षोभ से, जिस दुःख से उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा था, जिसके निर्लज्ज आचरण की लज्जा से उसको मर जाने की इच्छा हो रही थी वह लज्जा सच नहीं है। यह सतीश नहीं है, दूसरा ही है, यह आँखों से देख लेने पर भी उसका वह क्षोभ, वह दुःख मानो तिल मात्र भी डिगा नहीं वरन छाती और भारी हो गयी, हृदय में मानो और अन्धकार हो उठा। बिछौने की ओर वह फिर देख न सकी। उसकी दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे।

हाय रे स्त्री का प्रेम! इतने दुःख में, इसी बीच किस समय गुप्त रूप से चुपचाप सतीश के सब अपराध उसने क्षमा कर दिये थे, उसकी सेवा करने के लिए स्वस्थ बना देने की प्यास से वह आर्त हो उठी थी और उसको देखने, उसके बातचीत करने की असह्य क्षुधा से उन्मत्त हो उठी थी – इसकी ख़बर शायद उसके अन्तर्यामी को भी नहीं लगती थी, अब उस ओर की समस्त आशाओं के एकाएक झूठ में विलीन हो जाने के साथ ही उसका अस्तित्व ही मानो दिशाविहीन शून्यता के बीच डूब गया। ठीक उसी समय उसके द्वार के बाहर बिहारी आकर खड़ा हो गया।

दस

सतीश के दिल में एक अग्निशिखा दिन-रात जलने लगी, इस बात को उसका मन अस्वीकार न कर सका। उस आग से जलता हुआ उसका इतना बड़ा सबल शरीर भी निस्तेज होता जा रहा है इसका स्पष्ट अनुभव करके वह उद्विग्न हो उठा। बिहारी को बुलाकर कहा, "माल-असबाब एक बार फिर बाँधना पड़ेगा, आज शाम की ट्रेन से घर जाना चाहता हूँ।"

बिहारी ने पूछा, "गाँव के घर या पछाँह के घर पर?"

"पछाँह के घर पर।" कहकर सतीश ज़रूरी चीज़-सामान खरीदने का रुपया उसके हाथ में देकर स्कूल चला गया।

बिहारी के आनन्द की सीमा ही नहीं थी। उसका मकान मेदिनीपुर जिले में है, पश्चिम का मुँह उसने आज तक देखा नहीं था। उस पश्चिम की ओर आज रवाना होना पड़ेगा। उसी क्षण शोरगुल मचाकर बाँधना-छानना शुरू किया। पाण्डे ने आकर भोजन के लिए बुलाया। बिहारी ने हँसकर कहा, "महाराज जी, तुम नहाओ, खाओ। मेरा खाना एक तरफ़ ढककर रख दो, यदि समय मिला तो देखा जायेगा, अभी तो मुझे मरने की भी फ़ुरसत नहीं है।" पाण्डेजी पहले वाली बात समझकर चले गये। बाद वाली बात समझ नहीं सके और समझने का प्रयत्न भी नहीं किया।

हाथ का काम सम्पन्न करके बिहारी बाहर चला गया। बाज़ार जाना है। इसके अलावा बासा के चक्रवर्ती को समाचार देना है। सावित्री से घृणा हो गयी थी, आज उसे मन में जगह नहीं दिया।

आज सबेरे से ही सतीश के सिर में दर्द होने लगा था। दिन में बारह बजे के बाद विधिवत ज्वर लेकर वह लौट आया। बिहारी मकान में नहीं था। वह दिन के तीन बजे के लगभग एक बोझ चीज़ें सिर पर लिए आकर बिल्कुल ही बैठ गया। इन दिनों प्रायः चारों तरफ़ बीमारी फैल रही थी। यह बात याद करके सतीश भी डर गया। दूसरे दिन ज्वर और दर्द दोनों ही बढ़ गये। संध्या के बाद सतीश ने चिन्तित मुँह से बिहारी से कहा, "ज्वर यदि शीघ्र न छोड़े तो तू अकेला सेवा कर सकेगा न?"

बिहारी ने डबडबाये हुए नेत्रों से कहा, "भय क्या है बाबू?"

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला, "एक बार उसको – यही सोच रहा हूँ बिहारी, एक बार सावित्री को ख़बर देना ठीक नहीं होगा? शायद डाक्टर भी बुलाना पड़े।"

किसी कारण से भी सावित्री को बुलाने की ज़रा भी इच्छा बिहारी की नहीं थी। लेकिन मन के भाव को रोककर उसने मृदु स्वर में कहा, "अच्छा, जा रहा हूँ।"

उसी समय सतीश उन्मुख हो गया। उसके ज्वर की वेदना मानो आप ही आप घट गयी। दो घण्टे के बाद बिहारी के अकेले लौट आने पर सतीश भय के साथ ताकता रह गया।

बिहारी ने कहा, "वह घर पर नहीं है बाबू।"

"घर पर नहीं है! उस डेरे पर एक बार जाकर देख आ।"

बिहारी ने कहा, "उस डेरे पर वह अब नहीं जाती। तीन-चार दिन से घर भी नहीं जाती,

कहाँ चली गयी किसी को नहीं मालूम।"

"उसकी मौसी को भी नहीं मालूम?"

"नहीं, उसको भी बताकर नहीं गयी।"

सतीश चुप हो रहा। बिहारी किसी तरह आँसू पीकर बाहर आ खड़ा हुआ। सावित्री का जो इतिहास वह उसकी मौसी से सुन आया था, किसी प्रकार वह समाचार आज इस रोगी आदमी के सामने न कह सका।

अगले दिन डाक्टर आकर दवा दे गये। सतीश ने दवा की शीशी हाथ में लेकर खिड़की के पास बाहर फेंक दी। यह देखकर बिहारी फिर एक बार आँसू रोककर सावित्री की खोज में चला। मोक्षदा रसोई बना रही थी, बिहारी ने पूछा, "क्या आज भी वह नहीं आयी?"

मोक्षदा ने कहा, "कितनी बार बताऊँ कि वह नहीं आयेगी। जब बुरे दिन थे तब थी मौसी, अब तो उसके अच्छे दिन हैं।"

डेरे पर वापस आकर बिहारी ने बताया, "आज भी सावित्री लौटकर नहीं आयी।"

दो दिन के बाद दवा न लेने पर भी सतीश का बुख़ार उतर गया। वह भात खाकर स्वस्थ होकर उठ बैठा। बिहारी से कहा, "अब नहीं, आज ही रवाना होना होगा।"

उसी दिन सतीश कलकत्ता से चला गया।

ग्यारह

सतीश के दुर्बल रूखे-सूखे मुख की तरफ़ देखकर उपेन्द्र बोला, "भैया का डाक्टरी सीखने का नमूना यही है क्या?"

सतीश ने हँसकर कहा, "मुझसे हो नहीं सका, उपेन भैया!"

उपेन्द्र ने विस्मित होकर पूछा, "क्या न हो सका रे?"

सतीश ने लज्जित होकर कहा, "डाक्टरी मुझसे सही नहीं गयी।"

उपेन्द्र ने सतीश के सुन्दर शरीर की ओर देखकर कहा "अच्छा ही हुआ। गाँव-देहात में जाकर बेकार जीवहत्या करता, उसके पाप से ईश्वर ने तुझे बचा लिया।"

एक महीने के बाद एक दिन उपेन्द्र ने सतीश को बुलाकर कहा, "मेरे साथ कलकत्ता चलना होगा सतीश।"

सतीश हाथ जोड़कर बोला, "यह हुक्म तो तुम मत दो उपेन भैया। कलकत्ता अच्छा शहर है, सुन्दर देश है, सब अच्छा है, लेकिन मुझे जाने के लिए न कहो।"

यह बात सतीश ने व्यंग्य के ही रूप में कही थी, लेकिन उसका वह छल उस की दबी हुई व्यथा को छिपा न रख सका। उसकी कृत्रिम हँसी वेदना की विकृति से ऐसी ही रूपान्तरित होकर दिखायी पड़ी कि उपेन्द्र आश्चर्य में पड़कर उसके मुख की ओर देखते रह गये। उन्होंने जान लिया कि सतीश ज़रूर वहाँ कोई ऐसा काम कर आया है जिसको वह उनसे छिपा रहा है। कुछ देर बार उन्होंने कहा, "तो रहने दे सतीश। तेरा स्वास्थ्य भी

ठीक नहीं है, मैं अकेला ही जा रहा हूँ!"

उपेन्द्र के मन का भाव अनुमान से जानकर सतीश ने व्यथित होकर पूछा, "तुम कब जाओगे उपेन भैया?"

"आज ही।"

"अच्छा, चलो मैं भी चलूँ।" कहकर हठात राजी होकर सतीश घर लौट आया और क्षणभर में ही कलकत्ता जाने के लिए अधीर हो उठा। उसने बिहारी से कहा, "एक बार फिर बण्डल बाँध दे बिहारी, कलकत्ता जाना होगा।"

बिहारी ने चिन्तित मुख से पूछा, "कब जाओगे बाबू?"

सतीश ने हँसकर कहा, "आज ही रात की ट्रेन से।

"अच्छा!" कह बिहारी मुँह भारी बनाकर चल दिया।

सतीश ने उसका बिगड़ा चेहरा देखकर सोचा, "बिहारी को यहाँ तो काम-काज नहीं है, इसलिए मेहनत के डर से वहाँ जाना नहीं चाहता।" लेकिन अन्तर्यामी जानते हैं कि वृद्ध के मन की बात वह बिल्कुल समझ नहीं सका था।

इसके एक दिन पहले सतीश ने बात ही बात में बिहारी से कहा था, "अच्छा बिहारी, इतने दिनों में सावित्री तो अवश्य ही लौट आयी होगी, लेकिन उसी समय वह कहाँ चली गयी थी, तुझे मालूम है?"

बिहारी ने कहा, "नहीं बाबू!" चाहता तो वह बहुत-सी बातें कह सकता था, लेकिन एक दिन सावित्री के मुँह पर अपने पुरुषत्व का गर्व दिखा आया था, किसी तरह भी उस गर्व को न गँवा सका।

जिस दिन कलकत्ता से घर वापस आकर सतीश ने अपने कमरे में घुसते ही हाथ जोड़कर भावुक कण्ठ से कहा था, "भगवान, जो कुछ करते हो, तुम भला ही करते हो!" उस दिन सृष्टिकर्ता के विशेष कार्य को याद करके उसने इतना बड़ा धन्यवाद उच्चारण किया था, पूछने से वह शायद बता नहीं सकता। फिर भी कितने बड़े संकट के मुँह से वह वापस आ सका है, कितने बड़े अभेद्य जाल के फाँस को छिन्न-भिन्न करके वह बाहर आकर खड़ा हो सका है, इसको वह निश्चित रूप से जानता था और इस सौभाग्य को उसने कृतज्ञता के साथ ग्रहण करना चाहा था, लेकिन उसके अन्तरशायी अबोध मन ने उस तरफ़ दृष्टिपात तक भी नहीं किया, वह तो औंधा पड़ा हुआ दिन-रात एक ही तरह रोता हुआ समय बिता रहा था। फिर भी चेष्टा करके वह पहले की ही तरह अपने लड़कपन के इष्ट-मित्र, थियेटर, गाने-बजाने के अड्डे आदि में शामिल हो रहा था, लेकिन किसी तरह भी पहले की तरह मिल-जुल न सका। इसी तरह दिन बिताते रहने के बीच ही हठात आज कलकत्ता जाने का आह्वान सुनते ही उसकी विद्रोही गृहलक्ष्मी धूलि शय्या छोड़कर उठ बैठी। भविष्य के अच्छे-बुरे की ओर बिना ध्यान दिये यात्रा की ओर कदम बढ़ा दिये।

उसी रात को उपेन्द्र और सतीश मेल ट्रेन से सेकेण्ड क्लास में कलकत्ता चल दिये।

सीटी बजाकर गाड़ी चल पड़ी। उपेन्द्र सो गये और सतीश खिड़की के बाहर झाँकता

रहा।

मेल ट्रेन छोटे स्टेशनों पर नहीं रुकती। मैदान, नदी, गाँव-रास्तों को पार करती हुई दौड़ती चली जा रही है और उसकी उस तेज़ दौड़ का अनुकरण कर के ही शायद पास के पेड़-पौधे पल भर में अदृश्य होते जा रहे हैं। दिगंत में वृक्ष श्रेणियों और बाँस झाड़ियों ने अँधेरा कर रखा है और उसके ही नीचे नदी के टेढ़े-मेढ़े भाग में सफ़ेद जल-रेखा खिड़की के नीले काँच के भीतर से दिखायी पड़ रही है। बाहर वृक्षों, खेतों और लाइन के किनारे के जंगलों और सूखे गड्ढों में सर्वत्रम्लान चाँदनी बिखरी हुई है। सतीश की आँखों में आँसू आ गये। इस रास्ते से वह कितनी ही बार आया है, इस निस्तब्ध शान्त प्रकृति को कितनी ही बार वह म्लान चाँदनी के प्रकाश में देख गया है, लेकिन किसी दिन इस तरह वे उसकी दृष्टि मे पकड़ी नहीं गयी थीं। उसे जान पड़ा मानो सभी विच्छिन्न हैं, निर्लिप्त हैं, मृत हैं। कोई भी किसी के लिए व्याकुल नहीं है, कोई भी किसी का मुँह देखता हुआ प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। सभी स्थिर हैं, सभी उद्वेग-रहित हैं, सभी आप ही आप सम्पूर्ण हैं। उस निर्विकार उदासीन धरती की तरफ़ देखने में उसे क्लेश-सा मालूम होने लगा। वह अपनी आँखें पोंछकर बेंच पर लेट गया। कुछ देर बाद बक्स खोलकर एक बाँसुरी निकालकर उपेन्द्र को लक्ष्य करके धीरे-से कहा – "गाड़ी के शोर से जब तुम्हें परेशानी नहीं होती तब बाँसुरी की आवाज़ से भी नहीं होगी। मैं तो सो नहीं पाता।" कहने के पश्चात वह पास आकर बैठ गया और बाहर की तरफ़ झाँककर बाँसुरी बजाने लगा।

उपेन्द्र की ओर से कोई जवाब नहीं मिला। भगवान ने सतीश को गाने के लिए गला और बजाने के लिए हाथ दिये हैं। इस ओर से वे कृपण नहीं रहे। बचपन से ही वह इसकी शिक्षा प्राप्त करता रहा। सतीश बाँसुरी बजाता रहा। इस अनिर्वचनयी संगीत को सुननेवाला कोई नहीं था। बाहर खण्डित चन्द्रमा उसका अनुसरण कर दौड़ रहा था। मिट्टी पर सुप्त ज्योत्सना की नींद टूट गयी। गाड़ी की गति जब धीमी पड़ गयी और समझ में आया कि स्टेशन नजदीक आ गया है, तब उसने बाँसुरी रख दी।

अगले दिन गाड़ी हावड़ा जाकर रुकी तो उपेन्द्र ने पूछा, "तू कहाँ जायेगा रे?"

सतीश ने विस्मित होकर कहा, "यह कैसी बात! तुम्हारे साथ।"

"तेरे जाने के लिए जगह नहीं है?'

"तुम तो खूब रहे!"

इस सम्बन्ध में फिर कोई बात नहीं हुई।

स्टेशन पर उतरते ही एक विलायती पोशाक पहने बंगाली साहब ने उपेन्द्र से हाथ मिलाया। ये उपेन्द्र के बाल्य-मित्र ज्योतिषराय बैरिस्टर थे। तार पाकर लेने आये थे। उनकी गाड़ी बाहर खड़ी थी। थोड़ी-बहुत जो भी चीज़ें साथ थीं, कुली ने उन्हें गाड़ी पर रख दिया। फिर तीनों ही अन्दर जा बैठे। बिहारी कोच बक्स पर बैठा। कोचवान ने गाड़ी चला दी। बहुत से रास्तों और गलियों को पार करके एक बड़े मकान के सामने आकर गाड़ी रुक गयी। तीनों उतर गये।

बारह

शाम होने में अब देर नहीं थी। उपेन्द्र और सतीश पाथुरियाघाट में एक तंग गली के मोड़ पर जा खड़े हुए।

उपेन्द्र ने कहा, "मैं समझता हूँ, अवश्य यही गली है।"

सतीश ने सन्देह प्रकट किया, इस गली में वह रह नहीं सकता, यह कदापि नहीं है।

टूटी दीवाल पर वह जो टीन खड़ा हुआ है, सम्भव है कि इसी पर किसी दिन गली का नाम लिखा हुआ था, वह अब पढ़ा नहीं जाता। सतीश बोला, "अच्छी तरह जाने बिना जाया नहीं जा सकता। यह गली पाताल प्रवेश की सुरंग हो सकती है।"

उपेन्द्र हँसते हुए बोले, "तो तू पहरेदार बनकर रह, मैं अन्दर जाकर देख आता हूँ।"

सतीश ने पहले बाधा देने की चेष्टा की, बाद को उपेन्द्र के पीछे चलते-चलते बोला, "उपेन भैया, मेरी तरह डाकू आदमी भी इन सब जगहों में शाम के बाद आने का साहस नहीं करते, तुम्हारा साहस तो खूब है!"

उपेन्द्र हँसकर बोले, "बम्बबाजों का साहस भले आदमी के साहस से अधिक होता है सतीश? दुष्कर्म कर सकने को ही साहस नहीं कहते।"

सतीश उस बात का प्रतिवाद न करके अत्यन्त सावधानी से रास्ता देख-देखकर चलने लगा। पैरों के नीचे ही दुर्गन्ध कीचड़ से भरा खुला पनाला था, क्षीण दृष्टि वाले सतीश के उसमें गिर जाने की पूरी आशंका थी। एक जगह पर छोटी गली बहुत ही तंग और अँधेरी हो गयी थी। सतीश ने पीछे से उपेन्द्र के कुरते का खूंट खींचकर पकड़ लिया और कहा, "उपेन भैया, करते क्या हो, इसी रात को जान देना है क्या?"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "इतनी देर में मुझे ठीक याद आ गया। और एक मकान के बाद ही तेरह नम्बर का मकान है। लगभग आठ साल पहले केवल एक दिन मैं यहाँ आया था, इसीलिए पहले मैं पहचान न सका। अब पहचान गया। ज़रूर यही रास्ता है।"

सतीश ने विश्वास नहीं किया। कहा, "रास्ता तो है ज़रूर, लेकिन तुम्हारे-हमारे लिए नहीं। जिन लोगों के लिए विशेष रूप से इस पथ की सृष्टि है, उनमें से किसी के साथ शरीर छू गया तो इस रात को स्नान करके मरना पड़ेगा, इस वक़्त चलो, लौट चलें।"

उपेन्द्र जवाब न देकर सतीश का हाथ पकड़कर खींचते हुए ले गये और कुछ दूर आगे जाकर एक मकान के सामने खड़े होकर बोले, "तू सिगरेट पीता है, तेरी जेब में दियासलाई होगी। एक बार जलाकर देख, यह कितने नम्बर का मकान है!"

सतीश ने माचिस जलाकर अच्छी तरह मकान का नम्बर जाँचकर कहा, अच्छी तरह पढ़ा नहीं गया, किन्तु चौखट के ऊपर खड़िया से 13 नं. लिखा हुआ है। शायद तुम्हारी बात ही ठीक है। किन्तु मैं पूछता हूँ, मकान नम्बर तेरह हो या तिरपन, यहाँ तुमको ज़रूरत ही क्या हो सकती है?"

उपेन्द्र उत्तर न देकर पुकारने लगे, "हारान भैया! ए हारान भैया!"

ऊपर, नीचे, निकट, दूरी पर सर्वत्र अँधेरा था, शब्दमात्र नहीं था। सतीश डर गया। उपेन्द्र फिर पुकारने लगे।

बहुत देर में ऊपर की खिड़की खुली और साथ ही स्त्री-कण्ठ से आवाज़ आई, "कौन है?"

उपेन्द्र ने कहा, "दरवाज़ा खोलने को कह दें, हारान भैया कहाँ हैं?"

"आती हूँ, ज़रा ठहरिये।"

पलभर के बाद दरवाज़ा खुलने की आवाज़ के साथ ही क्षीण प्रकाश की रेखा रास्ते के ऊपर आ पड़ी। उपेन्द्र दरवाज़ा ठेलकर चौखट पर खड़े होकर स्तम्भित हो गये। वह स्त्री मिट्टी के तेल की डिबिया हाथ में लिए निकट ही खड़ी है। माथे पर थोड़े से आँचल के बीच से जूड़े का एक हिस्सा दिखायी दे रहा था। उसका एक भी केश स्थान-भ्रष्ट नहीं हुआ है। स्वच्छ सुन्दर मुँह पर दीप का प्रकाश पड़ जाने से दोनों भौंहों के बीच एक बिन्दी जगमगा उठी और ज़रा-सी झुकी इुई दोनों आँखों में से जो विद्युत प्रवाह बह चला, चारों ओर के निविड़ अन्धकार में उसकी अपूर्व ज्योति ने क्षणकाल के लिए दोनों को ही विभ्रान्त कर दिया। सतीश ने स्पष्ट देख लिया कि होंठों पर हँसी की रेखा बाधा पाकर बार-बार आकर लौट रही है। उसने उपेन्द्र के शरीर को ठेल लिया। उपेन्द्र चौंक पड़े, घबराहट के साथ बोल उठे, "कहाँ हैं हारान भैया?"

उस स्त्री ने कहा, "वह ऊपर ही हैं। पैदल चलने में असमर्थ हैं। माँ भी आज सात-आठ दिनों से खाट पर पड़ी हुई हैं। घर में केवल मैं ही ठीक हूँ। आप उपेन्द्र बाबू ही तो हैं? हम लोगों को अगामी कल आपके आने की आशा थी इसीलिए तैयार न थी। रसोईघर में रहने पर इस तरफ़ की आवाज़ सुनायी नहीं पड़ती, बहुत पुकारना-चिल्लाना पड़ता है। ऊपर आइये, यहाँ बड़ी सर्दी है।" कहकर रास्ता दिखाकर ऊपर जाने की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। दो-तीन कदम ऊपर चढ़कर मुँह घुमाकर हाथ की बत्ती को नीचे करके वह बोली, "सावधानी से चढ़ियेगा, सीढ़ियों की ईंटें बहुत-सी खिसक गयी हैं।"

इनकी यह आशंका निर्मूल नहीं है यह बात सीढ़ी देखने के साथ ही वे जान गये। इसीलिए बड़ी सावधानी से दोनों चढ़ने लगे। दो मंजिला पक्का मकान था। पहले ऊपर के हिस्से में पाँच-छः कमरे थे, उन में से दो-तीन गिर गये थे, एक अगली वर्षा में गिरने को तैयार था, बाकी तीनों में से सामने वाले कमरे में तीनों ने प्रवेश किया। प्रवेश करने के साथ ही समझ में आ गया कि अत्यन्त अनाधिकार प्रवेश हो गया है। चूहे उस कमरे में फटे-पुराने तोशक-तकियों से रूई निकालकर कमरे में सर्वत्र बिखेरकर इच्छानुसार विचरण कर रहे थे। असमय में प्रकाश हो जाने और जनसमागम से वे दौड़-धूप मचाकर चिल्लाहट के साथ छिपने लगे। कमरे में सर्वत्र टूटी हुई मेज़-कुर्सियाँ, काठ के पिटारे, टूटे हुए टीन, खाली शीशी-बोतल और अन्य कितने ही पुराने जमाने की गृह-सामग्री के टूटे अंश बिखरे हुए थे। उसमें एक किनारे पर चौकी पड़ी हुई थी। फटी गद्दी, फटी पोशाक, फटे तकिये वगैरह जमा करके ज़बर्दस्ती एक तरफ़ ठेलकर रख छोड़े गये थे, उसके ही एक हिस्से में

एक चटाई बिछी हई थी। यह कमरा मेहमानों के लिए था।

उस स्त्री ने फ़र्श पर चिराग रखकर कहा, "ज़रा प्रतिक्षा करें, मैं ख़बर देती हूँ।" यह कहकर वह ज्यों ही कमरे से बाहर गयी, त्यों ही सतीश जूता पहने मेहमानों के उस आसन पर उछलकर खड़ा हो गया।

उपेन्द्र भय के साथ बोले, "यह क्या! यह क्या किया!"

सतीश तड़पकर बोला, "पहले प्राण रक्षा करूँ उसके बाद भद्रता की रक्षा होगी। देख नहीं रहे हैं, पैरों के पास उजाला देखकर कमरे के सब साँप-बिच्छू दौड़े चले आ रहे हैं।"

सतीश ने जिस तरह भय दिखाया, उसके विचार-तर्क का अवसर नहीं रहा। उपेन्द्र भी उछलकर चढ़ गये।

चौकी की उस तंग जगह में स्थानाभाव के कारण दोनों जब धक्कम-धक्का कर रहे थे तभी वह स्त्री लौट आयी और किवाड़ के सामने खड़ी होकर खिलखिलाकर हँस पड़ी। इनके डर जाने की बात वह समझ गयी थी। बोली, "यह है मेरे ससुर की डीह। आप लोग इस तरह अपमान कर रहे हैं?"

उपेन्द्र सकुचाकर तुरन्त उतर पड़े और सतीश पर नाराज़ होकर बड़बड़ाने लगे, "इसी ने भय दिखाया ऐसे ही.... ।"

सतीश उतरा नहीं। विनय दिखाकर बोला, "भय क्या दिखाता हूँ उपेन भैया! मेरी विद्या चाणक्य के श्लोकों से अधिक नहीं है। इतना ज़रूर सीख चुका हूँ कि आत्मरक्षा अति श्रेष्ठ धर्म है।"

उस स्त्री की ओर देखकर वह बोला, "अच्छा आप ही बताइये तो, आत्मरक्षा के निमित्त थोड़ा-सा निरापद स्थान खोज लेना क्या अन्याय है? आपके ससुर के डीह का अपमान करने का हमारा साहस नहीं है, बल्कि यथेष्ट सम्मान के साथ ही आपके आश्रित प्रजापुंज की राह छोड़कर इतनी थोड़ी-सी जगह में हम लोग खड़े हैं।"

तीनों हँस पड़े। इस परिहास ने दरिद्र लक्ष्मी को कुण्ठित नहीं किया, बल्कि इसके अन्दर जो सरलता और संवेदना छिपी थी, वह युवती अति सहज भाव से ही उसे समझ गयी, इसका स्पष्ट प्रकाश उसके हास्योज्जवल मुख पर देख कर उपेन्द्र ने मन ही मन अत्यन्त आराम अनुभव किया। उसके मुँह की तरफ़ देखकर मुसकुराकर बोले, "प्रजाजन आपके सामने कभी उसके ऊपर अत्याचार करने का साहस न करेंगे। अब वह आदमी नीचे उतर आ सकता है।"

"ज़रूर!" कहकर चिराग़ हाथ में उठाकर वधू सतीश की ओर देखकर मधुर हँसी हँसकर बोली, "अब निर्भयता के साथ राज-दर्शन के लिए चाहिए।"

थोड़े से हास-परिहास से, अपरिचित होने की दूरी जैसे एकदम घट गयी और तीनों प्रफुल्ल मुँह से कमरे से बाहर चले गये।

राजदर्शनेच्छु उपेन्द्र और सतीश हँसी से भरे चेहरे से एक कमरे में घुसते ही अवाक होकर खड़े हो गये। क्रुद्ध गुरूजी का अचानक ही थप्पड़ खाकर हास्यनिरत शिशु छात्र का

मनोभाव जिस तरह बदल जाता है, इन दोनों आदमियों के मुँह की हँसी भी उसी तरह एक क्षण में ग़ायब हो गयी और चेहरे पर स्याही फैल गयी।

लांछित भाव दूर होते ही उपेन्द्र ने बिछौने के पास जाकर पुकारा, "हारान भैया!"

हारान निर्जीव की भाँति पड़े हुए थे, वह धीरे से बोले, "आओ, भाई आओ! अब मैं उठ-बैठ नहीं सकता, तुमको मैंने कष्ट दिया।" इतना कहकर वे हाँफने लगे।

उपेन्द्र धप से बिछौने के एक तरफ़ बैठ गये। उनके दोनों नेत्र आँसू से भर गये और समूची छाती से पसली तक को हिलाकर, एक अदस्य वाष्पोच्छ्वास उन के कण्ठ की अन्तिम सीमा तक व्याप्त हो गया। बात कहने का उन्होंने साहस नहीं किया। दाँतों पर दाँत दबा खड़े होकर बैठे रहे। उधर सतीश एक बड़े काठ के सन्दूक पर सूखे चेहरे से बैठ गया।

सैंकड़ों जगह से कटी-फटी खटिया के सिरहाने एक मिट्टी का चिराग़ टिमटिमा रहा था। अन्य कोई रोशनी नहीं है। इतना ही प्रकाश रक्तशून्य विवर्ण शीतल चेहरे पर लेकर हारान का मृतप्राय शरीर पड़ा हुआ था। सूर्य की रोशनी, आकाश की वायु से हमेशा के लिए विच्छिन्न होकर इस गृह की अस्थिमज्जा में जो जीर्णता और अन्धकार लालित और पुष्ट हो रहा है, वह इस कड़ाके की सर्दी में, अत्यन्त क्षीण प्रकाश में, कुष्ठ रोगी की तरह समस्त दीवालों पर प्रकट हो रहा है। दिन-रात बन्द रहने वाले घर की दूषित अवरुद्ध वायु, आत्महत्याकारी के मुँह से निकलने वाले जहरीले फेन की तरह निकलकर मानो गृहवासी की कण्ठ-नली प्रतिक्षण रुँधती चली आ रही थी। दरवाज़े पर मृत्युदूत का पहरा पड़ रहा था। चारों तरफ़ देख-देखकर सतीश बार-बार सिहर उठा। उसे मालूम होने लगा कि यदि वह चिल्लाकर दौड़कर बिल्कुल रास्ते पर भाग न जायेगा तो जान न बचेगी। यहाँ किसी आदमी का जीवन बचेगा कैसे? निकट ही वह खड़ी थी, उसी तरफ़ एक बार देखते ही वह डर गया। कहाँ चला गया वह अतुलनीय रूप! कहाँ वह हँसी! उसकी दृष्टि के सामने मानो किसी एक प्रेतलोक की पिशाचिनी उठ आयी। वह सोचने लगा, जिसके पति की ऐसी दशा है वह हँसती है कैसे, हँसी-मजाक़ में भाग कैसे लेती है, जूड़ा क्यों बाँधती है, बाल क्यों सँवारती है और बिन्दी क्यों लगाती है? पलभर के लिए उसके सामने समस्त नारी जाति के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी।

ऐसे ही समय में हारान ने पुकारा, "किरण, उपेन आया है, यह बात माँ जानती हैं?"

वधू निकट आकर झुक पड़ी और धीरे-धीरे बोली, "माँ सो रही हैं, डाक्टर कह गये हैं, सो जाने पर जगाया न जाये।"

हारान ने मुँह बनाकर कहा, "चूल्हे में जाय वह डाक्टर, तुम जाओ, उनको बता दो।"

उपेन्द्र पास ही बैठे सब कुछ सुन रहे थे। वह बोल उठे, "आज रात को ख़बर देने की ज़रूरत नहीं है हारान भैया! कल सबेरे ख़बर देने से ही काम चल जायेगा।"

उपेन्द्र समझ गये कि रोग के कष्ट भोगते रहने से हारान बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। इसलिए इस निरपराधिनी सेवापरायण वधू का अकारण ही तिरस्कार होने से व्यथा अनुभव कर ज़रा-सी सान्त्वना इंगित करने के लिए एक बार उन्होंने मुँह की तरफ़ ध्यान से देखा।

लेकिन कुछ भी दिखायी नहीं दिया। किरणमयी के झुके हुए मुँह पर दीपक का प्रकाश नहीं पड़ रहा था।

कुछ देर यों ही रहकर दूसरे ही क्षण तेजी से वह बाहर चली गयी।

उपेन्द्र उदास-चित्त बैठे रहे, और हारान पहले की तरह हाँफने लगे। निस्तब्ध कमरा सतीश के लिए और भी भीषण हो उठा। थोड़ी ही देर बाद हारान ने हाथ बढ़ाकर उपेन्द्र को छूकर पास आने का इशारा करके अति क्षीण कण्ठ से पूछा, "सात-आठ वर्ष बाद मुलाकात हुई है। इस बीच क्या एक बार भी तुम्हारा यहाँ आना नहीं हुआ?"

इसी बीच उपेन्द्र को अनेक बार इस तरफ़ आना पड़ा था, लेकिन उसको वह स्वीकार न कर सके। बोले, "क्या बीमारी है हारान भैया?"

हारान ने कहा, "ज्वर-खाँसी आदि। इस समय उस प्रसंग को उठाने की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ खत्म हो चुका है।"

उधर सन्दूक़ पर बैठा उपेन्द्र मन ही मन सिर हिलाने लगा।

हारान ने फिर कहा, "मुझे भी तुम्हारी बात याद नहीं पड़ी, ठीक समय पर याद पड़ने से शायद काम बनता।"

पलभर चुप रहकर खुद ही बोले, "काम और क्या बनता, ख़ैर छोड़ो इन सब बातों को। एक काम करो भाई, मेरा दो हज़ार रुपये का जीवन बीमा है, और यह टूटा-फूटा मकान। तुम ठहरे वकील, एक लिखा-पढ़ी कर दो जिससे कि सभी चीज़ों पर तुम्हारा ही पूरा हाथ रहे। इसके बाद रह गये तुम और मेरी बुढ़िया माँ।"

उपेन्द्र ने कहा, "और तुम्हारी स्त्री?"

"मेरी स्त्री किरण? हाँ, वह तो है ही। उसके माँ-बाप कोई भी जीवित नहीं हैं, उसको भी तुम देखना।"

उपेन्द्र निर्निमेष दृष्टि से इस मुमुर्षु की ओर देखते हुए कुछ सोचने लगे।

सतीश जेब से घड़ी निकालकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "उपेन्द्र भैया, रात के दस बज गये, वहाँ वे लोग शायद घबरा रहे हैं।"

हारान ने ध्यान से देखते हुए कहा, "यह कौन हैं उपेन?"

"मेरे मित्र हैं, मेरे साथ ही कलकत्ता आये हैं। अब मैं जा रहा हूँ, हारान भैया, कल फिर आऊँगा।"

"नहीं, कल नहीं, एमदम काग़ज़ तैयार करके परसों आना। जो कुछ मेरे पास है, और जो कुछ मुझे कहना है, उसी दिन कर दूँगा, यहाँ कहाँ ठहरे हो?"

"शहर ही में एक जगह अपने मित्र के घर ठहरा हुआ हूँ।"

जाने को तैयार होने पर हारान ने पुकारा, "किरण!"

उपेन्द्र ने तुरन्त रोककर कहा, "हारान भैया, सतीश की जेब में दियासलाई है, आराम से उतरकर जा सकूँगा। वह शायद काम में लगी हुई हैं।"

उसके जवाब में हारान ने क्या कहा, समझ में नहीं आया।

सतीश ने ज्योंही किवाड़ खोले, त्योंही मालूम हुआ मानो कोई तेज़ कदमों से हट गया। वह डरकर पीछे खड़ा हो गया।

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या हुआ सतीश?"

"कुछ नहीं, तुम आओ।" कहकर वह उपेन्द्र का हाथ पकड़कर बाहर आ खड़ा हुआ। कैसा निविड़ अन्धकार था। एक तो कृष्णपक्ष की रात और दूसरी ओर ऊँचे-ऊँचे मकानों ने अँधेरे को ढकेलकर आँगन में ला रखा है। इस टूटे मकान को अँधेरे ने घेर लिया है। दोनों ने टटोलते हुए सीढ़ियों के निकट आते ही देखा, नीचे चिराग़ लिए किरणमयी स्थिर होकर बैठी हुई है। इनके आने के साथ ही वह उठ खड़ी हुई, बोली, "चिराग़ दिखा रही हूँ, सावधानी से उतर आइये। आप लोगों के लिए ही मैं बैठी हुई हूँ।"

इस अँधेरी ठण्डी रात में, इस प्रचण्ड जाड़े में, सील से भरी भींगी धरती पर एकाकिनी वधू को अपनी प्रतीक्षा में बैठी देखकर और आसन्न वैधव्य की बात याद करके उपेन्द्र के नेत्रों में जल भर आया।

सदर दरवाज़ा तब भी बन्द नहीं हुआ था। नीचे उतरते ही सतीश बिल्कुल ही गली में आकर खड़ा हुआ, लेकिन उपेन्द्र पीछे से बाधा पाकर घूमकर खड़े हो गये।

किरणमयी अपने सकरुण तीव्र दोनों नेत्र उनके मुँह पर रखकर एक विशेष रुख बनाये खड़ी है। पल भर के लिए उपेन्द्र हतबुद्धि की भाँति स्थिर हो रहे।

किरण ने पूछा, "उपेन बाबू, आप हमारे कौन हैं?"

इस अद्भुत प्रश्न का क्या उत्तर होना चाहिए उपेन्द्र समझ न सके। उसने फिर समझाकर कहा, "आप मेरे पति के कोई आत्मीय हैं? इतने दिनों से मैं इस मकान में आयी हूँ लेकिन किसी दिन आपका नाम उनसे सुना नहीं, माँ से भी नहीं सुना। केवल जिस दिन आपको पत्र लिखा गया, उस दिन सुना – इसीलिए पूछ रही हूँ।"

बाहर से सतीश ने पुकारा, "उपेन भैया, आओ न!"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं, आत्मीय नहीं हूँ – लेकिन विशिष्ट मित्र हूँ। बाबूजी जब नोआखली में थे, तब हारान भैया के पिता भी सरकारी स्कूल में मास्टरी करते थे, मुझे भी घर पर पढ़ाते थे, हारान भैया और मैं दोनों साथ-साथ बहुत दिन पढ़ते रहे।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "ओह यह बात है? इसी के लिए लिखा-पढ़ी करना? उपेन बाबू, आप सब कुछ अपने नाम लिख लेंगे न?"

यह देखकर सतीश ने मुँह बढ़ा दिया था, उसने झट ही जवाब दे दिया, "ऐसी ही बात तो पक्की हुई है।"

हारान के कमरे से बाहर निकलते समय कौन तेज़ी से बाहर चली गयी थी, इस बात को वह पहले ही समझ गया था।

वधू ने उसकी तरफ़ घूमकर कहा, "अच्छा तो आप भी हैं! अच्छी बात है! इतने दिनों तक इतने कष्ट उठाकर जैसे भी हो, दो वक्त दो मुट्ठी अन्न जुट जाता था – अब राह में खड़ी रहने की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा ही हो, आप लोग ही सब बँटवारा कर लें।"

उपेन्द्र आश्चर्यचकित हो गये।

सतीश ने उत्तर दिया, “जिसकी चीज़ है, यदि वही दे जाये तो किसी को कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है।”

किरणमयी के दोनों नेत्र आग की तरह जल उठे। बोली, “मुझे है। मरने के समय मनुष्य की मति बिगड़ जाती है, मेरे पति को यही हुआ है। लेकिन आप लोग लिखकर लेने वाले होते कौन हैं?”

सतीश बोल उठा, “यह तो मैं नहीं जानता लेकिन हारान बाबू में आज भी बुद्धि है इस बात की सम्मति मेरी आत्मा दे रही है।”

किरणमयी ने विद्रूप के स्वर में उत्तर दिया, “बड़ा अच्छा सुझाव है! लोग बात-बात में कहा करते हैं – जाने दीजिये लोगों की बात, उपेन्द्र को लक्ष्य करके वह बोली, “लेकिन यह बात मैं पूछती हूँ, मैं कैसे जानूँगी कि अन्तिम समय में वह राह की भिखारिनी न बना देंगे, कैसे विश्वास करूँगी वह धोखा नहीं देंगे।”

इतना बड़ा आघात उपेन्द्र को मानो असह्य मालूम हुआ। कुछ कहने भी जा रहे थे, लेकिन न कहकर अपने को सम्भाल लिया।

सतीश ने कहा, “भाभी? जानने की आवश्यकता आपको नहीं है।”

किरणमयी भी उसी दम उत्तर ने दे सकी। इस व्यंग्यात्मक आत्मीय सम्बोधन स्पर्धा से वह अवाक हो गयी थी। पलभर देखती रहने पर केवल बोली, “भाभी। आवश्यकता नहीं है।”

सतीश ने कहा, “नहीं। अगर आप अपना अधिकार आप ही नष्ट न करतीं तो हारान बाबू को इस सतर्कता की आवश्यकता नहीं थी। इतनी रात को बेकार झगड़ा न कीजिये, ज़रा समझकर विचार कीजिये तो।”

तेज कार्बोलिक की गन्ध से जैसे साँप अपने उठाये हुए फन को पलभर में सम्भालकर आघात के बदले में आत्मरक्षा का उपाय खोजने लगता है, यह निरुपमा, यह लीला, कौशलमयी तेजस्विनी पलभर में उसी प्रकार से कुपित होकर बोली, “मेरे विषय में कैसी बात उन्होंने कहीं हैं, सुनूँ तो?”

उपेन्द्र से अब चुप न रहा गया। इस गर्विता नारी का संदिग्ध तिरस्कार उनको उत्तप्त शूल की तरह बिंधते रहने पर भी उनका उच्च शिक्षित भद्र अन्तःकरण सतीश की इस जासूसी के विरुद्ध विद्रोह कर उठा। वह अनुचित उत्तेजना से कुछ गुप्त रहस्य खींच निकालने की चेष्टा कर रहा थ, इसको वह समझ गये थे। सतीश को बाधा देकर उन्होंने किरणमयी से कहा, “क्यों आप सतीश के पागलपन पर ध्यान देकर अपने आपको उद्विग्न कर रही हैं! पति का सम्पत्ति से वंचित करने का अधिकार किसी को नहीं है। आप निश्चिन्त रहिये! मैं तो समझता हूँ, आपको विशेष सुविधा होगी, यह समझकर ही हारान भैया ने लिखा-पढ़ी की बात उठाई है। लेकिन आपकी राय के बिना तो वह किसी तरह भी न हो सकेगी। रात बहुत हो गयी है। किवाड़ बन्द कर दीजिये। चल, सतीश, अब देर मत कर।” सतीश को ठेलकर गली में खड़े होकर मुसकराकर वे बोले, “कल-परसों फिर भेंट होगी –

अच्छा, नमस्कार।”

तेरह

उस सुनसान गली से निकलकर दोनों एक किराये की गाड़ी पर चढ़ गये और खुली खिड़की से रास्ते में मन्दीभूत जनस्रोत की ओर चुपचाप देखते रहे। बातें करने योग्य मन की अवस्था किसी की नहीं थी। उपेन्द्र व्यथित चित्त से सोचने लगे, ‘कल ही घर लौट जाऊँगा। भला हो, बुरा हो, मुझे हाथ डालने की आवश्यकता नहीं है। केवल लौट जाने के पहले यही देखता जाऊँगा कि हारान भैया की चिकित्सा हो रही है – उसके बाद? उसके बाद और कुछ भी नहीं – आठ साल जो आदमी मन के बाहर पड़ा हुआ था, वह बाहर ही पड़ा रहेगा।” यह सोचकर शरीर पर लगे कीड़े-मकोड़ों की तरह इस विरक्तिकर चिन्ता को शरीर से झाड़-फेंककर उपेन्द्र गाड़ी में ही हर बार हिल-डुलकर बैठ गये। सतीश को पुकारकर बोले, “एक चुरुट दे तो, बहुत सर्दी है।”

सतीश ने जेब से चुरुट निकालकर दी और वैसे ही बाहर की तरफ़ देखता रहा, कोई बात उसने नहीं कही।

उपेन्द्र चुरुट सुलगाकर धुआँ उड़ाते हुए सतीश को सुनाकर बोले, “अन्दर का अन्धकार इसी तरह धुएँ की तरह बाहर निकल जाना चाहिए।”

सतीश ने हुंकारी तक भी नहीं भरी।

धड़धड़ाती हुई किराये की गाड़ी परिचित-अपरिचित रास्तों, गलियों, घरों और दुकानों को पार करती हुई चलने लगी। चुरुट जल गया, उसका धुआँ कहाँ आकाश में विलीन हो गया तब भी दोनों रास्ते के दानों तरफ़ वैसे ही चुपचाप ताकते रहे। उपेन्द्र ने मन ही मन सोचा, ‘सतीश अवश्य ही ये सब लेकर सोच रहा है, और जो भी हो, कुछ-न-कुछ निश्चय कर रहा है, नहीं तो वह इतनी देर तक चुप रहने वाला आदमी नहीं है’ और उसका आलोच्य विषय क्या है यह अनुमान करने पर उपेन्द्र को आदि से अन्त तक सब ही स्मरण हो गया। छिपे तौर से सिहर उठने पर वह मन ही मन बोले – क्या कुछ घटना घट गयी और जो घटना हो गयी है, वह कितनी ही शोचनीय क्यों न हो सभी का एक सही कारण उन्होंने इस बीच अनुमान कर लिया, लेकिन सतीश क्या सोचकर इस असहाया, अपरिचिता के साथ झगड़ा करने को तैयार हो गया था, इसी को वह किसी तरह समझ न सके। घर की बहू अपने ऊपर तत्काल आने वाली विपत्ति की आशंका से केवल आत्मरक्षा के निमित्त दो कड़ी बातें कह सकती है, ऐसी सीधी-सी बात भी सतीश समझ न सका, इसी को वह विश्वास करने में असमर्थ हो रहे थे। सतीश पढ़ा-लिखा आदमी भले ही न हो, नासमझ तो नहीं है। उपेन्द्र इस बात को जानते थे इसीलिए उन्होंने इतना अधिक दुःख अनुभव किया। हारान के वसीयतनामे के प्रस्ताव में एक विशेषता रहने के कारण ही उपेन्द्र थोड़े से समय में ही बहुत सी बातें सोच चुके थे। बाल्य-सखा के मृतप्राय शरीर के पास ही बैठकर उन्होंने सोच

लिया था कि इन अनाथा दोनों रमणियों का आजीवन भरण-पोषण और रक्षणवेक्षण करूँगा। किसी स्वास्थ्यकर तीर्थस्थान में एक छोटा-सा मकान खरीद लूँगा। वह पेड़-पौधों से, भले और भद्र पड़ोसियों से शान्त तथा सुदृढ़ भाव से घिरा रहेगा। गृहपालित गाय-बछड़ों की सेवा करके, अतिथियों, ब्राह्मणों की पूजा करके, शुद्ध व्रतों का पालन करके इन दोनों स्त्रियों के दिन जिस प्रकार बीतने लगेंगे, इसका काल्पनिक चित्र कल्पना में मधुर हो उठा था। इस चित्र के एक तरफ़ पेड़-पौधों की आड़ में सभी ज़रूरी चीज़ों के पीछे अपने लिए थोड़ा-सा स्थान भी शायद अपनी गैर जानकारी में ही चिह्नित करने का प्रयास कर रहे थे, उसी समय किरणमयी के भद्दे अभियोग, संशयक्षुब्ध क्रुद्ध व्यवहार ने बवण्डर की तरह उस चित्र तक को भी लुप्त कर दिया! उपेन्द्र फिर चुप न रह सके। पुकारकर बोले, "सतीश, तू क्या सोच रहा है?"

सतीश बाहर की ओर से दृष्टि हटाकर उपेन्द्र की ओर देखते हुए बोला, "क्या सोचता हूँ जानते हो उपेन भैया, लड़कपन में एक बंगला उपन्यास पढ़ा था, उसी को सोच रहा हूँ।"

उपेन्द्र ने पूछा, "कौन-सा उपन्यास?"

सतीश ने कहा, "नाम याद नहीं है। लेखक का नाम भी ठीक याद नहीं है। लेकिन वह कहानी मुझे याद है – ऐसी ही सुन्दर है।"

उपेन्द्र उत्सुक होकर उसकी तरफ़ देखते रहे।

सतीश ने शिकायत के स्वर में कहा, "चिरकाल तक अंग्रेजी पढ़कर ही तुमने दिन बिताये उपने भैया। किसी दिन बँगला की तरफ़ तुमने देखा नहीं। लेकिन हमारे देश में ऐसी-ऐसी पुस्तकें हैं कि एक बार पढ़ने से ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।" इतना कहकर वह एक लम्बी साँस लेकर चुप हो गया।

उपेन्द्र ने विरक्त होकर कहा, "पहले उपन्यास की कहानी कहो तो सुनूँ, उसके बाद देखा जायेगा कि कितना ज्ञान उत्पन्न होता है।"

सतीश हँसकर बोला, "पहले वचन दो गुस्सा तो न होगे।"

"नहीं, तू कह।"

सतीश ने कहा, "बहत ही सुन्दर कहानी है। उस किताब में लिखा है एक धनी जमींदार नाव पर बैठकर कहीं जा रहे थे। एक दिन संध्या को एकाएक बादल घिर आने पर भयंकर आँधी-वर्षा शुरू हुई। वे तो डर के मारे उतरकर किनारे चले गये। सामने एक बहुत टूटा-फूटा मकान था, वर्षा के भय से उसी में घुस पड़े। उस मकान के सभी कमरों में अँधेरा था – कहीं भी कोई आदमी नहीं था। मकान में सब जगह घूम-घूमकर अन्त में ऊपर के एक कमरे में उन्होंने देखा, टिमटिमाता हुआ चिराग़ जल रहा है और फटे बिछौने पर एक आदमी मरणासन्न पड़ा हुआ है और उसकी पद्य पलासी, रूपवती स्त्री लोट-पोट कर रो रही है। उस रात को उसने कोई एक भयानक सपना देखा था। अच्छा उपेन भैया, क्या तुम सपने में विश्वास करते हो?"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं। उसके बाद!"

सतीश ने कहा, "उसके बाद उसी रात को वह आदमी चल बसा। जमींदार साहब ने उस सुन्दरी विधवा को अपने घर लाकर उससे बलपूर्वक विवाह कर लिया। चारों तरफ़ छिः! छिः! होने लगी और उस दुःख से उनकी पहली स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर डाली।"

बार-बार पद्यपलाशाक्षी का ज़िक्र होने से उपेन्द्र समझ गये कि सतीश विषवृक्ष का पंकोद्धार कर रहा है ओर सतीश की इस अद्भुत स्मृति-शक्ति के परिचय से किसी दूसरे समय शायद वह खूब हँसते। लेकिन इस समय हँसी नहीं आयी। इस इधर-उधर बिखरे हुए आख्यान के भीतर से एक इंगित तीर की तरह आकर उनकी छाती में बिंध गया। उन्होंने मन में सोचा-यह तो सतीश की स्मृति नहीं है, यह उनकी आशंका है। यह आशंका क्या है, और जिसको आश्रय करके 'विषवृक्ष' की डाल-पत्तियों को तोड़कर उन्हें अपने ही सांचे में इसने गढ़ डाला है, उसी बात को याद करके उपेन्द्र गम्भीर लज्जा से सिकुड़ गये।

सतीश ने अँधेरे में यह नहीं देखा कि पलभर के लिए उपेन्द्र का मुख पीला पड़ गया है। सतीश व्यथा पर व्यथा पहुँचाकर फिर बोला, "तालाब-खोदकर घड़ियाल मत बुलाओ उपेन भैया!"

उपेन्द्र उत्तर न दे सके। बहुत देर बाद बोले, "बंगला उपन्यास की बात छोड़ो। लेकिन कैसा उपदेश तुम देना चाहते हो, सुनूँ तो?"

सतीश हँसकर बोला, "यही देखो उपेन भैया, तुम गुस्सा हो गये। तुमको मैं उपदेश नहीं दे सकता – लेकिन पाँव पकड़कर अनुरोध कर सकता हूँ। वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं है, वे अच्छे आदमी नहीं हैं।"

"कौन हैं वे लोग, सुनूँ तो?"

सतीश ने कहा, "तुम गुस्सा मत होना उपेन भैया, बहुवचन का प्रयोग तो भद्रता मात्र है। मैं हारान बाबू की बात नहीं कहता – वह भले-बुरे के बाहर चले गये हैं। उनकी माँ को भी मैंने आँखों से देखा नहीं है। मैंने तीसरे व्यक्ति का ज़िक्र किया है।"

"तीसरे व्यक्ति का अपराध? देखो सतीश, तुम्हारे बाबूजी अगर किसी दूसरे आदमी को अपना सर्वस्व लिख देने का संकल्प कर लें, तो शायद तुम खुशी न मनाओगे?"

"नहीं, तुम आशीर्वाद दो उपेन भैया, बाबूजी को उसकी आवश्यकता ही न पड़े। वह मुझे अपना भला लड़का कहकर खुशी नहीं मानते यह मैं जानता हूँ। मैं उनका खराब लड़का हूँ, लेकिन यह ख़राब उनकी मृत्यु के समय में सजावट-श्रृंगार करके माथे पर बिन्दी लगाकर घूमता न फिरेगा। आज मेरी वाचालता को तुम क्षमा करो उपेन भैया, लेकिन तुम्हारी ज़रा भी आँख रहती तो तुम देख पाते, हारान बाबू का ऐसा प्रस्ताव केवल मन का ख़्याल ही नहीं हैं बल्कि अनेक दिनों की अनेक चिन्ताओं का फल है।"

सतीश ने फिर कहा, "तुम यह ख़्याल मत करना कि हारान बाबू तुमको समस्त भार सौंप देते समय अपनी स्त्री की ही बात भूल गये थे, या लज्जा से कहने में असमर्थ हो रहे थे। बल्कि, मुझे विश्वास है, तुम यदि स्वयं ही उल्लेख न करते तो वह स्वेच्छा से कोई

बात न कहते।"

उपेन्द्र मन ही मन विरक्त होते रहने पर भी इतनी देर तक मौन होकर सुन रहे थे, लेकिन पर-स्त्री के सम्बन्ध में यह सब संदिग्ध इंगित उनको असह्य हो उठा। वह कठोर स्वर में बोल उठे, "सतीश, तुम इतने नीच हो गये हो, यह मेरी धारणा नहीं थी, शायद तुम आलाप-परिचय के नीचे उतर गये हो।"

सतीश हँस पड़ा। बोला, "नीच कैसे? बुरे को बुरा कहता हूँ इसलिए?"

"भला हो या बुरा हो, इस तरह बोलने का तुम्हारा क्या अधिकार है?"

"अधिकार? वह है अंग्रेजी ढाँचे की बात, बंगला में उसका अर्थ नहीं होता। हमारे समाज में इतना सूक्ष्म विचार नहीं चलता। जेलखाने के कैदी को चोर कहने में भी बहुत लोग आपत्ति करते हैं, लेकिन उस बात को तो साधारण पाँच आदमी मानकर नहीं चल सकते।"

"यह दूसरी बात है। चोरी साबित हो जाने पर उसको चोर कहते हैं, चारे जेल में जाता है, लेकिन इनके बारे में तुमको क्या सबूत मिला है?"

"सबूत न मिलने पर भी बहुत से लोग जेल में जाते हैं, वह है जज साहब के हाथ में। हम लोग जिस बात को समझ नहीं सकते वे उसको समझ जाते हैं। फिर हम जिसको जेल की भाँति स्वच्छ देखते हैं – इतने बड़े जज साहब के सामने वह पहाड़-पर्वत-सा हो सकता है! आज तुम्हारे सम्बन्ध में भी यह बात लागू होती है। कुछ ख़्याल मत करना उपेन भैया, इतनी बड़ी दुनिया को आँखों के सामने रखकर भी बहुत से लोगों को ईश्वर का प्रमाण खोजने से नहीं मिलता। मैं जानता हूँ कि तुम नाराज़ होगे क्योंकि सदा से ही तुम भलों के साथ मिल-जुलकर, भला देखकर, भले ही बने हुए हो, लेकिन मेरी तरह बुरे-भले को देखकर यदि तुम पक्के हो गये होते, तो तुम्हें इतनी बातें कहने की आवश्यकता न पड़ती। तुम्हारी अपनी ही आँखों में बहुत-सी चीज़ें पकड़ में आ जातीं!"

उपेन्द्र पलभर चुप रहकर बोले, "सभी चीज़ों के आँखों में पड़ने की आवश्यकता मुझे नहीं है लेकिन पक्का हो जाने के लिए तेरी ही तरह नीच भी मैं न बन सकूँगा। तू इस प्रसंग को बन्द कर दे। गाड़ी फाटक के भीतर प्रवेश कर रही है। लेकिन एक बात तू याद रख सतीश, कच्चे का दाम क्या है, उसको केवल, तभी समझ सकेगा जब कि तू और भी पक्का हो जायगा।"

अगले दिन उपेन्द्र को उठने में देर हो गयी। बहुत देर पहले सूर्योदय हो चुका है, यह खिड़की के सूराख से आने वाली किरणों से ही समझ में आ गया। उपेन्द्र व्यस्त हो उठे। सतीश कमरे में नहीं था। वह कहाँ चला गया? बाहर बिहारी खड़ा था, आकर उसने ख़बर दी, सतीश बाबू सामने के बग़ीचे में कुश्ती लड़ रहे हैं और नीचे चाय दी जा चुकी है, वहाँ साहब वगैरह आपकी प्रतीक्षा में हैं।"

उपेन्द्र चटपट तैयार होकर ज्यों ही नीचे उतर पड़े ज्योतिष त्योंही हाथ पकड़कर चाय की मेज़ पर उनको ले गया। वहाँ उनकी बहन सरोजिनी प्रतीक्षा कर रही थीं। वह अखबार फेंककर हँसते हुए मुख से बोलीं, "कल रात को दस बजे तक हम आप लोगों की बाट देखते

रहे। अन्त में मँझले भैया ने कहा – अवश्य ही कोई निर्दय मित्र रास्ते से पकड़कर ले गये हैं और आप लोग शायद रात को लौट ही न सकेंगे। लौटने में कल कितनी रात हो गयी थी उपेन बाबू?"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "बारह। विशेष काम से आबद्ध हो जाने से मैंने सबको कष्ट दिया है।"

ज्योतिष ने कहा, "इसे हम लोग समझते हैं। हमने यह ख़्याल नहीं किया था कि तुम लोग झूठमूठ राह में घूमते हुए चक्कर काट रहे होगे। सतीश बाबू कहाँ चले गये?"

बिहारी ने आकर निवेदन किया, "सतीश बाबू बगीचे के उस तरफ़ कुश्ती लड़ रहे हैं और उनको ख़बर दे दी गयी है।"

बिहारी के चले जाने पर ज्योतिष की तरफ़ देखकर बोले, "कुश्ती क्या जी! और भी कोई है क्या?"

उपेन्द्र ने कहा, "मैं जानता तो नहीं। कुश्ती शायद नहीं, लड़कपन से व्यायाम करने की आदत है, वही कर रहा है शायद।"

सरोजिनी कल दोपहर के समय म्यूजियम देखने गयी थी। संध्या के बाद घर लौटने पर उन्होंने सुना कि उपेन्द्र और उनके मित्र आ गये हैं। लेकिन उस समय व लोग पाथुरिया घाट चले गये थे। उन्होंने पूछा, "सतीश बाबू कौन हैं उपेन बाबू? मैंने तो देखा नहीं।"

"कल जिस समय हम लोग आये आप मौजूद नहीं थीं। सतीश मेरा बचपन का मित्र है, यद्यपि आयु में बहुत छोटा है यह – लो, आ तो गया।"

सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। क्या ही सुन्दर भरा-पूरा शरीर है। माथे पर तब भी बूँद-बूँद पसीना चमक रहा था, सुन्दर गोल चेहरे पर लाल आभा पड़कर और सुन्दर दिखायी पड़ रहा था।

सरोजिनी ने पलभर देखकर ही आँखें झुका लीं।

ज्योतिष ने कहा, "बिहारी कह रहा था, आप कुश्ती लड़ रहे थे। लेकिन कुश्ती ही लड़ें या जो कुछ भी करें, आपके शरीर की तरफ़ देखने से ईर्ष्या होती है, हम लोगों की तरह चार-पाँच आदमी भी शायद आपके पास तक पहुँच नहीं सकते।"

सतीश तनिक हँसकर बोला, "बिना परीक्षा के इतना बड़ा सर्टिफिकेट मत दीजिये। इसके सिवा केवल शरीर का बल लेकर ही क्या होगा, मेरे पास और कोई ताकत ही नहीं।"

बात के अन्तिम अंश में दुःख का आभास दिखायी पड़ा। सरोजिनी ने चाय डालते-डालते मन ही मन अनुमान किया कि सतीश बाबू की सांसारिक अवस्था शायद अच्छी नहीं है। ज्योतिष पहले ही उपेन्द्र से सुन चुके थे। वह चुप ही रहे। इसके बीच चाय की कटोरियाँ परिपूर्ण हो उठीं। सतीश उस तरफ़ नजर तक न डालकर, दीवाल पर टँगे एक चित्र की तरफ़ ताकता रहा।

ज्योतिष ने कहा, "आइये, सतीश बाबू, सब कुछ तैयार है।"

सतीश वहाँ से चला आया, तनिक हँसकर बोला, "आप लोग शुरू कर दें, मैं बिना स्नान

किये कुछ भी नहीं खाता-पीता!"

"विलक्षण! मैं तो यह बात नहीं जानता था। तो जाइये, अब देर मत कीजियेगा – बेहरा...!"

'नहीं-नहीं आप घबराइये मत! मेरा स्नान यथासमय ही होगा, इसके अलावा प्रातः काल खाने-पीने की मेरी आदत नहीं है। मध्याह्न का भोजन मेरा साधारण पाँच आदमियों से कुछ अधिक है, उसको असमय में चाय आदि बेकार की चीज़ें खा-पीकर मैं नष्ट कर देना पसन्द नहीं करता। इससे तो अच्छा है कि मैं उस हारमोनियम को खोलकर दो भजन ही गाऊँ। आप लोगों के दोनों ही काम चलें।

भजन गाने के प्रस्ताव से सरोजिनी अत्यन्त प्रफुल्ल हो उठीं। सिर उठाकर वह एकाएक बोल उठी, "अच्छा।" लेकिन दूसरे ही क्षण घबराकर उसने मुँह झुका लिया। वह बात उसके अपने ही कानों में कैसी सुनायी पड़ी। ज्योतिष हँसकर बोले, "मेरी बहिन गाना पा जाने से और कुछ भी नहीं चाहती। नहीं, नहीं, सतीश बाबू, आप कुछ...।"

उपेन्द्र इतनी देर से चुप रहकर मन ही मन कुढ़ते जा रहे थे, बोल उठे, "नहीं, नहीं, फिर क्या? वह स्नान किये बिना खाता-पीता नहीं, सबेरे कुछ भी नहीं खाता। हम लोग लगातार कोशिश-पैरवी करते रहें और इधर चाय की कटोरियाँ ठण्डी हो जायें। ले सतीश, तुझे क्या भजन-वजन करना है, कर ले, मुझे और भी काम है।" कहकर चाय की कटोरी उन्होंने मुँह से लगा ली।

ज्योतिष मन ही मन सन्तोष अनुभव कर मुस्कराने लगा।

सतीश दूर एक कुर्सी पर बैठ गया। इसके बाद उसमें गाने का उत्साह नहीं रहा।

सरोजिनी उदास होकर मुँह झुकाये चाय पिलाने लगी।

उपेन्द्र चाय पीते-पीते बोले, "इसके कारण कहीं चैन नहीं। दुनिया से बाहर उसका स्वभाव है, एक-न-एक उलझन पैदा कर ही देता है। उसने सबेरे ही गाना गाने के बदले बाँसुरी बजाने का सुझाव नहीं रखा, यही सौभाग्य है।"

किसी को इस बात में सत्य का आभास तनिक भी नहीं मालूम हुआ, सभी व्यंग्य समझकर हँसने लगे। तब तक चाय भी चलने लगी। वह कमरे के चित्रों को घूम-घूमकर देखने लगा।

संध्या के बाद एक समय सरोजिनी ने धीरे-धीरे उपेन्द्र से कहा, "आपने गाना सुनने नहीं दिया। आपका यह भारी अन्याय है।"

उपेन्द्र बोले, "अच्छा, इस समय उसका प्रतिकार हो सकेगा, आने दो सतीश को।"

ज्योतिष बोले, "वास्तव में उपेन, जैसी ठण्डक पड़ी है कहीं भी निकलने की इच्छा नहीं होती, ज़रा गाना-बजाना होने से बुरा नहीं होगा। लेकिन सतीश बाबू कहाँ हैं? डाक्टरी करने को तो नहीं गये हैं?"

उपेन्द्र बोले, "हो भी सकता है। शायद जान-पहचान के मित्रों के साथ भेंट करने गया है।"

सरोजिनी ने चकित होकर प्रश्न किया, "सतीश बाबू डाक्टर हैं क्या?"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "हाँ!"

ज्योतिष बोले, "नहीं, उपेन, केवल स्कूल में पढ़ने से काम नहीं चलेगा। किसी अच्छे होमियोपैथ के साथ यदि कुछ दिन घूम सकें तभी कुछ सीख सकेंगे नहीं तो यह जो कहावत चली आ रही है, शतमारी सहस्रमारी – केवल मरीजों को मारते ही रहेंगे। तुम कहो तो मैं एक भले सज्जन डाक्टर के साथ परिचय करा सकता हूँ, लेकिन दोनों में कैसे पटेगी, कहा नहीं जा सकता, तुम जैसा सर्टिफिकेट दे रहे हो।"

उपेन्द्र बोले, "आदमी अच्छे होंगे तो अवश्य पटेगी वर्ना खून-ख़राबा हो सकता है।"

सरोजिनी विस्मित होकर देखने लगी। ज्योतिष बोले, "और भी अच्छा है।"

उपेन्द्र ने कहा, "अच्छा ही है। उसको पहचानकर, उसके दोष-गुण सब समझकर, जो उसका मन पावेगा, वह बहुत ही अच्छी चीज़ पावेगा। लेकिन मन पाना ही कठिन है। वह जटिल है या दुर्बोध है यह बात नहीं। बल्कि खूब सीधा खूब स्पष्ट है। मुझे मालूम पड़ता है कि इतना स्पष्ट होने के कारण ही लोग उसको समझने में भी भूल करते हैं। मतभेद होने पर भी हम लोग जहाँ भद्रता की दुहाई देने लगते हैं, और शिष्ट भाव से मतभेद लेकर मन उदास बनाकर चले आते हैं, वह वहाँ हाथापाई करके मीमांसा ही कर आता है। बचपन से मैं उसको जानता हूँ, कभी मैंने नहीं देखा कि उसके मुँह से एक बात निकली हो और मन में कुछ दूसरी ही हो। इसी से मेरा उस पर इतना प्रेम भाव रहता है।"

ज्योतिष हँसकर बोले, "इसीलिए तुम कह रहे थे कि साधारण लोगों के बीच इसे लेकर चलना-फिरना कठिन है।"

उस समय ज्योतिष की ओर उपेन्द्र का मन नहीं था। इसलिए उनकी बातें कानों में पहुँचने पर भी हृदय में प्रवेश न कर सकीं। बाल्यसखा के विरुद्ध कल रात का व्यवहार और रूढ़ भाषा उन को भीतर ही भीतर क्लेश दे रही थी, इसीलिए बात ही बात में उनका मन पिछले दिनों के अति एकान्त स्थान में घूम रहा था। किशोरावस्था के छोटे-बड़े कलह विवादों में विभिन्न मुहल्लों के समान उम्र वालों के साथ हाथापाई, मार-पीट, वाद-विवाद, और दूसरी अनेक आपद-विपद में सर्वत्र सतीश बलिष्ठ शरीर लेकर उनके पास जा खड़ा होता था। उन्हीं सब याद पड़ने वाली और भूली हुई कहानियों के बीच में आकर अचानक उनका हृदय अत्यन्त अनुतप्त हो उठा, और ज्योतिष की बातों से जब उपेन्द्र बोला, "हाँ, इसीलिए, ठीक इसी लिए चिरकाल से उसको मैं इतना प्यार करता हूँ।" ज्योतिष और सरोजिनी दोनों ही आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखते रह गये। इस असम्बद्ध बात का वे कोई भी अर्थ न समझ सके।

लेकिन दूसरे प्रश्न का कोई भी समय नहीं रहा। चुपचाप पर्दा हटाकर सतीश घुसा। उसको पहले सरोजिनी ने देखा। वह ही हँसकर बोली, "अच्छा हुआ सतीश बाबू आ गये!"

सतीश सबको देखकर हँसते हुए बोला, "शायद मेरे विषय में बातें चल रही थीं! उपेन भैया मुझे किसी के सामने अब मुँह दिखाने योग्य न रखेंगे।" इतना कहकर वह पास ही

एक कोच पर बैठने जा रहा था कि उपेन्द्र ने हाथ से हारमोनियम दिखाकर कहा, "ज़रा वहाँ जाकर बैठो, सरोजिनी अभी-अभी मुझे दोष दे रही थी, कि केवल मेरे ही कारण उस वक्त गाना नहीं हो सका।"

सतीश आसन पर बैठकर बोला, "इस समय तो गाना हो नहीं सकता। यह तो मेरे बाँसुरी बजाने का समय है, उपेन भैया!"

उस रात को कुछ देर से सभा भंग करने के बाद बिछौने पर लेटकर सरोजिनी लम्बी साँस लेकर मन ही मन बोली – वे यदि हमारे कोई आत्मीय होते तो उन्हीं से मैं सीखती। उसको संगीत सिखाने के लिए एक हिन्दुस्तानी शिक्षक नियुक्त था। उसी की जगह पर सतीश को नियुक्त करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचती हुई वह सो गयी।

चौदह

उपेन्द्र और सतीश के चले जाने पर किरणमयी किवाड़ बन्द करके वहीं खड़ी रही। अँधेरे में उसकी दोनों आँखें हिंस्र जन्तु की तरह जलने लगीं। उसे ऐसा लगा कि दौड़कर यदि किसी के वक्षः स्थल पर काट लूँ तो मेरी जान बचे। हाथ के चिराग़ को ऊँचाई पर उठाकर उन्मादों की तरह बोली, "आग लगा देने का उपाय होता तो आग लगा देती। आग लगाकर जहाँ इच्छा होती चली जाती। चिल्लाहट, पुकार मचाकर थोड़ा-थोड़ा करके वह जल जाते, शत्रुता करने का समय नहीं पाते।" जाड़े की रात में भी उसके ललाट पर पसीना निकल पड़ा था। उसे हाथ से पोंछते-पोंछते सहसा अपने को धिक्कार देकर वह बोल उठी, "क्यों मैं ख़बर भेजने गयी? क्यों अपने पैरों पर मैंने कुल्हाड़ी चला दी। लेकिन मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि यह सब अभागिनी बुढ़िया का काम है। अपने लड़के के साथ मिलकर उसी ने ऐसी हालत पैदा कर दी है।"

सतीश की बातें बिच्छू के डंक की भाँति रह-रहकर जलाने लगीं। इन दोनों आदमियों ने कुछ बातें अवश्य सुनी हैं, इसमें लेश मात्र सन्देह नहीं था, लेकिन कितना और क्या-क्या सुन चुके हैं, यह ठीक तौर से समझ न सकने के कारण वह और भी छटपटाने लगी। उसको पति और सास दोनों ने ही मिलकर समझाया था कि उपेन की तरह भला आदमी कोई नहीं है। उसके आ जाने से फिर कोई कष्ट न रहेगा! क्यों उसने विश्वास किया था? क्यों उसने अपने हाथ ही से पत्र लिखा था? अँधेरे सीड़दार आँगन में एक तरफ़ खड़ी रहकर यह क्रोधोन्मत्त नारी इन लोगों के झूठे, षड़यंत्रकारी, पैशाची स्वभाव आदि के कितने ही आरोप लगाकर भी तृप्ति न पा सकी! क्रोध और हिंसा ने उसके हृदय में भयंकर तूफ़ान उठा दिया था उसका कणमात्र व्यक्त कर देने की भाषा भी जब उसे याद नहीं पड़ी, तब वह तन-मन से प्रार्थना करने लगी कि वह अर्धमृत आज ही रात को समाप्त हो जाये।

दो दिन के बाद सबेरे रसोईघर में बैठी किरण तरकारी काट रही थी। नौकरानी ने आकर ख़बर दी, "डाक्टर साहब आये हैं!"

किरण ने कहा, "जाकर उनसे कह दे, माँ आज अच्छी हैं।"

दासी कुछ आश्चर्य में पड़ गयी। कुछ देर तक देखती रहकर बोली, "वह उसी कमरे में बैठे हुए हैं।"

उसकी बात के विशेष अर्थ की ओर तनिक भी ध्यान न देकर किरण ने सहज भाव से कहा, "उसकी दवा तो कोई खाता नहीं फिर भी वह क्यों आता है मैं नहीं जानती। तू अपने काम पर जा, वह स्वयं ही चला जायेगा।"

इस डाक्टर की दवा काम में नहीं आती, दासी के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। इसलिए इसके उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु, क्यों वह आता है यह प्रश्न पूर्ण रूप से नया था। वह आश्चर्य में पड़कर सोचने लगी, कल संध्या को मैं घर चली गयी थी, इसी बीच हठात कौन-सी ऐसी घटना हो गयी कि डाक्टर का इस मकान में आना तक अनावश्यक हो गया। फिर भी साहस करके वह एक बार बोली, "अच्छा, मैं तरकारी काट देती हूँ, तुम एक बार हो आओ न!"

किरणमयी अत्यन्त रूखे भाव से बोली, "तू जा। अपना कुछ काम-काज हो तो जाकर कर।"

इस आकस्मिक तथा अत्यन्त अनावश्यक उग्रता से दासी एकदम सहम गयी। इस घर में वह बिल्कुल ही पुरानी न होने पर भी नयी नहीं थी। इसके पूर्व भी ऐसे अकारण रूखेपन का परिचय वह पा चुकी है, किन्तु ठीक इस प्रकार की बात स्मरण न कर सकी। कोई और समय होता तो वह भी शायद क्रोध करती, किन्तु आज उसने नहीं किया। अति आश्चर्य से स्तब्ध रह गयी। थोड़ी देर चुप रहकर धीरे-धीरे उस कमरे के दरवाज़े के पास जाकर बोली, "वह काम में लगी हुई हैं, इस समय आप जायें।"

डाक्टर पैरों के पास बैग रखकर उसी चौकी के पास बैठा था, बोला, "काम में लगी हुई हैं? काम तो मुझे भी है।"

दासी ने कहा, "तो जाओ न बाबू।"

डाक्टर अवाक रह गया। बोला, "एक बार जाकर कह दो, मुझे एक विशेष काम है।"

दासी ने कहा, "आप समझते क्यों नहीं हो बाबू, मैंने खूब कहा है, और अधिक न कह सकूँगी। वह सब मैं कुछ नहीं जानती। आज आप जायें।" यह कहकर वह चली गयी।

इस अवहेलना और लांछना ने पहले तो डाक्टर को गम्भीर आघात पहुँचाया, किन्तु दूसरे ही क्षण एक लज्जाजनक दुर्घटना की सम्भावना उसके मन में उठने के साथ ही वह भीतरी बात क्या है सुनने के लिए व्याकुल हो उठा। उसको प्रतीक्षा करने में आपत्ति नहीं थी और प्रतीक्षा करता ही रहा किन्तु कोई भी लौटकर नहीं आया। तब खड़ा-खड़ा कितना क्या सोचकर चले जाने का विचार करके बैग उठाकर जब खड़ा हुआ और निगाह उठाई तो देखा कि दरवाज़े के सामने ही किरणमयी है। डाक्टर ने अपने उद्धत अभिमान को रोककर कहा, "ज़रा हटो, बड़ी देर हो गयी, और भी बहुत से रोगी राह देख रहे हैं, माँ जी अच्छी हैं न?"

"अच्छी हैं।" कहकर किरणमयी एक ओर हटकर खड़ी हो गयी।

किन्तु डाक्टर के पैर उठे नहीं। फिर भी जाने का प्रस्ताव स्वयं ही करके खड़ा रहना भी कठिन हो गया।

किरणमयी मुस्कराने लगी, बोली, "जाओ न।"

डाक्टर ने मुँह ऊपर उठाकर भौंहे सिकोड़कर कहा, "तुम क्या समझती हो कि मैं जाना नहीं जानता?"

"मैं क्या पागल हूँ कि समझूँगी कि तुम जाना नहीं जानते! हाँ, डाक्टर कितने रोगी तुम्हारी राह देखते होंगे सुनूँ तो?" कहकर और मुँह घुमाकर वह हँसने लगी।

कुपित डाक्टर की पहले यही इच्छा हुई कि उस मुँह पर थप्पड़ मारकर बन्द कर दे, किन्तु यह काम तो सम्भव नहीं था, केवल बोला, "तुम जाओ।"

"मैं कहाँ जाऊँगी? मकान है मेरा, जाना तो तुमको ही होगा!"

"मैं जा रहा हूँ।" कहकर ज्यों ही वह जाने को तैयार हुआ त्यों ही किरणमयी ने दोनों चौखटों पर हाथ रखकर मार्ग रोककर कहा, "जा रहे हो, किन्तु यह जानकर जाओ कि यही जाना अन्तिम जाना है।"

उसके कण्ठ-स्वर और चेहरे के आकस्मिक परिवर्तन से डाक्टर शंकित हो उठा, लेकिन मुँह से बोला, "अच्छी बात है, यही तो, यही अन्तिम जाना है।"

किरणमयी बोली, "सचमुच ही अन्तिम जाना है। जबकि तुम आ गये हो, तब स्पष्ट रूप से ही सब जान जाओ। अच्छा, वहाँ उसी जगह बैठ जाओ, अब खोलकर कहती हूँ।" यह कहकर डाक्टर का बैग लेकर उसने स्वयं भूमि पर रख दिया और कुर्सी दिखाकर बोली, "रसोई बन रही है। समय नहीं है, संक्षेप में कहती हूँ...।"

इसी समय दासी ने आकर ख़बर दी, दो बाबू आ रहे हैं। उसके साथ ही जूते की आवाज़ सुनकर किरणमयी व्याधभय से भीत हरिणी की भाँति दासी को ज़ोर से ठेलकर कमरे से दौड़कर भाग गयी। डाक्टर और नौकरानी आश्चर्य में पड़कर एक-दूसरे के मुँह को ताकने लगे।

थोड़ी ही देर के बाद जूते की आवाज़ द्वार के निकट आकर रुक गयी। डाक्टर ने देखा, दो अपरिचित भले आदमी हैं। दोनों भले आदमियों ने देखा, डाक्टर हैं, उनके कोट के पाकेट से हृदयपरीक्षा के चोंगे ने अपनी गरदन बढ़ाकर परिचय दे दिया। उपेन्द्र और सतीश ने देखा डाक्टर का चेहरा अत्यन्त सूखा है। दुर्घटना की आशंका करके पूछा, "आपने कैसा हाल देखा डाक्टर साहब?"

डाक्टर मौन रहा। उसका चेहरा और भी काला हो गया।

उपेन्द्र ने और अधिक शंकित होकर प्रश्न किया, "अब कैसे हैं?"

तो भी डाक्टर ने बात नहीं कही, विह्वल की भाँति वह ताकता रहा।

दासी ने कहा, "तुम जाओ न डाक्टर साहब, "अभी खड़े क्यों हो?"

डाक्टर व्यग्र होकर बैग उठाकर बोला, "मैं जाता हूँ, मुझे बहुत काम है।" कहकर उपेन्द्र

और सतीश के बीच से ही वह तेज़ी से नीचे उतर गया। और इस महाजन का पदानुसरण करके दासी कहाँ विलीन हो गयी यह बात जानी भी नहीं गयी।

उस सुनसान टूटे मकान के टूटे बरामदे में दिन के नौ बजे उपेन्द्र और सतीश चुपचाप आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

कुछ देर बाद सतीश बोला, "उपेन्द्र भैया, हारान बाबू की माँ क्या पागल हैं?"

उपेन्द्र बोले, "वह हारान भैया की माँ नहीं हैं, और कोई है, सम्भवतः दासी है। किन्तु मैं सोचता हूँ, डाक्टर उस तरह क्यों चला गया?"

सतीश बोला, "ठीक चोर की भाँति मानो पकड़े जाने के भय से भाग गया।"

उपेन्द्र अन्यमनस्क भाव से बोले, "प्रायः कहीं कोई भी दिखायी नहीं पड़ता, वह कमरा हारान भैया का है न?"

सतीश बोला, "हाँ, चलो उसमें।"

किन्तु हठात घुसने का साहस नहीं हो रहा है। "मुझे डर लग रहा है, शायद कोई घटना हुई है।"

सतीश बोला, "ऐसी बात होने से रोने-धोने के लिए आदम जुट जाते – ऐसी बात नहीं है।"

ऐसे ही समय में दिखायी पड़ा, उस ओर बरामदे से घुसकर किरणमयी आ रही है। जान पड़ता था मानो अभी-अभी वह रो रही थी, आँखें पोंछकर चली आ रही है। कल दीपक के प्रकाश में जो मुँह सुन्दर दिखायी पड़ रहा था, आज दिन के समय, सूर्य के प्रकाश में स्पष्ट समझ में आ गया, ऐसा सौंदर्य पहले कभी दिखायी नहीं पड़ा जीवित भी नहीं, चित्रों में भी नहीं।

बहू ने कहा, "आज हम लोग तैयार नहीं थे। मैंने सोचा था कह जाने पर भी शायद न आ सकेंगे।" सतीश की ओर देखकर सहसा मुसकराकर बोली, "बबुआजी भी हैं।"

आज सतीश ने सिर झुका लिया।

उपेन्द्र ने पूछा, "हारान भैया कैसे हैं?"

बहू ने उत्तर दिया, "वैसे ही। चलिये, उस कमरे में चलें।"

हारान के कमरे में उनकी माँ अघोरमयी बिछौने के पास बैठी हुई थीं। उपेन्द्र के प्रणाम करते ही ऊँचे स्वर से रो पड़ीं।

हारान थके गले से मना करके बोला, "चुप भी रहो माँ।"

उपेन्द्र लज्जा से, दुःख से एक ओर बैठ गये।

सतीश इस तरह उस ओर देखकर मुँह को यथासाध्य भारी बनाकर उस काठ के सन्दूक़ पर जाकर बैठ गया।

बहू पलभर खड़ी रहकर सतीश की तरफ़ विद्युत कटाक्ष फेंककर बाहर चली गयी, मानो स्पष्ट धमका गयी, तुम लोग यह काम अच्छा नहीं कर रहे हो।

पन्द्रह

सतीश ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह डाक्टरी पढ़ना नहीं छोड़ेगा इसीलिए दूसरे दिन संध्या समय किसी से भी कुछ न कहकर वह बिहारी को साथ लिए अपने पुराने डेरे पर जा पहुँचा। वह मकान उस समय भी खाली पड़ा था। मकान मालिक से मिलकर उसने छः महीने का बन्दोबस्त कर लिया और निकट ही के हिन्दू आश्रम में जाकर पता लगाकर एक रसोईदार नियुक्त कर लिया और प्रसन्न होकर बाहर निकल पड़ा। बिहारी से उसने कहा, "हम लोग कल ही चले आयेंगे। क्या कहते हो बिहारी?"

बिहारी ने अपनी सहमति प्रकट की।

रास्ते में चलते-चलते सतीश बोला, "काम तो अच्छा नहीं हुआ बिहारी! जो भी हो उसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है, इसके सिवा माना जाय तो मेरे लिए ही उसका डेरे का काम छूट गया। एक बार ख़बर देनी चाहिए।"

बिहारी समझ गया और चुप हो रहा।

सतीश कहने लगा, "जो कोई भी क्यों न हो, राह का भिखारी होने पर भी दुःख में पड़ने पर उसकी ख़बर लेनी चाहिए, नहीं तो मनुष्य-जन्म ही व्यर्थ है। किन्तु मैं उसके मकान के अन्दर न जाऊँगा, गली के अन्दर भी नहीं – मोड़ पर खड़ा रहूँगा, तू एक बार जाकर मालूम कर आना, कष्ट में पड़ी है या नहीं। कष्ट में तो अवश्य ही पड़ गयी है – वह मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ, इसीलिए किसी तरह कुछ दे आना चाहिए।" बिहारी चुपचाप पीछे चलने लगा। सतीश बोला, "किन्तु मुझसे ये बातें बतायेगी नहीं, तुमसे तो कुछ भी न छिपायेगी। तू समझ गया न बिहारी?"

बिहारी ने फिर भी कोई बात नहीं कही।

सावित्री की गली के मोड़ पर पहुँचकर सतीश खड़ा हो गया। बोला, "अधिक देर मत करना।"

बिहारी ने गली में प्रवेश किया। सतीश आसपास इधर-इधर टहलने लगा – दूर जाने का उसे साहस नहीं हुआ कि पीछे मूर्ख बिहारी उसको न देखकर और कहीं न चला जाये।

दस मिनट बाद ही बिहारी लौटकर बोला, "वह नहीं है।"

सतीश ने उत्सुक होकर पूछा, "कब लौटेगी?"

बिहारी बोला, "वह अब न आयेगी। दो महीने बीत रहे हैं, एक दिन भी नहीं आयी!"

सतीश गैस के खम्भे पर ओठंग कर खड़ा हो गया, भीषण कण्ठ से बोला, "झूठी बात है। तुझे धोखा दिया है!"

बिहारी ने भी दृढ़ भाव से सिर हिलाकर कहा, "किसी ने धोखा नहीं दिया – सचमुच ही वह अब नहीं आती। सचमुच ही वह अपने घर चली गयी है।"

"उसके घर की वस्तुएँ?"

"पड़ी हुई हैं। वे कौन ऐसी चीज़ें हैं बाबू, कि उनके लिए मोह होगा।"

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, "वह कौन बहुत धनवान है कि मोह नहीं होगा। तू बिल्कुल ही मूर्ख है, इसीलिए तू समझकर चला आया कि वह अब आती ही नहीं! क्या यह हो सकता है बिहारी, वह लापता हो गयी और किसी ने उसका पता नहीं लगाया? मैं पुलिस को ख़बर कर दूँगा।"

बिहारी मौन होकर मुँह झुकाये खड़ा रहा।"

सतीश बोला, "मोक्षदा क्या कहती है, वह नहीं जानती? मैं विश्वास नहीं करता। वह अवश्य ही जानती है। मैं जा रहा हूँ उसके पास।"

बिहारी व्यग्र हो उठा, बोला, "अब आप मत जाइये बाबू!"

"क्यों नहीं जाऊँगा? क्यों वे लोग छिपा रहे हैं? मैं क्या किसी को खा डालने के लिए आया हूँ, कि मुझसे छिपाना चुराना! मैं कहता हूँ, जैसे भी हो सकेगा, मैं जानूँगा कि वह कहाँ है।"

बिहारी ने डरकर कहा, "उसकी मौसी का दोष नहीं है बाबू। सावित्री अपनी इच्छा से ही मकान छोड़कर चली गयी। झगड़ा करके गयी है – किसी को ख़बर देकर नहीं गयी है।"

सतीश धमकाकर बोला, "फिर भी तू कहता है कि वह कहकर नहीं गयी है! ज़रूर बताकर गयी है – अवश्य ही बता गयी है!"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं। लेकिन वह शहर में ही है।"

"किसी जगह पर है? गधे की तरह मुँह बाये मत रह बिहारी? क्या हो गया बता?"

बिहारी क्षणभर स्थिर रहकर कुछ सोचकर बोला, "आपको दुःख होगा इसीलिए – नहीं तो सब बातें सभी को मालूम हैं – मैं भी जानता हूँ।"

सताीश अधीर हो उठा, "क्या जानता है, बता न?"

बिहारी फिर भी चुप रहा।

सतीश चिल्लाकर बोला, "तेरे पैरों पर गिरता हूँ हरामजादे, जल्दी बता।"

बिहारी उसी क्षण भूमि पर सिर टेककर जूते की धूलि सिर पर चढ़ाकर सिसकते हुए बोला, "बाबू मुझे आपने नरक में डुबा दिया। तनिक आड़ में चलिये, कहता हूँ।" यह कहकर अँधेरी गली में घुसकर एक ओर खड़ा हो गया।

सतीश सामने खड़ा होकर बोला, "क्या है?"

बिहारी ने गला साफ़ करके कहा, "सावित्री की मौसी का विचार है कि वह आपके पास है। लेकिन मैं जानता हूँ ऐसी बात नहीं है!"

सतीश अधीर होकर बोला, "तू खूब पण्डित है? यह मैं भी जानता हूँ – उसके बाद क्या है बता?"

"रुकिये बाबू, बता रहा हूँ।" कहकर बिहारी फिर एक बार गला साफ़ करके बोला, "मुझे खूब आशा हो रही है कि....।"

"क्या आशा हो रही है?"

बिहारी विवश होकर बोल उठा, "वह कहीं चली गयी है, उसी विपिन बाबू के पास ही।"

"कौन! हमारा विपिन!"

"हाँ बाबू, वे ही – हाँ, हाँ – वहाँ बैठियेगा मत, स्नान करना पड़ेगा! दुनिया भर के लोग वहाँ ही...।"

सतीश ने उस बात को कानों में ही जाने नहीं दिया। उस ओर की दीवाल पर पीठ टेककर सीधा होकर बैठकर सूखे गले से उसने पूछा, "तो फिर उसकी मौसी ने कैसे समझा कि वह मेरे पास है?"

बिहारी ने कहा, "सावित्री ने जिस दिन विपिन बाबू को अपमानित करके बिदा किया, उस दिन स्पष्ट रूप से उसने कहा था, वह सतीश बाबू के सिवा और किसी के पास न जायेगी – मकान के लोग आड़ में रहकर उन लोगों का झगड़ा सुन रहे थे।"

सतीश ने उठकर पूछा, "तो तुझे किस तरह पता लगा कि वह विपिन बाबू के पास गयी है?"

बिहारी चुप हो रहा।

सतीश ने कहा, "बता।"

बिहारी फिर एक बार हिचकिचा गया। सावित्री के आगे वही जो "न बतायेगा" कहकर घमण्ड दिखा आया था, वह बात याद पड़ गयी। बोला, "मैं अपनी ही आँखों से देख आया हूँ।"

सतीश चुपचाप सुनने लगा।

बिहारी ने कहा, "घर बदलने के दूसरे दिन दोपहर को मैं आया था, तब विपिन बाबू सावित्री के बिछौने पर सो रहे थे।"

सतीश ने डाँटकर कहा, "झूठी बात है!"

बिहारी ने पूछा, "सावित्री कहाँ थी?"

सावित्री उस कमरे में थी। बाहर निकलकर उसने मुझे चटाई बिछाकर बैठाया। पूछने लगी, "बाबू लोग नाराज़ हुए या नहीं, हम लोगों ने घर बदल क्यों दिया? यही सब।"

"फिर उसके बाद?"

"मैं बिगड़कर लौट आया। तब वह बाबू के साथ चली गयी।"

"इतने दिनों तक तूने क्यों नहीं बताया?"

बिहारी मौन रहा।

सतीश ने पूछा, "तूने स्वयं अपनी आँखों से देखा है या सुना है?"

"नहीं बाबू, अपनी ही आँखों से देखी हुई यह घटना है। बहुत ध्यान से देखा है!"

"मेरे पैर छूकर शपथ ले, तेरी आँखों से देखी हुई बात है! ब्राह्मण के पैरों पर हाथ रख रहा है, याद रहे!"

बिहारी सतीश के पैरों पर हाथ रखकर बोला, "यह बात मुझे दिन-रात याद रहती है बाबू! मेरी अपनी ही आँखों की देखी हुई घटना है।

सतीश ने पलभर चुप रहकर कहा, "तू डेरे पर चला जा, उपेन भैया से कहना, आज रात को मैं भवानीपुर जाऊँगा, लौटूँगा नहीं।"

बिहारी को विश्वास नहीं हुआ, वह रोने लगा।

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "यह क्या रे, रोता क्यों है?"

बिहारी ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा, "बाबू, मैं आपके लड़के की तरह हूँ, मुझसे छिपाइयेगा मत। मैं भी साथ चलूँगा।"

सतीश ने पूछा, "क्यों?"

बिहारी ने कहा, "बूढ़ा तो हो गया हूँ ज़रूर, लेकिन जाति का अहीर हूँ। एक लाठी मिल जाने पर अब भी पाँच-छः आदमियों का सामना कर सकता हूँ। हम दंगा भी कर सकते हैं और ज़रूरत पड़ने पर मरना भी जानते हैं।"

सतीश ने शान्त स्वर से कहा, "मैं क्या दंगा करने जा रहा हूँ? मूर्ख कहीं का!" यह कहकर वह चला गया।

बिहारी अब जान गया, बात झूठी नहीं है। तब आँखें पोंछकर वह भी चला गया।

सतीश मैदान की तरफ़ तेजी से जा रहा था। कहाँ जाना होगा इसका निश्चय उसने नहीं किया, लेकिन कहीं उसको मानो शीघ्र ही जाना पड़ेगा। इस बात को वह निस्सन्देह अनुभव कर रहा था कि एक ही क्षण में उसके चेहरे पर एक ऐसा भद्दा परिवर्तन हो गया है, जिसे किसी जाने-पहचाने आदमी को दिखाना उचित नहीं।

मैदान के एक सुनसान भाग के नीचे बेंच पड़ी हुई थी। सतीश उस के ऊपर जाकर बैठ गया और निर्जन स्थान को देखकर शान्ति मिली। अँधेरे में वृक्ष के नीचे बैठकर पहले ही उसके मुँह से निकल पड़ा, "अब क्या करना चाहिए?" यह प्रश्न कुछ देर तक उसके कानों में अर्थहीन प्रलाप की भाँति घूमता रहा। अन्त में उसको उत्तर मिला, "कुछ भी नहीं किया जा सकता।"

उसने प्रश्न किया, "सावित्री ने ऐसा काम क्यों किया?"

उत्तर मिला, "ऐसा तो कुछ भी नहीं किया है, जिससे नये सिरे से उसको दोष दिया जा सके।"

उसने प्रश्न किया, "इतना बड़ा अविश्वास का काम उसने क्यों किया?"

उत्तर मिला, "कौन सा विश्वास उसने तुमको दिया था, यह पहले बताओ?"

सतीश कुछ भी बता न सका। वस्तुतः उसने तो कोई झूठी आशा दी नहीं थी। एक दिन के लिए भी उसने छलना नहीं की। बल्कि वह बार-बार सतर्क करती रही है, शुभ कामना प्रकट करती रही है, बहिन से भी अधिक स्नेह करती रही है, उस रात की बातें उसने याद कीं। उस दिन निष्ठुर होकर उसको घर से निकालकर उसने बचाया था। कौन ऐसा कर सकता था! कौन अपनी छाती पर वज्र रखकर उसको सुरक्षित रख सकता था? सतीश की आँखों की पलकें भीग गयीं, किन्तु यह संशय उसका किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सका कि इस उत्तर में कहीं मानो एक भूल हो रही है।

उसने फिर प्रश्न किया, "किन्तु उसको तो मैंने प्यार किया है!"

उत्तर मिला, "क्यों प्यार किया? क्यों जान-बूझकर तुम कीचड़ में उतर गये?"

उसने प्रश्न किया, "यह मैं नहीं जानता। कमल लेने जाने पर भी कीचड़ तो लगता है?"

उसे उत्तर मिला, "यह है पुरानी उपमा – काम में नही आती! मनुष्य अपने घर में आते समय कीचड़ धोकर कमल ले आते हैं। तुम्हारा कमल ही कहाँ और यह कीचड़ तुम कहाँ धोकर अपने घर आते?"

उसने प्रश्न किया,"अच्छा भले ही मैं घर नहीं आता?"

उत्तर मिला, "छिः! उस बात को मुँह पर भी मत लाना!

इसके बाद कुछ देर तक मौन होकर नक्षत्र भरे काले आकाश की तरफ़ देखकर एकाएक बोल उठा, "मैंने तो उसकी आशा छोड़ ही दी थी। उसे मैं पाना भी नहीं चाहता था किन्तु मुझे उसने इस प्रकार अपमानित क्यों किया? एक बार पूछ क्यों नहीं लिया? किस दुःख से वह यह काम करने गयी? रुपये के लोभ से किया है, यह बात तो किसी प्रकार मैं सोच नहीं सकता। विपिन की तरह आचरणभ्रष्ट शराबी को मन ही मन में उसने प्यार किया था, इस बात पर विश्वास करूँ तो किस तरह? तो फिर क्यों?"

गंगाजी की शीतल वायु लगने से उसे जाड़ा लगने लगा। वह ज्योंही चादर नीचे से ऊपर तक ओढ़कर आँखें बन्द करके बेंच पर लेट गया, त्योंही सावित्री का चेहरा उज्जवल होकर स्पष्ट हो उठा। कलंक की कोई भी कालिमा उस चेहरे पर नहीं है! गर्व से दीप्त, बुद्धि स्थिर, स्नेह से स्निग्ध, परिणत यौवन के भार से गम्भीर, तो भी, रसों से, लीलाओं से चंचल – वही चेहरा, वहीं हँसी, वही दृष्टि, संयत परिहास, सबसे ऊपर उसकी वह अकृत्रिम सेवा! इस प्रकार स्नेह उसे इतनी उम्र में कब कहाँ मिला था! भस्माच्छादित अग्नि की भाँति उसके आवरण को लेकर खेल मचाते समय जो अग्नि बाहर निकल पड़ी है, उस की जलन से किस तरह, किस रास्ते से भागकर आज वह मुक्ति पावेगा! मुक्ति पा लेने से भी क्या हो जायेगा। उसकी दोनों आँखों से आँसू झर-झर गिरने लगे। आँसू को उसने रोकना नहीं चाहा – आँसू को पोंछ डालने की इच्छा भी नहीं की। आँसू इतना मधुर है, आँसू में इतना रस है, आज वह अपने परम दुःख में यह प्रथम उपलब्धि करके सुखी हो गया और जिसको उपलक्ष्य करके इतने बड़े सुख का आस्वाद वह जीवन में पहले पहल प्राप्त कर सका, उसी को लक्ष्य कर दोनों हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया।

सतीश चाहे जैसा भी क्यों न हो – भगवान हैं, उन्हें धोखा नहीं दिया जा सकता, छोटे-बड़े सभी को एक दिन उनके सामने उत्तरदायी के रूप में विवरण देना पड़ता है – इन बातों पर वह निस्सन्देह विश्वास करता था। आँखें पोंछकर वह उठ बैठा और मन ही मन बोला, "भगवान किसके हाथ से तुम किस समय किसको क्या देते हो, कोई बता नहीं सकता! आज तुम्हारी ही आज्ञा से सावित्री है दाता, मैं हूँ भिखारी। इसीलिए वह भली हो, बुरी हो, यह विचार और जो कोई भी करे मैं न करूँ। मेरे हृदय में सब जलन, विद्वेष तुम पोंछ डालो, उस के विरुद्ध मैं कृतघ्न न बनूँ।"

उधर ज्योतिष साहब के मकान में संध्या के पश्चात, बैठकखाने में सरोजिनी, ज्योतिष, उपेन्द्र और दूसरे एक नाटे कद के दाढ़ी-मूँछ साफ़ किये हुए हृष्ट-पुष्ट भले आदमी बैठे हुए हैं। इनका शुभ नाम है शशांकमोहन। ये विलायत हो आये हैं – इसीलिए साहब हैं। थोड़े ही दिनों में सरोजिनी के प्रति आकृष्ट हो गये हैं और इसे प्राणपण से व्यक्त कर देने का पूर्ण प्रयास कर रहे हैं। वह प्रयास कहाँ तक सफलता की ओर अग्रसर होता जा रहा था, इसे केवल विधाता ही जान रहे थे। आज सतीश का प्रसंग छिड़ गया था। उपेन्द्र उसके असाधारण शारीरिक बल तथा अलौकिक साहस का इतिहास समाप्त करके, आश्चर्यजनक कण्ठ-स्वर और उसकी अपेक्षा आश्चर्यजनक शिक्षा की बात उठा चुके थे। निकट ही सोफे पर बैठी हुई सरोजिनी दोनों हाथों पर अपनी ठुड्डी रखकर झुकी पड़ी हुई उदासीन चित्त से सुन रही थी। उसी समय बिहारी ने भग्न दूत की भाँति कमरे में प्रवेश करके सतीश के भवानीपुर चले जाने का समाचार घोषित कर दिया।

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पड़कर प्रश्न किया, “उसके कौन हैं वहाँ?”

बिहारी संक्षेप में ‘नहीं जानता’ कहकर चला गया।

सतीश के लिए सभी प्रतीक्षा कर रहे थे, अतएव सभी निराश हो गये।

सरोजिनी सीधी होकर बैठ गयी और हठात लम्बी साँस लेकर बोली, “तो अब क्या होगा?”

ज्योतिष उनके मुख की ओर देखकर स्नेह के साथ धीरे से हँस पड़े।

लेकिन केवल शशांकमोहन निराश न हुए। बल्कि प्रसन्न होकर प्रस्ताव किया, अब सरोजिनी ही कर्णधार बन जाये। संगीत से कितने परिमाण में आनन्द प्राप्त करने की शक्ति उनमें थी इसे वही जानते थे। लेकिन सरोजिनी के आपत्ति प्रकट करते ही वे बोल उठे, “वरन मैं तो कहता हूँ, पुरुषों के गीत गाना उनके लिए भूल है, उनका गला स्वभावतः ही मोटा और भारी होता है, इसीलिए उनकी शिक्षा कितनी ही क्यों न हो, और कितनी ही अच्छी तरह गाने का प्रयत्न क्यों न करें, किसी तरह सुनने योग्य नहीं हो सकता।”

इस कथन का और किसी ने यद्यपि कुछ विरोध नहीं किया, लेकिन सरोजिनी ने किया। वह बोली, “आपके लिए अवश्य ही योग्य नहीं है। हारमोनियम पियानो के नीचे भारी मोटे परदों को तैयार करना सम्भवतः भूल है, लेकिन फिर भी वे सब तैयार हो रहे हैं, लोग खरीद भी रहे हैं।”

शशांकमोहन के पास इस बात का उत्तर नहीं था। वह अपने गोरे चेहरे को ज़रा लाल बनाकर कोई बात करने जा रहे थे, लेकिन सरोजिनी एकाएक उठ खड़ी हुई, बालीं, “माँ को ख़बर दे आऊँ – नहीं तो वे खाना लेकर बैठी रहेंगी।”

उपेन्द्र चौंककर बोले, “ओ हो! उसका खाना-पीना सम्भवतः उधर ही हो रहा होगा – हमबग!”

उपेन्द्र के कथन में आन्तरिक स्नेह के सिवा और कुछ भी नहीं था और सतीश उनका अत्यन्त स्नेह-पात्र यदि न रहता तो वे यह बात मुँह से निकाल भी नहीं सकते थे, इस बात

को सरोजिनी ने भलीभाँति समझकर हँसकर कहा, "यह आपका भारी अन्याय है! उनकी रुचि यदि आपकी कुरुचि के साथ न मिले तो दोष आपका ही है, उनका नहीं! अच्छा, माँ को बताकर आती हूँ।" कहकर सरोजिनी शीघ्रता से बाहर चली गयी।

उसके चले जाने पर तुरन्त ही शशांकमोहन उपेन्द्र की ओर घूमकर बोले, "आपके मित्र सम्भवतः बड़े कट्टर सनातनी हैं।"

उपेन्द्र ज़रा हँसकर बोले, "कम नहीं। पूजा-आह्निक भी करता है।"

सतीश कभी-कभी छिपकर शराब पीता था, यह बात वह जानते नहीं थे, शायद सपने में भी सोच नहीं सकते थे।

शशांकमोहन ने पूछा, "वह करते क्या हैं?"

उपेन्द्र बोले, "कुछ भी नहीं। कभी वह कुछ करेगा, ऐसी आशा भी किसी को नहीं है।"

इस समाचार से शशांकमोहन के मन के ऊपर से मानो एक पत्थर उतर गया। प्रसन्न होकर बोले, "इसी पर?"

ज्योतिष इतनी देर तक मौन रहकर सुन रहे थे। उपेन्द्र को लक्ष्य कर बोले, "यह बात तो उचित नहीं है उपेन। शारीरिक उत्कर्ष क्या कुछ भी नहीं है? इसके सिवा मैं तो उनकी गान-विद्या पर मुग्ध हो गया हूँ। जो कुछ उन्होंने किया है, हमारे देश में उसके योग्य सम्मान यदि उसको न मिला, तो दुःख की बात है इसमें सन्देह नहीं। लेकिन वह दोष तो हम लोगों का ही है, उसका नहीं और सच बात तो यह है कि मुझे तो तुम्हारे मित्र को देखकर सचमुच ही ईर्ष्या होती है। अच्छी बात है, बूढ़े की आमदनी कितनी है जी?"

उसी समय सरोजिनी ने चुपचाप कमरे में प्रवेश करके अपने भैया की कुर्सी की पीठ पर हाथ टेककर खड़ी होकर पूछा, "किसकी भैया?"

ज्योतिष ने कहा, "सतीश बाबू के पिता की।"

उपेन्द्र बोले, "ठीक नहीं जानता, सम्भवतः लगभव दो लाख।"

ज्योतिष दोनों आँखें फाड़कर बोला, "राजा हैं क्या जी?"

उपेन्द्र बोले, "नहीं राजा नहीं किन्तु सदा से ही वे बड़े जमींदार हैं। उस पर वृद्ध ने विशेष रूप से आमदनी बढ़ा ली है।"

ज्योतिष कुर्सी पर ओठंग कर एक लम्बी साँस लेकर बोले, "बिल्कुल ही सौभाग्य के प्रिय पुत्र। स्वास्थ्य, शक्ति, रूप, ऐश्वर्य! मनुष्य जिन सब की कामना करता है, एक पात्र में सभी विद्यमान हैं।"

उपेन्द्र हँसने लगे। अन्त में बोले, "एक भयंकर दोष भी है। दूसरों का दोष अपने ऊपर ले लेता है, असमय में अपने सिर विपत्ति ढोकर यदि मर न जाये, तो तुम जो कह रहे हो वह सब ठीक ही है!"

ज्योतिष सीधे हो उठ बैठे, बोले, "विपत्ति ढोकर मर जायेगा क्यों?"

उपेन्द्र बोले, "असम्भव नहीं है, और पहले हो भी चुका है। क्रोध नाम की वस्तु उसके शरीर में जैसी भयंकर है, प्राणों का मोह भी ठीक उसी परिमाण में कम है। इस कलियुग

में रहते हुए भी जिनकी न्याय-अन्याय सम्बन्धी धारणा सतयुग की भाँति रहती है और क्रोध में आ जाने से जिसको हिताहित का ज्ञान नहीं रहता, उनके बचे रहने या न रहने पर मैं तो अधिक विश्वास नहीं रखता। सह सकना भी एक शक्ति है, बिना माँगी सहायता करने का लोभ रोक रखना भी विशेष अवस्था में आवश्यक होता है, इसको तो वह समझता ही नहीं। वह मानो उस युग के यूरोप का नाइट है, इस युग में बंगाल में आकर जन्म ग्रहण किया है।"

ज्योतिष हँसकर बोले, "लेकिन कुछ भी कहो, सुनकर श्रद्धा उत्पन्न होती है।"

उपेन्द्र बोले, "नहीं भी होती! संसार में रहना है तो बहुत सी छोटी-मोटी बुरी वस्तुओं को तुच्छ मान लेना पड़ता है – यह शिक्षा आज तक उसे नहीं मिली है। किसी दिन होगी या नहीं मैं नहीं जानता, लेकिन यदि नहीं हुई तो अन्तिम परिणाम अच्छा न होगा। उसका भी नहीं, उसके आत्मीय मित्रों का भी नहीं!

ज्योतिष बोले, "लेकिन तुम उसके आत्मीय-मित्र हो, तुम क्यों नहीं सिखाते?"

उपेन्द्र के मुँह पर हँसी फूट उठी, बोले, "मैं उसका मित्र हूँ अवश्य, लेकिन इस शिक्षा का भार ऐसे मित्र पर नहीं है जो सब मित्रों से बड़े होंगे, जो सभी आत्मीयों के ऊपर आत्मीय होंगे, इस विद्या को या तो वे ही सिखायेंगे या चिरकाल तक उसको अशिक्षित ही रहना होगा।"

सरोजिनी इतनी देर तक मौन होकर सुन रही थी। अब मुँह घुमाकर शायद उसने ज़रा हँसी छिपा ली।

उपेन्द्र बोले, "किन्तु सतीश की बात आज यहीं तक। मुझे उठना पड़ेगा, दो चिट्ठियाँ लिखनी हैं।"

ज्योतिष को भी आवश्यक काग़ज़-पत्र देखने थे, उनका भी बैठना सम्भव नहीं था, इसीलिए वे भी उठने-उठने की कह रहे थे। किन्तु सबके पहले उठ पड़ी सरोजिनी। इस बार जान पड़ा मानो उसने उपेन्द्र को कुछ कहना चाहा, किन्तु अन्त में कुछ भी नहीं कहा, किसी को भी एक छोटा नमस्कार तक भी नहीं किया। अन्यमनस्क की भाँति वह धीरे-धीरे बाहर चली गयी। आज की सभा जैसी जमने की बात थी, उस तरह वह जम नहीं सकी। बल्कि, भंग हो गयी और वह भी बुरी तरह।

उपेन्द्र न तो कुछ जानते ही थे, न वे कुछ जान सके।

सोलह

तीक्ष्ण बुद्धि किरणमयी पति की बीमारी के समय इन इने-गिने कई दिनों में उपेन्द्र को आत्मीय भाव से अपने पास पाकर पहचान गयी। इससे उसकी स्वार्थ हानि की व्याकुल आशंका ही समाप्त हो गयी, ऐसी बात नहीं, इस अपरिचित के प्रति एक गहरी श्रद्धा उत्पन्न

हो गयी जिसके भार से सारा हृदय जलभाराक्रान्त मेघ की तरह बरसने को प्रस्तुत हो गया। ऐसा आदमी उसने कभी देखा नहीं था। ऐसे आदमी के सम्पर्क में आने के सौभाग्य की किसी दिन वह कल्पना भी न कर सकी थी। इसीलिए इस थोड़े समय के परिचय से ही उसने अपने भविष्य के सभी सुख-दुःखों को इनके ही हाथ में निःशंक होकर सौंप दिया, और निर्भय होकर निर्भर कर सकना किसे कहते हैं, इसको यही पहले-पहल अनुभव कर के उसका चिरकारारुद्ध प्राण मानो मुक्त-मार्ग का प्रकाश देख सका।

उपेन्द्र प्रातः से लेकर रात्रि तक मुमूर्ष की सेवा कर रहे थे। आवश्यकता की दृष्टि से इस सेवा का मूल्य नहीं था। क्योंकि हारान के जीवन की आशा तनिक भी नहीं थी – किन्तु इस सेवा ने किरणमयी की दृष्टि में अपने पति के सूखे शरीर को भी बहुमूल्य बना दिया। इस अर्धमृत शरीर के लोभ से ही वह अकस्मात व्याकुल हो उठी। इसके आचार-व्यवहार में यह अचिन्तनीय परिवर्तन मृत्यु के किनारे खड़े हारान ने भी लक्ष्य किया। बचपन में किरण आत्मीय के घर में पाली-पोसी गयी और बचपन में ही उससे भी अधिक अनात्मीय पति के घर आयी थी। सास अघोरमयी ने उसका किसी दिन आदर-सत्कार नहीं किया, बल्कि जितना सम्भव हो सका, उतना ही कष्ट पहुँचाती रही है। पति ने भी उसको एक दिन के लिए भी प्यार नहीं किया। वे दिन के समय स्कूल पढ़ाते थे, रात को स्वयं अध्ययन करते थे, और अपनी पत्नी को पढ़ाया करते थे। विद्योपार्जन करने के नशे ने उनको ऐसा ग्रसित कर लिया था कि दोनों में गुरु-शिष्य के कठोर सम्बन्ध के अलावा पति-पत्नी के मधुर सम्बन्ध का अवकाश ही नहीं मिला। इस प्रकार यह प्रखर बुद्धिशालिनी रमणी शैशव को पार कर के परिपूर्ण यौवन के बीच आ खड़ी हुई थी – इस प्रकार संसार के सौन्दर्य-माधुर्य से निर्वासिता शुष्क तथा कठोर हो उठी थी, और ऐसे ही स्नेह से वंचित होकर ही वह नारी के श्रेष्ठ धर्म को भी तिलांजलि देने को तैयार बैठी थी। अघोरमयी सब कुछ जानती थीं। उनकी रूपवती वधू इन दिनों सती धर्म की भी पूरी मर्यादा पालन करके नहीं चलती, इस बात को वे जानती थीं। किन्तु उनका पुत्र मृत्यु के मुख में था, दुःख के दिन प्रायः निकट थे, उसको ध्यान में रखकर ही सम्भवतः वह वधू के आचार-व्यवहार की उपेक्षा करती रहती थीं। जो डाक्टर हारान की चिकित्सा कर रहा था, वह किस आज्ञा से दाम लिये बिना दवा-पथ्य जुटा रहा था, और क्यों उनकी गृहस्थी का आधा खर्च दे रहा था, यह बात उनसे छिपी नहीं थी। किन्तु मृत्यु पथ के राही पुत्र की चिकित्सा के सामने किसी अन्याय को ही बड़ा करके देखने का साहस उनको नहीं था, ऐसी शिक्षा भी उनकी नहीं थी। इसके अतिरिक्त वे पुत्रवधू को प्यार नहीं करती थीं। उपेन्द्र भी इसी जाल में धीरे-धीरे बँधता जा रहा है, उसका मुक्तहस्त अर्थव्यय और अक्लान्त सेवा का गुप्त रहस्य बाल्यावस्था की मित्रता को अतिक्रम करके चुपके से एक-दूसरे स्थान में मूल विस्तार कर रहा है, इस सम्बन्ध में उनको कोई शंका नहीं थी। आपत्ति भी नहीं थी। कल से उपेन्द्र आया नहीं, यही बात अघोरमय अपनी कोठरी की चौखट के बाहर बैठकर एक जीर्ण-शीर्ण मैला लिहाफ़ ओढ़े सोच रही थीं।

जाड़े का सूर्य तब तक अस्त नहीं था, लेकिन इस मकान के अन्दर अन्धकार की छाया

पड़ चुकी थी। सूर्यदेव कब उगते हैं, कब अस्त हो जाते हैं, अच्छे दिनों में भी इसकी ख़बर इस मकान के लोग नहीं रखते थे, अब दुःख के दिनों में उनके साथ प्रायः समस्त सम्बन्ध ही टूट गया था।

अघोरमयी ने पुकारा, "संध्या का दीया जलाकर एक बार यहाँ तो आओ बेटी! एक बात है।"

किरणमयी उन्हीं के कमरे में काम कर रही थी, बोली, "अभी तक संध्या नहीं हुई है माँ, तुम्हारा बिछौना बिछाकर आती हूँ।"

अघोरमयी बोली, "मेरा और बिस्तर बिछाना! सोते समय मैं ही बिछा लूँगी। नहीं, नहीं, तुम जाओ बेटी, दीया जलाकर ज़रा ठण्डी होकर बैठो। दिन-रात काम करते-करते तुम्हारा शरीर आधा हो गया, उस ओर भी ज़रा नज़र रखना ज़रूरी है बेटी।" यह कहकर लम्बी साँस लेकर वे चुप हो रहीं। थोड़ी ही देर बाद बहू निकट आकर बैठने लगी, तो वे रोककर बोलीं, "पहले दियाबत्ती...।"

बहू ने शान्त भाव से कहा, "तुम क्यों घबरा रही हो माँ, संध्या होने में अभी बहुत देर है!"

अघोरमयी बोली, "होने दो – नीचे तो अँधेरा है – ज़रा दिन रहते ही सीढ़ी की बत्ती जला देना अच्छा है। इसी समय शायद उपेन आ जायेगा, कल से वह आया नहीं – क्यों बहू, अभी तक तुम्हारा शरीर धोना, बाल बाँधना तक भी हुआ नहीं है, देख रही हूँ – क्या कर रही है इतनी देर तक?"

सास के कण्ठ-स्वर में अकस्मात विरक्ति का आभास देखकर आश्चर्य में पड़ी बहू क्षणभर उनके मुँह की तरफ़ देखती रही, फिर ज़रा हँसकर बोली, "मैं रोज इस समय किसी दिन हाथ-मुँह धोती हूँ या कपड़ा बदलती हूँ माँ? अभी तो मेरा रसोईघर का काम ही नहीं ख़त्म हो पाता। उसके बाद....।"

सास कुछ नाराज़ होकर बोल उठीं, "बाद का काम उसके बाद होगा बेटी, अभी मैं जो कहती हूँ उसे करो।"

बहू ने जाने को तैयार होकर कहाँ, "जा रही हूँ, दीया जलाकर तुम्हारे पास ही आकर बैठती हूँ।"

अघोरमयी खीझ उठीं, बोलीं, "मेरे पास अभी झूठ-मूठ बैठने से क्या होगा बेटी! काम पहले है, या बैठना पहले है? दिन पर दिन तुम कैसी होती जा रही हो बहू?"

उसका स्नेह हठात तिरस्कार का आकार धारण करने के साथ ही ये बातें अत्यन्त कठोर और रूखी होकर सभी के कानों में जाकर बिंध गयी। उसने भी क्रोध करके उत्तर दिया, "तुम लोग ही मुझे कैसी बनाती जा रही हो, माँ! हर समय उलटी-सीधी बातें कहते रहने से मानना तो चूल्हे में जाये, समझी भी तो नहीं जातीं। क्या कहना चाहती हो तुम स्पष्ट की कहो न!" यह कहकर उत्तर के लिए क्षणभर भी प्रतीक्षा न करके वह शीघ्रता से चली गयी। बहू का तेजी से चला जाना क्या है, इसे इस घर के सभी समझते थे। अघोरमयी

भी समझ गयी।

किरणमयी नीचे-ऊपर दीपक जलाकर अपनी सास के कमरे में जब दिया जलाने आयी, तब सास रो रही थीं। उनको रुलाई जब जैसे-तैसे कारणों से ही फूट पड़ती थी।

किरणमयी ठिठककर खड़ी होकर बोली, "तुम्हारी हरिनाम की माला ला दूँ माँ!"

सास लिहाफ़ के कोने से आँखें पोंछकर रुआँसे स्वर में बोलीं, 'ले आओ!"

वह कमरे में जाकर दीवाल पर टंगी माला की झोली उतारकर ले आयी और सास के हाथ में देने लगी तो उन्होंने झोली न लेकर बहू का हाथ पकड़ लिया। "ज़रा बैठो बेटी," कहकर खींचकर अपने पास बैठाकर उसके मुँह पर, ललाट पर, माथे पर सहला दिया। ठोड़ी छूकर चुम्बन किया और बड़ी देर तक कुछ भी न कहकर रोने लगीं। किरणमयी कड़ी होकर बैठी यह सब स्नेहाभिनय सहती रही।

थोड़ी ही देर बाद अघोरमयी ने फिर एक बार लिहाफ़ के कोने से आँखों के आँसू पोंछकर कहा, "शोक से तप्त मैं पागल हो गयी हूँ, मेरी एक साधारण सी बात पर तुमने क्रोध क्यों किया, बताओ तो बेटी?"

किरण ने अविचलित भाव से कहा, "शोक-ताप तुम्हारे अकेले का नहीं है माँ! हम लोग भी मनुष्य हैं, उसे भूलकर एक ही बात कह देना ही तो यथेष्ट है, नहीं तो हजार बातों से क्रोध नहीं होता।"

अघोरमयी ने आँखे पोंछते-पोंछते कहा, "इस बात को क्या मैं नहीं जानती बेटी, जानती हूँ किन्तु मेरा एक-एक करके सब कुछ ही चला गया। अब तुम ही सब हो, तुम ही मेरी लड़के-लड़की हो। हारान के शोक से यदि छाती कड़ी रख सकूँगी तो तुम्हारा मुँह देखकर ही रख सकूँगी।" यह कहकर फिर एक बार लिहाफ आँखों पर रखकर वे रोने लगीं। किन्तु इस छलना से किरण भुलावे में नहीं पड़ी। वह मन ही मन जल उठने पर भी शान्त भाव से बोली, "तुम किस तरह छाती कड़ी करोगी, इसको तुमने अभी से ठीक कर रखा है, किन्तु मैं कैसे छाती कड़ी करूँगी, इस पर तो तुमने सोचा नहीं हैं माँ! फिर यह भी कहती हूँ ये सब बातें इस समय क्यों? जब सचमुच ही छाती कड़ी करने का दिन आयेगा तब समय की खींचा-तानी नहीं होगी, वह समय इतना थोड़ा सा नहीं आता माँ, कि पहले से तैयार न होने से समय ही नहीं मिलता।

बहू की बातें मधुर न लगने पर भी इनके भीतर कितना व्यंग्य छिपा हुआ था, अघोरमयी यह न जान सकीं। बल्कि वे बोलीं, "समय आने में देर ही क्या है बेटी, उपेन उस दिन जिस डाक्टर को ले आये थे, वे अच्छी बातें कुछ भी नहीं कह गये। मैं केवल यही कहती हूँ बेटी, उपेन यदि उस समय न आ जाता, तो उस दशा में हम लोगों की कैसी दुर्दशा होती।"

वह चुप रहकर सुन रही है देखकर वे उत्साहित होकर कहने लगीं, "उस को लड़कपन से ही मैं जानती हूँ। नोआखाली में वे दोनों भाइयों की तरह मेरे पास आते-जाते थे – तभी से मौसी कहकर पुकारता है। जैसे बड़े आदमी का लड़का है वैसे स्वयं भी यह बड़ा उदार हो गया है। उस दिन मुझे रोते देखकर बोला – 'मौसी, मुझे हारान भैया का छोटा भाई

ही समझ रखना, इससे अधिक कहने की बात मेरे पास कुछ भी नहीं है।' मैंने कहा, 'बेटा मुझे किसी तीर्थस्थान में छोड़ आना। जो इने-गिने दिन जीवित रहूँगी, मैं गंगा स्नान करते-करते गंगा माई की गोद में जाकर अपने हारान के पास रह सकूँ।"

फिर वह बोल न सकीं। इस बार वह व्याकुल होकर रो पड़ीं। बहू चुप हो गयी थी, चुप ही रह गयी। वे कुछ देर तक रोकर छाती का भार हलका करके अन्त में आँखें पोंछकर गीले स्वर में बोलीं, "रह-रहकर यही बात मन में उठ जाती है कि वह यदि नहीं आता तो – नीचे कोई पुकार रहा है क्या बेटी?"

बहू ने कहा, "नीचे दासी बरतन माँज रही है, किसी के बुलाने पर दरवाज़ा खोल देगी।"

सास ने घबराकर कहा, "नहीं नहीं बहू, तुम भी जाओ। जब दासी काम में लगी रहती है तब वह कुछ भी नहीं सुनती।"

किरण कुछ भी उद्वेग प्रकट न करके धीरे से बोली, "मुझे भी काम है माँ, रसोई पकाना. ...।"

अघोरमयी अकस्मात भड़क उठीं, बोली, "रसाई तो कहीं भागी नहीं जा रही है बेटी! तुम क्यों नहीं समझतीं?"

किरण उठ खड़ी हुई, बोली, "मुझे समझने की ज़रूरत भी नहीं है। अपने सभी लोगों के चले जाने पर भी यदि हमारे दिन बीते हैं तो उपेन बाबू के न रहने पर भी काम न रुकेगा।" कहकर रसोईघर की ओर वह चली गयी।

अघोरमयी क्रोध से बातें न कह सकी और जितनी देर तक बहू दिखायी पड़ती रही, उतनी देर तक उनके जलते हुए दोनों नेत्र मानो उसे ठेलकर विदा करते रहे। इसके बाद अत्यन्त क्रोध के साथ दासी को पुकारने लगीं। उसकी भी आहट नहीं मिली। वह शीत के भय से संध्या के पहले खन्-खन्, झन्-झन् शब्द करके बरतन माँजने-धोने का काम समाप्त कर रही थी, उनका क्रुद्ध आह्वान उसे सुनायी नहीं पड़ा। तब अपने कमरे का दीपक हाथ में लेकर बरामदे के पास आकर चिल्लाकर बोलीं, "तूने क्या अपने कानों में रूई ठूँस ली है? क्या तुझे सुनायी नहीं पड़ता कि उपेन बाबू एक घण्टे से खड़े बाहर पुकार रहे हैं।"

यह भयंकर आरोप दासी ने सुन लिया और उपेन का नाम सुनकर उठ पड़ी। दौड़ती हुई जाकर उसने किवाड़ खोल दिया, लेकिन कोई भी नहीं था। बाहर गर्दन बढ़ाकर अन्धकार में जितनी दूर दिखायी पड़ा अच्छी प्रकर देखने पर भी किसी को न देख पाने पर वापस आकर बोली, "कोई भी तो नहीं है माँ!"

अघोरमयी दीपक हाथ में लिए उद्विग्न होकर प्रतीक्षा कर रही थीं। अविश्वास करके बोलीं, "नहीं क्या रे! मैंने तो अपने ही कानों से उनकी पुकार सुनी है, तूने गली में जाकर एक बार देखा क्यों नहीं?"

दासी ने कहा, "मैंने देखा है, कोई नहीं है।"

यह बात विश्वास करने के योग्य नहीं थी। उपेन कल आया नहीं तो क्या आज भी नहीं आयेगा? इसीलिए खीझकर बोलीं, "तू जा, फिर एक बार अच्छी तरह देख आ, कोई

है या नहीं?"

बाहर अँधेरी गली में दासी को जाने में आपत्ति थी। उसने खीझकर उत्तर दिया, "तुम्हारी यह कैसी बात है माँ! वह क्या आँखमिचौनी खेल रहे हैं कि अँधेरी गली में जाकर हाथ से टटोलना पड़ेगा?" यह कहकर वह काम में लग गयी।

अघोरमयी अपने कमरे में वापस आकर निर्जीव की भाँति बिछौने पर लेट गयी। बीमार लड़के का समाचार जानने का उत्साह भी उनको नहीं रहा। उन को बार-बार केवल यही ख़्याल होने लगा कि, वह कल आया ही नहीं, आज भी नहीं आया। सम्भव-असम्भव तरह-तरह के कारणों के ढूँढ़ने में यह बात उनके मन में एक बार भी नहीं आयी कि वह कलकत्तावासी नहीं है, अन्यत्र उसका घर-बार और आत्मीय स्वजन हैं, वहाँ लौट जाना भी सम्भव है। सोचते-सोचते एकाएक उनको ख़्याल आया कि अप्रसन्न तो नहीं हो गया। इस बात को दुहराने के साथ ही उनका हृदय आशंका से भर गया, और बहू के पलभर पहले के आचरण के साथ मन ही मन मिलाकर देखते ही उनका सन्देह दृढ़ हो गया – "ऐसी ही तो बात है। बहू यदि अब..... वह फिर लेटी न रह सकीं, उठकर रसोईघर की तरफ़ चली गयीं।"

किरणमयी जलते हुए चूल्हे की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी हुई थी। जलते हुए अंगारे की लाल आभा का अत्यधिक प्रकाश उसके मुख पर पड़ रहा था। माथे पर कपड़ा नहीं था। आज उसने बाल भी बाँधे नहीं थे, इधर-उधर बिखरे हुए केशों को किसी तरह ठीक रह रखा था।

अघोरमयी दरवाज़े के सामने अवाक होकर खड़ी रहीं। आज जो वस्तु उनकी दृष्टि में पड़ी, उसको सम्पूर्ण रूप से हृदयंगम करने की सामर्थ्य उनका नहीं था। जिस स्तब्ध मुखमण्डल पर चूल्हे की लाल आभा से युक्त प्रकाश विचित्र तरंगों की भाँति खेलता हुआ घूम रहा था, वह मुँह उनकी समस्त अभिज्ञता के बाहर था, इस मुख में कोई त्रुटि है या नहीं इसकी आलोचना नहीं चल सकती। निर्दोष भी इसे नहीं कहा जा सकता। यह तो आश्चर्यजनक है। इसको पहले कभी नहीं देखा है – यह आश्चर्य है। निर्निमेष दृष्टि से बड़ी देरतक देखते रहने पर भी हठात उनके मुँह से लम्बी साँस निकल पड़ी।

उस शब्द से चौंककर बहू ने देखा, सास खड़ी हैं। गिरे हुए आँचल को माथे पर खींचकर उसने कहा, "तुम यहाँ क्यों माँ?"

कण्ठस्वर सुनकर वे और भी चौंक पड़ीं। ऐसा शान्त, ऐसा करुण कण्ठ-स्वर उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था। झट बोल उठीं, "तुम अकेली ही रसोई पका रही हो बेटी, इसीलिए ज़रा बैठने के लिए आयी हूँ।"

बहू उनकी ओर पीढ़ा ठेलकर चूल्हे की तरफ़ देखती हुई चुप हो रही। उसके मन में फिर झुँझलाहट सिर उठाकर खड़ी हो गयी। गन्ध जिस तरह हवा का आश्रय ग्रहण करके फूल के बाहर चली आती है, किन्तु आँधी में उड़ जाती है, किरणमयी का तत्कालीन मनोभाव सास के आकस्मिक आगमन से उसी तरह क्षणभर में बाहर आने के साथ ही इस पद्म स्नेह

के तूफ़ान से उड़ गया। यह सत्य नहीं है – भद्दी प्रतारणा मात्र है। किन्तु झगड़ा करना उसको अच्छा नहीं लग रहा था। निरन्तर झगड़ा करके वह सचमुच ही थक गयी थी।

कुछ देर तक स्थिर रहकर अघोरमीय बोलीं, “दासी को बुला दूँ?”

किरणमयी अन्दर के समस्त विद्रोह को रोककर शान्त भाव से बोली, “क्या आवश्यकता है माँ। मैं नित्य ही अकेली रसोई पकाती हूँ – अकेली रहने का मेरा स्वभाव हो गया है, बल्कि वह कमरे में अकेले पड़े हैं – उनके पास जा कर कोई बैठता तो अच्छा होता।”

बीमार सन्तान का उल्लेख होने से जननी आघात पाकर व्यग्र होकर बोली – “तो मैं जाती हूँ, तुम भी जल्दी ही काम पूरा करके आ आना बेटी।”

इस बीच ही उपेन्द्र अपने घर चले गये थे, सतीश भी केवल एक ही दिन उपेन्द्र के साथ हारान को देखने आया था – फिर नहीं आया – वह अपनी व्यथा लेकर ही घबराहट में पड़ा था। उपेन्द्र ने उसका अन्यमनस्क भाव तथा इस घर में न आने की इच्छा जानकर उस को फिर नहीं बुलाया, चिकित्सा और अन्यान्य व्यवस्थाएँ वह स्वयं ही कर रहे थे। केवल कलकत्ता छोड़कर घर लौट जाने के दिन सतीश को बुलाकर बीच-बीच में ख़बर लेते रहने और उनको पत्र लिखकर समचार भेजने का अनुरोध करके चले गये थे। आज स्कूल से लौटते ही सतीश को उपेन्द्र का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है, “मुझे आशा है, तुम्हारी पढ़ाई अच्छी तरह चल रही है। कई दिनों से हारान भैया का समाचार न मिलने से चिन्तित हूँ। यद्यपि मैं जानता हूँ, समाचार देने की आवश्यकता ही नहीं हुई, इसलिए तुमने नहीं दिया, तथापि उनकी चिकित्सा कैसी हो रही है, लिखना।”

सतीश की पीठ पर मानो कोड़े की मार पड़ी। उसने एक दिन भी जाकर खोज-ख़बर नहीं ली। इस बीच उस घर में कितनी ही घटनाएँ घटित हो सकती हैं, तो भी उसके ही ऊपर निर्भर रहकर उपेन भैया घर चले गये हैं। वह शीघ्रता से नीचे उतर गया। बिहारी जलपान ला रहा था, धक्का खाकर उसकी थाली और गिलास गिर पड़ा। सतीश ने घूमकर देखा ही नहीं। मार्ग में आकर एक ख़ाली गाड़ी पर चढ़ बैठा और तेज़ चलाने का अनुरोध करके मार्ग की ओर सर्तक होकर देखता रहा। उसको भय था कि कहीं पहचान में न आने से गली छूट न जाय। बीस मिनट के बाद, जब छोटी सी गली में पहुँचा, तब तक भी दिन का प्रकाश शेष था, पैरों के नीचे खुला पनाला और चलने का रास्ता था और ऊपर आकाश और प्रकाश तब तक भी मिलकर एक नहीं हुए थे। तेज़ क़दम बढ़ाकर 13 नम्बर के मकान के सामने पहुँचते ही किवाड़ खुल गये। कोई मानो उसके ही लिए प्रतीक्षा कर रहा था।

सतीश का हृदय काँप उठा, एकाएक वह प्रवेश न कर सका।

द्वार के निकट ही किरणमयी खड़ी थी। उसने अपना हँसता हुआ मुख ज़रा बाहर निकालकर अत्यन्त आदर से कहा, “आओ बबुआजी, खड़े क्यों हो?”

फिर वही बबुआजी! लज्जा से सतीश का मुख लाल हो गया। लेकिन उसी क्षण सम्भलकर वह विनीत भाव से बोला, “लगता है, आपने अभी तक मुझे क्षमा नहीं किया।”

किरणमयी ने कहा, “नहीं, तुमने तो क्षमा माँगी नहीं। माँगने के पहले ही अपनी ही

अच्छा से देने से मानो लोगों को मानहानि होती है। मानहानि करने योग्य कम दाम की वस्तु तो तुम हो नहीं बुआजी।"

उसके इस प्रसन्न रहस्यपूर्ण वार्तालाप के बीच भी ऐसी एक गम्भीर करुणा स्पष्ट हो उठी कि, सतीश ने मुँह झुका गम्भीर कण्ठ से कहा, "मेरा कुछ भी दाम नहीं है भाभी जी। मेरी कोई मानहानि न होगी – मुझे आप क्षमा करें!"

किरणमयी हँसकर बोली, "ऐसी बहुत-सी बातें हैं बबुआजी, जिनको क्षमा करने से ही वे समाप्त हो जाती हैं। आज तुमको माफ़ करने पर यदि फिर सतीश बाबू कहकर पुकारना पड़े तो उस दशा में यह मैं कहे देती हूँ बबुआजी, वह क्षमा तुम पाओगे नहीं। अपने को पकड़ रखने की वही जो थोड़ी-सी जंजीर तुमने स्वयं अपने हाथों से उठाकर दे दी है, उसको अपनी मीठी-मीठी बातों से भुलावे में डालकर वापस ले लोगे, उतनी मूर्ख यह भाभी नहीं है।" यह कहकर उस ने विशेष रूप से गरदन हिला दी। लेकिन सतीश चौंक उठा। यह जंजीर बाँधने कसने की उपमा उसे जँची नहीं। वरन हठात, उसे मालूम हुआ, उसको असावधान पाकर यह लड़की सचमुच ही कोई कहीं जंजीर उसके पैरों में बाँध रही है और क्षणभर में उसकी समस्त सहज बुद्धि आत्मरक्षा के लिए सजधज कर खड़ी हो गयी। घर में प्रवेश करते समय उसकी आँखों में जो दृष्टि कर्तव्यभ्रष्टता के धिक्कार से कुण्ठित और लज्जा से विनम्र दिखायी पड़ी थी, धक्का खाकर वह सन्दिग्ध और तीव्र हो उठी।

किरणमयी ने कहा, "तुम्हारा मुँह सूख गया है बबुआजी, शायद अभी तक तुमने जलपान भी नहीं किया है? आओ, ऊपर चलो, कुछ खा लो।"

सतीश ने कुछ भी न कहकर निमंत्रण स्वीकार कर लिया। इस सारे रहस्य-कौतुक में कितना रहस्य है और कितना नहीं, इस पर मन ही मन विचार करते हुए वह किरणमयी के पीछे चल पड़ा।

ऊपर चढ़कर बहू ने इधर-उधर देखकर कहा, "आज दासी को साथ लेकर माँ काली बाड़ी गयी हैं। रसोईघर में बैठकर तुम मेरी पूड़ियाँ बेल देना, मैं छान लूँगी। बेल सकोगे तो?" यह कहकर वह हँस पड़ी। बोली, "बेल सकोगे, यह तो तुमको देखने से ही ज्ञात होता है – आओ।"

सतीश ने अपने हृदय के द्वन्द्व को रोककर भले आदमी की तरह प्रश्न किया, "पूड़ी बेल सकता हूँ, यह बात क्या मेरे शरीर पर लिखी है, भाभी जी?"

किरणमयी बोली, "लिखावट पढ़ने की जानकारी रहनी चाहिए! उस रात मेरे शरीर पर ही क्या कुछ लिखा था – जिसे तुम पढ़ गये थे!"

सतीश ने फिर मुँह झुका लिया। उसके बाद दोनों मिलकर जब भोजन बनाने लग गये और इस संघर्ष की गरमी बहुत कुछ ठण्डी हो चली तब किरणमयी ने पूछा, "तुम्हारे बारे में बहुत-सी बातें तुम्हारे उपेन भैया के मुँह से मैं सुन चुकी हूँ। अच्छा, बबुआजी, वह इस समय यहाँ नहीं हैं, शायद घर लौट गये हैं?"

सतीश के हाँ कहने पर किरणमयी ने कहा, "वह यहाँ नहीं हैं, लेकिन माँ विश्वास करना

नहीं चाहतीं। माँ कहती हैं, उनको बिना बताये उपेन बाबू न जायेंगे – उनको शायद एकाएक चला जाना पड़ा है।"

सतीश को इस बात की ठीक-ठीक जानकारी नहीं थी। वस्तुतः उसे कुछ भी ज्ञात नहीं था। इस बीच इन लोगों के कारण ही दोनों मित्रों में जो अप्रिय बातें हो चुकी हैं, वे भी कही नहीं जा सकतीं – सतीश चुप हो रहा। न कहकर चले जाने का कारण क्या है, इसका वह किसी तरह भी अनुमान न कर सका। लेकिन किरणमयी ने बात को दबाने नहीं दिया, बोली, "यह काम तुम्हारे भैया का अच्छा नहीं हुआ बबुआजी। कहकर जाने से कोई उनको पकड़कर नहीं रखता, फिर भी माँ इस तरह चिन्तित होकर विकल नहीं होतीं! मैं किसी भी तरह उनको समझा नहीं सकती कि उपेन बाबू बराबर यहाँ नहीं रहते, अन्यत्र उनका घर-द्वार है, काम-काज है, यह सब छोड़कर कोई मनुष्य कितने दिन दूसरे का दुर्भाग्य लेकर रुका रह सकता है? लेकिन बूढ़ी माँ के सामने युक्ति नहीं चलती। अपनी आवश्यकता के सामने संसार में वह कुछ देख नहीं सकतीं।"

सतीश उस बात का ठीक-ठीक उत्तर न देकर बोला, "उपेन भैया इतने दिन बाहर थे, यही तो आश्चर्य है! कहीं भी अधिक दिन रहने का उनका स्वभाव नहीं है। विशेषतः ब्याह के बाद से एक रात भी कहीं रखने के लिए हमें सिर पटकना-फोड़ना पड़ता है। पहले सभी विषयों में वह हम लोगों के स्वामी थे, अब एक-एक करके सब छोड़कर घर के कोने में जा छिपे हैं – कचहरी में बिल्कुल ही न जाने से काम नहीं चलता, इसीलिए शायद, एक बार चले जाते हैं, यही एक बार देखिए न – ।"

बहू ने बाधा देकर कहा, "बैठो बबुआजी, तुम्हारे लिए खाने की जगह ठीक कर दूँ तो बैठूँ। तुम खाते-खाते बातें करोगे, वह अच्छा होगा" यह कहकर आसन बिछाकर थाली में खाने की चीज़ें सजाकर वह पास बैठ गयी और अत्यन्त आग्रह के साथ बोली, "उसके बाद?"

सतीश पूड़ी का एक टुकड़ा मुँह में डालकर बोला, "वह एक विवाह कराने के लिए बारात में जाने की बात है भाभीजी! उपेन भैया बड़े अगुआ हैं – कितने लोगों के ब्याह उन्होंने कराये हैं, इसका ठिकाना नहीं है। हम लोगों के दल के ही एक लड़के का ब्याह था, अगुआई से आरम्भ करके सारा उद्योग-आयेजन उपेन भैया ने अपने हाथों किया। फिर भी, ब्याह की रात को भैया को देखा नहीं गया। 'छोटी बहू की तबीयत ठीक नहीं है' कहकर किसी तरह भी घर से बाहर नहीं निकले। ओह! हम सभी लोगों ने मिलकर कितना अनुरोध किया भाभी जी! लेकिन कुछ भी फल नहीं हुआ। पत्थर के देवता से वरदान मिल गया होता, लेकिन अपने भैया को सहमत नहीं किया जा सका। 'मैं अच्छी तरह हूँ' कहकर छोटी बहू ने स्वयं अनुरोध किया तो बोले, "तुम्हारे भले-बुरे का विचार करने का भार मेरे ऊपर है, तुम्हारे ऊपर नहीं, तुम चुप रहो।"

किरणमयी मौन होकर बैठी रही। उसका समस्त अतीत जीवन उसके ही अँधेरे अन्तस्तल में उतरकर टटोलकर न जाने किसको ढूँढता हुआ घूमने लगा। लेकिन सतीश

कुछ न समझ सका। कौन कहानी कहाँ किस तरह जा लगती है, उसकी ख़बर क्या वह रखता है! वह कहने लगा, "इस अनुपस्थिति से किसने किस तरह निन्दा की, किसने क्या कहकर उपहास किया था, कितना आनन्द चौपट हो गया था, यह सब।"

लेकिन श्रोता कहाँ था? इस तुच्छ कहानी से तो किरणमयी तब बहुत दूर चली गयी थी।

एकाएक सतीश ने पूड़ी खाना और कहानी सुनाना बन्द करके पूछा, "आप सुन रही हैं या कुछ सोच रही हैं?"

किरणमयी चकित होकर हँसकर बोली, "सुनती तो अवश्य हूँ बबुआ। लेकिन मैं कहती हूँ, बीमारी-तकलीफ़ में सेवा करना ही तो अच्छा है।"

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "अच्छा है, लेकिन यह ज़्यादती करना क्या अच्छा है? उस बार जब छोटी बहू को छोटी माता निकल पड़ी थीं, उपेन भैया आठ-दस दिन उनके सिरहाने से न उठे। घर में इतने लोग हैं, उनको नहाना-खाना बन्द करने की क्या आवश्यकता थी?"

किरणमयी ने क्षणभर उसके मुख की ओर चुपचाप देखते रहकर पूछा, "अच्छा बबुआजी, तुम्हारे उपेन भैया क्या छोटी बहू को बहुत ही प्यार करते हैं?"

सतीश बोला, "ओह! बहुत अधिक प्यार करते हैं।"

किरणमयी फिर कुछ देर तक चुप रहकर ताकती रही, बोली, "छोटी बहू देखने में कैसी हैं बबुआ जी? अत्यन्त सुन्दरी हैं?"

हाँ, अत्यन्त सुन्दरी।"

किरणमयी ने मुस्काराकर कहा, "मेरी तरह?"

सतीश मुँह झुकाये रहा। क्षणभर बाद कुछ सोचकर मुँह ऊपर उठाकर उसने पूछा, "आप क्या यह बात सचमुच ही जान लेना चाहती हैं?"

"सचमुच ही बबुआ जी।"

सतीश बोला, "देखिये, मेरे मतामत का अधिक मूल्य नहीं है, लेकिन अगर कहना ही हो तो उस दशा में मैं यही कह सकता हूँ, आपकी तरह सुन्दरता शायद इस संसार में नहीं है।"

किरणमयी कोई एक उत्तर देने जा रही थी, लेकिन ठीक उसी समय नीचे चिल्लाहट की आवाज़ से उठ पड़ी। माँ वापस आ गयी थीं।

सतीश अपना जलपान समाप्त कर ज्योंही बाहर आया, त्योंही अघोरमयी के सामने पड़ गया। उन्होंने सतीश के मुँह की ओर देखकर बहू से पूछा, "यह उपेन के भाई हैं न बहू? वह कहाँ है?"

किरणमयी बोली, "वह अपने घर चले गये।"

अघोरमयी संक्षेप में 'अच्छा' कहकर अपना सिन्दूर-चन्दन चर्चित मुँह स्याह बनाकर अपने लड़के के कमरे में चली गयी।

सतीश ने कहा, "तो मैं अब जाता हूँ भाभी जी।"

किरणमयी अन्यमनस्क भाव से बोली, "जाओ।"

सतीश दो-एक क़दम जाकर ही लौटकर बोला, "उपेन भैया ने पत्र भेजा है। उन्होंने पूछा है, हारान भैया की चिकित्सा कैसी चल रही है?"

किरणमयी बोली, "चिकित्सा बन्द है। जो डाक्टर चिकित्सा कर रहा था, उनसे कराने की राय नहीं है, लेकिन, राय क्या है, यह भी बताकर नहीं गये हैं।"

सतीश आश्चर्य में पड़कर बोला, "यह कैसी बात! चिकित्सा बिल्कुल ही बन्द करके बैठी हुई हैं – यह कैसी व्यवस्था है?"

"व्यवस्था न करके ही वह चले गये। मुझे मालूम हो रहा है, मानो एक बार उन्होंने कहा था, सतीश यहीं रहता है, वही व्यवस्था करेगा – पर तुम भी तो नहीं आते बबुआ जी!"

सतीश क्षणभर अवाक होकर खड़ा रहा, बोला, "कल सबेरे ही आऊँगा।" कहकर वह शीघ्रता से बाहर चला गया।

सतीश के जाने के बाद किरणमयी पति के कमरे के दरवाज़े को ज़रा-सा खोलकर भीतर की ओर देखा – वे एक मोटी तकिया के सहारे लेटे माँ से बातें कर रहे हैं। आज भी उन्हें बुख़ार नहीं आया है, यह समाचार लेकर वह वापस आ गयी। बाहर अँधेरे में बैठकर अपूर्व ममता के साथ इस बात को लेकर आत्ममग्न हो गयी। आज सतीश की जबानी उपेन्द्र के अधःपतन के इतिहास ने उसके हृदय में माधुर्य भर दिया था, इसीलिए आज जो कुछ यहाँ आ गया, वही मधुर बनकर किरणमयी को अनिवर्चनीय रस में स्निग्ध करने लगा।

सत्रह

उस रात सतीश के चले जाने पर बड़ी देर तक किरणमयी अँधेरे बरामदे में चुपचाप बैठी रही। अन्त में उठकर रसोईघर में जाकर, रसोई चढ़ाकर फिर स्तब्ध होकर बैठी रही।

उसके हृदय में आज सतीश अपने अनजाने में सुरबाला आदि अपरिचित नर-नारियों का दल लाकर यह जो एक अद्‌भुत नाटक का अस्पष्ट नाटक आरम्भ करके चला गया, सूने कमरे में अकेली बैठकर उसको स्पष्ट रूप से देखने का लोभ एक ओर किरणमयी में जैसा प्रबल हो उठा दूसरी ओर कोई अनिश्चित आशंका उसके हाथ-पैर, नेत्रों की दृष्टि को उसी प्रकार भारी बनाने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा मानो अँधेरी रात के भूत की कहानी की भाँति यह संस्मरण उसको लगातार एक हाथ से खींचने और दूसरे हाथ से ठेलने लगा। इसी प्रकार विचित्र स्वप्नजाल में पड़ी हुई वह जब अत्यन्त अभिभूत हो रही थी, उसी समय जूते की आवाज़ सुनकर चौंककर निगाह दौड़ाते ही उसने देखा, दरवाज़े के बाहर ही डाक्टर अनंगमोहन खड़े हैं।

किरणमयी माथे के कपड़े को थोड़ा-सा खींचकर उठ खड़ी हुई। डाक्टर ने यह देखकर भौंहें तान लीं।

इसके पूर्व यह डाक्टर ठीक इसी स्थान पर अनेक बार आकर खड़े हुए हैं और उसके कर-कमलों की बनी रसोई के लोभ से अतिथि बनने का आवेदन करके कई बार हँसी-मज़ाक कर गये हैं। उसी पुरातन इतिहास की पुनरावृत्ति की कल्पना करके ही किरणमयी का चित्त तिक्त हो उठा। वह कठोर बनकर उसी की प्रतीक्षा करके खड़ी रही। लेकिन डाक्टर ने मज़ाक नहीं किया, क्रुद्ध गम्भीर मुँह से कुछ देर तक चुप रहकर कहा, "दस-बारह दिन मुझे बाहर रहना पड़ा, इसलिए हारान बाबू के लिए मैं बहुत ही चिन्तित हो गया था, लेकिन आकर देख रहा हूँ, उद्वेग का कुछ भी कारण नहीं था।"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं, वह अच्छी तरह ही थे।"

"अच्छी तरह रहें वही अच्छा है। अब तो मेरी कोई आवश्यकता है नहीं? क्या राय है?"

किरणमयी ने इसके उत्तर में गरदन हिलाकर कहा, "नहीं।"

डाक्टर ने कहा, "तुम लोगों को मेरी आवश्यकता न रहने पर भी मेरी आवश्यकता अभी तक समाप्त नहीं हुई। यही बात कहने के लिए मुझे इतनी दूर आना पड़ा है।"

किरणमयी ने मुँह न उठाकर ही धीरे-धीरे कहा, "अच्छी बात तो है, माँ अभी तक जाग रही हैं, उनसे कह देना ज़रूरी है – मुझसे कहना बेकार है।"

डाक्टर ने अपने मुँह को अत्यन्त गम्भीर बनाकर कहा, "मैं उनके पास से ही आ रहा हूँ, उनका भी कहना है, ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत ख़त्म हो गयी है, यह मैं भी समझ गया हूँ, लेकिन 'डाक्टर की बिदाई' एक कहावत है, उसको भूल जाने से काम नहीं चलता।"

किरणमयी चुप हो रही।

डाक्टर व्यंग्य करके कहने लगे, "आज पाँच-छः महीने के बाद यह भार तुम ही लोगी, अथवा तुम्हारी सास ही लेंगी, यह तुम लोगों की आपसी बात है। किन्तु 'जाओ' कह देने से ही तो डाक्टर नहीं चला जाता किरण।"

डाक्टर के मुँह से अपना नाम सुनकर आज वह मानो उसको तीर की भाँति बींध गया। वह इस तरह सिहर उठी कि उस क्षीण प्रकाश में भी डाक्टर ने उसे देख लिया।

किरणमयी ने मधुर कण्ठ से पूछा, "क्या चाहते हैं आप, रुपया?"

डाक्टर ने हँसी का बहाना दिखाकर कहा, 'आप' क्यों कहती हो? यहाँ और कोई उपस्थित नहीं है, 'तुम' कहने में भी दोष नहीं होगा। लेकिन इतने दिनों तक मैं क्या माँगता रहा हूँ, सुनूँ? क्या वह रुपया था?"

पुनः किरणमयी का समूचा शरीर कण्टकित हो उठा।

डाक्टर बोले, "रुपया नहीं चाहता यह बात कहना बहुत कठिन है। अब तुमको जबकि उसका अभाव नहीं है, तब रुपया देकर ही विदा कर दो। मैं दोनों ही ओर से ठगे जाने को राजी नहीं हूँ। लेकिन तुमको इतने दिनों में मेरे मन की बात ज्ञात हो गयी है, इसके लिए मैं तुमको धन्यवाद देता हूँ। आज अब मैं ज़्यादा तंग न करूँगा। क्या मैं कल एक बार आ सकता हूँ?"

यह मनुष्य भीतर ही भीतर किस तरह जल रहा था और यह सब उसका ही फेंका उत्तप्त भस्मावशेष है, इसे निश्चित समझकर भी किरणमयी ने शान्त दृढ़ स्वर में मुँह ऊपर उठाकर कहा, "नहीं। आप ठहरिये, मैं इसी समय ला देती हूँ।" कहकर पास का दरवाज़ा खोलकर वह शीघ्रता से चली गयी।

इस बार डाक्टर शंकित हो उठे। किरण को वे पहचानते थे। कहाँ क्या लेने के लिए गयी है, हठात् इतनी रात को कैसा एक असम्भव काण्ड कर कहाँ का हंगामा कहाँ खींच लायेगी! वह चोट खाकर गयी है, लौटकर निर्दय प्रतिघात अवश्य करेगी। उसके सुनिश्चित प्रतिशोध की कठोरता की कल्पना कर अनंगमोहन आशंका से स्तम्भित हो रहे।

किरणमयी को लौट आने में विलम्ब नहीं हुआ। उसने चुपचाप मुँह झुकाये आँचल में बँधे हुए कुछ आभूषण डाक्टर के पैरों के निकट बिखेरकर धीरे-धीरे कहा, "यह ले लीजिये, आपका पावना कितना है, उसका हिसाब इतने दिनों के बाद करना व्यर्थ है। इतना समय भी मेरे पास नहीं है, धीरज भी न रहेगा – जो कुछ मेरे पास था, सब ही आपको लाकर मैंने दे दिया है, इसी को लेकर हमें छुटकारा दीजिये – आप जाइये।"

अनंग चुप हो रहे। किरण ने कहा, "देर कर रहे हैं किसलिए? विश्वास कीजिये, मेरे पास और कुछ भी नहीं है। जो कुछ था, सब लाकर मैंने दे दिया है – रात हो रही है, आप विदा होकर जाइये।"

अनंग भयग्रस्त होकर बोले, "मैंने तो तुम्हारे शरीर के गहने माँगे नहीं – केवल रुपया माँगा था। वह भी..."

किरण अत्यन्त उग्र भाव से बोली, "गहने भी रुपये हैं, यह बात समझने की उमर आपकी हो गयी हैं। व्यर्थ ही बहाना करके क्यों झूठमूठ देर कर रहे हैं!"

इस बार अनंग ज़ोर से सिर हिलाकर बोल उठे, "नहीं, मैं किसी तरह भी यह सब न ले सकूँगा।"

किरणमयी निकट ही बैठ गयी थी, विद्युत वेग से उठ खड़ी हुई और बोली, "क्या? क्यों न ले सकेंगे? आप दया कर रहे हैं किस पर? आपको जो कुछ मैंने दिया, उसे किसी तरह भी मैं वापस न ले सकूँगी, यह बात मैं निश्चित रूप से कहे देती हूँ।" एक क्षण मौन रहकर उसने कहा, "आप यदि न भी लेंगे तो कल यह सब ही ग़रीबों में बाँट दूँगी, लेकिन घर में रखकर किसी तरह भी पति का अकल्याण न करूँगी।" यह कहकर पैरों से उन सब को ज़रा ठेलकर उसने कहा, "लीजिये, उठाइये इन सबको।" अन्तिम बात इतनी कड़ी सुनायी पड़ी कि हतबुद्धि अनंगमोहन झुककर उन सबको बटोरने लगा।

किरणमयी क्षणभर उस ओर ताकती रही, फिर अपनी उग्रता को सम्भालकर घृणा के साथ उसने कहा, "ले जाये, ये सब चिह्न इस मकान में जब तक रहेंगे, तब तक मेरे मुँह में अन्न न रुचेगा, न आँखों में नींद आयेगी।"

डाक्टर सबको समेटकर उठ खड़ा हुआ। किरणमयी ने अधीर भाव से कहा, "रात तो बहुत हो गयी!"

डाक्टर ने कहा, "जा रहा हूँ। लेकिन तुमने भी भूल की। ये गहने मैंने तो दिये नहीं, सब ही तुम्हारे अपने हैं। तो भी, क्यों मेरे न लेने से तुम ग़रीब-दुखियों में बाँट दोगी, यह मैं समझ न सका। मुझे तुम क्षमा करो किरण।"

किरण धमकाकर बोली, "फिर मेरा नाम लेते हैं! हाँ, वे सब मेरी ही वस्तुएँ हैं अवश्य, लेकिन उन सबके मोह से ही मैंने आपसे सहायता ली थी। रात बहुत हो गयी है। डाक्टर साहब।"

डाक्टर ने अपने नाम का छपा कार्ड निकालकर कहा, "मेरे मकान का यह पता...।"

"दीजिये!" कहकर किरणमयी ने हाथ बढ़ाकर ले लिया, और पीछे की ओर जाकर जलते हुए चूल्हे में उसे फेंककर कहा, "इससे अधिक मुझे ज़रूरत न पड़ेगी। आप अभी-अभी मुझसे क्षमा माँग रहे थे न? आपको पूर्णरूप से क्षमा कर सकूँगी, इसीलिए मैंने आपका सब ऋण, सब सम्बन्ध समाप्त कर डाला। किसी दिन किसी कारण से भी आपकी कोई बात मेरे मन में न आये, जाते समय केवल यही बात आप कहते जाइये।" और किसी तरह के प्रश्नोत्तर की प्रतीक्षा न करके किवाड़ बन्द करके वह अपनी रसोई की जगह पर वापस जाकर बैठ गयी।

बाहर डाक्टर के पैरों का शब्द जब उसके कानों के बाहर चला गया, तब उसने एक लम्बी साँस लेकर देखा, चूल्हा बुझ गया है। फूँककर उसे जलाकर और एक लम्बी साँस लेकर वह फिर चुपचाप बैठ गयी।

बाहर डाक्टर के पैरों का शब्द जब उसके कानों के बाहर चला गया, तब उसने एक लम्बी सास लेकर देखा, चूल्हा बुझ गया है। फूँककर उसे जलाकर और एक लम्बी साँस लेकर वह फिर चुपचाप बैठ गयी।

प्यास से गला सूख गया था, तब भी वह उठ न सकी। उसको ख़्याल होने लगा, मानो बाहर के अन्धकार में तब भी कोई एक आतंक उसके लिए हाथ बढ़ा कर प्रतीक्षा कर रहा है। छाती के अन्दर ऐसा ही कुछ अशान्त हो उठा कि दोनों बाहुओं से ज़ोर लगाकर उसने उसे दबा रखा। बिदाई के इस कार्य को एक दिन उसको पूरा करना ही पड़ेगा, यह बात वह निश्चित रूप से जानती थी। कारण एक आकाश बेल उसके सर्वांग को घेरता जा रहा था, यह बात जितनी याद करती, उतना ही उसका मन विषाक्त होता जा रहा था, फिर भी इस वीभत्स बन्धन से छुटकारा पाने का साहस अपने आप में जुटा नहीं पा रही थी। ऐसे ही दिन गुज़र रहे थे, अनुक्षण सहती रही, पर कुछ कह नहीं सकी। इतना बड़ा कठिन कार्य आज सहज ही सम्पन्न हो गया। यही बात आज अपने अन्तर में अनुभव कर रही थी। प्रयोजन आ पड़ने से उसने जिस पाप को अपने घर में बुलाकर पाल-पोसकर बड़ा किया था वह आज 'जाओ' कह देने से ही चला गया, असम्भव काम कैसे हो गया। मान-भिक्षा, मान-मनौवल, रोना-धोना, अनुनय-विनय आदि असम्भव घटनाएँ तप्त शलाकों की तरह बिंधते रहे, वह सब बाकी रह गये। वह क्या एक दिन के लिए या हमेशा के लिए समाप्त हो गये?

हठात दरवाज़ा खुलने की आवाज़ से किरण ने चकित होकर मुँह ऊपर उठा कर देखा, दासी कह रही है, “चूल्हा बुझकर तो पानी हो गया बहू! रात भी कम नहीं हुई है।”

किरणमयी झटपट उठ पड़ी, उसके पास जाकर चुपके-चुपके उसने पूछा, “डाक्टर है या चला गया रे?”

हाथ के दीये को तेज़ करते-करते वह बोली, “उनको तो गये लगभग दो घण्टे हो गये। लकिन तुमको कहे देती हूँ बहूजी।” अकस्मात उसकी जीभ रुक गयी। दीये को ऊपर उठाकर आभूषणहीन बहू का सर्वांग बार-बार निरीक्षण करके फ़र्श के ऊपर दीपक को रखकर वह बैठ गयी और बोली, “यह सब कैसा काण्ड है बहू!”

अठारह

दिवाकर के बड़े दुःख की रात बीत गयी और सवेरा हो गया। कल सबेरे उसे गुप्त रूप से बी.ए. की परीक्षा में फेल होने की ख़बर मिली थी और संध्या को अपने ही विवाह के बारे में, अपने ही कमरे के सामने खड़े होकर उपेन भैया को प्रसन्नचित्त से, परम उत्साह के साथ भट्टाचार्यजी के साथ बातचीत करते सुनकर वास्तव में ही उसने निश्छल हृदय से अपनी मृत्यु-कामना की थी। सद्यः पुत्रहारा जननी जिस प्राकर दुःख से सोती है, दुःख से जागती है, उसी अभागिन की तरह वह भी दुःख से जाग उठा। आँखें खोलकर उसने देखा कि पूर्व दिशा के शीशे में प्रकाश झलमला रहा है। आज इस प्रकाश से अपना कोई सम्बन्ध है, इसे अनुभव नहीं कर सका। नित्य दिवस के इस किरण को सबेरे उठते ही अभिवादन करना चाहिए – इसका भी ज्ञान नहीं रहा। पथिकशाला के सम्पूर्ण अपरिचित अतिथि की तरह इन किरणों को उसने उदास भाव से देखते हुए बिस्तर पर पड़ा रहा। स्वच्छ काँच के बाहर असीम नीलाकाश दिखायी पड़ रहा था। एकाएक उसके मन में यह ख़्याल उठा कि इस विराट सृष्टि के किसी कोने में भी उसके लिए ज़रा भी स्थान है या नहीं। उसके बाद जितनी दूर तक दिखायी पड़ा, ध्यान से उसने देखा, नहीं, कहीं भी नहीं है। सृष्टिकर्ता ने इतना सृजन किया है ज़रूर, लेकिन ऊपर, नीचे, आसपास, जल में, थल में, सूई की नोक बराबर स्थान भी उसके लिए नहीं रखा है। उसकी माँ नहीं है, उसका बाप नहीं है, घर नहीं है, सम्भवतः जन्मभूमि भी नहीं है। वास्तव में अपना कहलाने वाला कहीं भी कोई नहीं है। यही जो अत्यन्त छोटा-सा कमरा है, शत-सहस्र बन्धनों से जिसके साथ वह जकड़ा हुआ है, होश होने के बाद से जिसने उसको मातृस्नेह की भाँति आश्रय दे रखा है, वह भी उसका अपना नहीं है – यह उसके मामा का घर है। यह आश्रय उसकी जननी का नहीं है – विमाता का है।

इस तरह दुःख की चिन्ताएँ जब क्रमशः जटिल और विस्तृत होती जा रही थीं, अकस्मात उपेन्द्र का कण्ठ-स्वर सुनकर एक ही क्षण में वह सीधे मार्ग को लौट गया। वह झटपट उठ बैठा, खिड़की खोलकर मुँह बढ़ाकर उसने देखा, उपेन्द्र नौकर को कुछ उपदेश बाहर

चले गये, वे तो किसी तरफ़ न देखकर सीधे चले गये, लेकिन दिवाकर ने अपनी उन दोनों आँखों में व्यथा अनुभव करके मुँह घुमा लिया। उसको ज्ञात हुआ, मानो छोटे भैया के उन्नत ललाट पर कुछ-कुछ सूर्य-किरणें धक्का खाकर उसके नेत्रों पर आकर पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। वह फिर एक बार शय्या का आश्रय लकर निर्जीव की भाँति आँखें बन्द करके लेट गया और दुश्चिन्ताओं ने उसी क्षण उसको फिर दबा दिया।

आज भी आदत की तरह भोर में नींद खुल गयी थी, पर पिछली रात को वह सो नहीं सका था। सारी रात दुःस्वप्न में भूत-प्रेतों के दल इस शरीर को लेकर खींचातानी कर रहे थे। उनके साँसों की बदबू अभी तक इस कमरे में मौजूद है, आँख बन्द कर लेने पर भी वह इसे अनुभव कर रहा था। फिर याद आया कि वह फेल हो गया है। इतनी मेहनत से की गयी पढ़ाई-लिखाई व्यर्थ हो गयी है। आज इस बात की जानकारी सभी को हो जायगी। इसके बाद? इसके बाद जिस प्रकार धुआँ रसोईवाले कमरे में फैल जाता है, ठीक उसी प्रकार एक निष्फलता ने छोटे द्वार से प्रवेश कर निराशा के अन्धकार से उसके मन को आच्छादित कर लिया है।

दिन के लगभग आठ बज गये हैं। दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर वह उठ बैठा और बोला, "नहीं, किसी भी तरह नहीं। छोटे भैया भले ही रुष्ट हों या भाभी ही दुःख मानें, यह काम मैं किसी भी प्रकार न कर सकूँगा। जो गृहलक्ष्मी होगी वे या तो मेरे ही घर में आयेगी, या किसी दिन भी न आयेगी। रख सकूँगा तो आने पर मैं सम्मान के साथ रखूँगा, न रखूँगा तो कम से कम असम्मान के बीच में खींचकर न लाऊँगा। इस संकल्प से कोई भी मुझे विचलित न कर सकेगा।"

दिवाकर ने धीरे पद से अन्तःपुर में प्रवेश करके पुकारा, "भाभी!"

अन्दर से मृदु कण्ठ की आवाज़ आयी, "आओ!"

दिवाकर ने प्रवेश करके देखा, आलमारी खोलकर उसका सामान निकालकर सुरबाला मुँह झुकाये सन्दूक में सजा रही है। उसने पूछा, "छोटे भैया कहीं बाहर गाँव में जायेंगे?"

सुरबाला ने उसी दशा में कहा, "नहीं, कलकत्ता जायेंगे।"

इसके बाद फिर दिवाकर के मुँह से कोई बात न निकली। अपने कमरे से जो शक्ति उसको ठेलकर ले आयी थी, आवश्यकात के समय वह शक्ति लुप्त हो गयी।वह मौन होकर सोचने लगा, किस तरह आरम्भ किया जाये।

ऐसे ही समय में जूते की आवाज़ सुनायी पड़ी और दूसरे ही क्षण उपेन्द्र परदा हटाकर कमरे में चले आये। दिवाकर अत्यन्त संकुचित होकर भाग जाने की तैयारी कर रहा था कि, उपेन्द्र "खड़ा रह" कहकर आराम से खटिया पर बैठ गये और कुरता उतारते-उतारते उन्होंने पूछा, "तू फेल हो गया कैसे? रोज रात को एक बजे तक जाग-जागकर इतने दिन तू क्या कर रहा था?"

इस बात का और उत्तर ही क्या था? दिवाकर मुँह झुकाये खड़ा रहा।

उपेन्द्र कहने लगे, "इस घर में रहने से तेरा कुछ भी न होगा, देखता हूँ। जा, कलकत्ता

जाकर पढ़, तभी तू आदमी बन सकेगा।"

उसक बाद हँसकर बोले, "भाभी जी के पास तू क्या दरबार करने के लिए आया था? ब्याह न करेगा, यही तो?"

बात सुनकर दिवाकर बच गया। उसका समस्त दुःख मानो धुल-पुछ गया, उसने एकाएक मुस्कराकर मुँह ऊपर उठाकर देखा।

उपेन्द्र हँस पड़े। यद्यपि उस हँसी का मर्म किसी ने नहीं समझा। उसके बाद वह बोले, "अच्छा, अब तू जाकर मन लगाकर पढ़, अगले अगहन तक तेरी छुटी है, उसमें अभी बहुत देर है।" पत्नी की ओर देखकर बोले, "सतीश ने तार भेजा है, हारान भैया की हालत बहुत ख़राब है – मैं रात की गाड़ी तक प्रतीक्षा न कर सकूँगा, इसी ग्यारह बजे की गाड़ी से जाऊँगा। ज़रा थरमामीटर मुझे दो तो देखूँ। ज्वर छूट गया या नहीं – यह क्या, इतना बड़ा ट्रंक क्या होगा? एक छोटी पेटी दो न।"

सुरबाला कपड़े तहियाकर सन्दूक़ में भर रही थी। काम करते-करते मृदु स्वर से बोली, "छोटी पेटी में दो आदमियों के कपड़े न अंटेंगे। मैं भी साथ चलूँगी।"

उपेन्द्र ने अवाक होकर कहा, "तुम जाओगी! पागल हो क्या?"

सुरबाला ने मुँह ऊपर न उठाकर ही कहा, "नहीं।" फिर दिवाकर को लक्ष्य करके कहा, "बबुआजी, ज़रा जल्दी ही स्नान करके खा लो, तुमको मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

दिवाकर ज्योंही आश्चर्य के साथ उपेन्द्र के मुँह की तरफ़ देखने लगा, त्यों ही वे हँस पड़े, बोले, "तू भी पागल हो गया? हारान भैया सख़्त बीमार हैं, शायद दिन पूरे हो चुके हैं। मैं जा रहा हूँ उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने, तुम लोग इसके बीच जाओगे कहाँ? जा, तू अपने काम पर जा।"

सुरबाला न इस बार मुँह ऊपर उठाया। दिवाकर की ओर देखकर शान्त लेकिन दृढ़ स्वर से बोली, "मैं आदेश देती हूँ बबुआजी, तुम जाकर तैयार हो जाओ। तुम्हारे छोटे भैया तीन दिन से ज्वर में पड़े रहे, आज भी ज्वर छूटा नहीं है। इसीलिए मैं साथ जाऊँगी, तुमको भी चलना पड़ेगा। जाओ, देर मत करो।"

उपेन्द्र मन ही मन आश्चर्य में पड़ गये। इसके पहले किसी दिन उन्होंने सुरबाला का इस तरह कण्ठस्वर नहीं सुना था। वह स्वच्छन्द भाव से किसी पुरुष को ऐसे छोटे लड़के की तरह आज्ञा दे सकती है, यह अपने ही कानों से न सुनने पर शायद वह विश्वास ही न कर सकते थे। तिरस्कार के स्वर में बोले, "मैं जा रहा हूँ विपत्ति के बीच। तुम लोग क्यों साथ जाकर मेरी उस विपत्ति को बढ़ाना चाहते हो? तुम्हारा जाना नहीं होगा।" उनकी अन्तिम बात कुछ कड़ी सुनायी पड़ी।

सुरबाला उठ खड़ी हुई, पति के मुँह की तरफ़ देखकर पूर्ववत् दृढ़ कण्ठ से बोली, "तुम सबके सामने सभी बातों में मुझे क्यों डाँटते हो? तुम बीमारी ही हालत में बाहर जाओगे तो मैं साथ चलूँगी ही। नौ बज रहे हैं, तुम खड़े मत रहो बबुआजी, जाओ।"

दिवाकर के सामने अपनी रूढ़ता से उपेन ने अत्यन्त लज्जित होकर कहा, "डाटूँगा क्यों

तुमको, मैं कुछ डाँट नहीं रहा हूँ। लेकिन बाबूजी सुनेंगे तो क्या सोचेंगे बताओ तो? जा दिवाकर, खा ले।"

सुरबाला ने कहा, "बाबूजी ने मुझे जाने को कहा है।"

"इसके बीच तुम उनके पास भी गयी थीं?"

"हाँ। जाऊँ, तुम्हारा दूध ले आऊँ।" यह कहकर सुरबाला कमरा छोड़कर चली गयी, उपेन्द्र ने अरगनी को ताककर चादर उसी पर फेंक दी और चित होकर लेट रहे। सुरबाला साथ जायेगी ही, पति के बीमार शरीर को किसी तरह भी अपनी दृष्टि के बाहर न छोड़ेगी इसमें किसी को सन्देह नहीं रहा। दिवाकर तैयार होने के लिए धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उपेन्द्र सोचने लगे – जिद करके सुरबाला ने यह जो एक नयी समस्या उत्पन्न कर दी, इसका कौनसा समाधान कलकत्ता पहुँचकर किया जायेगा। कहाँ चलकर ठहरा जायेगा! हारान भैया के यहाँ तो असम्भव है क्योंकि, वहाँ स्थानाभाव है, यही बात नहीं है, वहाँ किरणमयी का पति मर रहा है और उसकी ही आँखों के सामने सुरबाला अपने पति की बीमारी के प्रति रत्तीभर भी उपेक्षा न करेगी। शोभन-अशोभन कुछ भी न मानेगी। पति के स्वास्थ्य पर प्रतिक्षण पहरा देती हुई घूमती रहेगी। इस बात का ख़्याल आते ही उनको लज्जा मालूम हुई। ज्योतिष के घर पर जाना भी उसी तरह की बात है। सुरबाला कट्टर हिन्दू है, इसी उम्र में विधिपूर्वक जप-तप इसने आरम्भ कर दिया है, उस घर से तनिक-सा भी अहिन्दू आचार आँखों से देखने से शायद पानी-पीना भी छोड़ देगी। इसके सिवा जहाँ सरोजिनी प्रायः इसकी समवयस्का है, उसके ही घर में ठहरकर उसी को बार-बार यह मत छूना, वह मत छूना करते रहना न तो सुख की बात होगी और न उचित ही। बाकी रहा सतीश। उपेन्द्र ने सुना था, अपने नये डेरे में वह अकेला रहता है। स्थान भी यथेष्ट है। विशेषतः वह भी जप-तप के इस दल के अन्तर्गत है। सतीश और दिवाकर – आचार-परायण इन दोनों देवरों के साथ सुरबाला अच्छी तरह ही रहेगी।

उपेन्द्र ने तुरन्त सतीश को तार दिया कि हम आ रहे हैं।

ख़बर मिलने पर सतीश स्टेशन की ओर रवाना हो गया।

भगवान ने सचमुच ही सतीश को तन-मन से खूब ही बलिष्ठ बनाया था। इसलिए उस दिन मुमुर्षु हारान के अभागे परिवार का भारी बोझ सिर पर लेकर जैसे वह ढो रहा था, सावित्री विपिन के इतिहास को भी उसी प्रकार बर्दाश्त कर लिया था।

इस इतिहास को जानता था केवल बिहारी और उसके परम पूज्यवाद रसोइया महाराज। बिहारी का ख़्याल था, कि वह सावित्री को अत्यन्त घृणा करता है। इसीलिये कल दोपहर को भी महाराज का प्रसाद पाकर छोटी-सी चिलम को उलटकर लम्बी साँस लेकर उसने कहा, "छिः! छिः! देवताजी, इस स्त्री ने यह क्या कर डाला! मेरे बाबू को उसने पहचाना नहीं, इसलिए सोना फेंककर आँचल में मिट्टी बाँध ली। अन्त में सुनता हूँ विपिन बाबू के साथ चली गयी।"

चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "बिहारी, निमाई-सन्यास में लिखा है – "मुनीनांच

मतिभ्रम” नहीं तो सावित्री की तरह की स्त्री ऐसी बेवकूफ़ी क्यों करती? लेकिन यही बात मैं तुमको कहे देता हूँ, उसको पछताना पड़ेगा ही। वह स्त्री देखने-सुनने में भी कोई बुरी नहीं थी, मेरे साथ बैठकर, खड़ी रहकर, सुनते-सुनते, वह बाबू भैया लोगों के साथ दो-चार बातें करना भी सीख गयी थी, युवावस्था में सतीश बाबू की निगाह में भी पड़ गयी थी। टिकी रह सकती तो अन्त में अच्छा ही होता लकिन मेरा एक भी परामर्श तो उसने माना नहीं। अरे भाई, घोड़ा हटाकर घास खाने से कहीं काम चलता है? दुनिया भर के लोग ही आफत में पड़कर दौड़ते हुए आकर इन्हीं चक्रवर्ती जी के पैर पकड़ लेते हैं, ऐसा क्यों? अभी उसी दिन सदी का माँ..... ।”

सदी की माँ की भलाई-बुराई के लिए बिहारी को कौतुहल नहीं था। वह बातचीत के बीच में ही बोल उठा, “लेकिन कुछ भी कहो, देवता बाबू यदि किसी को कहा जाय तो मेरे मालिक को ही। बड़े लोगों को कलकत्ता में मैंने बहुत देखा है, लेकिन ऐसा युवक, ऐसी चौड़ी छाती वाला तो मैंने किसी को नहीं देखा है, जैसे हाथी के दाँत मरद की बात। वही जो मैंने उस दिन कह दिया था, बाबू अब नहीं, बस रहने दें। उसी दिन से घृणा से एक दिन भी उन्होंने उसका नाम तक मुँह से नहीं निकाला, फिर भी कितना अधिक उसे प्यार करते थे – समझे महाराज जी?”

चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, “यह बात तो आरम्भ में ही मैंने कह दी थी। इसी से तो खून-खराबियाँ, जेल-फाँसियाँ होती हैं। एक बार आँखें लड़ जाने से फिर क्या बच सकती है बिहारी!”

बिहारी सिहर उठा। पीले चेहरे से भयाग्रस्त होकर बोला, “नहीं-नहीं, महाराजजी, मेरे बाबू ऐसे स्वभाव के मनुष्य नहीं हैं। किन्तु कहाँ पर वह इस समय हैं क्या तुम जनते हो? इसके बीच कहीं घाट-बाट में... ।”

चक्रवर्ती ठठाकर हँस पड़े। बोले, “मूर्ख कहते हैं किसको? वह क्या विपिन बाबू के यहाँ दासीवृत्ति करने गयी है, बिहारी को राह में घाट में भेंट हो जायेगी? उसने स्वयं ही इस समय कितने ही नौकर-नौकरानियों को रख लिया होगा, जाकर देख ले।”

बिहारी निरुद्विग्न हो गया। मुस्कराकर सिर हिलाते हुए बोला, “यही बात है। इसीलिए तो मैंने सोचा, चलूँ तो एक बार महाराज जी के पास। देखूँ वे क्या कहते हैं! यही कहो देवता, आशीर्वाद दो, वह राज़रानी हो जाये, गाड़ी पालकी पर चढ़कर घूमे, दोनों की भेंट फिर आमने-सामने न होने पाये।” यह कहकर वह आनन्दमन से चक्रवर्ती की पदधूलि माथे पर चढ़ाकर बाहर चला गया।

इस बार कलकत्ता आने के बाद सतीश डेरे से निकलकर जबतक घर वापस नहीं आ जाता था तब तक बिहारी को इस बात का बराबर भय बना रहता था कि कहीं दोनों का सामना न हो जाय। सतीश बहुत ही क्रोधी, कड़े स्वभाव का है, यह ख़बर वह मकान के पुराने नौकर-नौकरानियों के मुँह से सुनता आ रहा था, और सावित्री ने जितना बड़ा निन्दनीय कार्य किया है, उससे खून-खराबी, मारपीट तक की भी नौबत आ सकती है यह बात भी

उसे इतनी उम्र में अविदित नहीं थी। केवल यही सम्भावना किसी दिन उसके दिमाग़ में घुसती नहीं थी कि सावित्री किसी दिन दास-दासियों को लेकर मोटर आदि सवारियों पर घूमने-फिरने निकल सकती है। आज चक्रवर्ती के मुँह से आश्वासन पाकर वह निर्भय हो गया। सावित्री पर उसे बड़ा क्रोध हो आया। वह शान्तिपूर्वक रास्ता चलते-चलते प्रतिक्षण आशा करने लगा कि शायद किसी बड़ी-सी बग्घी पर रानी के वेश में वह सावित्री को देख लेगा। सावित्री को बिहारी सचमुच ही प्यार करता था। उसका कैसे, किस मार्ग से रानी बनना सम्भव होगा, यह सब वह नहीं सोचता था। हमेशा उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता आया है। वह दुखिया है, वह हम जैसे लोगों के साथ एक आसन पर खड़े होकर दासीवृत्ति करने में संकोच नहीं करती थी, लज्जित नहीं होती थी, तथापि उसी दिन से हृदय में बड़ा दुःख, बड़ी यातना पाकर बिहारी उसके ऊपर रुष्ट हो गया था। लेकिन आज ज्योंही उसने सुना, सावित्री उसके मालिक के रास्ते का कण्टक नहीं है, सुख में विघ्न नहीं है, वह पूरे हृदय से आशीर्वाद देने लगा – सावित्री सुखी हो, निर्विघ्न हो, राजेश्वरी बने!

उन्नीस

हारान के जीवन-मरण की लड़ाई ने क्रमशः मानो एक करुण तमाशे का रूप धारण कर लिया था। भूखे साँप की भाँति मृत्यु उसको जितने ही अविच्छिन्न आकर्षण से अपने जठर में खींच रही थी, मेढ़क की भाँति उतना ही वह अपने पैरों से उसके जबड़े को रोककर किसी एक अद्‌भुत कौशल से दिन पर दिन मृत्यु से बचता चला जा रहा था। वस्तुतः अशेष दुःखपूर्ण उसका प्राण किसी तरह भी समाप्त न होगा, ऐसा ही ज्ञात हो रहा था।

इस विपत्ति में सतीश सहायता करने आया था। किरणमयी की पति-सेवा देखकर वह आश्चर्य से हतबुद्धि हो गया। स्त्रियों के लिए पति से बढ़कर कोई नहीं है, यह भी वह जानता था, किन्तु कुछ भी कारण क्यों न हो, सब कुछ जान बूझकर इतना बड़ा निरर्थक परिश्रम कोई मनुष्य इस तरह प्राणों की बाजी लगाकर कर सकता है, इसकी तो वह कल्पना भी न कर सकता था।

यह कैसी आश्चर्यजनक सेवा है! प्रतिदिन सारी रात एक ही दिशा में बिछौने के पास बैठकर जागते रहना, सारा दिन अक्लान्त परिश्रम करते रहना फिर भी मुख पर थकावट या विषाद का चिह्न तक नहीं! मुख देखकर समझा नहीं जा सकता कि उसके माथे पर कितनी बड़ी विपत्ति लटक रही है।

सतीश अपनी इस भाभी को सचमुच ही बड़ी बहिन की तरह प्यार करने लगा था। उसकी इस अत्यन्त उद्वेग रहित पति-सेवा को देखकर अत्यन्त व्यथा के साथ केवल यही सोचता था कि जिस कारण से ही हो, भाभी को यह आशा है कि उनके पति बच जायेंगे। अतः अन्त तक उनके मन को वेदना कैसी चोट पहुँचायेगी इसी की कल्पना करके वह व्याकुल हो उठता था। और किस उपाय से इस अप्रिय सत्य की जानकारी करा दी जाय,

यही उसके लिए प्रतिक्षण की चिन्ता का कारण हो उठा था।

एक दिन था, जब अपने विषय में सतीश को भारी विश्वास था कि वह बुद्धिमान है। मानव-चरित्र समझने में यह विशेष पारंगत है। लेकिन सावित्री से चोट खाने के बाद से उसका यह दर्प टूट गया था। सावित्री उसको छोड़कर विपिन के पास चली गयी, संसार में यह भी जब सम्भव हो सका, तभी उसको पता चल गया कि वह मानव-चरित्र कुछ भी नहीं समझता। मनुष्य के मन के भीतर क्या है, क्या नहीं इसके बारे में जिसको जैसी रुचि हो उसकी आलोचना करता हुआ घूमता रहे, लेकिन अब वह कम से कम नहीं करेगा। इस विषय की याद आने पर उसकी लज्जा और उसके अनुताप का अन्त नहीं रहता कि अपनी इस बुद्धि के गर्व से ही उसने इस भाभी के विषय में बहुत-सी बातें सोची थीं, और उपेन भैया को सिखाने गया था।

आज सबेरे सतीश ने उस घर में उपस्थित होकर देखा, किरणमयी वैसे ही प्रसन्न चेहरे से अकेली गृहकार्य कर रही है। दो-तीन दिनों से सासजी फिर बीमार पड़ गयी हैं। पिछली रात ज्वर कुछ बढ़ जाने से अभी तक बिछौने से उठी नहीं हैं। किरणमयी का मुख देखकर किसी बात का अनुमान करना कठिन था। इसी से प्रतिदिन सतीश को सभी बातें पूछकर ही जान लेनी पड़ती थीं। आज प्रश्न करते ही उसने काम छोड़कर मुँह ऊपर उठाकर क्षणभर देखकर कहा, “बबुआजी, अब देर करने की ज़रूरत नहीं है। अपने भैया को एक बार आ जाने के लिए लिख दो।”

सतीश ने डरकर पूछा, “क्यों भाभी?”

किरणमयी के मुखमण्डल पर से मानो शरत के बादल का टुकड़ा उड़ गया। एक लम्बी साँस लेकर वह बोली, “इस बार शायद यंत्रणा का अन्त हो गया है – तुम एक तार भेज दो।”

सतीश क्षणभर चुपचाप देखते रहकर बोला, “मैं जानता था भाभी। लेकिन यह सोचकर कि कहीं तुम डर न जाओ, मैंने कहने का साहस नहीं किया।”

किरणमयी ने सहज भाव से कहा, “डरने की बात ही है। उनकी साँस का लक्षण परसों मुझे मालूम हो गया, कल रात को कुछ और बढ़ गयी है। यह घटेगी नहीं इसीलिए एक बार उनको आ जाने को कहती हूँ।”

सतीश यह ख़बर जानता नहीं था। चौंककर बोला, “इसका तो मुझे पता चला ही नहीं। तुमने भी बताया नहीं।”

किरणमयी ने कहा, “नहीं, इतना धीरे-धीरे बढ़ती गयी है कि दूसरों को पता लगने की बात ही नहीं। लेकिन आज विशेष भय नहीं है। फिर विपत्ति के ऊपर विपत्ति, कल से माँ की बीमारी ने भी टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग पकड़ लिया है। अभी-अभी मैंने देखा, खूब ज्वर है, बीच-बीच में अनाप-शनाप भी बक रही है।” यह कहकर वह ज़रा हँस पड़ी, लेकिन यह हँसी देखने से रुलाई आती है।

सतीश की आँखों में आँसू आ गये। उसने सजल कण्ठ से धीरे-धीरे कहा, “उपेन भैया

आ जायें।”

किरणमयी ने कहा, “और एक ख़बर सुनोगे बबुआजी?”

सतीश मौन रहकर ताकता रहा। किरणमयी बोलीं, “चौथे दिन तीसरे पहर को एक वकील की मुझे चिट्ठी मिली, उससे मालूम हुआ दो साल पहले उन्होंने एक मित्र को अपनी जमानत पर तीन हजार रूपये क़र्ज में दिलाये थे। मित्र व्यवसाय में फेल होकर प्रायः चार हजार रुपये इनके सिर पर चढ़ाकर, विष खाकर मर गये हैं। वह रुपया इस टूटे-फूटे मकान की ईंट लकड़ी बेचकर चुकाया जा सकेगा या नहीं, इस ख़बर को वकील साहब ने अवश्य जान लेना चाहा है।” यह कहकर वह उसी तरह हँस पड़ी।

सतीश मुँह को नीचे झुकाकर भूमि की ओर निहारता रहा। उसने आँखें ऊपर उठाकर देखने का साहस नहीं किया, प्रश्न का उत्तर देने का भी प्रयास नहीं किया।

सतीश उपेन्द्र के पास तार भेजकर जब लौट आया, तब दिन के दस बजे थे। धीरे-धीरे वह रसोईघर में जा पहुँचा। किरणमयी सास के लिए साबूदाना बना रही थी, मुँह ऊपर उठाकर बोली, “बैठो बबुआजी!” उसका स्वर ज़रा भारी था। सतीश ने ध्यान के साथ देखा आँखों में आँसू तो नहीं थे, लेकिन दोनों पलकें भींगी थीं। वह पास ही फ़र्श पर बैठ गया। आज किरणमयी ने आसन देने की बात भी नहीं उठायी। वह कहाँ बैठ गया, उसने क्या किया, शायद उसने देखा ही नहीं। किसी साधारण बात में भी ज़रा-सी उसकी त्रुटि सतीश ने अब तक देखी नहीं थी। इतने दिनों से उसका आना-जाना चल रहा है, इतना मेलजोल बढ़ गया है, पर एक दिन के लिए भी उसको भाभी के सहज-सरल व्यवहार में सौजन्य का, घनिष्ठता का, थोड़ा-सा भी अभाव, बिन्दु मात्र भी ढूँढ़ने पर नहीं मिला था। इसीलिए आज इतनी थोड़ी-सी ही अवहेलना ने मानो उसकी आँखों में उँगली डालकर उसको दिखा दिया। किसी भारी बोझ से भाभी का समूचा मन आच्छन्न हो गया है!

बड़ी देर तक दोनों ही चुप रहे। एकाएक किरणमयी अपने आप ही तीव्र व्यंग्य करके हँस पड़ी। शायद इतनी देर तक वह इसी चिन्ता में ही मग्न थी, बोली, “अच्छा बताओ तो बबुआजी, यमराज के साथ वह यह सब देना-पावना का झमेला मिट जाने के बाद, मेरे लिए नौकरी करना उचित होगा या भीख माँगना?”

यह बात सतीश समझ गया। बोला, “उपेन भैया से पूछो, वही उत्तर देंगे।”

किरणमयी ने कहा, “पूछे बिना ही समझ रही हूँ। हो सकता है कि कृपा करके वह मुझे दो कौर खाने को देंगे, लेकिन दूसरे पर निर्भर रहना ही तो भीख माँगना हुआ बबूआजी।”

सतीश शायद एकाएक इसका प्रतिवाद करने चला, लेकिन बात ढूँढ़ने पर नहीं मिली, मुँह पर नहीं आयी तो चुप रहकर ताकने लगा।

किरणमयी ने उसके मन का भाव समझकर ज़रा हँसकर कहा, “मुँह खोलकर साफ़ कह देने से ही बात ज़रा कड़ी हो जाती है, यह मैं जानती हूँ बबुआजी, लेकिन यह बात तो सत्य है।” थोड़ी देर तक रुकी रहकर बोली, “यह ख़्याल मत करना कि तुम्हारे भैया को मैं पहचानती नहीं। मैं समझ गयी हूँ, अनाथ को देना वह जानते हैं। लेकिन केवल देना ही

तो नहीं है, लेना भी तो है। देकर कभी मैंने देखा नहीं है, लेकिन सारा जीवन दूसरे का मन प्रसन्न रखकर निभा सकना भी कम कठिन नहीं है, यह मैं समझ चुकी हूँ।"

सतीश को इस बार भी ढूँढ़ने पर उत्तर नहीं मिला। किरणमयी का झक मानो बढ़ गया था, प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा बिना किये बोली, "इस दुनिया के साथ कारोबार अधिक दिनों का नहीं है, देना-पावना चुका लेने में अभी बहुत बाकी है। इस दीर्घ जीवन के हिसाब-किताब में दोष-त्रुटि, भूल-भ्रान्ति रह भी सकती है। तब वह भी क्या कहकर देंगे और मैं भी किस मुँह से हाथ फैलाऊँगी। उस समय मुझे फिर अपनी ही राह पर आप ही चलना पड़ेगा।"

इतनी देर तक सतीश श्रद्धा के साथ, व्यथा के साथ उसकी भावी आशंका की बातों को सुन रहा था, लेकिन अन्तिम बात से मानो ठोकर खाकर चौंक उठा। उसने कहा, "यह कैसी बात है भाभी? दोष-त्रुटि तो होती ही है, सभी से होती है, पर तुमसे भूल-भ्रान्ति होगी क्यों?"

किरणमयी सतीश का उत्कण्ठित आश्चर्य देखकर हँस पड़ी। एक क्षण में अपने व्यग्र सन्तप्त कण्ठ-स्वर को कोमल बनाकर उसने कहा, "कौन जाने बबुआजी, मैं भी तो मनुष्य ही हूँ।"

सतीश अपनी भूल समझ गया। क्षणभर की उत्तेजना से उसका मन कुत्सित अर्थ ग्रहण करने चला गया था। उसी लज्जा से सिर झुकाकर बोला, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जैसा नासमझ हूँ, वैसा ही अपवित्र भी।"

किरणमयी ने जवाब नहीं दिया, केवल ज़रा-सा हँस पड़ी।

अकस्मात सतीश का अनुतप्त अपराधी मन उत्तेजित हो उठा, वह ज़ोर लगा कर बोल उठा, "किन्तु केवल उपेन भैया की ही बात होगी क्यों? क्या वे ही सब कुछ हैं, मैं कोई नहीं? तुमको उनका आश्रय लेने न दूँगा।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "वह तो एक ही बात है बबुआजी, तुम और तुम्हारे भैया तो पराये नहीं हो। तुम्हारे आश्रय में रहकर भी तो तुम्हारे मन को प्रसन्न रखकर तुमसे भीख लेनी पड़ेगी।"

सतीश बोला, "नहीं, नहीं पड़ेगी, इसका कारण यह है कि मैं हूँ तुम्हारा छोटा भाई, किन्तु उपेन तुम्हारे पति के मित्र हैं। आवश्यकता पड़ेगी तो अपनी बहिन का भार मैं लूँगा।"

"लेकिन यदि तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चल सकूँ?"

"मैं भी तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चलूँगा।"

किरणमयी ने प्रश्न किया, "यदि मैं कोई अपराध करूँ?"

सतीश ने उत्तर दिया, "तब तो भाई-बहिन में झगड़ा होगा।"

किरणमयी ने फिर प्रश्न किया, "जीवन में यदि भूल-भ्रान्ति हो जाये तो उसे क्या मेरा यह छोटा भाई क्षमा कर सकेगा?"

सतीश मुँह ऊपर उठाकर क्षणभर ताकता रहा फिर सहसा अत्यन्त व्यथित स्वर से बोला, "इस भूल-भ्रान्ति के अर्थ मैं समझ नहीं सकता भाभी। छोटे भाई को अर्थ समझाकर कहना

आवश्यक समझो तो बताओ, आवश्यक न समझो तो मत बताओ; लेकिन तुम्हारा अर्थ जो भी हो, जो अपराध मन में लाया भी नहीं जाता, वह भी यदि सम्भव हो जाये तो भी मैं भूल न सकूँगा बहिन, कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ।"

उसे सावित्री की बात याद आ गयी। उसने कहा, "भाभी, आज अपने इस छोटे भाई के अहंकार को क्षमा करो, लेकिन जिस अपराध को जीवन में क्षमा कर सका हूँ, उस अपराध को क्षमा करने में स्वयं भगवान की छाती में भी आघात पहुँचता।"

यह कहकर उसने देखा, किरणमयी की दोनों आँखों से आँसू लुढ़ककर गिर रहे हैं। सतीश अच्छी तरह बैठ गया। फिर भरे स्वर से बोला, "आज मुझे अच्छी तरह तुम एक बार देखो तो बहिन, जिस सतीश ने अपनी दुर्बुद्धि से तुमको भाभी कहकर व्यंग्य किया था, वह तुम्हारा भाई नहीं था। कहते-कहते उसका समूचा मुख मण्डल प्रदीप्त हो उठा। उसने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा, "नहीं, नहीं, वह मैं नहीं था! वह कभी तुमको पहचान नहीं सका, उसने कभी तुम्हारी पूजा करना नहीं सीखा, इसीलिए उसने जगन्नाथ को काठ का पुतला कहकर उपहास किया था। अपने महापाप का बोझ लेकर वह डूब गया है भाभी, वह अब नहीं है।" यह कहकर वह गरदन झुकाकर अपने हृदय के अन्दर टटोलकर देखने लगा।

किरणमयी अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। उसके बाद धीरे-धीरे अति मृदु स्वर से उसने प्रश्न किया, "किस प्रकार मुझे तुम पहचान गये भाई?"

सतीश ने गरदन झुकाये कहा, "वह बात गुरुजनों के सामने कहने योग्य नहीं भाभी!"

"कहने योग्य नहीं हैं? यह कैसी बात!" अकस्मात सन्देह से, भय से किरणमयी का मुख बदरंग हो गया। उसने पुकारा, "बबुआजी!"

"क्यों भाभी?"

"मुँह ऊपर उठाओ तो देखूँ।"

सतीश ने क्षणभर चुप रहकर मुँह ऊपर उठाया।

किरणमयी कुछ देर देखती रही, फिर बोली, "बबुआजी, तुम एक बड़ी व्यथा लेकर आते-जाते हो, इसका पता मुझे बहुत दिनों से लग गया था। लेकिन पूछने का अधिकार नहीं था इसलिए मैंने नहीं पूछा। लेकिन; आज तुम मेरे भाई हो – क्या हो गया है बताओ?"

सतीश सिर झुकाकर बोला, "वह तो बड़ी लज्जा की बता है भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "भले ही लज्जा की बात हो। तो भी अपनी इस बहिन को उसका हिस्सा देना पड़ेगा। तुमको अकेले में व्यथा ढ़ोते हुए घूमने न दूँगी।"

इसके बाद थोड़ा-थोड़ा करके उसके दुःख का इतिहास बहुत कुछ संग्रह करके किरणमयी ने कहा, "लेकिन क्यों तुमने ऐसा कार्य किया?"

सतीश चुप हो रहा।

किरणमयी ने प्रश्न किया, "कौन है वह?"

सतीश मुँह झुकाकर अस्पष्ट स्वर से बोला, "अभागिनी।"

"लेकिन कहाँ है वह?"

"नहीं जानता।"

"पता नहीं लगाया?"

सतीश ने मृदु स्वर से कहा, "नहीं। उसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने सुना है वह अच्छी तरह है।"

किरणमयी ने व्यथित होकर कहा, "अच्छी तरह है? छिः! छिः! क्यों इस प्रकार तुमने अपने को धोखे में डाल दिया!"

इस बार सतीश ने फिर एक बार मुँह ऊपर उठाया। अस्पष्ट कण्ठ से उसने उत्तर दिया, "मैंने धोखा नहीं खाया भाभी, क्योंकि मैं प्यार कर सका था। लेकिन धोखा खा गयी वह – वह प्यार नहीं कर सकी है।"

"उसके बाद?"

सतीश ने कहा, "पहले वह अपना मन समझ नहीं सकी। लेकिन जब समझ सकी, तब वह चली गयी।"

"बिना बताये वह चली गयी?"

सतीश सिर हिलाकर बोला, "नहीं, यह बात भी नहीं है, जाने के पहले वह कह गयी, 'एक अस्पृश्य कुलटा को प्यार करके भगवान के दिये इस मन के ऊपर कालिख न पोतो।"

गम्भीर आश्चर्य से सीधी हो बैठकर किरणमयी बोली, "क्या कहकर गयी?"

सतीश के फिर बात कहने पर किरणमयी कुछ देर तक उन बातों को धीरे-धीरे बार-बार दोहराकर हठात बोली, "लेकिन फिर जब उससे भेंट हो, बबुआजी, तो मुझे एक बार दिखलाना।"

सतीश विपिन की बात याद करके बोला, "अब तो भेंट न होगी भाभी!"

किरणमयी के होंठों पर म्लान हँसी दिखायी पड़ी। उन्होंने कहा, "फिर भेंट हो जायगी।"

"कब होगी? न हो तो ही कुशल है।"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "कब होगी, यह मैं नहीं जानती, लेकिन यदि कभी दुःख पड़ जाय, विपत्ति पड़ जाय, तभी भेंट होगी। उस भेंट से कल्याण के सिवा अकल्याण न होगा। बबुआजी, वह चाहे जहाँ भी क्यों न रहे, तुम्हारी अधिक शुभाकांक्षिणी है, इस बात को तुम किसी दिन भी मत भूलना।"

उसी दिन संध्या के ठीक पहले किरणमयी मुमुर्षु पति की उत्तम शय्या से उठकर क्षणभर के लिए बाहर आ खड़ी हुई। दरवाज़े के पास दीवाल पर ओठंग कर सतीश चुपचाप बैठा हुआ था। थकावट के कारण सम्भवतः वह सो गया था। किरणमयी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्यों बबुआजी, इस तरह बैठे हुए हो? डेरे पर गये नहीं?"

सतीश तन्द्रा टूट जाने पर घबराते हुए उठकर बोला, "नहीं भाभी।"

"कहाँ थे इतनी देर तक?"

"इधर-उधर घूमता रहा, आज अब डेरे पर न जाऊँगा।"

किरणमयी ने आपत्ति प्रकट करके कहा, "छिः! छिः! यह कैसी बात? न खाना होगा, न सोना। नहीं डेरे पर चले जाओ, आज तुमको कोई डर नहीं है।"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "डर रहे या न रहे, आज मैं तुमको अकेली छोड़कर न जा सकूँगा। इसके सिवा मैं दूकान से खा आया हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "यह तो हो न सकेगा। मैं जानती हूँ, दुकान के खाने से तुम्हारा पेट नहीं भरता। मुझे तो इस दशा में फिर रसोई बनानी पड़ेगी। रसोई बना सकती हूँ लेकिन इधर कई दिनों से तुम्हारा ठीक समय पर नहाना-खाना नहीं हुआ। कल-परसों तुम अच्छी तरह सो नहीं सके, शरीर पर काफ़ी अत्याचार हो गया है बबुआजी, अब नहीं। आज रात को यहाँ रहोगे तो बीमार पड़ जाओगे यह मैं किसी तरह भी न होने दूँगी।"

सतीश ने क्रोध करके कहा, "दो दिन आहार-निद्रा ज़रा कम होने से मैं बीमार पड़ जाऊँगा, और तुम तो इधर एक महीने से सो नहीं सकीं? जो खाकर दिन-भर बिता रही हो, उसे किसी मनुष्य को देखने नहीं देती हो, लेकिन भगवान तो देख रहे हैं। उसके बाद लगातार यह मेहनत... इतने पर भी तुम खड़ी हो, और इतने से ही मैं मर जाऊँगा?"

किरणमयी ने कहा, "इसका अर्थ क्या यह है कि तुम भी एक महीने तक खाये-सोये बिना रह सकते हो?"

सतीश ने कहा, "यह बात मैं नहीं कहता लेकिन....।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "इसमें फिर लेकिन है किस जगह पर? बबुआजी, मैं तो स्त्री ठहरी! स्त्रियों को क्या कभी बीमारी होती है, या स्त्री मरती है? क्या तुमने कभी सुना है, देख-भाल के बिना, अत्याचार से स्त्रियाँ मर गयी हैं?"

सतीश ने कहा, "नहीं, नहीं, वरन् सुना हैं स्त्रियाँ अमर हैं।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "सचमुच ही यही बात है। प्राण रहने से ही जाता है। न रहने से तो जाता नहीं। भगवान ने स्त्रियों के शरीर में उसे क्या दिया है कि वह चला जायेगा! मुझे तो ज्ञात होता है कि इस जाति को गले में रस्सी बाँधकर यदि दस-बीस वर्ष तक लटकाकर रखा जाय तब भी यह नहीं मरेगी।"

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, "तुम्हारा यह परिहास मैं सुनना नहीं चाहता भाभी। सुनने से भी पाप लगता है।"

किरणमयी ने इस बार गम्भीर होकर कहा, "अच्छा बबुआजी, अचानक स्त्रियों के प्रति इतने हमदर्द क्यों हो गये हो, बताओ तो?"

सतीश बोला, "भाभी, मैं खूब समझता हूँ। जब-तब तुम स्त्रियों का नाम लेकर अपने ही ऊपर कठोर व्यंग्य करती हो, क्या मैं नहीं जानता। लेकिन तुम्हारे सम्बन्ध में व्यंग्य तुम्हारे अपने मुँह से भी सुनकर मैं नहीं सह सकता। इससे मुझे चोट लगती है। अच्छा, मैं जा रहा हूँ।"

"सुनो बबुआजी!"

सतीश घूमकर खड़ा हो गया। बोला, "क्या है?"

"तुम सचमुच ही क्या रुष्ट हो गये?

"क्रोध आ जाता है भाभी। संसार में दो आदमियों को मैं देवता की तरह श्रद्धा करता हूँ – उपेन भैया को और तुमको। एक को स्मरण करने से ही मैं तुम दोनों को देखता हूँ। यहाँ निम्नकोटि का परिहास मुझसे सहा नहीं जाता। मैं जाता हूँ, शायद भोजन करके फिर आऊँगा।" यह कहकर सतीश झटपट नीचे उतर गया।

किरणमयी आँखें बन्द कर चौखट पर सिर रखे निस्पन्द की भाँति खड़ी रह गयी। उसके कानों में रह-रहकर यही प्रतिध्वनि होने लगी – एक को स्मरण करने पर तुम दोनों को देखता हूँ।

बीस

बोलचाल से हो, इशारे से हो, कभी किसी के सामने सतीश ने सावित्री का ज़िक्र नहीं किया। इसी कारण जब यह बात किरणमयी के सामने प्रकट हो गयी, तभी से उसके सारे शरीर से अमृत का स्रोत बह चला। किरणमयी को सतीश देवी समझता था, उसकी सभी बातों की अत्यन्त श्रद्धा करता था। उसने कहा, "दुःख के दिनों में फिर भेंट होगी।" तभी से उसके निभृत हृदय में रहने वाला शोकार्त्त विच्छेद उस परम इच्छित दुःख के दिनों की आशा में उन्मुख हो उठा था। कोई दुःख किस तरह कितने दिनों में उसको दर्शन देकर दया करेगा, इसी चिन्ता को लेकर वह धीरे-धीरे रास्ता चलते-चलते रात के आठ बजे अपने डेरे पर पहुँचा। कमरे में घुसकर जिस ओर, जिस वस्तु की ओर उसने देखा, उसी ने आज विशेष रूप से उनकी दृष्टि को आकर्षित कर लिया। कुरते को उतारकर अरगनी पर रखने गया तो उसने देखा, कपड़े ठीक करके रखे हुए हैं – तह लगाये हुए हैं। हरिण की सींगों पर संध्या-पूजा का जो कपड़ा धोकर टाँग दिया गया था वह चुन दिया गया है। बैठने लगा तो उसने देखा, कुर्सी पर गन्दे कपड़ों का जो ढेर रखा रहता था वह आज नहीं है। दो हफ़्तों से धोबी नहीं आता, इस लिए गन्दे कपड़ों का ढेर प्रतिदिन बैठने की चौकी पर धीरे-धीरे जमा होता जा रहा था। बैठते समय सतीश उन सबको भूमि पर फेंक कर बैठता था। उठकर चले जाने पर बिहारी फिर यथास्थान उठाकर रख देता था। सात दिनों से मालिक और नौकर यह कार्य कर रहे थे। एकाएक वे सब गठरी बाँधे जाकर अरगनी की ओट में हटा दिये गये हैं। बिछौने की चादर, तकिये का गिलाफ़ बहुत मैला हो गया था, आज वह धुला सफेद है। मसहरी सदा ही अशिष्ट ऊँट की तरह मुँह ऊपर को किये टँगी रहती थी, वह भी आज चारों कोनों में सीधे तौर से शिष्टता के साथ खड़ी हो गयी। बत्ती के कोने में बराबर ही कालिख जमा रहती थी, आज उसकी कोई बला नहीं है – खूब साफ़ जल रही है। सभी तरफ़ यह सफाई – यह सजावट का लक्षण देखकर अत्यन्त बूढ़े बिहारी के इस आकस्मिक रुचि-परिवर्तन का कोई कारण ढूँढ़ने पर उसे नहीं मिला। उसने पुकारा "बिहारी!"

बिहारी आड़ में खड़ा था, सामने आकर बोला, "जी आज्ञा?"

सतीश बोला, “बहुत अच्छा! यदि यह सब तू कर सकता है तो घर-द्वार इतना गन्दा क्यों छोड़ रखता है। मैं बहत ही प्रसन्न हो गया हूँ।”

बिहारी ने विनयपूर्वक अपना मुँह ज़रा झुकाकर कहा, “जी सरकार! आपके नाम एक तार आया है।”

“कहाँ रे?” कहकर इधर-उधर दृष्टि डालते ही मेज़ पर रखा हुआ पीला लिफ़ाफ़ा उसकी निगाह में पड़ गया। खोलकर उसने देखा, उपेन भैया का समाचार है। वे साढ़े नौ बजे की ट्रेन से हावड़ा स्टेशन पर पहुँचेंगे। घड़ी में लगभग साढ़े आठ बज गये थे। व्यस्त होकर उसने कहा, “जल्द ही एक गाड़ी ले आ बिहारी, उपेन भैया आ रहे हैं!”

पाँच मिनट के अन्दर बिहारी गाड़ी ठीक करके ले आया। ख़बर देकर और किवाड़ की आड़ में खड़ा रहकर पूछा, “बाबू को साथ लिए डेरे पर लौटियेगा तो!”

सतीश ने सोचकर कहा, “नहीं, आज रात को फिर लौटूँगा नहीं।”

उपेन भैया सीधे हारान बाबू के यहाँ ही चले जायेंगे, इसमें सतीश को तनिक भी सन्देह नहीं था। क्योंकि उनके सपत्नीक आने की ख़बर टेलिग्राम में नहीं थी।

सतीश इसी बीच दो पूड़ियाँ खा रहा था। बिहरी ने आड़ से कहा, “बाबू एक निवेदन है।”

प्रार्थना करने की आवश्यकता पड़ने पर बिहारी पण्डिजी-भाषा का प्रयोग करता था।

सतीश ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, “कैसा निवेदन”

“आज्ञा” कहकर बिहारी चुप हो रहा।

सतीश ने प्रश्न किया, “क्या आज्ञा है सूनूँ तो?”

बिहारी ने कहा, “सरकार, तीस रुपये मिल जाते तो...।”

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, “परसों तो तुमने तीस रुपये लेकर घर भेज दिये थे?”

बिहारी ने मृदु स्वर से कहा, “सरकार, इच्छा तो ज़रूर यही थी, लेकिन चक्रवर्ती महाराज के घर....।”

चक्रवर्ती के नाम से सतीश जल उठा, बोला, “वह रुपया चक्रवर्ती को दे दिया – यह रुपया किसको दान दिया जायेगा, सुनूँ?”

“सरकार, दान नहीं, आदमी बड़े ही दुःख में पड़कर....।”

“उधार माँग रहा है?”

“सरकार, उधार और उसको क्या दूँगा।”

सतीश धीरज खोकर उठ खड़ा हुआ। बोला, “तुम्हारे पास हो, तो तुम दे दो बिहारी, मैं इतना बड़ा आदमी नहीं हूँ कि रोज रुपया नष्ट कर सकूँ। मैं दे न सकूँगा।”

इस बार बिहारी जिद करके बोला, “न देने से काम चल ही नहीं सकता बाबू। न हो तो मेरे वेतन से ही दे दीजिये।”

वेतन के नाम से सतीश चौंक उठा और बोला, “वेतन का रुपया? अब तक कितने

रुपये लिये हैं बता तो बिहारी?"

बिहारी बोला, "जैसे लिया, वैसे ही लड़कों के लिए गाँव पर तीन बीघे ज़मीन, एक जोड़ी बैल खरीद दिये हैं। इसके सिवा एक नया घर भी बनवा दिया है। यह क्या मेरे वेतन से? मेरा रुपया आपके पास ही जमा है – आज उसी में से दीजिये।"

सतीश हँस पड़ा, बोला, "लड़कों के लिए खरीदकर तुमने मेरा भारी उपकार किया है! आज मेरे पास रुपया नहीं है।" यह कहकर चादर कन्धे पर रखकर वह स्टेशन के लिए रवाना हो गया।

बिहारी ने अपनी कोठरी में आकर कहा, "बेटी, संध्या-पूजा करके अब ज़रा पानी पी लो। कल सबेरे जिस तरह भी मुझसे हो सकेगा, मैं दूँगा।"

सावित्री कोठरी के फ़र्श पर आँचल बिछाकर सोई हुई थी। वह उठकर बैठ गयी पूछा, "बाबू ने नहीं दिये?"

बिहारी ने कहा, "जानती तो हो बेटी, दूसरे के दुःख का नाम लेकर जब कि मैंने माँगा है, तब पाऊँगा ही। मेरे मालिक दानी कर्ण हैं। इस समय न देकर स्टेशन चले गये, लेकिन कल सबेरे जब लौट आयेंगे, तब मुझे बुलाकर देंगे। तुमको कोई चिन्ता नहीं है बेटी, अब उठकर ज़रा पानी-वानी पी लो, सारा दिन वैसी ही पड़ी हो।"

सावित्री के सूखे पीले चेहरे पर हँसी फूट पड़ी। उसने कहा, "अच्छा ही हुआ आज रात को अब लौटेंगे नहीं। तब तो कल दोपहर की गाड़ी से ही काशी चली जा सकूँगी, क्या कहते हो बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "अवश्य ही बेटी।" फिर लम्बी साँस लेकर कहा, "मेरे मालिक भी मालिक हैं, तुम्हारे मालिक भी मालिक हैं। गाँव से बुढ़िया ने दुःख की बातें बताकर एक पत्र भेजा था – बाबू से पढ़वाने गया, पढ़कर वह बोले, 'तेरे घर में क्या कुछ भी नहीं है रे?" मैंने कहा, 'ग़रीब-दुखियों के पास और रहता ही क्या है बाबू!' फिर उन्होंने कोई बात नहीं कही। चार दिनों के बाद छः सौ रुपये हाथ में देकर मुझे गाँव भेज दिया, 'जगह-ज़मीन मैंने खरीद डाली – गाय बछड़े खरीदे, घर-द्वार बनवाया – लड़कों के हाथ में देकर महीने के अन्दर मालिक के पैरों के पास लौट आया। बुढ़िया ने रोकर कहा, 'मुझे अपने साथ ले चलो, एक बार दर्शन तो कर आऊँ।' मैंने कहा, 'नहीं रे अब और ऋण मत बढ़ा। तेरे जाते ही दो-एक सौ रुपये तेरे हाथ में दे देंगे। और एक तुम्हारे मालिक हैं! बीमार पड़ जाने से पाँच-सात रुपये की दवा खर्च हो गयी है इसीलिए उन्होंने तुमसे बेधड़क कह दिया उधार का रुपया चुकता करके ही जाना! नौकरी करते समय तुम कितना दुःख पा रही थी बेटी, और हम लोग कुछ भी न जानकर विपिन बाबू के नाम पर तुम्हारी कितनी निन्दा करते रहे। क्षमा करो बेटी, नहीं तो मेरी जीभ गल जायेगी।'

विपिन का नाम सुनकर सावित्री घृणा से रोमांचित हो गयी और स्पष्ट शब्दों में छिः! छिः कर उठी। लेकिन उसी क्षण उसे दबाकर हँसकर बोली, "स्नान करूँगी बिहारी, एक कपड़ा दे सकोगे?"

"कपड़ा?" बिहारी ने उदास होकर कहा, "तुम्हारे आशीर्वाद से एक क्यों, पाँच दे सकता हूँ। कोई दुःख ही नहीं बेटी! लेकिन शूद्र का पहना हुआ कपड़ा कैसे तुमको दे सकूँगा बेटी! वरन चलो, बाबू का एक धुला कपड़ा ही निकाल कर तुमको दे दूँ।"

बिहारी देवद्विजों पर अत्यन्त भक्तिभाव रखता था। अतएव प्रतिवाद निष्फल समझकर सहमत होकर उसका अनुसरण करके कमरे से बाहर चली गयी।

स्नान करके सावित्री सतीश का धुला हुआ देशी कपड़ा पहिनकर मन ही मन हँस पड़ी। उसके ही कमरे में, उसकी ही आचमनी अर्घी से संध्या-पूजा बिहारी द्वारा यत्नपूर्वक संग्रह की हुई विलायती चीनी से बनी परम पवित्र मिठाई सारे दिन के अनाहार के बाद खाकर उसने आराम अनुभव किया।

पान-सुर्ती खाने की उसकी बुरी आदत थी। दुकान का तैयार पान वह खाती नहीं थी यह जानकर बिहारी इसके बीच ही पान-सुपारी आदि जुटाकर ले आया था। उनको एक तश्तरी में लाकर रखते ही सावित्री ने हँसकर कहा, "बिहारी, देखती हूँ मुझे ज़रा भी तुम भूले नहीं हो।"

बिहारी ने उत्तर दिया, "आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ। बेटी, तुमको एक बार देखने से पशु-पक्षी तो भूल नहीं सकते।" यह कहकर टेबिल पर से बत्ती लाकर दरवाज़े के सामने उसने रख दी, और थाली उसके पास रखकर पान लगाने को कहकर रसोईये से सूखी खैनी माँग लाने के लिए रसोईघर की तरफ़ चला गया।

मिट्टी के तेल के उज्ज्वल प्रकाश को सामने रखकर फ़र्श पर सावित्री पान लगाने बैठी। माथे पर कपड़ा नहीं, भीगी केशराशि समूची पीठ के ऊपर से नीचे फ़र्श पर बिखरी पड़ी थी। दो-एक लटें आँचल की काली किनारी के साथ मिलकर कन्धे से गोद पर झूल रही थीं। नारी के रोगक्लिष्ट शीर्ण-पीले चेहरे पर जो स्वाभाविक और गुप्त माधुर्य रहता है, वह कृशांगी के सद्यःस्नात मुखमण्डल पर शोभित हो रहा था। वह कुछ अन्यमनस्क और चिन्तामग्न थी। सहसा दूर से जूते की आवाज़ निकट आने लगी, तो भी वह उसके कानों में नहीं पहुँची। जब उसने सुनी तब उपेन्द्र और सतीश बिल्कुल दरवाज़े पर आ खड़े हुए और क्षण-मात्र के असतर्क अवसर पर बंग रमणी के जन्म जन्मार्जित अन्ध-संस्कार ने उसको लज्जा से अभिभूत कर दिया और दूसरे ही क्षण उसने दोनों हाथ बढ़ाकर अपने लाल चेहरे पर छाती तक लम्बा घूँघट खींच लिया।

सतीश हतबुद्धि की तरह बोल उठा, "सावित्री! तुम!"

सुरबाला अभी बत्ती के प्रकाश में बिहारी और दिवाकर के साथ ऊपर चढ़ रही थी। उपेन्द्र ने घूमकर कहा, "बस, अब मत आओ सुरबाला, वहीं खड़ी रहो।"

सुरबाला ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्यों?"

उपेन्द्र ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर कहा, "दिवाकर, अपनी भाभी को गाड़ी पर वापस ले जा। सतीश, मैं भी जाता हूँ।" यह कहकर वह धीरे-धीरे चल दिये।

इक्कीस

उपेन्द्र की पदध्वनि क्षीण से क्षीणतर होकर सीढ़ियों पर लुप्त हो गयी। थके हुए, निराहार, सपत्नीक – यह अँधेरी रात – तथापि, ज़रा-सा सन्देह पैदा हो जाने से बिन्दुमात्र प्रमाण के लिए वे ठहर न सके। सतीश के कमरे में बैठी हुई जिस युवती ने घोर लज्जा से, भय से इस प्राकर मुँह ढक लिया था, उसके सम्बन्ध में एक प्रश्न तक भी करने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। घृणा के मारे वही जो विमुख हो गये, फिर मुँह घुमाकर उन्होंने नहीं देखा।

लेकिन यह कैसी घटना हो गयी। क्षणभर के बाद ही अवस्था पूर्णरूप से समझकर सावित्री सिहर उठी। हजारों पुरुषों की दृष्टि के सम्मुख भी अब उसको लज्जा करने का अधिकार न था लेकिन अनजान में वह यह कैसी भूल कर बैठी! उसको ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो उसकी लज्जा के इस छोटे से अवगुण्ठन ने पलभर में दिगन्त विस्तृत होकर कुत्सित लज्जा से उसे पदनख से लेकर सिर के बालों तक कसकर जकड़ दिया। इस थोड़ी-सी लज्जा को बचाने में लज्जा का पहाड़ उसके माथे पर टूट पड़ेगा, क्षणभर पहले यह बात किसने सोची थी!

साँस रुक जाने की नौबत आ जाने से जैसे मनुष्य जी-जान से मुँह बाहर निकालने की चेष्टा करता है, सावित्री ठीक उसी प्रकार घूँघट ज़ोर से हटाकर सीधी होकर बैठ गयी। उसने प्रश्न किया, "वे कौन हैं?"

सतीश अभिभूत की भाँति द्वार के निकट खड़ा था। अभिभूत की ही भाँति उसने उत्तर दिया, "उपेन भैया और भाभी।"

"ऐं, वही उपेन भैया? वही बहूजी?" सावित्री तीर की भाँति उठ खड़ी हुई, चिल्लाकर बोली, "तब तो हटो, लौटा लाऊँ। छिः! छिः! मैं तो कोई नहीं हूँ – डेरे की एक साधारण दासी मात्र हूँ। हटो-हटो – "

उपेन कौन हैं, सावित्री यह बात अच्छी तरह जानती थी। सतीश की बातों से अनेक बार उनका बहुत कुछ परिचय वह पा चुकी थी।

इतनी देर में सतीश की नींद मानो टूट गयी। इस चीख़-चिल्लाहट, इस घबराहट-भरे भय के भाव ने उसकी समस्त विह्वलता को क्षणभर में दूर करके बिल्कुल ही जागरूक बना डाला। इस बार उसने सीधे खड़े होकर दोनों हाथ फैला दरवाज़ा रोककर कहा, "नहीं।"

सावित्री हाथ जोड़कर बोली, "नहीं क्या जी? सत्यनाश मत करो सतीश बाबू, रास्ता छोड़ो। मेरा सच्चा परिचय उन लोगों को जान लेने दो।"

सतीश ने रास्ता नहीं छोड़ा। लेकिन उसके दृढ़ निबद्ध होंठों पर सर्प-जिह्वा की भाँति दो भागों में विभक्त जहरीली हँसी का अति सूक्ष्म आभास ही दिखायी पड़ा? शायद दिखायी पड़ा। उसने कहा, "ओह! तुम्हारा सत्यानाश! नहीं, इस सम्बन्ध में तुम निश्चित रहो। लेकिन तुम्हारा सच्चा परिचय क्या है, मैं स्वयं तो पहले सुन लूँ?"

सावित्री एकाएक उत्तर न दे सकी, केवल ताकती रही। ऐसी ही निरुत्तर दृष्टि सतीश ने पहले भी देखी थी, लेकिन यह तो वह नहीं है। इस दृष्टि में इतने बड़े आघात से भी आज आग क्यों नहीं जल गयी? यह कैसी आश्चर्य-स्निग्ध करुण आँखें थीं! ये क्या उसी सावित्री की हैं?"

पलभर बाद वह धीरे-धीरे बोली, "मेरा परिचय? वही तो बता दिया – घर की दासी। दया कीजिये, सतीश बाबू, मैं उन लोगों को लौटा लाऊँ। इस अन्धकार, अनजान शहर में वे लोग क्या राह-घाट में घूमते फिरेंगे? यह क्या अच्छा होगा?"

सतीश ने तिलभर विचलित न होकर उत्तर दिया, "उनको अपने भले-बुरे को समझने का भार उनके ही ऊपर रहने दो। लेकिन राह-घाट में घूमना भी बहुत अच्छा है – लेकिन, मैं किसी तरह भी भाभी को अब इस घर में पैर न धरने दूँगा।"

"क्यों न धरने दोगे? मैंने इस घर में पैर रखा है इसलिए? सतीश बाबू, पृथ्वी माता क्या मेरे स्पर्श से अपवित्र हो जाती है?"

सतीश ने पलभर चुप रहकर प्रश्न किया, "तुम इस घर में घुस क्यों आयी?"

सावित्री मुँह ऊपर उठाकर देख न सकी। भूमि की ओर देखकर अश्रुपूरित स्वर में बोली, "आप मेरे पुराने मालिक हैं। इसीलिए असमय में कुछ भीख माँगने आयी थी।"

सतीश व्यंग्य की हँसी हँसकर बोला, "असमय में भीख माँगने! लेकिन मालिक तो तुम्हारे एक नहीं है सावित्री। इतने दिनों में एक-एक करके सभी मालिकों के घरों में तुम घूम आयी हो शायद!"

सतीश का निष्ठुरतम आघात उसके हृदय के भीतरी भाग को टुकड़े-टुकड़े कर काटने लगा, लेकिन उसने फिर मुँह ऊपर नहीं उठाया। कोई बात भी नहीं कही।

सतीश ने फिर कहा, "विपिन बाबू ने तुमको क्यों निकाल बाहर किया? शायद उनका शौक मिट गया?"

सावित्री उसी तरह चुप रही।

एकाएक सतीश को बिहारी का निवेदन याद पड़ गया। उसने पूछा, "क्या भीख माँगती हो! तीस रुपये न?"

सावित्री ने सिर झुकाये ही उसे हिलाकर अपनी सहमति दी, मुँह से कुछ बोली नहीं।

"अच्छा!" कहकर सतीश दराज के पास जा खड़ा हुआ, और पलभर में कमरे के चारों तरफ़ दृष्टि निक्षेप करके रुक गया।

इस घर की नयी सजावट ने कुछ क्षण पहले उसको इतना आनन्द दिया था, अब वही मानो उसको काटने दौड़ी। पास ही वह जो शय्या है, वह भी तो इसी स्त्री की हाथ की रचना है। स्टेशन जाने के पहले इसी पर लेटकर पलभर के लिए वह विश्राम कर गया था, इसे याद करके उसका सर्वांग संकुचित हो गया। आँखें घुमाकर झटपट दराज खोलकर कई नोट निकालकर सावित्री के पैरों के पास फेंककर बोला, "जाओ, लेकर विदा हो जाओ – फिर कभी मत आना।"

सावित्री सिर्फ़ तीन नोट गिनकर उठ खड़ी हुई, इतनी देर तक सतीश चुपचाप देख रहा था। सावित्री के खड़े होते ही उसको कोई बात कहने को उद्यत होने पर भी उसका गला रुँध गया।

एकाएक प्रबल चेष्टा से अपने आपको मुक्त करके उसने पुकारा, "सावित्री!"

"जो आज्ञा!"

"कहानियों में मैं सुना करता था – फलाँ मनुष्य फलाँ को घृणा कर सकता है। मुझे विश्वास नहीं होता था। कभी सोचकर मैं समझ नहीं सका, मनुष्य कैसे किसी मनुष्य को घृणा कर सकता है। पर आज देखता हूँ, कर सकता है, मनुष्य मनुष्य को घृणा कर सकता है। सावित्री, मैं शपथ खाकर कहता हूँ, मैं मृत्यु से बचने के लिए भी तुमको स्पर्श नहीं कर सकता।"

सावित्री चुप रही।

"अच्छा सावित्री, संसार में तुम लोगों के लिए रुपये से बड़ी वस्तु और कुछ भी नहीं है – नहीं तो वे तीनों नोट किसी तरह भी हाथ से न उठा सकतीं। आज मेरे पास जो कुछ भी है, तुमको सब ही दे दूँगा, एक बात मुझे सचमुच बताकर जाओ।"

"पूछिये।"

"पूछ रहा हूँ।" कहकर सतीश पलभर चुप रहकर बोला, "पूछने से लज्जा मालूम होती है, तो भी जान लेने की इच्छा होती है। सावित्री, कभी किसी दिन क्या किसी को तुमने प्यार नहीं किया?"

सावित्री केवल पलभर मौन रहकर मृदु लेकिन सुस्पष्ट कण्ठ से बोली, "मेरी बात जान लेने से आपको क्या मिलेगा?"

सतीश को इस बात का उत्तर खोजने पर नहीं मिला।

सावित्री दरवाज़े की ओर अग्रसर होकर बोली, "संसार में बहुत-सी बातें हैं जिन्हें आप नहीं जानते, फिर भी तो, दिन बीत ही जाते हैं, यह बात न जानने से भी आपको हानि न होगी!"

"शायद नहीं होगी।" कहकर सतीश ने लम्बी साँस ली। लेकिन वह सावित्री के कानों तक पहुँच ही गयी। वह ज्योंही मुँह फेरकर खड़ी हुई त्योंही उसके रोग से पीले पड़े दुबले चेहरे पर सतीश की दृष्टि पड़ गयी। चौंककर उसने पूछा, "तुम बीमार हो क्या सावित्री?"

सावित्री ने पलभर में आँखें झुकाकर कहा, "नहीं।"

"बहुत ही दुबली देख रहा हूँ।"

"कुछ भी नहीं है।" सावित्री उत्तर न देकर दरवाज़े के बाहर जा पहुँची। कमरे के भीतर से रुँधे कण्ठ से एक आवाज़ आयी, "सावित्री, तुमने सचमुच ही क्या एक दिन के लिए भी मुझे प्यार नहीं किया?"

सावित्री चौखट पर टिककर खड़ी हो गयी, फिर उसने मुँह नहीं घुमाया।

अन्दर का सजल कण्ठ इस बार रुलाई से टूट गया। वह बोला, "सावित्री एक ही बार

बताती जाओ, इतने दिनों तक क्या मैं नींद के ही नशे में इस दुःख के बोझ को ढोता रहा हूँ? मेरे भाग्य में क्या सब ही भूल है, सब ही मिथ्या है? यह असीम दुःख भी क्या मेरे भाग्य में आदि से अन्त तक केवल धोखाधड़ी है?"

सावित्री क्षणभर सोचती रही। फिर खड़ी हो गयी। बोली, "बाबू मैं विवश होकर ही बिहारी से रुपया उधार माँगने आयी थी, मगर सच कहती हूँ आपसे, ऐसे झंझट में पड़ जाऊँगी, जानती तो मैं आती ही नहीं।"

सतीश अवाक् हो रहा। यह कण्ठ-स्वर शान्त और मृदु था, लेकिन इसमें कोमलता का लेशमात्र भी नहीं था। क्षणभर पहले उसने ऐसे स्वर से उससे भीख नहीं माँगी थी।

उसने फिर कहा, "आपने शपथ करके कहा, मुझे घृणा करते हैं, आपकी खुशी होगी तो प्यार भी कर सकते हैं, क्रोध होने से घृणा भी कर सकते हैं – आप लोग यही करते भी हैं। लेकिन हमारे तो हाथ-पैर बँधे हुए हैं। इस मार्ग में जबकि कदम रख चुकी हूँ तब सुमार्ग-कुमार्ग जो भी हो, इसको पकड़कर न चलने से उपाय भी नहीं है।"

सतीश विह्वल विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर टकटकी बाँधे देखता रहा।

सावित्री इस दृश्य को सह नहीं सकी, दूसरी ओर मुँह घुमाकर वह ज़रा रुक गयी। उसकी अपनी बात अपनी ही छाती में बाण मार रही थी, तथापि मरणाहत सैनिक की भाँति अन्तिम बार के लिए सतीश पर खड्ग प्रहार किया। कहा, "आपने पूछा था, किसी दिन आपको मैंने प्यार किया था या नहीं? नहीं, प्यार नहीं किया। वह सब ही थी मेरी छलना। किसको प्यार करती हूँ वह ख़बर तो आप जान गये है।

सुनकर सतीश को ज्ञात हुआ मानो उसकी गृह-प्रतिमा को नदी के जल में डुबाकर, रौंद-पीसकर, घासफूस का पिण्ड-सा बनाकर कोई उसी की आँखों पर फेंक रहा हो। उसने आँखें घुमाकर कहा, "चली जाओ मरे सामने से।"

सावित्री चौखट पर सिर टेककर प्रणाम करके चुपचाप चली गयी। सतीश ने उधर देखा तक नहीं, केवल अति मृदु एक पदचाप उसको सुनायी पड़ा।

नीचे बिहारी के कमरे में टिमटिमाता हुआ चिराग़ जल रहा था। उसी कमरे में अधमुंदी आँखों से लुढ़कते-लुढ़कते प्रवेश करके सावित्री ने दोनों हाथ बढ़ाकर मानो किसी एक वस्तु को पकड़ना चाहा, और दूसरे ही क्षण पृथ्वी पर मुँह के बल मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

बिहारी उपेन्द्र आदि को ज्योतिष साहब के मकान की तरफ़ कुछ देर तक रास्ते में आगे तक पहुँचाकर पाँच मिनट पहले लौट आया था और अँधेरे में छिपकर सावित्री की अन्तिम बातें सुन रहा था। आज सारा दिन लगातार उसके साथ कितनी ही बातें की थीं, निष्ठुर गृहस्थ के घर में काम करने जाकर उसे जितना कष्ट उठाना पड़ा था, बीमार हो जाने पर कितनी पीड़ा सहनी पड़ी थी, सुनते-सुनते बिहारी रो पड़ा था। फिर भी अभी बाबू के सामने किसलिए सावित्री आदि से अन्त तक झूठी बात कह गयी, इसका कोई भी अर्थ बूढ़े की समझ में नहीं आया। सावित्री के उतर जाने पर भी वह अँधेरे में बाबू की दृष्टि से बचकर नीचे उतर आया। नीचे उसको न देख पाने पर रास्ते पर दौड़ गया। इधर-उधर कहीं भी

न पाकर फिर मकान में घुसकर झटपट वह अपने कमरे में ढूँढने लगा तो ठिठककर खड़ा हो गया। उसके बाद सावधानी से उसकी ओर जाकर बत्ती को तेज़ करके उसने पुकारा, "इस तरह जमीन पर क्यों पड़ी हो बेटी?" आहट मिलने पर स्नेहपूर्ण कण्ठ से बोला, "तबीयत ठीक नहीं है, ठण्डक में बीमारी पकड़ेगी बेटी! उठो, मैं चटाई बिछाये देता हूँ।"

सावित्री निर्वाक स्थिर रही।

बिहारी आश्चर्य में पड़ गया। अच्छी तरह दिखायी नहीं पड़ रहा था, चिराग मुँह के सामने लाकर ज़रा झुककर देखते ही बूढ़ा चिल्ला उठा, "बेटी, तुमने यह क्या कर डाला, बेटी!"

सावित्री की आँखें बन्द थीं, समूचा चेहरा पीला हो गया था। बड़े चीत्कार से भी उसने उत्तर नहीं दिया – उसी तरह मृतवत् पड़ी रही। ऊपर के कमरे में सतीश उसी तरह मूर्तिवत बैठा हुआ था। बिहारी के रोने की आवाज़ से चौंक उठा।

सतीश बिहारी के कमरे में पहुँचा और सावित्री के सिर के पास घुटने टेक कर बैठ गया। बत्ती लेकर उसके मुँह की ओर देखते ही वह समझ गया कि वह मूर्च्छित हो गयी है। उसने कहा, "चिल्ला मत बिहारी, उसके मुँह पर पानी छिड़क। रसोइये को कह दे, एक पंखा लेकर हवा करे।" साहस पाकर बिहारी ज़ोरों से पानी के छींटें देने लगा, और हिन्दुस्तानी रसोइया जी-जान से पंखा झलने लगा।

थोड़ी देर बाद सावित्री ने लम्बी साँस ली और दूसरे ही क्षण आँखें खोलकर माथे का कपड़ा खींचकर उठ बैठी।

सतीश ने कहा, "महाराज, गरम-गरम थोड़ा-सा दूध ले आओ, कुछ अधिक ही लाना, भींगा कपड़ा जल्दी ही छोड़ देने को कह दे बिहारी।"

महाराज दूध लाने चला गया। मृदु स्वर में बिहारी ने शायद यही कहा।

कुछ देर बाद चुप खड़े सतीश ने फिर कहा, "आराम मालूम होने पर वह कहाँ जायेगी, पूछकर एक गाड़ी ठीक कर देना बिहारी, इस दशा में पैदल न जाने पाये।"

सावित्री का समूचा अंग काँप उठा, लेकिन क्षीण प्रकाश में किसी ने इसे लक्ष्य नहीं किया। वह अपने को सम्भालकर निश्चल हो रही।

सतीश और भी एक मिनट स्थिर रहकर बोला, "और यदि इसको आराम न मालूम हो, तो फिर – मेरे ही कमरे में सो रहने को कह देना, मैं किसी दूसरी जगह जाता हूँ।"

सावित्री सिहर उठी, मानो वह किसी तरह भी अब अपने को सम्भाल रखने में असमर्थ हो गयी।

सतीश ने एक छोटी-सी चाभी बिहारी के आगे फेंककर कहा, "और देखो, दराज़ की चाभी तेरे पास ही रही, जितने रुपयों की आवश्यकता हो, जाते समय लेती जाये।" रोगी शरीर के साथ – सतीश की बातों ने विष और अमृत मिलाकर सावित्री के गले तक को फेनमय बना डाला।

सतीश ने कहा, "मैं पाथुरियाघाट जा रहा हूँ बिहारी, कल लौटने में शायद कुछ दिन

चढ़ जायेगा।" एक कदम आगे बढ़कर बोला, "सावित्री, कोई संकोच मत करना, जो ज़रूरत पड़े, ले जाना मैं जा रहा हूँ।"

सतीश चला गया।

सावित्री फिर एक बार ज़मीन पर गिर पड़ी। छाती फाड़ डालने वाले कण्ठ से रोकर बोली, "अजी, क्यों तुमने उस पापिष्ठा को इतना प्यार किया था? यही जो तुमने शपथ कर ली कि मुझे घृणा करते हो, यही क्या घृणा करना है? तुमको मेरा यह दुःख देना, इतना झूठ बोलना, सब ही तुम्हारे स्नेह की आग में जलकर क्या राख हो गया? कौन मुझे बता देगा कि क्या करने से तुम्हारी घृणा पाऊँगी?"

बिहारी इस रुलाई का ज़रा भी अर्थ न समझ सका। निकट आकर सान्त्वना के स्वर में बोला, "अच्छा बेटी, बाबू के सामने इतनी झूठ बातें तुमने क्यों कहीं? जहाँ तुम गयी नहीं, जो अपराध तुमने किया नहीं, किसलिए उन सबको अपने कन्धे पर लेकर इतनी अपराधिनी बन गयी।

सावित्री ने रोते-रोते कहा, "बिहारी, मेरी सभी बातें झूठी हैं। कहने में छाती फट गयी है तो भी कहनी पड़ी हैं। लेकिन वे किसी काम में तो नहीं आयी।"

बिहारी मूढ़ की तरह उसके मुँह की ओर निहारता हुआ बोला, "झूठी बातें फिर किस काम में आती हैं बेटी?"

सावित्री ने बैठकर आँखें पोंछ डालीं। उसके मुँह की ओर देखकर बोली, "ठीक जानते हो बिहारी, क्या वे किसी काम में ही नहीं आतीं?"

बिहारी ने क्षणभर सोचकर कहा, "वे आती तो हैं ज़रूर। अदालत में झूठी बातों से ही तो काम बन जाता है – वहाँ झूठी बातों का ही तो जय-जयकार है।"

सावित्री ने फिर उत्तर नहीं दिया। बड़ी देर तक स्थिर भाव से बैठी रहकर बोली, "क्यों मैंने इतनी झूठी बातें कहीं? हो सकता है एक दिन तुम समझ सकोगे। लेकिन उस बात को छोड़ो बिहारी, मेरी दो बातें मानोगे?"

"मानूँगा तो अवश्य ही बेटी! क्या बात है?"

"एक बात यह है कि मेरे चले जाने पर भी किसी दिन बाबू को मत बताना कि मैंने आदि से अन्त तक झूठी बातें कही थीं।"

बिहारी चुप हो रहा। सावित्री ने कहा, "और भी एक बात है, मैं अपना पता-ठिकाना तुमको लिख भेजूँगी। यदि कभी समझो कि मेरा आना आवश्यक है तो मुझे लिख देना। तुमको बताने में मुझे लज्जा नहीं है बिहारी, मेरे सिवा उनको कोई नियंत्रण में न रख सकेगा और विपत्ति के दिनों में उनकी कोई मुझसे अधिक सेवा भी न कर सकेगा।"

बिहारी रोने लगा। आँखें पोंछकर बोला, "मैं सब जानता हूँ बेटी।"

सावित्री उठ खड़ी हुई। बोली, "तो मैं जा रही हूँ। उनको तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रही हूँ। देखो बिहारी, मेरी दो बातें मान लेना। भगवान करे, तुम लोग सुखी रहो, मुझे यह अपना काला मुँह लेकर फिर तुम लोगों के सामने न आना पड़े।" यह कहकर सावित्री आँखें

पोंछकर आगे बढ़ गयी।

सड़क पर आकर गाड़ी किराये पर ठीक करके सावित्री को चढ़ाकर बिहारी ने पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम किया। आँखें पोंछकर गला साफ़ करके बोला, "बेटी, मेरी भी एक प्रार्थना है। आज जैसे लड़के की तरह अपना समझकर तुमने प्यार किया था, आवश्यकता पड़ने पर फिर याद करना।"

"अवश्य करूँगी।"

गाड़ी चली गयी। बिहारी फिर एक बार रास्ते पर माथा टेककर प्रणाम करके धोती से आँखें पोंछकर डेरे पर लौट आया।

बाईस

"पाथुरियाघाट जा रहा हूँ" – कहकर सतीश रात के ग्यारह बजे डेरे के बाहर आ खड़ा हुआ। थोड़ा-सा मार्ग तय करते ही समझ गया कि थकावट की कोई हद नहीं है। पैर अचल हैं, प्रत्येक अंग पत्थर की तरह भारी है। कितना बड़ा गम्भीर अवसाद उसके तन-मन में आज व्याप्त हो रहा है।

कुछ दिन पूर्व की ऐसी ही एक रात की बात उसे स्मरण आ गयी जब बिहारी ने सावित्री और मोक्षदा के घर से वापस लौटकर कहा था, "वह नहीं है, विपिन बाबू के पास चली गयी है।" उस दिन उस समाचार ने कुछ क्षण के लिए उसको विमूढ़ कर दिया था, लेकिन दूसरे ही क्षण अभिमान तथा अपमान की जो भयंकर ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी वह किले के निर्जन मैदान मे स्तब्ध आकाश के नीचे आँखों के आँसू से बुझ न जाती तो जितने ही दिनों में क्यों न हो सावित्री को बिना दग्ध किये शान्त न होती। वैसी ही रात तो आज भी आयी थी, फिर वैसी ही भयंकर ज्वाला क्यों नहीं भड़क उठी?

एक खाली गाड़ी जा रही थी, बुलाकर बोला, "पाथुरियाघाट चलेगा?"

गाड़ीवान ने गाड़ी रोककर मार्ग के प्रकाश में सतीश की ओर देखते ही सोचकर कि कोई शराबी मतवाला है, उसने कहा, "वह तो बहुत दूर है, तीन रुपया लगेगा बाबू। रुपये हैं न?"

"हाँ हैं!" कहकर सतीश चढ़ बैठा, और गाड़ी के एक कोने में सिर टेककर आँखें मूँद लीं। थकावट ने उसको इस तरह घेर लिया था कि इससे अधिक बातें कहने की शक्ति उसमें नहीं थीं।

बहुत देर बाद बहुत-सी गलियों में घूमकर गाड़ीवान ने विरक्त होकर पूछा, "किस जगह जाइयेगा बाबू, ठीक तौर से बता दें। मैं व्यर्थ ही नहीं घूम सकता।" सतीश ने अपने डेरे का पता बता दिया। कुछ देर बाद गाड़ी आकर दरवाज़े पर पहुँच गयी। कई बार पुकारने पर बिहारी ने आकर किवाड़ खोल दिया तो सतीश ने चुपके से पूछा, "बिहारी, सावित्री क्या कमरे में है?"

बिहारी ने विह्वल की भाँति निहारते हुए कहा, "नहीं बाबू, वह तो नहीं है। वह उसी समय चली गयी।"

"चली गयी?"

"हाँ बाबू! वह नहीं है।"

सतीश लम्बी साँस छोड़कर बिहारी के बिछौने के छोर पर बैठ गया। उसका यहाँ न रहना सुख की बात है या दुख की, इसकी ठीक उपलब्धि वह नहीं कर सका।

बिहारी ने पल भर रुककर मीठे स्वर में कहा, "मैंने गाड़ी ठीक कर दी थी। चलिये, आपके कमरे में बत्ती जला आऊँ।"

"नहीं रहने दो, मैं ही जला लूँगा।" कहकर सतीश उठकर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब उसकी कच्ची नींद टूटी, तब दिन काफ़ी चढ़ आया था।

एक प्रचण्ड आँधी की भाँति सब कुछ उलट-पुलटकर इस एक रात में कितनी ही घटनाएँ हो गयी हैं। उन्हीं इधर-उधर फेंके हुए बिखरे हुए चिह्नों के बीच में बड़ी देर तक उसका मन विरक्त रहा। बिहारी तम्बाकू देकर बाहर चला जा रहा था। सतीश ने पुकारकर कहा, "सुनो बिहारी, कल किस समय तक वह यहाँ आयी थी रे?"

सावित्री के चले जाने के बाद उसके सब तरह के दुर्भाग्य याद करके बिहारी का व्यथित मन भीतर-ही-भीतर बहुत रो रहा था। उसने मुँह झुकाये ही मृदु स्वर से कहा, "दोपहर को।"

"उसको किस तरह इस मकान का पता लगा?"

"यह तो मैं नहीं जानता बाबू।"

सतीश उसके मुँह की ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोला, "क्यों रे बिहारी, तू क्या सचमुच ही मुझे इतना बड़ा बैल पा गया है कि यह भी मैं नहीं समझ सकता? सच्ची बात बता?"

बिहारी आश्चर्य से दोनों आँखें फाड़ स्वामी के मुँह की ओर देखता रहा।

सतीश ने कहा, "देख क्या रहा है? क्या तू विपिन के यहाँ नहीं जाता? सावित्री के साथ तेरी भेंट-मुलाकात, बातचीत नहीं होती?"

"नहीं बाबू!" कहकर बिहारी के बाहर चले जाने को तैयार होते ही सतीश क्रुद्ध कण्ठ से बोला, "खड़ा रह, जाना मत। क्या तूने उसको यहाँ आने के लिए सिखाया नहीं था?"

बिहारी ने चुपचाप सिर हिलाकर बताया कि वह नहीं जानता।

सतीश धमकाकर बोला, "फिर नहीं!"

बिहारी सिर झुकाए ही था, चौंककर उसने मुँह ऊपर उठाकर देखा :

सतीश कहने लगा, "फिर नहीं? तो फिर किस तरह उस हरामजादी को इस डेरे का पता लगा? जा, तू भी उसी के पास जाकर रह, मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं घर में शत्रु का पालन नहीं कर सकता? आज ही तुम जाओ – तुमको मैंने जवाब दे दिया।"

बिहारी ने एक बात भी नहीं कहीं। केवल उसके आश्चर्य से भरी दोनों आँखों के कोने से आँसुओं की लड़ी लुढ़क पड़ी।

इस आँसू को सतीश ने देखा। क्षण भर मौन रहकर उसने प्रश्न किया, “रात को वह कहाँ चली गयी?”

बिहारी आँखें पोंछकर बोला, “चिट्ठी लिखकर अपना पता-ठिकाना बताने को कह गयी है।”

सतीश फिर क्षण भर चुप रहकर कोमल होकर बोला, “बहुत दुबली दिखायी पड़ी। बहुत बीमार थी शायद?”

बिहारी सिर हिलाकर बोला, “हाँ।”

“इसीलिए तो वहाँ जगह नहीं मिली?”

बिहारी ने फिर सिर हिलाकर सम्मति प्रकट की।

सतीश फिर कुछ क्षण चुप रहकर बोला, “लेकिन, इस बार तुमको मैं सावधान कर देता हूँ बिहारी, मेरे डेरे में वह फिर न घुसने पाये। या किसी प्रकार बहाना बनाकर मेरे साथ भेंट करने की चेष्टा न करे। मेरी चाभी कहाँ है? जाते समय कितने रुपये तूने दिये?”

बिहारी चाभी निकालकर बोला, “रुपये नहीं दिये।”

“दिये नहीं? क्यों नहीं दिये? तुझे तो मैंने देने को कहा था?”

“उसने लेना नहीं चाहा।” कहकर बिहारी बाहर चला गया। सतीश ने उसको फिर पुकारकर लौटा लिया। सावित्री उपस्थित नहीं थी, बिहारी उसे प्यार करता है – इसलिए इस बिहारी को चोट पहुँचा सकने पर भी मानो कुछ क्षोभ मिट जाता है। उसके आगे आते ही सतीश ने पूछा, “उसके बाद तुम लोगों में क्या परामर्श हुआ?”

बिहारी फिर अपने को रोके न रख सका। रुद्ध कण्ठ से बोला, “बाबू, सावित्री क्या परामर्श करेगी मेरे जैसे आदमी के साथ? आपके चरणों में मैंने अपराध किये हों, तो सिर झुका देता हूँ, जो इच्छा हो दण्ड दीजिये, बूढ़े मनुष्य को इस प्रकार सताइये मत।” यह कहकर वह फूट-फूटकर रो पड़ा।

सतीश के नेत्र भी एकाएक मानो गीले हो उठे। “अच्छा, तू जा।” कहकर उसको विदा करके फिर एक बार लेट रहा और नेत्र बन्द करके तम्बाकू पीने लगा। बड़ी जलन से जलकर उसके मुँह से जो भी भाषा सावित्री के प्रति क्यों न निकली हो, किन्तु उसके उस रोग पीड़ित चेहरे की स्मृति भीतर-ही-भीतर उसको बहुत ही व्यथित कर रही थी। अब बिहारी की बातों से यद्यपि कुछ स्पष्ट नहीं हुआ फिर भी रुख से जान पड़ा मानो सचमुच ही वह और कहीं चली गयी है। कहाँ चली गयी है? दो वर्ष पहले सतीश के नवनाट्य समाज में बिल्वमंगल का अभिनय हुआ था। हठात उसे वही बात स्मरण हो आयी। उसको क्यों भूल नहीं सकता? यह कैसा आश्चर्य है! जो सावित्री दुष्टग्रह की भाँति उसको केवल लगातार पीड़ा पहुँचा रही है, जो अभी केवल कुछ ही घण्टे पूर्व अपने मुँह से स्वीकार कर गयी है, वह उसकी कोई नहीं है – दोनों का कोई सम्बन्ध ही नहीं है – जिसके विरुद्ध आज उसकी घृणा का अन्त नहीं है, तो भी उसी के लिए क्यों सम्पूर्ण मन में हाहाकार उठ रहा है? यह कैसी विचित्र बात है! ऐसा भीषण विद्वेष और इतना बड़ा आकर्षण एक ही साथ किस तरह उसके हृदय

के अन्दर स्थान पा रहे हैं। हाय रे! यह यदि वह एक बार भी देख पाता, उसके एकान्त में रहने वाला हृदय ज़रा उसके नेत्रों, कानों को बन्द करके अब भी उसी एक विश्वास से अटल होकर पड़ा है – कि सावित्री केवल मेरी ही है – मुझसे बढ़कर उसके लिए संसार में और कोई नहीं है – यहाँ तक कि सावित्री के विरुद्ध उसके अपने मुँह की बातें तिल भर भी उसे इस विश्वास से विचलित न कर सकीं – तो उस दशा में सम्भवतः सतीश इस परम आश्चर्य का अर्थ समझ सकता!

तेईस

दो घण्टे बाद सतीश ने पाथुरियाघाट जाने के लिए बाहर निकलकर मन ही मन कहा – ओह कैसी मूर्खता है! जाने दो, मैं भी बच गया। मेरे सर से भी भूत उतर गया। मार्ग में चलते-चलते वह सोचने लगा, 'लेकिन उपेन भैया को आज कैसे मुँह दिखाऊँगा?' क्योंकि आग में हाथ डालने से क्या होता है, इसको जैसे वह निश्चित रूप से जानता था, अपने बाल्यकाल के स्नेही उपेन भैया को ठीक वैसे ही पहचानता था। उनके सामने इन सब अपराधों की क्षमा नहीं है, आजन्म स्नेह के बदले भी उपेन भैया से तनिक भी प्रश्रय पाने की आशा नहीं है, इस बात को उससे अधिक और कोई नहीं जानता था।

किरणमयी के मकान का मुख्य द्वारा खुला था। उसी स्थान पर सतीश चुपचाप खड़ा हो गया और अन्दर प्रवेश करने के पहले सभी बातों पर एक बार अच्छी तरह विचार करने लगा।

उसके ध्यान में आया कि केवल उपेन भैया ही उसके मित्र, गुरु और आदर्श हैं। उससे बढ़कर अपना कौन है? उसी उपेन भैया के पास जाकर सर उठाकर खड़े होने का अब कोई उपाय नहीं रह गया है। कल्पना से वह स्पष्ट देखने लगा, आज भेंट होने के साथ ही अत्यन्त कठोर शुद्ध आँखों की दृष्टि उनके बन्धुत्व स्नेह, प्रेम सभी को बिल्कुल ही जला डालेगी। तनिक भी क्षमा न करेगी।"

यही क्या सब कुछ है? इस मकान का द्वार भी इसके लिए सदा के लिए बन्द हो जायेगा। फिर यहाँ वह कौन मुँह लेकर प्रवेश करेगा?

लेकिन इतनी हानि, इतनी लांछना जिसके कारण हुई, इतना बड़ा सत्यानाश जो कर गयी, वह उसकी कौन थी? जो स्वयं पकड़ में नहीं आयी, लेकिन मुझे बाँध गयी। उसने स्वयं तो दुख भोग नहीं किया, लेकिन मुझे दुख के सागर में डुबा गयी। जिस बात को सत्य कहकर मैं स्वीकार नहीं कर सकता, उसे झूठ कहकर उड़ा देना सम्भव है! एक लम्बी साँस छोड़कर सतीश ने मन ही मन कहा, "सावित्री तुमने दुख दिया है, इसके लिए अब दुख नहीं है – लेकिन सच और झूठ को एक साथ मिलाकर यह कैसी विडम्बना में तुम मुझे बाँधकर रख गयी हो!"

दासी ने एकाएक आकर कहा, 'आपको बहूजी बुला रही हैं।"

सतीश ने चौंककर प्रश्न किया, ‘उपेन्द्र आ गये हैं?”

“हाँ, कल बड़ी रात को आये हैं।”

“उनका छोटा भाई! छोटी बहूजी?”

दासी ने सिर हिलाकर कहा, “कहाँ? नहीं तो, वह अकेले ही आये हैं। आने के बाद से ही हमारे बाबू के पास बैठे हुए हैं।”

“बाबू कैसे हैं?”

दासी ने लम्बी साँस लेकर कहा, “और बाबू! समाप्त होने में देर नहीं है।”

सतीश ने एक क्षण चुप रहकर प्रश्न किया, “भाभी कहाँ है?”

“वह अभी स्नान कर रसोईघर गयी हैं।”

सतीश और कोई प्रश्न न करके धीरे-धीरे दबे पाँव सीधे रसोईघर में चला गा। किरणमयी सम्भवतः प्रतीक्षा ही कर रही थी, सतीश के द्वार के निकट आते ही उसने उत्सुकता से पूछा, “मकान में प्रवेश न करके बाहर खड़े रहे – यह क्या बाबूजी, आँखें धँस गयी हैं, चेहरा इतना उदास है – रात को क्या नींद नहीं आयी?”

सतीश के कानों में प्रश्न के प्रवेश करते ही उसका क्रोध आग की तरह लाल होकर फिर उसी क्षण बुझकर राख बन गया। बोला, “हाँ, सारी रात जागकर उसको लेकर आमोद-प्रमोद करता रहा। सुनकर सन्तुष्ट हो गयी न? फिर यहाँ मैं न आऊँ यही न? किन्तु उस छोटे मनुष्य उपेन बाबू से कहना, मुझसे पूछते तो मैं सच्ची बात ही बता देता। संसार में उसके सिवा और भी मनुष्य हैं जो सत्य बोल सकते हैं। इसके सिवा, मेरा ऐसा कोई सम्बन्ध भी नहीं है कि डरकर मुझे असत्य बोलना पड़ता। कह दो उससे – समझ गयी न भाभी! यह कहकर वह वापस घूम पड़ा।

अचानक सतीश का यह मनोभाव देखकर, ऐसा कण्ठ-स्वर सुनकर, किरणमयी किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गयी। किरणमयी ने घबराकर बाहर आकर पुकारा, “जाओ मत बबुआजी, सुनो तो...।”

सतीश चिल्लाकर बोला, “क्या होगा सुनकर! सच कहता हूँ भाभी, वह इतना नीच मनुष्य है, यह मैंने भी नहीं सोचा था। जहाँ वह रहता है वहाँ मैं नहीं रहता। आज मैं समझ रहा हूँ क्यों बाबूजी ने उस दिन चिट्‌ठी लिखी थी। लेकिन उस नीच से जाकर कह देना मैं उसकी परवाह नहीं करता।”

किरणमयी ने व्याकुल होकर पूछा, “किससे? क्या कह रहे हो बबुआजी?”

“ठीक कह रहा हूँ भाभी, ठीक कह रहा हूँ। उससे कह देने से वह समझ जायेगा। लेकिन आज तुमसे भी कह जाता हूँ। बिना अपराध के ही अपने घर का द्वार मेरे मुँह के सामने तुमने बन्द कर दिया है। लेकिन एक दिन समझोगी, सतीश कितना ही बुरा क्यों न हो, उस पर विश्वास करके किसी ने किसी दिन धोखा नहीं खाया है। और एक बात उससे कह देना, उसकी जितनी इच्छा हो – जहाँ तक हो सके सर्वनाश का प्रयत्न करे, लेकिन मैं भी उसको अब अपना मुँह न दिखाऊँगा, वह भी मुझको...।” एकाएक सतीश दरवाज़े की ओर

देखकर रुक गया, और दूसरे ही क्षण मुँह फेरकर आँधी की तरह शीघ्रता से चला गया। उसकी दृष्टि का अनुसरण करके किरणमयी की भी दोनों आँखें पत्थर की मूर्ति की भाँति स्तब्ध उपेन्द्र के मुँह पर जा पड़ीं। वह चिल्लाहट सुनकर रोगी की शैया के पास से उठकर चले आये थे और कमरे का द्वार थोड़ा-सा खोलकर खड़े सुन रहे थे।

किरणमयी को एक बार ख़्याल हुआ – बात क्या है, उपेन्द्र इसे जान लेना चाहेंगे। लेकिन वह कुछ भी न पूछकर – चुपचाप किवाड़ बन्द करके अन्दर चले गए।

किरणमयी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। यह कैसी घटना घट गयी? सतीश अपने उपेन भैया का उसके मुँह पर कैसा अपमान कर गया, किसलिए? वह रसोईघर में वापस जाकर हाथ के कामों को मानो स्वप्नाविष्ट की तरह करने लगी, लेकिन मन में एक गम्भीर क्षुब्ध आश्चर्य सहस्रों रूप धारण करके निरन्तर चक्कर लगाने लगा। उसके घर में ही जो बहुत बड़ी विपत्ति शीघ्र ही आने वाली थी, क्षण भर के लिए वह उसे भी भूल गयी। केवल सोचने लगी, कल संध्या के बाद सतीश अपने डेरे पर वापस चला गया था, उसके बाद इसी एक ही रात में ऐसी क्या घटना घटी है जिससे वह ऐसा उन्मत्त आचरण करके चला गया!

फिर भी, उपेन्द्र ने एक बात भी जान लेने की इच्छा प्रकट नहीं की, उसको ऐसा मालूम हुआ, क्षण भर के लिए उपेन्द्र के सूखे कठोर मुख पर मानो असहनीय आश्चर्य फूट उठा, लेकिन यह सच है या केवल उसके ही मन की कल्पना है इसका भी वह निश्चय न कर सकी।

उपेन्द्र वापस चले गये और रोगी के बिछौने के एक छोर पर अपने पहले के स्थान पर जा बैठे। वह स्वभावतः ही शान्त प्रकृति के थे। एकाएक किसी पक्ष में या विपक्ष में मतामत प्रकट नहीं करते थे। लेकिन वह सहज निर्मल विचार शक्ति उनमें उस समय किसी तरह न रह सकी जब सुरबाला आदि को ज्योतिष के घर पहुँचा कर बड़ी रात को अकेले हारान के घर में आये थे। उस समय हारान का श्वास-कष्ट भयंकर रूप से बढ़ गया था। भीतर होश था या नहीं, यह भी अनुमान करना कठिन था। चारों ओर देखकर उनकी अवस्था बड़ी भीषण मालूम होती थी। फिर भी कहीं मानो ज़रा भी व्याकुलता नहीं थी। इसके पहले, उन्होंने जो दो-चार मृत्यु-शैयाएँ देखी थीं, उनका इसके साथ कितना अधिक अन्तर था। रोगी के सिरहाने उसी तरह एक तेल का दीपक अत्यन्त धीमे जल रहा था, माँ कमरे के एक कोने में चटाई बिछाकर सो रही थी – केवल किरणमयी जागती हुई बैठी थी, लेकिन उसके भी आचरण में घबराहट का कोई भी लक्षण ढूँढ़कर न पाने से उनको ऐसा ज्ञात हुआ मानो वह परम उदासीनता से पति की मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठी हुई है। माँ का भी कैसा निर्लिप्त भाव है, अपनी बीमारी से व्याकुल हैं।

कल रात को उपेन ने जो कुछ देखा था, उससे उन्हें स्पष्ट जान पड़ा था कि केवल मृत्यु की विभीषिका ही इन दोनों स्त्रियों के भीतर है, यह बात नहीं अपितु हारान का जीवित रहना ही मानो एक बाँध की तरह बन गया और वह इस छोटे से परिवार के सुख-दुख के

प्रवाह को रोककर कूड़ा-करकट से पीड़ित कर रहा है। जिस प्रकार भी हो, इस अवरोध से मुक्ति पा लेने से ही ये लोग मानो भारी संकट से बच जायेंगी।"

उपेन्द्र अभी तक किरणमयी को पहचान नहीं सके, यह सुअवसर ही उसको प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन सतीश ने पहचान लिया था। इसीलिए पहलेपहल जिस दिन हारान के बुलाने से इन लोगों ने इस घर में प्रवेश किया था, किरणमयी का उस रात का आचरण सतीश तो भूल गया ही था, उसको अधिक, अपनी कठोरता का सहस्र अपराध स्वीकार करके, उनकी क्षमा पाकर उसने भाई का स्थान ले लिया था, लेकिन उपेन को वह सुअवसर नहीं मिला। इसीलिए कल रात्रि को कमरे में घुसकर एक ही क्षण में उनका अप्रसन्न चित्त माँ के विरुद्ध विमुखता और स्त्री के प्रति घृणा से परिपूर्ण हो गया था। इसीलिए सबेरे किरणमयी जब चाय दे गयी, तो उन्होंने उसे स्पर्श तक नहीं किया।

सतीश के आने-जाने का पता अघोरमयी को नहीं चला। उस समय वह नीचे अपने काम में लगी हुई थीं, अब धीरे-धीरे कमरे में घुसकर लड़के को देखकर रोने लगीं। किसी ने उनको सान्त्वना नहीं दी, मना भी नहीं किया। एकाएक उनकी चाय की कटोरी पर नजर पड़ जाने से रोने के सुर से उन्होंने प्रश्न किया, "क्यों बेटा, चाय नहीं पी?"

उपेन्द्र संक्षेप में बोले, "नहीं...।"

अघोरमयी अत्यन्त व्यग्र हो उठीं, "नहीं, नहीं, यह नहीं होगा बेटा, सारी रात जागते रहे हो – इस पर यदि तुम बीमार पड़ जाओगे तो मैं फिर नहीं बचूँगी उपेन।"

उपेन कुछ बोले नहीं, केवल अघोरमयी के मुँह पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर दूसरी ओर ताकने लगे। इसका अर्थ समझने की शक्ति अघोरमयी में नहीं थी। बार-बार जिद करने लगीं, किन्तु उस दृष्टि का अर्थ समझ गयी किरणमयी। इस कमरे में इस मृतप्राय सन्तान के निकट बैठकर दूसरे के लड़के के लिए जननी की यह व्याकुलता कितनी असंगत और अशोभनीय जान पड़ी यह उसकी तीक्ष्ण बुद्धि से छिपी नहीं रही। लेकिन यह जो कुछ भी हो, उपेन्द्र भी किसलिए इस एक तुच्छ अनुरोध के विरुद्ध इस तरह दृढ़ प्रतिज्ञा करके कड़े बनकर बैठे रहे, इसका भी कोई कारण किरणमयी न समझ सकी। उनका यह व्यवहार किरणमयी की दृष्टि में कम अशोभनीय नहीं जान पड़ा।

दोनों ओर की यह जिद डाक्टर के आ जाने से स्थगित हो गयी। अंग्रेज डाक्टर दो-तीन मिनट तक परीक्षा कर चुकने पर अपना अन्तिम उत्तर देकर चले गये और उसके साथ यह भरोसा भी दे गये कि अगली शेष रात्रि के पहले मृत्यु की सम्भावना नहीं है।

उस समय दस बजे थे। किरणमयी ने तनिक निकट आकर मृदु स्वर से कहा, "आपको एक बार वहाँ जाकर उन लोगों से भेंट कर आना भी तो आवश्यक है।"

उपेन्द्र ने किसी ओर न देखकर कहा, "वैसी आवश्यकता नहीं है। वे लोग सब बातें जानते है।"

किरणमयी ने कहा, "तो भी एक बार जाइये। अभी तो कोई भय नहीं... तब तक स्नान करके ज़रा विश्राम करके लौट आ सकेंगे।"

उपेन्द्र चुप रहे। किरणमयी मृदु और दृढ़ स्वर से बोली, “ज़रा सोचकर देखिये, स्नान-भोजन न करके उपवास करके अब सामने-सामने बैठे रहने से तो कोई फल नहीं है। गाड़ी का सफर करके आये हैं, कल सारी रात यहाँ बैठे रहे, उसके बाद आज। दिन-रात बराबर इस तरह बैठे रहने से बीमार पड़ सकते हैं। सतीश बबुआ भी नहीं हैं – इस समय आप सचमुच ही बहुत थके जान पड़ते हैं। मैं बैठी हुई हूँ तब तक आप घूमकर आइये। बात मानिए – उठिये।”

एकाएक मुँह ऊपर उठाकर देखते ही उपेन्द्र ने दृष्टि झुका ली। इस प्रकार इतनी बातें किरणमयी ने पहले कभी उनके सामने नहीं कही थीं। इस कण्ठ-स्वर में शुभाकांक्षा की अधिकता नहीं थी, फिर भी एक दृढ़ता थी, कोमलता थी। उपेन्द्र के कानों में किरणमयी का यह स्नेह-भरा प्रथम अनुरोध बहुत ही सुन्दर जान पड़ा। बहुत दिन पहले एक रात के समय जो तीव्र कण्ठ, जो कठिन भाषा इसके मुँह से ही वह सुन चुके थे, उसके साथ इसका बड़ा ही आश्चर्यजन अन्दर जान पड़ा।

उपेन्द्र ने किसी ओर न देखकर प्रश्न किया, “आप लोगों का दिन आज कैसे बीतेगा?”

किरणमयी ने कहा, “यह बात क्यों पूछ रहे हैं। हम लोगों पर आज जो दुःख आने वाला है, उसमें कोई भाग ले न सकेगा। लेकिन आप अब देर न करें, इसी वक्त उठिये।”

सच्ची बात कहने का यह कितना अद्भुत शान्तिपूर्ण ढंग था! क्षणभर के लिए उपेन्द्र ने सब कुछ भूलकर अपनी आश्चर्य-भरी दोनों आँखों की परिपूर्ण दृष्टि किरणमयी के मुँह पर लगा दी। पहले ही उनकी दृष्टि में उसकी माँग में सिन्दूर की चमकती हुई रेखा पड़ गयी जो नारी-सौभाग्य का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन है। प्रबल उच्छ्वास से उपेन्द्र का सारा शरीर एक बार काँप उठा।

किरणमयी ने उसे देख लिया, लेकिन उसका आभास मात्र भी उसके मुख पर प्रकट नहीं हुआ। उसने कहा, “आप उठिये, मैं उनको ज़रा दूध पिला दूँ।”

उपेन्द्र उठकर बैठ गये। बोले, “दवा?”

किरणमी व्यथित स्वर से बाधा देकर बोल उठी, “नहीं नहीं, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। बहुस-सी दवाइयाँ बरबस मैंने पिलायी हैं। अब पिलाना नहीं चाहती।”

उपेन्द्र ने प्रतिवाद नहीं किया। दवा की आवश्यकता वह स्वयं भी नहीं जानते थे। पति को दूध पिलाकर उसने ज्यों ही पुनः अनुरोध किया त्यों ही उपेन्द्र उठ खड़े हुए और अति शीघ्र स्नान-भोजन करके लौट आयेंगे कहकर दरवाज़े की ओर बढ़ चले। उसी समय किरण ने मृदु स्वर से प्रश्न किया, “आते समय सतीश बबुआ के घर से होते आयेंगे क्या?”

उपेन्द्र घूमकर खेड़े हो गये, बोले, “क्यों?”

किरणमयी ने कहा, “मेरे पास तो कोई आदमी नहीं है कि उनके डेरे पर एक बार किसी को भेजूँगी, इसीलिए कह रही थी आप यदि एक बार....।”

उपेन्द्र को एकाएक ज्ञात हुआ, इस बुला लाने के प्रस्ताव से उन्हीं को मानो विशेष रूप से ठोकर लगायी गयी है। इसीलिए तीखे स्वर से उन्होंने पूछा, “उससे आपको विशेष कुछ

आवश्यकता है?”

यह कण्ठ-स्वर और उसका तात्पर्य किरणमयी से छिपा नहीं रहा। लेकिन इसीलिए अपने कण्ठ-स्वर से उसने उसे और बढ़ा नहीं दिया। केवल कहा, “इस दुर्दिन में तो मुझे सभी की आवश्यकता है उपेन बाबू? उसके अतिरिक्त, किस कारण वह आप पर इतना क्रोध करके चले गये, यह भी नहीं जानती। इसीलिए मैं सोचती हूँ, एक बार उनको बुला लाने का प्रयत्न करना क्या अच्छा नहीं है?”

उपेन्द्र ने मन ही मन और चिढ़कर कहा, “आप उनके लिए उद्विग्न मत होइये। वह तो मेरा ही मित्र है। अपना भला-बुरा हम लोग ही ठीक कर सकेंगे। फिर भी आपको यदि विशेष कार्य हो तो उसके पास आदमी भेज सकता हूँ – स्वयं जाने का समय मेरे पास नहीं है।”

किरणमयी ने मृदु स्वर में कहा, “यही अच्छा है। आदमी भेज दीजियेगा। उनका आना आवश्यक है। मित्र के साथ मित्र का मेल-समझौता जब भी हो, लेकिन मैं उनकी बहन हूँ। अपनी बड़ी विपत्ति के दिनों में अपने को दण्ड देने का अवसर आप लोगों को न दूँगी।”

“नहीं-नहीं, इसकी आवश्यकता ही क्या है – मैं ख़बर भेज दूँगा।” कहकर उपेन्द्र बाहर चले गये।

गोकि भाई-बहन के नया रिश्ता कहाँ, किस रूप में स्थापित होगा, इसकी कोई जिम्मेदारी उस पर नहीं, इस बात को उसने मन ही मन स्वीकार कर लिया। फिर भी जिस आत्मीयता की धारा एक दिन उसके बीच से प्रवाहित हो रही थी, वह आज उसे अतिक्रम कर प्रवाहित होने लगी है, इस समाचार से उसे चोट पहुँची। मित्र के प्रति वह जो मन में आये कर सकता है, पर भाई-बहन के निकटतम सम्बन्ध में किरणमयी किसी मित्र को हस्तक्षेप नहीं करने देगी, इसे समझाने के लिए अस्पष्टता का किंचित अंश बाकी नहीं रखता गया है।

छोटी गली को शीघ्रता से पार करके उपेन्द्र मुख्य सड़क पर पहुँचे और एक गाड़ी किराये पर ठीक करके उस पर सवार हो गये। अन्धकार, शीतल मृत्युपुरी से बाहर आकर शहर के इस प्रखर सूर्यालोकदीप्त, जीवन्त, कर्मचंचल राजपथ पर खड़े होने पर भी उसने आराम अनुभव नहीं किया। भीतर ही भीतर वह न जाने कैसी जलन अनुभव करने लगा।

आवश्यकता पड़ने पर किरणमयी किस प्रकार उग्र भाव से कठोर हो जा सकती है, इसे उन्होंने एक दिन देखा था, लेकिन उसका शान्तिपूर्ण विरोध भी उससे कम कठोर नहीं है, इसे उन्होंने आज की इन थोड़ी सी बातों से ही स्पष्ट अनुभव कर लिया। सतीश के साथ उसका एक विवाद उपस्थित हो गया है, किरणमयी को इसका पता चल गया है, यह बात भी उनकी समझ में आ गयी। लेकिन, झगड़े का कारण चाहे जो कुछ भी हो, दोष-गुण का विचार यह स्वयं ही करेगी, और किसी को हाथ डालने न देगी, यह बात घूम-फिरकर उनके मन में आने-जाने लगी।

चौबीस

स्त्रियों के सम्बन्ध में उपेन्द्र को अपना मत परिवर्तन करने का समय आ गया। आज उनको मन ही मन स्वीकार करना पड़ा, स्त्रियों के विषय में उनकी जो भी धारणा थी, उसमें बहुत बड़ी भूल थी। ऐसी नारी भी है, जिसके सामने पुरुष का आकाशभेदी मस्तक आप ही झुक पड़ता है। शक्ति काम नहीं करती, सिर झुका देना ही पड़ता है। ऐसी ही नारी है किरणमयी। उस रात्रि को जब प्रथम परिचय हुआ था, इसी के सम्बन्ध में उपेन्द्र ने सतीश के सामने मुँह से दूसरी तरह की बातें कही थीं, पर हृदय में सकरुण अवज्ञा के साथ सोचा था कि वह उसी प्रकार की उग्र स्वभाव की स्त्री है – जो अत्यन्त साधारण कारण से ही होश-हवास खोकर विक्षिप्त की भाँति विष खाकर या गले में फाँसी लगाकर भयंकर काण्ड कर बैठती है पर आज उन्होंने देख लिया और समझ लिया कि नहीं, ऐसी बात नहीं है। यह अत्यन्त संकट के बीच भी बुद्धि ठीक रखना जानती है और ज़रा भी उग्र न होकर सरलता से अपनी इच्छा का प्रयोग कर सकती है। इस घर में सतीश का आना-जाना उचित-अनुचित जो भी हो, किरणमयी ने बुलाया है, वह ख़बर सतीश को देनी ही पड़ेगी।

इस बात की राह में जाते-जाते वह जितना मन्थन करने लगे, उनका मन उतना ही दुःख से भर उठा। क्योंकि सतीश को उपेन्द्र बहुत अधिक स्नेह करते थे इसीलिए उसके ऊपर आज क्रोध की भी मानो सीमा नहीं थी। उसने जो अपराध किया है, उसका विचार किसी दूसरे दिन होगा, लेकिन आज जो सतीश खुले तौर से, उनके मुँह के सामने उसके सदा के अधिकृत अग्रज के आसन को दर्प के साथ पैरों से रौंद गया, उसने तनिक भी संकोच नहीं किया, सब दुःखों से बढ़कर यही दुःख उपेन्द्र के कलेजे पर बिंध गया था।

कुछ दिन पहले उपेन्द्र को घर में बैठकर एक गुमनाम पत्र के द्वारा सतीश के विषय में बातें ज्ञात हुई थीं। यह पत्र राखाल ने लिखा था। जब दोनों में प्रेम था, तब सतीश के मुँह से ही राखाल ने उसके इस परम मित्र की बहुत-सी असाधारण कहानियाँ सुनी थीं। उपेन्द्र भैया की असाधारण विद्या-बुद्धि और उनके शुभ निष्कलंक चरित्र की ख्याति कैसी थी। सतीश को बड़ा गर्व था अपने उपने भैया का, और उनके असीम स्नेह ने उसी स्थान पर चोट पहुँचाने के समान भयंकर आघात, सतीश के लिए और कुछ भी नहीं हो सकता, धूर्त राखाल इस बात को भली प्रकार समझ गया था।

लेकिन इस पत्र ने उस समय कुछ भी कार्य नहीं किया था। उपेन्द्र ने पत्र पढ़कर फेंक दिया था और पत्र-लेखक को लक्ष्य करके मुस्कराते हुए कहा था, "तुम चाहे जो भी हो और सतीश की जितनी ही गुप्त बातों की जानकारी तुमको क्यों न हो गयी हो, मैं तुमसे भी अधिक उसको जानता हूँ।" और दो दिनों के बाद पिता के प्रश्न के उत्तर में हँसकर कहा था, "सतीश अच्छी तरह ही है। किन्तु जान पड़ता है कि किसी से झगड़ा करके पुराना डेरा छोड़कर अन्यत्र चला गया है। उसी मनुष्य ने एक गुमनाम पत्र लिखकर उसके सम्बन्ध में अनाप-शनाप बातें लिख भेजी हैं।"

बूढ़े ने उद्विग्न मुँह से पूछा था, "कैसी अनाप-शनाप बातें उपेन्द्र?"

उपेन्द्र ने उत्तर दिया था, "उन सब झूठी कहानियों को सुनकर आपको समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने तो स्वयं ही उसे पाला-पोसा है – मैं जानता हूँ वह ऐसा कुछ भी न करेगा जिससे किसी आत्मीय का सिर झुक जाये। आप निश्चिन्त रहिये।"

उनके उस विश्वास पर वज्रपात हो गया सावित्री को अपनी ही आँखों से देखकर। सतीश के निर्जन कमरे में श्रृंगार करने में निमग्न अकेली रमणी! उसमें कैसी सुगम्भीर लज्जा थी! और लज्जा से भी बढ़कर उन दोनों बड़ी आँखों का व्यथित व्याकुल दृष्टि में क्या ही त्रास फूट उठा था? इसमें भूल करने की गुंजाइश नहीं थी। एक क्षण में ही उपेन्द्र के मन में राखाल की उस प्रायः भूली हुई चिट्ठी का अक्षर-अक्षर मानो आग के अक्षरों की भाँति जल उठा था। प्रश्न करने या सन्देह करने की और कुछ भी आवश्यकता नहीं थी।

उस चिट्ठी को विश्वास योग्य बता देने की चेष्टा में राखाल ने कुछ भी कमी नहीं की थी। उसमें सावित्री का नाम तो था ही, तरह-तरह के विवरणों के बीच उसकी भौंहों के ऊपर एक छोटे तिल रहने की बात का ज़िक्र करने में भी उसने गलती नहीं की थी। वह चिह्न इतना ही सुस्पष्ट था कि क्षणभर के दृष्टिपात से ही उपेन्द्र ने देख लिया था।

सतीश को बुला देने का अप्रिय कार्य मार्ग में ही खत्म करके चलें या नहीं इसका निश्चय करते-करते ही भाड़े की गाड़ी ज्योतिष साहब के घर के सामने पहुँच गयी और फाटक में प्रवेश करते ही उनकी उत्सुक दृष्ट को किसी ने मानो दुमंजिले की ओर खींच लिया।

उपेन्द्र ने गरदन बढ़ाकर देखा, उन्होंने जिसकी निस्सन्देह आशा की थी ठीक वही मौजूद थी। खुली बड़ी खिड़की पर एक स्थिर प्रतिमा इसी रास्ते से ऊपर ही मानो समूचा प्राणमन उड़ेल कर खड़ी थी। इतनी दूर से अच्छी तरह देख लेना सम्भव नहीं था, तो भी उनके मानस नेत्रों से खिड़की पर खड़ी होने वाली के होंठों की कुछ कँपकँपी से लेकर आँखों की पलकों के ऊपर की जलरेखा तक भी छिपी नहीं रही। उनकी इतनी देर की चिन्ता-ज्वाला अभिमान और अपमान के घात-प्रतिघात की वेदना मिट गयी, केवल यही एक बात मन में जाग उठी कि सुरबाला की सारी रात और समूचा प्रातःकाल न मालूम किस तरह बीता है। जो ऐसी है, शक्ति रहने की हालत में शायद उसको घर से बाहर निकलने भी नहीं देती। उसने इस अपरिचित शहर के बीच इस गम्भीर रात्रि में अपने बीमार पति को अकेले घर से बाहर जाने देकर इतने समय तक कैसे बिताया, इसे सोचकर एक तरफ़ उनको हँसी आ गयी, दूसरी तरफ़ वैसे ही आँखों के कोने में जल भी आ गया।

सरोजिनी शायद ख़बर मिलने पर ठीक उसी समय अन्दर से दौड़ती हुई बाहर के बरामदे में पहुँच गयी। उपेन्द्र को देखते ही उसके मुँह पर और उसके नेत्रों में हँसी की छटा भर गयी। गाड़ी से उतरते न उतरते ही वह बोल उठी, "बाहर अब एक पल भी नहीं, एकदम ऊपर चले चलिये।"

उपेन्द्र यथासम्भव गम्भीर मुँह से इसका कारण पूछते समय स्वयं भी हँस पड़े। तब सरोजिनी ने हँसकर कहा, "अच्छी स्त्री को कल रात को आपने मेरे जिम्मे कर दिया था

– न तो स्वयं सो सकी, न तो मुझे ही सोने दिया। सारी रात गाड़ी की आवाज़ सुनती रही और खिड़की खोलकर देखती रही – यह क्या! पत्र लिखने क्यों बैठ गये! नहीं-नहीं, यह नहीं होगा – एक बार दर्शन तो दे दीजिये उसके बाद जो इच्छा हो कीजिये – अभी नहीं।"

बाहर के बरामदे में एक छोटी-सी मेज़ पर लिखने की सामग्री तैयार थी। उपेन्द्र ने एक काग़ज़ खींचकर कहा, "पत्र लिख लूँ उसके बाद जो कहिये, मैं कर सकता हूँ, लेकिन इसके पहले नहीं, पाँच मिनट से ज़्यादा न लगेगा – इच्छा हो तो जाकर ख़बर दे सकती हैं।"

सरोजिनी ने उसी तरह हँसते हुए चेहरे से कहा, "मुझे ख़बर देने की आवश्यकता नहीं है – उन्होंने ही मुझे ख़बर देने के लिए बाहर भेजा है। अच्छा, मैं पाँच मिनट खड़ी रहती हूँ, आपको साथ लेकर ही चलूँगी।"

उपेन्द्र फिर उत्तर न देकर पत्र लिखने लगे। लिखते-लिखते उनके चेहरे पर व्यथा और विरक्ति के जो सुस्पष्ट चिह्न पड़ रहे थे, उन्हें निकट ही खड़ी रहकर सरोजिनी निरीक्षण कर रही थी, इसको वह जान भी न सके।

पत्र समाप्त करके, उसको लिफ़ाफ़े में भरकर पता लिखकर उपेन्द्र ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। कोचवान ने आकर सरोजिनी को लक्ष्य करके कहा, "गाड़ी तैयार है।"

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या आप बाहर जायेंगी?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ, अपना छोटा पियानो मरम्मत करने को दे आयी हूँ, उसे एक बार देख आऊँगी।"

उपेन्द्र ने खुश होकर कहा, "पता लिखा है, थोड़ा कष्ट उठाकर यह पत्र साईस के हाथ घर में भेजवा दीजियेगा।" यह कहर उपेन्द्र ने सरोजिनी के फैलाए हुए हाथ पर पत्र रख दिया।

सरोजिनी कुछ देर तक उसके सिरनामे की तरफ़ देखती रही। नाम और पते की दो लाइनों को पढ़ने में अधिक समय नहीं लगा। उसके बाद उसने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "सतीश बाबू इस बार हम लोगों के घर पर क्यों नहीं आये?"

"हम लोगों के साथ आया नहीं – सतीश बराबर यहीं रहता है।"

यह समाचार सुनकर सरोजिनी चौंक पड़ी। उपेन्द्र के मन की अवस्था यह सब देखने योग्य नहीं थी। अगर रहती तो वे चकित रह जाते।

सरोजिनी ने अपनी लज्जा को दबाकर सहज भाव से बोलने की चेष्टा की, "वह कभी इस ओर क़दम नहीं रखते, लेकिन इतने दिनों से इतने पास रह रहे हैं।"

उपेन्द्र अन्यमनस्क होकर कोई दूसरी ही बात सोच रहे थे। बोल, "मालूम पड़ता है, आप लोगों की बातें उसे याद नहीं हैं।" यह बात कितनी सहज थी लेकिन कैसी कठिन होकर सुनने वाली के कानों में जा लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "एक बात है, दिवाकर कहाँ है?"

"वह भैया के साथ हाईकोर्ट घूमने गये हैं। चलिये, आपको साथ लेकर पहले अन्दर पहुँचा आऊँ।" कहकर सरोजिनी घर में चली गयी।

बीस मिनट के बाद वह लौटकर जब गाड़ी पर सवार हो गयी और आदेशानुसार गाड़ी जब सतीश के डेरे की तरफ़ रवाना हो गयी, तब अन्दर बैठी हुई सरोजिनी का हृदय काँपने लगा, और गाड़ी जितना ही अग्रसर होने लगी, हृदय का स्पन्दन मानो उतना ही प्रबल होने लगा।

उसे लगा, मानो वह ऐसे ही एक महत्वपूर्ण काम का भार लेकर जा रही है – जिसकी सिद्धि पर उसके अपने ही भविष्य का भला-बुरा मानो सब कुछ निर्भर कर रहा है।

थोड़ी ही देर में गाड़ी सतीश के डेरे के सामने आकर ठहर गयी और साईस पत्र हाथ में लिए उतरा। सरोजिनी ने गाड़ी के एक कोने में सटकर सिकुड़कर बैठी रहकर कान लगाये दरवाज़े पर साईस का कराघात सुना। कुछ देर बाद दरवाज़ा खुलने का शब्द और उसके अन्दर जाने की आवाज़ उसे मालूम हुई और उसके बाद प्रतिक्षण किसी सुपरिचित गम्भीर कण्ठ-स्वर कानों में पहुँचने की आशंका और आकांक्षा से स्तब्ध रोमांचित होकर वह बैठी रही। वह अवश्य जानती थी, गाड़ी और गाड़ी के अन्दर जो बैठी हुई है, साईस के मुँह से उसका परिचय पाकर सतीश स्वयं ही आ जायेगा। उसको एक बार भी यह ख़्याल नहीं आया कि जो व्यक्ति इतने दिनों से इतना निकट रहकर भी इस तरह भूलकर रह सकता है, उसको यह समाचार तनिक भी विचलित नहीं कर सकता।

फिर साईस का कण्ठ-स्वर दरवाज़े के पास सुनायी पड़ा – वह दरवाज़ा बन्द भी हो गया, और क्षणभर बाद ही वह पत्र हाथ में लिये अकेले लौट आया। उसने कहा, "बाबू घर में नहीं हैं।"

"घर में नहीं हैं?" पलभर के लिए सरोजिनी स्वस्थ होकर बच गयी। मुँह बढ़ाकर उसने कहा, "पत्र लौटाकर क्यों लाया, जा रख आ।"

साईस ने कहा, "बाबू कलकत्ता में नहीं है, दिन के दस बजे की गाड़ी से घर चले गये।"

यह बात सुनकर न मालूम क्यों उसको यह घर अपनी ही आँखों से देख लेने की अदम्य इच्छा हो गयी, उसका ठीक कारण वह स्वयं भी न समझ सकी और दूसरे ही क्षण वह उतर आयी फिर किवाड़ खोलकर अन्दर चली गयी। हिन्दुस्तानी रसोइया चीज़ों के पहरे पर तैनात था, उसकी सहायता से सभी कमरों में घूम-फिरकर देखकर नीचे उतरने के रास्ते में रस्सी की अरगनी पर लटकती हुई एक अधमैली चौड़ी पाट की साड़ी पर सरोजिनी की निगाह पड़ गयी। कौतूहली होकर प्रश्न करने पर ब्राह्मण ने अपनी बोली में बताया, 'यह माँ जी का कपड़ा है।"

तीसरे पहर स्नान कर सावित्री ने अपने पहिनने की भीगी साड़ी सूखने के लिए डाल दी थी, वह उस समय तक टंगी हुई थी। आश्चर्य में पड़कर पूछताछ करने पर इस माई जी के बारे में सरोजिनी को जो बातें मालूम हुई, उससे वह और भी आश्चर्य में पड़ गयी। जो सब घटनाएँ सहज भाव से घटित नहीं होतीं, और जिनके अन्दर पाप रहता है, उन्हें छान-बीनकर समझ न सकने पर भी सभी लोग अपनी बुद्धि के अनुसार एक प्रकार समझ सकते हैं, यह हिन्दुस्तानी भी सपत्नीक उपेन्द्र के आने और इस तरह उसी क्षण चले जाने

से लेकर आज सबेरे मालिक के अचानक प्रस्थान कर देने के बीच माई जी का जो सम्पर्क रहा, उसको अनुमान से समझ गया था। विशेष रूप से सतीश का उद्भ्रान्त आचरण किसी भी आदमी की दृष्टि से छिपा रहना सम्भव नहीं था इसीलिए उसने सावित्री की बीमारी आदि की बहुत-सी बातें कह दीं और उसकी देखभाल करने के लिए उसके मालिक को इस तरह व्यस्त और व्याकुल होकर अकस्मात प्रस्थान, करना पड़ा है, यह बात भी उसने एक तरह समझा दी। सरोजिनी यही एक नया तथ्य जान गयी कि उपेन्द्र वगैरह सबसे पहले इसी घर में आये थे, सामान तक गाड़ी से उतार लिया गया था, लेकन उसी दम सब उठाकर उसी गाड़ी पर सवार होकर चले गये। फिर भी उन लोगों में से किसी ने सतीश के नाम का भी ज़िक्र नहीं किया – उसके बाद आज यह पत्र आया है, स्पष्ट ही समझ में आ गया, उपेन्द्र को अपने मित्र के अकस्मात चले जाने की बात मालूम नहीं है। अधीर उत्सुकता से लगातार इस स्त्री के सम्बन्ध में तरह-तरह के प्रश्न करके उसकी अवस्था और सुन्दरता के सम्बन्ध में उसको जो तालिका मिली, यह सत्य लाँघकर भी बहुत ऊँचाई पर चली गयी। आख़िर में लौट आने पर जब वह गाड़ी में बैठ गयी, तब उसको पियानो की मरम्मत कराने का शौक दूर हो गया था, और अज्ञात भारी बोझ से हृदय के अन्दर भाराक्रान्त हो उठा था।

यह रहस्यमयी कौन है और किस कार्य के सिलसिले में आयी थी यह बात जानी नहीं गयी। लेकिन एकाएक छिपाने-चुराने का अस्तित्व उसके मन में दृढ़ता से अंकित हो रहा।

सतीश और किरणमयी पर उपेन्द्र की रंजिश और अभिमान जितना बड़ा ही क्यों न हो, उसको प्रधानता देकर कर्तव्य की अवहेलना करना उनकी आदत नहीं है। इसीलिए भोजन आदि के बाद पाथुरियाघाट के घर पर लौट जाने की ही उनकी इच्छा थी अवश्य, लेकिन घोर थकावट ने आज उनको परास्त कर दिया। इसके अलावा सुरबाला ऐसी जिद पकड़े रही कि उसकी अवहेलना करके जाना भी कठिन हो गया।

कई घण्टे बाद जब उनकी नींद टूटी, तब दिन शेष नहीं था। हड़बड़ाकर उठकर बैठ जाने के साथ ही पास की तिपाई पर रखे हुए पत्र पर उनकी दृष्टि पड़ गयी। उसे उठाकर हाथ में लेकर उन्होंने देखा – पत्र उसी तरह बन्द है – जिस कारण ही क्यों न हो वह सतीश के हाथ में नहीं पड़ा है। आहट पाकर सुरबाला ने कमरे में प्रवेश कर कहा, "सतीश बबुआ यहाँ नहीं है, दिन के दस बजे की गाड़ी से घर चले गये हैं।"

यह समाचार सुनकर उपेन्द्र का मुख स्याह हो गया। पहले ही ख़्याल हुआ, इस अपरिचित शहर में हारान की आसन्न मृत्यु-सम्बन्धी जितने कर्तव्य हैं, अब अकेले उन्हीं को सम्पन्न करने पड़ेंगें ओह, कितने काम हैं! और कितने भयंकर कष्ट कर हैं! लोगों को बुलाना, चीज़-सामान जुटा देना, सद्यः विधवा और जननी की गोद से उसके एकमात्र सन्तान का मृत शरीर खींचकर ढो ले जाना, इस मर्मान्तक शोक के दृश्य की कल्पना करके ही उनका सर्वांग पत्थर की तरह भारी और समस्त चित्त पाथुरियाघाट के विरुद्ध वक्र होकर खड़ा हो गया। अपनी जानकारी में वे मन ही मन सतीश के ऊपर निर्भर थे, अब वही संकट, अभिमान और अपमान के आवरण को भेदकर सामने प्रकट हो गया।

यह सब काम उपेन्द्र की प्रकृति के विरुद्ध है। यथाशक्ति वह इसमें पड़ना नहीं चाहते थे लेकिन सतीश के लिए यह सब काम कितने सहज थे। गाँव में ऐसा कोई भी आदमी नहीं मरा जहाँ वह अपना कर्मठ बलवान शरीर लेकर सबसे पहले हाज़िर न हुआ हो, और सभी अप्रिय काम चुपचाप आडम्बर के बिना सम्पन्न न कर दिये हों। दुर्दिन में सभी उसको खोजते थे और उसके आगमन से शोकार्त्त और विपत्तिग्रस्त गृहस्थ इस दुःख के भी बीच सान्त्वना और साहस पाता था। वही जब कलकत्ता छोड़कर चला गया, तब क्षणभर के लिए उपेन्द्र को किसी ओर फिर रास्ता नहीं दिखायी पड़ा।

सुरबाला ने पति के मुख का भाव देखकर हारान की अवस्था के बारे में पूछा, लेकिन सतीश का प्रसंग नहीं उठाया। सरोजिनी ने वापस आकर बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए बातचीत के बहाने जो ज़िक्र किया था, उसी से उसने कल रात की घटना का अनुमान कर लिया था, सतीश उसके पति का कितना बड़ा मित्र है, इसको वह जानती थी इसीजिये इस व्यथा को उसने छिपा दिया।

सुरबाला की सांसारिक बुद्धि पर कुछ भी आस्था न रहने के कारण ही उपेन्द्र किसी दिन भी स्त्री के सामने किसी समस्या का ज़िक्र नहीं करते थे, लेकिन अभी-अभी वह अपने को इतना विपत्तिग्रस्त समझ रहे थे कि उसी क्षण सारी स्थिति खोलकर प्रकट करके व्याकुल भाव से बोले, "वह मुझे इस विपत्ति में छोड़कर चला जायेगा सुरो, यह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। अकेला इस अनजान स्थान में क्या उपाय करूँ।" यह कहकर उपेन्द्र मानो असहाय शिशु की भाँति स्त्री के मुँह की ओर ताकने लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात है कि पति की इतनी बड़ी विपत्ति का समाचार पाकर भी सुरबाला के मुख पर तनिक भी घबराहट न दिखायी दी। वह निकट चली आयी और उनका एक हाथ पकड़कर बिछौने पर बैठाकर धीरे से बोली, "तो क्यों इतना सोचते हो, इस कलकत्ता में किसी के लिए भी काम नहीं रुकता, चाय तैयार है, हाथ-मुँह धोकर तुम चाय पी लो, छोटे बबुआजी को साथ लेकर मैं भी चल रही हूँ, चलो।"

उपेन्द्र ने अवाक होकर कहा, "तुम चलोगी?"

सुरबाला ने अविचलित भाव से कहा, "अवश्य ही चलूँगी। किसी स्त्री के दुर्दिन में उसके पास रहना स्त्री का ही काम है।" यह कहकर उसने अनुमति के लिए प्रतीक्षा भी न करके पास के कमरे से चाय लाकर हाज़िर कर दी, और दिवाकर को ख़बर देकर बाहर चली गयी।

गृहस्थों के घर-घर में जब संध्या के दीपक जलाये जा चुके थे, ठीक उसी समय उन लोगों ने पाथुरियाघाट के घर में प्रवेश किया। सदर दरवाज़ा खुला था, लेकिन नीचे कहीं भी कोई नहीं था। अँधेरा टूटा-फूटा घर श्मशान की तरह खामोश था! दोनों को सावधानी से अनुसरण करने का संकेत करके उपेन्द्र ऊपर चढ़कर हारान के बन्द किवाड़ के सामने आकर क्षणभर के लिए स्तब्ध होकर खड़े हो गये। अन्दर से केवल एक मर्मभेदी लम्बी साँस कानों में आकर पहुँची। काँपते हुए हाथ से किवाड़ ठेलकर देखते ही अन्धकार में बिछौने पर आपादमस्तक वस्त्राच्छादित हारान का मृत शरीर दिखायी पड़ा। उसके दोनों पैरों के बीच

मुँह छिपाकर सद्यः विधवा औंधी होकर पड़ी हुई थी – उसने एक बार सिर हिलाकर उठाकर देखा, और दूसरे ही क्षण विद्युत-वेग से उठकर खड़ी होकर आर्त्तस्वर से माँ कहकर चीत्कार करके तुरन्त ही उपेन्द्र के पैरों के नीचे मूर्च्छित होकर गिर पड़ी और उसी क्षण पलभर में सुरबाला ने उद्भ्रान्त, हतबुद्धि पति को एक ओर ठेलकर कमरे में घुसकर किरणमयी के मुँह को अपनी गोद में ले लिया।

पच्चीस

अस्थि-मांस-मेद-मज्जा-रक्त से निर्मित इस मानव शरीर में सभी चीज़ों की एक सीमा निर्धारित है। मातृ-स्नेह भी असीम नहीं है, उसका भी परिमाण है। भारी बोझ दिन-रात खींचकर घूमते रहने से रक्त-संचार जब बन्द होने लगता है, तब उस सीमा-रेखा के एक छोर पर खड़ी रहकर जननी भी फिर सन्तान को ढोकर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। यह स्नेह के अभाव से होता है या सामर्थ्य के अभाव से, इसकी मीमां सा का भार अन्तर्यामी के हाथ में है, माँ के हाथ में नहीं। उस दिन जब हारान का मृत शरीर माता की गोद से अलग होकर श्मशान में चला गया, तब अघोरमयी की छाती को चीरकर जो लम्बी साँस उसी असीम के पदप्रान्त में इस मृत्युवार्ता को ढोकर ले गयी, वह अपने साथ और कुछ ले गयी या नहीं, इसका अनुमान करने का सामर्थ्य मनुष्य में नहीं है।

उनकी अत्यन्त ज्वर की दशा में ही हारान की मृत्यु हुई। उसके बाद आठ-दस दिन किस तरह कहाँ से चले गये, वे जान न सकीं।

श्राद्ध के किसी प्रकार समाप्त हो जाने पर उन्होंने उपेन्द्र को पकड़ लिया, कहा, "बेटा, पास के घर से मल्लिक घराने की बड़ी बहू काशी, वृन्दावन, प्रयाग घूमने जायेंगी, क्या उसके साथ जाना नहीं हो सकता?"

"क्यों नहीं मौसी, अच्छी तरह से हो सकता है। लेकिन..." कहकर उसने एक बार किरणमयी की ओर देखा।

किरणमयी ने समझकर कहा, "मेरे लिए चिन्ता न करो बबुआ, मैं दासी को लेकर अच्छी तरह रह सकूँगी।"

लेकिन उपेन्द्र इस पर तुरन्त ही सम्मति न दे सके, चुप ही रहे।

किरणमयी उनके मुँह की ओर क्षणभर देखती रही। फिर बोली, "या यह भी तो हो सकता है, दिवाकर बबुआ तो कलकत्ता में रहकर ही पढ़ेंगे ऐसा निश्चय हो चुका है, उनको मेरे ही पास क्यों नहीं रख देते! एक अनजान घर में रहने की अपेक्षा मेरी आँखों के आगे तो अधिक अच्छा है। देखभाल भी होगी, कलकत्ता में अकेले रखने से जो सब भय है, वह भय भी न रहेगा।" यह कहकर उसने उपेन्द्र के मुँह पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी।

अघोरमयी अपनी पूरी सम्मति देकर बोल उठीं, "इससे अच्छी और कौन बात हो सकती है उपेन – यही करो। उस लड़के की देखभाल भी होगी, यह अभागिनी भी जो कुछ हो,

ज़रा हिल-डोलकर बचेगी। ये किसी प्रकार ज़रा बाहर निकल सकने से ही बच जायेगी।" इतनी आसानी से ऐसा सीधा मार्ग आविष्कृत होते देख उन्होंने निश्चिन्त भाव से एक लम्बी साँस ली। लेकिन उपेन्द्र किरणमयी का साहस देखकर एकदम स्तम्भित हो गये। ऐसा एक अचिन्तनीय प्रस्ताव उनके मुँह से निकला ही कैसे यह तो वह सोचने पर भी समझ न सके। दिवाकर जो कुछ भी हो, वह बच्चा नहीं है – वह भी यौवन-प्राप्त पुरुष है। फिर भी इस परम रूपवती रमणी को अकेले इस निर्जन घर में ठीक मानो बच्चे की ही तरह उसका लालन-पालन करने और सुयोग्य बना देने का हर प्राकर का दायित्य निःसंकोच ग्रहण करने को तैयार देखकर उपेन्द्र के मुँह से भली-बुरी कोई बात नहीं निकली। यह रमणी कैसी असाधारण बुद्धिमती है, यह जानना उनके लिए शेष नहीं था। उसने संगत-असंगत, सांसारिक और सामाजिक, विधि-व्यवस्था विशेष रूप से जान-बूझकर ही यह प्रसंग उठाया है इसमें भी सन्देह नहीं है – फिर भी, यह कैसी बात? किस तरह उसने कही?

पलभर में उसने अपनी समस्त पर्यवेक्षण शक्तियों को जाग्रत और एकत्र करके इस अनन्त सौन्दर्यमयी के हृदय में भेज देना चाहा, लेकिन कहीं भी उनको प्रवेश का मार्ग नहीं मिला। अपितु कहीं मानो ज़ोरों से टकराकर उसी क्षण वापस आ गयी।

लेकिन यह जो पलभर के लिए दोनों एक-दूसरे के मुँह की ओर चुपचाप ताकते रहे, इसी से दोनों के बीच मानो एक नये प्रकार से जान-पहचान हो गयी। उसको ख़्याल हुआ, ऐसी शुद्ध, शान्त और आत्मसंयमपूर्ण वैराग्य की मूर्ति उसने और कभी नहीं देखी थी। उस दिन, रात के समय इसके वेष की सजावट देखकर सद्यः समागत उसकी और सतीश की दृष्टि झुलस गयी थी, ख़्याल हुआ था, इसकी तुलना नहीं है – इस तरह सजावट न कर सकने से किसी की सजावट ही नहीं होती। आज फिर उसकी यह रूखी, शिथिल असम्बद्ध केशराशि और विधवा की सजावट देखकर ज्ञात हुआ ऐसी सम्भवतः किसी दिन यह दिखायी नहीं पड़ी। अत्यन्त अकस्मात नवलब्ध चेतना की तरह यही एक बात उनकी नस-नस में प्रवाहित हो गयी कि सौन्दर्य का यह जो अपरिसीम समावेश है, यह ठीक अग्निशिखा की तरह तरंगित होकर ऊर्ध्व की ओर उठ रहा है – इसे जी भरकर देखना चाहिए, स्पर्श नहीं करना चाहिए – जो करता है, वह मरता है। यह तीव्र शिखारूपिणी विधवा जिस असंकोच और निर्भय रूप में दिवाकर को ग्रहण करना चाहती है वह वास्तव में अधिकार के गर्व से कर रही है। इसमें दुस्साहस या स्पर्द्धा नहीं है।

उपेन्द्र उस समय बात न कर सके। लेकिन उनके मानस नेत्रों की दृष्टि से इस विधवा के सामने दिवाकर बिल्कुल ही छोटे बच्चे की भाँति तुच्छ हो गया, और उस दिन क्यों सतीश को छोटे भाई की तरह अपने पास भेज देने का उनसे अनुरोध किया था, यह बात भी आज बिल्कुल ही स्पष्ट हो गयी। उनके परितृप्त मन ने चुपचाप हाथ जोड़े इस महामयी के सम्मुख अपना अपराध बार-बार स्वीकार करके मन ही मन क्षमा-याचना कर ली। तीनों ही चुप थे। किरणमयी ने पहले बात कही। अपनी दोनों आँखों की करुण दृष्टि पहले की ही तरह उपेन्द्र के मुँह पर स्थिर रखकर अनुनय के स्वर से उसने कहा, "दिवाकर को मेरे पास क्या

रख न सकोगे बबुआजी?"

उपेन्द्र मन्त्रमुग्ध की भाँति बोले, "क्यों न रख सकूँगा भाभी! आप यदि उस का भार ले लें, तो यह परम सौभाग्य होगा।" इतने दिनों के बाद उपेन्द्र ने आज पहले-पहल उसको आत्मीय की तरह सम्बोधन किया। कहा, "दिवाकर मेरे साथ ही तो आया था, कब अकेले चला गया है शायद, नहीं तो बुलाकर कह देता।"

यह बात सुनकर किरणमयी चकित हो उठी। इस बार उसके मुँह से बात नहीं निकली। अकस्मात आनन्द की बाढ़ ने मानो उसके दोनों किनारों को बहा देने की तैयारी कर दी। इसीलिए वह क्षणभर के लिए दूसरी ओर मुँह फेरकर अपने को सम्भालने लगी। इतना थोड़ा-सा आत्मीय सम्बोधन! यह कितना है? किन्तु इसी के लिए वह मानो कितने युगों से प्यासी थी, ऐसा उसे ज्ञात हुआ। सतीश ने यही कहकर पुकारा है, दिवाकर यही कहकर पुकारा करता है, लेकिन उसमें और इसमें कितना अन्तर है। इस आह्वान से इतने दिनों के बाद उपेन्द्र ने उसको जो अपने समीप खींच लिया, एकाएक उसे आशंका हुई इसके प्रचण्ड वेग को वह सम्भवतः सम्भाल न सकेगी।

लेकिन इन लोगों की इस आकस्मिक मौनता से अघोरमयी शंकित हो उठीं। बोलीं, "बेटा उपेन, तब तो मेरे जाने में कोई विघ्न नहीं है, लेकिन उस काम में तो अब देर नहीं है, मैं क्या इसी समय जाकर मल्लिक जी की बड़ी बहू को कह न आऊँ।"

उपेन्द्र किरणमयी की ओर एक बार दृष्टिपात करके बोले, "मैंने तो कह दिया है मौसी, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम्हारी बहूजी के सहमत होने से हो जायेगा। जब उनका भी मत है तब तुम्हारी तीर्थयात्रा में तो कोई बाधा ही मैं नहीं देखता।"

"तो जाऊँ बेटा, मैं इसी समय जाकर उससे कह आऊँ। यह भी जान आऊँ कब उन लोगों का जाना होगा।" इतना कहकर अघोरमयी दासी को बुलाकर प्रफुल्ल मुँह से नीचे उतर गयी।

उनकी इस शीघ्रता से उपेन्द्र ने मन ही मन सन्तोष का अनुभव करके कहा, "अच्छा ही हुआ। जिस तरह भी हो, अब कुछ दिनों के लिए उनका बाहर जाना अत्यन्त आवश्यक है।"

किरणमयी कुछ भी नहीं बोली। इस समय वह किसी कारण मानो अनमनी-सी हो गयी थी। उत्तर न पाकर उपेन्द्र ने फिर कहा, "आपकी सम्मति है न भाभी?"

उपेन्द्र के कण्ठ-स्वर से वह क्षणभर अबोध की भाँति उनके मुँह की ओर देखती रहकर एकाएक मानो सचेत हो उठी। उसने कहा, "अवश्य ही, बबुआजी, अवश्य। वह कैसा अन्धकूप है, इसे केवल हम लोग ही जानती हैं। चली जायें चली जायें, कुछ दिनों तक इस दुःख के घेरे से छुटकारा पाकर बच जायें।"

उसकी ये बातें इस प्रकार उसके मुँह से बाहर निकलीं कि उपेन्द्र ने कष्ट अनुभव किया। पीड़ित चित्त से कुछ देर तक मौन रहकर बोले, "बस दुःख के घेरे से केवल उनका ही नहीं भाभी, आपका भी बाहर निकल जाना उचित है।"

किरणमयी ने कातर दृष्टि से कहा, "मेरा कौन है बबुआजी, जिसके पास मैं जाऊँगी?"

उपेन्द्र ने प्रश्न किया, "आपके पिता के घर क्या कोई नहीं है?"

किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "पिता का घर कहाँ है, यही तो मैं नहीं जानती। मामा के घर पाली-पोसी गयी थी। उन लोगों की ख़बर भी आठ-दस वर्षों से मैं नहीं जानती। दस वर्ष की आयु में ब्याह हो जाने पर वही जो इस मकान में मैं आ गयी, मृत्यु न होने से सम्भवतः अब इसमें से निकल ही न सकूँगी।"

उपेन्द्र अत्यन्त व्यथित हो गये। फिर सोचकर बोले, "तो आप भी क्यों मौसी के साथ पश्चिम को नहीं चली जातीं! घूमना भी होगा, तीर्थयात्रा भी होगी।" कहकर वह किरणमयी का मनोभाव देखकर आश्चर्य में पड़ गये। क्योंकि, ऐसे प्रस्ताव से उसने ज़रा भी आनन्द प्रकाट नहीं किया। वैसे ही निरुत्साह से नीचे को ताकती रही।

उपेन्द्र को तुरन्त ही यह ध्यान आ गया कि यह घर छोड़कर जाने में असमर्थ हो रही है। उन्होंने कहा, "आप इस घर के लिए सोच रही हैं? कोई चिन्ता मत कीजिये। मैं इसकी देखभाल का प्रबन्ध कर न दूँगा। कोई वस्तु नष्ट न होगी।"

इस बार किरणमयी मुस्करा उठी। बोली, "तुमने सम्भवतः मेरी उस प्रथम रात्रि का पागलपन स्मरण करके यह बात कही है बबुआजी?"

उपेन्द्र घबड़ा कर बोल उठे, "नहीं, ऐसी बात नहीं है। लेकिन वह भी यदि हो तो उसको पागलपन क्यों कह रही हैं। उस दशा में सतर्क होना तो सभी के लिये उचित है।"

किरणमयी ने हँसी के साथ कहा, "इतना सतर्क होना चाहिए था, बबुआजी?"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं क्यों! अपने घर-द्वार, धन-दौलत पर ममता किसकी नहीं है? भविष्य की दुश्चिन्ता किसको नहीं होती? नहीं-नहीं, ऐसी बात आप मत कहिये। उसमें असंगति या अस्वाभाविकता कुछ भी नहीं था।"

"न रहने से ही अच्छा है। लेकिन मैं तो अब उसको शुद्ध पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी सोच नहीं सकती।" और एकाएक गम्भीर होकर बोली, "तुम पर भी सन्देह! छिः! छिः! कैसी कड़ी बात मैंने कह दी थी। स्मरण होने से अब स्वयं ही लज्जा से मरने लगी हूँ।" यह कहते-कहते उसका सहज सुन्दर मुख अनुताप से मानो पिघल गया। उपेन्द्र ने प्रतिवाद नहीं किया, वह चुपचाप ताकते रहे। पलभर मौन रहकर उसने फिर कहा, "किन्तु वह ममता अब कहाँ है बबुआजी? एक बार भी तो यह विचार नहीं आता कि, यह घर मेरा रहेगा या हाथ से निकल जायेगा। रहे तो रहे, न रहे तो चला जाये! सोचती हूँ, मार्ग के वृक्षों के नीचे का स्थान तो कोई रोक न सकेगा, मुझे वही काफ़ी होगा।"

उपेन्द्र ने इसका भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। सद्यः विधवा के वैराग्य की इन थोड़ी-सी बातों से उनका हृदय श्रद्धा तथा करुणा से लबालब भर उठा।

किरणमयी ने कहा, "मकान के लिए नहीं बबुआजी, लेकिन माँ के साथ तीर्थ में जाने से भी क्या मैं शान्ति पाऊँगी? सुनती हूँ उन सब स्थानों में सर्वत्र ही तो बहुत से लोगों की भीड़ होती है।"

उपेन्द्र ने गरदन हिलाकर कहा, "तीर्थस्थानों में तो लोगों की भीड़ होती ही है भाभी। लेकिन आपका और कुछ भले ही न हो, तीर्थ करना तो हो जायेगा। वह भी तो एक काम है।"

फिर किरणमयी उपेन्द्र के मुँह की ओर देखकर मुस्करा पड़ी, लेकिन बोली नहीं। वह किसलिए हँस पड़ी उसका तात्पर्य समझ न सकने के कारण उपेन्द्र सम्भवतः कुछ कहने जा रहे थे, लेकिन एकाएक आश्चर्य में पड़कर उन्होंने देखा पास के कमरे से दिवाकर निकल आया।

"तू क्या इतनी देर से उसी कमरे में था रे!"

किरणमयी ने कहा, "दिवाकर बबुआ कृपा करके मेरी पुस्तकें ठीक से रख रहे थे। मैं तुमको बताना भूल गयी थी।"

दिवाकर ने निकट आकर कहा, "कितनी पुस्तकें कैसी दशा में हो गयी हैं भाभी, लेकिन खोलकर देखते से ज्ञात होता है, वह कितने यत्न से उन सबको पढ़ते थे।"

किरणमयी ने सम्मति देकर कहा, "सचमुच ही यही बात है। जिसको पढ़ना कहते हैं, वह उसी तरह पढ़ते थे। तुम्हारे हाथ में वह कौन-सी पुस्तक है बबुआजी?"

दिवाकर ने लज्जित भाव से कहा, "मैं संस्कृत नहीं जानता, फिर भी पढ़ने का प्रयत्न करूँगा। यह कठोपनिषद् है।"

– "इतनी किताबें रहते पसन्द आयी भी तो कठोपनिषद्?"

किरणमयी का प्रश्न समझ में नहीं आया दिवाकर के। उसकी ओर जिज्ञासु दृष्टि से देखकर बोला, "क्यों! इससे भी अच्छी कोई और किताब है क्या भाभी? शायद मेरे लिये अनधिकार चर्चा है, समझ नहीं पाऊँगा; लेकिन यथासाध्य प्रयत्न तो करना चाहिये।"

– "जो समझ रहे हो, वह बात नहीं है देवर जी। लेकिन इस तरह प्रयत्न करने लायक यह किताब नहीं है। हाँ, कहीं-कहीं बुरी भी नहीं लगती। कोई कामकाज न हो तो आत्मा-वात्मा के नानारूपों की नयी-नयी कहानियाँ पढ़ने से समय कट जाता है बस और कुछ नहीं।"

सुनकर दिवाकर का चेहरा पीला पड़ गया। बोला, "यह क्या कर रही हैं भाभी आप, कहते हैं उपनिषद् वेद हैं, इसका हर अक्षर अभ्रान्त सत्य है।"

उसका विस्मय देखकर किरणमयी को हँसी आ गयी बोली, "कोई धर्मग्रन्थ अभ्रान्त सत्य नहीं हो सकता। वेद भी धर्म ग्रन्थ हैं, उनमें भी मिथ्या का अभाव नहीं है।'

दोनों कानों में उँगली डालकर ज़ोर से सिर हिलाते हुए बोला, "वेद मिथ्या! बस-बस, आगे मत बोलियेगा। सुनना भी पाप है। कहावकत है वेद वाक्य! ये क्या मनुष्य रचित हैं जो मिथ्या होंगे? ये तो वेद हैं वेद!"

उसकी यह हालत देखकर किरणमयी खिलखिला कर हँस पड़ी। कानों से उँगली निकालकर अपनी उत्तेजना पर लज्जित होते हुए दिवाकर ने कहा, "सचमुच पाप है भाभी। वेद भी कभी मिथ्या हो सकते हैं? ये क्या बेकार के धर्मग्रन्थ हैं जिनमें लोग शिवोक्ति कहकर

अपनी तरफ़ से दो-चार श्लोक और गढ़ी हुई दस कहानियाँ जोड़ देते हैं। वेद का मतलब ही साक्षात् सत्य है।"

सहसा एकदम गम्भीर हो गयी किरणमयी भी। बोली, "क्या मालूम देवर जी, मैंने तो जो उनसे सुना था, वही कहा। लेकिन तुमने भी तो अभी-अभी स्वीकार किया कि धर्मग्रन्थों में शिवोक्ति कहकर बहुत कुछ झूठा जोड़ा गया है।"

कुछ दिन पहले दिवाकर ने एक मासिक पत्रिका में पुराण सम्बन्धी समालोचना पढ़ी थी। अतः मानते हुए बोला, "बहुत बुरी बात है, परन्तु धर्मग्रन्थों में प्रक्षिप्त अंश काफ़ी है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन झूठ ज़्यादा दिन नहीं चलता भाभी, पकड़ा जाता है।"

– "कैसे पकड़ा जाता है?" किरणमयी ने पूछा।

– "यह तो मुझे अच्छी तरह नहीं मालूम। पर जो मिथ्या है, उसकी बारीकी से आलोचना करते ही पण्डितों को पता चल जाता है कि कौन सा सत्य है, कौन सा मिथ्या; क्या असल है और क्या प्रक्षिप्त। लेकिन इस कारण आप वेद को सत्य न मानें, यह ठीक नहीं है।"

उपेन्द्र अब तक एक शब्द भी नहीं बोले थे। किरणमयी के क्रूर परिहासों का तात्पर्य न समझ पाकर चुप बैठे तर्क-वितर्क सुन रहे थे। उनकी ओर कटाक्ष फेंककर हँसी रोकते हुए गम्भीर बनकर किरणमयी ने दिवाकर से कहा, "देवर जी, मैंने एक धर्मशास्त्र में पढ़ा था कि एक ब्राह्मण का लड़का यम से मिलने गया। जब वह पहुँचा, यम घर पर नहीं थे, शायद ससुराल गये हुए थे। तीन दिन बाद लौटे तो घर के लोगों से पता चला कि लड़के ने तीन दिन से कुछ नहीं खाया-पिया था, उपवास था। एक तो ब्राह्मण और फिर अतिथि! यम बड़े दुःखी हुए। आख़िर में उससे बोले कि तुम तीन दिन के उपवास के बदले तीन वर ले लो। अच्छा" –

बात पूरी करने से पहले ही दिवाकर हो-हो करके हँस पड़ा। बोला, "यह कौन-सा उपन्यास शुरू कर दिया भाभी?"

सहज भाव से किरणमयी बोली, "मैंने तो जो पढ़ा था, वही बताया है। अच्छा, तुम्हें विश्वास है कि ऐसा हो सकता है?"

– "कभी नहीं, असम्भव!" ज़ोर देकर दिवाकर ने कहा।

– "असम्भव क्यों है? यह भी तो धर्मशास्त्र में ही लिखा है।"

– "यह प्रक्षिप्त है, गढ़ी हुई कहानी है।"

– "कैसे जाना कि कहान है?"

– "भाभी थोड़ी बहुत बुद्धि तो सभी में होती है, मैं ज़्यादा नहीं जानता, पर यह झूठी कहानी है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता।"

– "देवर जी, इसी प्रकार हर व्यक्ति अपनी विद्या-बुद्धि एवं अभिज्ञता द्वारा सत्य और मिथ्या तौलते हैं। इसके अलावा और कोई मानदण्ड नहीं है। परन्तु यह वस्तु सबके पास

समान नहीं होती – तुम जिसे सत्य समझते हो मैं न मान पाऊँ तो मुझे दोष नहीं दिया जा सकता।"

– "बिल्कुल नहीं दिया जा सकता," तत्क्षण दिवाकर ने कहा।

आगे किरणमयी ने कहा – "अब जब एक दूसरे से मेल न खाने पर किसी को दोष नहीं दिया जा सकता तो फिर जो चीज़ दोनों की बुद्धि व अभिज्ञता से बाहर की है, उसके सम्बन्ध में तो न जाने कितनी राय हो सकती है। लेकिन इसको लेकर हम लोगों में विरोध नहीं है। हम दोनों का ही ख़्याल है कि यह घटना हमारी समझ से बाहर है, इसलिए कहानी है, क्यों देवर जी?

किरणमयी उसे कहाँ ले जाना चाहती है, ठीक से न समझ पाकर दिवाकर ने संक्षेप में मान 'हाँ' कहा। फिर से हँस पड़ी किरणमयी। बोली, "ठीक है, ठीक है। पर मेरी इस कहानी का अन्तिम भाग तुम्हें अपने हाथ की उस किताब में ही मिलेगा।"

– "इस उपनिषाद् में?" आश्चर्य से दिवाकर ने पूछा।

उसी प्रकार कौतुक भरे स्वर में किरणमयी ने जवाब दिया, "तब तो तुम्हें इसका हर अक्षर आभ्रान्त सत्य नहीं लगेगा न?"

जवाब नहीं दे पाया दिवाकर। हतबुद्धि-सा बैठा रहा।

उपेन्द्र की ओर नजरें उठाकर किरणमयी ने पूछा, "तुम्हारी क्या राय है देवर जी?"

मुस्कुरा दिये उपेन्द्र, बोले नहीं कुछ।

अपने को सम्भालकर दिवाकर बोला, "लेकिन यह रूपक भी तो हो सकता है।"

– "हो सकता है। पर रूपक तो सच्ची घटना नहीं होता। हो सकता है वह किताब आरम्भ से अन्त तक पूरी मिथ्या न हो, किन्तु कितनी सत्य है, यह तो बुद्धि के तारतम्य के हिसाब से लेगा न हर कोई। इसलिए अगर तुम्हारी बुद्धि के अनुसार इसका बाहर आना सत्य है तो मेरी बुद्धि के हिसाब से पन्द्रह आने झूठ हो सकता है। इसमें भी मेरा तो कोई कसूर नहीं होगा देवर जी।

– दिवाकर हाथ की किताब को नीरव देखता रहा। किरणमयी की बातों से उसे दुःख हो रहा था। कुछ देर चुप रहकर बोला, "भाभी, आप जिसे मिथ्या बता रही हैं, हो सकता है उसका कोई गूढ़ उद्देश्य रहा हो। इसजिये – "

"इसलिए – मिथ्या की अवतारणा? तुम जो अनुमान कर रहे हो, वह हो सकता है, यह मैं मान लेती हूँ। लेकिन तो भी वह अनुमान के सिवा और कुछ भी नहीं है। और अर्थ जो कुछ भी हो, मार्ग सन्मार्ग नहीं है। यह बात मान लेनी चाहिए कि मिथ्या से भुलावा डालकर सत्य का प्रचार नहीं होता। सत्य को सत्य की तरह बताना ही पड़ता है तभी मनुष्य बुद्धि के परिमाण में समझ पायेगा – आज नहीं तो कल समझ पायेगा। एक की समझ में न आये तो दूसरे की समझ में आयेगा। अगर समझ में न आये तो झूठ का सहारा लेकर रोचक बनाने के प्रयत्न से बढ़कर गलत और कुछ नहीं हो सकता। देवरजी, झूठ पाप है, लकिन सच को झूठ में जड़कर कहने जैसा पाप संसार में कम ही है।"

दिवाकर का मुँह उतर गया। वह चुपचाप बैठा रहा। उसके चेहरे को देखकर किरणमयी मन की बात समझ गयी। कोमल स्वर में बोली – "इसमें दुःखी होने की बात नहीं है देवरजी। जो सत्य है, उसे हमेशा हर परिस्थिति में ग्रहण करने का प्रयत्न करना, फिर उसमें वेद मिथ्या हो या शास्त्र। ये सत्य से बड़े नहीं है। जिद के कारण हो या ममता के कारण हो अथवा दीर्घकाल के संस्कार के कारण हो; आँख बन्द करके असत्य को सत्य मान कर विश्वास कर लेने में कोई पौरुष नहीं है।" एक क्षण चुप रहकर फिर बोली, "लेकिन ऐसा भी मत सोच लेना कि मैंने मिथ्या समझा है, इसीलिए वह मिथ्या हो गया। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि, सत्य मिथ्या जो भी हो, उसे बुद्धिपूर्वक सोच समझकर ग्रहण करना चाहिये। आँख बन्द करके किसी बात को मान लेने में कोई सार्थकता नहीं है। उससे ने तो उसका गौरव बढ़ता है और न ही तुम्हारा।"

कुछ सोचकर दिवाकर ने पूछा, "अच्छा भाभी, जो वस्तु बुद्धि के बाहर हो, उसके सम्बन्ध में सत्य मिथ्या का निर्णय कैसे करेंगी?"

तुरन्त उत्तर देते हुए किरणमयी ने कहा, "कोई निर्णय नहीं करूँगी। जो बुद्धि के बाहर होगी उसका त्याग कर दूँगी। मुँह से अव्यक्त, अबोध, अज्ञेय कहकर, व्यवहार में उसी को जानने, कहने की चेष्टा कभी नहीं करूँगी और जो करेंगे, उन्हें भी बर्दाश्त नहीं करूँगी। तुमने यह सारी किताबें नहीं पढ़ीं देवर जी, पढ़ोगे तो देखोगे कि सर्वत्र यही चेष्टा और यही जिद है। जहाँ देखो ज़ोर ज़बर्दस्ती। जिस मुँह से एक बार कहा कि समझा नहीं जा सकता, उसी मुँह से ज़रा आगे ऐसी बातें कही हैं जैसे अभी सब कुछ अपनी आँखों से देखकर आ रहे हों। जिसकी किसी भी तरह उपलब्धि न हो पाने की बात कही है, उसी की उपलब्धि के लिए पन्ने पर पन्ने रंग डाले हैं, पोथी पर पोथी लिख डाली हैं, क्यों? जिस मनुष्य ने जीवन में कभी लाल रंग नहीं देखा, उसे क्या मुँह से समझाया जा सकता है कि लाल क्या है? और न समझने पर, न मानने पर, क्रोध, शाप और भय दिखाने की सीमा नहीं रहती। बस बड़ी-बड़ी बातों के दाँव-पेंच। निर्गुण निराकार, निर्लिप्त, निर्विकार, कोरी बातें है सब, कोई मतलब नहीं है इनका। और अगर कोई अर्थ है तो बस इतना कि जिन्होंने यह सारी बातें आविष्कृत की है, प्रकारान्तर में उन्होंने ही कहा है कि इस विषय में किसी को रंचमात्र चिन्ता नहीं करनी चाहिये – सब निष्फल है, निरर्थक श्रम है।"

दिवाकर बड़ी देर तक मौन रहा। उसके बाद उसने धीरे-धीरे कहा, "भाभी, आप आत्मा को नहीं मानतीं?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"झूठी बात होने के कारण। इसके अतिरिक्त ऐसा दम्भ मुझे नहीं है कि सब कुछ का नाश हो जायेगा, केवल मेरे इस महामूल्य 'मैं' का किसी दिन ध्वंस न होगा, ऐसी कामना भी मैं नहीं करती कि मेरा यह 'मैं' बचा रहे।"

"अच्छा, ईश्वर! उनको भी क्या आप स्वीकार नहीं करतीं?"

किरणमयी ने हँसकर कहा, “इतना डरकर क्यों कह रहें हो बबुआजी? इसमें डर की बात कुछ भी नहीं है। नहीं, मैं अस्वीकार भी नहीं करती।”

प्रगाढ़ अन्धकार में प्रकाश की क्षीण रेखा दिखायी पड़ी। उसने पूछा – “आप उस बारे में क्या सोचती है?”

किरणमयी ने कहा – जिस वस्तु को अज्ञेय मान लिया, उसके बारे में सोचा नहीं जाता। मैं सोचती भी नहीं। वस्तुतः तो अचिन्तनीय की चिन्ता कैसे कर सकती हूँ? इसलिए असम्भव को सम्भव बनाने का कभी प्रयत्न नहीं करती। किसी चीज़ को बढ़ाकर बड़ा बनाया जा सकता है, बढ़ाने से वह और बड़ा बन सकता है – यह भी जानती हूँ – लेकिन उसे खींच-तानकर अनन्त बनाया जा सकता है – ऐसी गलती मैं नहीं करती।”

“तो क्या उनको सोचा भी नहीं जाता?”

“सोचा जाता है बबुआजी, छोटा बनाकर सोचा जाता है। मनुष्य के दोष-गुण को एक में मिलाकर, छोटा-मोटा देवता मानकर, निरक्षर लोग जिस तरह भक्ति-भाव से सोचते हैं, उसी तरह केवल सोचा जाता है। नहीं तो ज्ञान के अभिमान से ब्रह्म बनाकर जो लोग सोचना चाहते हैं वे केवल अपने को धोखा देते हैं। लकिन आज और नहीं, ये सब बातें किसी दूसरे दिन होंगी।” उपेन्द्र के मुँह की ओर देखकर हँसते हुए मुख से बोली, “लेकिन बबुआजी, बड़े सयाने हो। हम लोगों ने झोंक में आकर तर्क-वितर्क किया और तुमने अपने को बिल्कुल ही बचा रखा। मैं जानती हूँ, तुम सब कुछ जानते हो, लेकिन मन की एक बात भी तुमने किसी को जानने न दी।”

उपेन्द्र हँस पड़े। उन्होंने कहा, “नहीं भाभी, मैं इस सम्बन्ध में बिल्कुल ही महामूर्ख हूँ। मैं स्तम्भित होकर केवल आप ही की बातें सुन रहा था।”

किरणमयी ने हँसकर कहा, “व्यंग्य कर रहे हो बबुआजी?”

“नहीं भाभी, सच्ची बात ही कर रहा हूँ। लेकिन सोचता हूँ अपनी इस थोड़ी-सी उम्र में आप इतना कब पढ़ गयी, इतना सोचा भी कब!”

प्रशंसा सुनकर किरणमयी का अन्तःकरण, आनन्द से, गर्व से उच्छवसित हो उठा। लेकिन उसका दमन करके विनय के साथ उसने कहा, “नहीं – नहीं, यह बात मत कहो बबुआजी, मैं भी महामूर्ख हूँ, कुछ भी नहीं जानती। केवल इतना ही अवश्य जान गयी हूँ कि, कुछ जान लेने का उपाय नहीं है, इसीलिए इन सब शास्त्रों की दम्भपूर्ण युक्ति देखने से ही मेरे शरीर में आग लग जाती है – किसी प्रकार भी अपने-आपको फिर सम्भलकर नहीं रख सकती। बस यही ख़्याल रहता है कि तुम भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जाती। फिर इतना विधि-निषेध इतना झूठ क्यों? सारी बातों में भगवान उनके माध्यम से काम करते हैं, यह दम्भ भरा अनुशासन? सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते भगवान की दुहाई और धर्म का डर! क्यों कोई तुम कहो वैसे उठे, वैसे बैठे। और उस पर हिम्मत यह कि कहीं किसी चीज़ का कारण तक बताने की ज़रूरत नहीं समझी। बस केवल ज़बर्दस्ती। ऐसा करोगे तो हत्या का पाप लगेगा, वैसा करोगे तो ब्रह्महत्या का पाप लगेगा, तुम नष्ट हो जाओगे,

तुम्हारी चौदह पीढ़ी नरक में जायेंगी। अरे भई, क्यों जायेंगी? किसने कहा है तुमसे? श्रुति, स्मृति, तंत्र, पुराण हर एक में यही भय और ज़बर्दस्ती। इतना सब कैसे सहा जा सकता है, बबुआजी?"

उपेन्द्र मौन रहे लेकिन दिवाकर ने अपनी अन्तिम चेष्टा करके कहा, "लेकिन यह ज़ोर सम्भवतः हमारे कल्यण के ही निमित्त उन्होंने प्रकट किया है।"

किरणमयी जल उठी, बोली, "इतनी भलाई की आवश्यकता नहीं है बबुआजी! मानो वे ही लोग केवल मनुष्य बनकर देशभर के पशु-दल को लाठी की ठोकर से अच्छे मार्ग में खदेड़ देने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। अपनी भलाई कौन नहीं चाहता। समझाकर कहो, भाई इसमें तुम्हारी भलाई है, इसलिए यह सब विधि-निषेध बना दिया है। मुझे भी तो समझने देना चाहिए, क्यों इस मार्ग से ही मेरा मंगल है, इससे तो इतना आँख लाल करने, इतने झूठे उपन्यास लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।" कहते-कहते उसके भीतर का क्रोध स्पष्ट हो उठा।

उपेन्द्र को अचानक प्रथम रात्रि की बात स्मरण हो गयी। यह है वही मूर्ति। पिंजरे में बन्द जंगली पशु का वह मर्मभेदी गर्जन! लेकिन क्या चाहती है यह? किसके विरुद्ध इसका इतना रोष है? शास्त्र और शास्त्रकार की किस जंजीर को तोड़ कर यह विधवा मुक्ति-प्रार्थना कर रही है?

उसको शान्त करने के अभिप्राय से उपेन्द्र ने सविनय हँसी के साथ कहा, "हम दोनों तो आपकी बातों का उत्तर न दे सके भाभी, लेकिन एक व्यक्ति है – जिसके सामने आपको भी तर्क में हारकर आना पड़ेगा, यह मैं कहे देता हूँ।"

किरणमयी अपनी उत्तेजना स्वयं ही समझकर अन्त में मन ही मन लज्जित हो गयी। उसने भी हँसकर कहा, "ऐसा कौन है, बताओ तो बबुआजी?"

उपेन्द्र ने गम्भीर होकर कहा, "आप परिहास मत समझियेगा। सच ही कहता हूँ, उसको जीत पाना कठिन है। उसका पढ़ना-लिखना ज़्यादा हुआ हो ऐसी बात नहीं लेकिन उसकी तर्क-बुद्धि अति सूक्ष्म है। वह भी इन सब पर विश्वास रखती है – उसको निरुत्तर बनाकर आप आ सकें तभी समझूँगा!"

किरणमयी ने उत्साहित होकर कहा, "भले ही मैं न कर सकूँ, लेकिन सीख कर भी तो आ सकूँगी?" हँसकर उसने कहा, "वह कौन हैं बबुआजी, हमारी छोटी बहू तो नहीं!"

उपेन्द्र हँसने लगे। बोले, "वही वास्तव में भाभी, उसकी विचारशक्ति अद्‌भुत है। तर्क-बुद्धि देखकर समय-असमय पर मैं सचमुच ही मुग्ध हो जाता हूँ। मैं क्या उत्तर दूँगा, क्या प्रश्न करूँगा, यह मानो मैं ढूँढ़कर पाता ही नहीं। हतबुद्धि होकर बैठा रहता हूँ।"

उपेन्द्र के मुँह से सुरबाला की इस प्रशंसा से किरणमयी के मुख की दीप्ति बुझ गयी। फिर भी, इसमें भाग लेने की उसने इच्छा की। लेकिन इसी की वेदना से समूचे अंग को घेरकर मानो गले को जकड़कर पकड़ लिया। एकाएक वह बात न कह सकी।"

लेकिन, उपेन्द्र ने इसे लक्ष्य नहीं किया। उन्होंने पूछा, "उसके साथ सम्भवतः किसी दिन

इस विषय पर आपकी आलोचना नहीं हुई है?"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं। केवल दो ही दिन तो वह यहाँ आयी थी। वह भी ऐसे समय में नहीं कि कोई बातचीत हो सकती! चलो न, बबुआजी, आज एक बार तुम्हारे तर्कवीर को देख आऊँ।"

उपेन्द्र हँसने लगे। उन्होंने कहा, "नहीं भाभी, वह तार्किक बिल्कुल ही नहीं है। वस्तुतः इस विषय के सिवा वह तर्क करती ही नहीं – जो आप कहेंगी उसी को वह मान लेगी। तीन दिन के बाद वह घर लौट जायेगी – अनुमति दें तो यहीं उसे ले आऊँ।"

किरणमयी ने त्रस्त होकर कहा, "नहीं बबुआजी, नहीं। यहाँ लाकर उसको मैं कष्ट देना नहीं चाहती। वह जिस दिन कष्ट स्वीकार करके आयी थी, वह मेरे लिए अहोभाग्य था। मुझे तुम ले चलो, मैं चलूँगी। अच्छा, एक बात मैं पूछती हूँ बबुआजी, इतना बड़ा तार्किक गुरु रहते हुए भी तुम दोनों भाई मेरी बातों का उत्तर क्यों न दे सके?"

इन बातों को किरणमयी ने सरल परिहास के रूप में ही कहना चाहा, लेकिन वेदना के बोझ से अन्तिम बातें भारी होकर प्रकट हो गयी।

दिवाकर चुप हो रहा। उपेन्द्र ने कहा, "नहीं भाभी, उसकी वे सब युक्तियाँ सीखी नहीं जातीं। कितनी ही बार तो उन्हें सुन चुका हूँ, किसी प्रकार भी उनको समझ नहीं सका। जो लोग भगवान को मानते हैं, वे कहेंगे, उनके ही दाहिने हाथ का सर्वश्रेष्ठ दान हैं। सच कहता हूँ भाभी, अनेक बार मुझे ईर्ष्या हुई है कि इसके सहस्र भागों का एक भाग भी यदि मैं पा जाता, तो उस दशा में धन्य हो जाता!"

किरणमयी ठीक समझ न सकी कि वह क्या है! तो भी उसका सम्पूर्ण मुख काला पड़ गया और इसको उसने स्वयं ही स्पष्ट करके किसी तरह एक छोटी-सी सूखी हँसी से सामने के इन दो पुरुषों के दृष्टिमार्ग से अपने आपको ढक लेना चाहा। लेकिन किसी प्रकार भी उसके मुँह पर हँसी नहीं फूटी।

एकाएक वह सीधी होकर खड़ी हो गयी। बोली, "चलो बबुआजी, आज ही मैं उसके साथ भेंट करके आऊँगी। तुमको भी जिसके लिए ईर्ष्या होती है, वह दुर्लभ वस्तु क्या है उसको देखे बिना मैं किसी प्रकार भी चैन न पाऊँगी।"

उसके आग्रह की अधिकता देखकर उपेन्द्र किसी प्रकार भी फिर हँसी को दबाकर न रख सके। किरणमयी ईर्ष्या से इतनी आच्छन्न न हो गयी होती तो उनकी इतनी देर की छिपी हुई गम्भीरता पलभर में पकड़ ले सकती थी। लेकिन उस ओर उसकी दृष्टि ही नहीं थी। उसने कहा, "नहीं बबुआजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे ले चलो।"

उपेन्द्र घबराकर दोनों हाथों से माथा छूकर कहा, "छिः! छिः! ऐसी बात मुँह से आप मत निकालिये, भाभी। आप उम्र में छोटी होने पर भी मेरी पूजनीया हैं। अच्छी बात तो है, मौसी वापस आ जायें, चलिए, आज ही आपको ले चलूँगा।"

छब्बीस

प्रायः अपराह्न किरणमयी ज्योतिष बाबू के घर में जाकर उपस्थित हुई। मोटी साड़ी पहिने हुए थी। शरीर पर गहनों का चिह्न भी नहीं था। लम्बी रूखी केशराशि बिखरी हुई सिर पर लपेट दी गयी थी। उसके नेत्रों में शान्त उदास दृष्टि थी। मानो वैधव्य का अलौकिक ऐश्वर्य उसके सर्वांग को घेरकर मूर्तिमान हो रहा था। उस मुँह की ओर देखने से ही आँखें मानो आप ही उसके पैरों में बिछ जाती थीं। सरोजिनी बाहर के बरामदे में एक कुर्सी पर बैठकर पुस्तक पढ़ रही थी, दृष्टि उठाकर अकस्मात् वह आश्चर्यजनक रूप देखकर बिल्कुल ही विह्वल हो उठी। उसने किरणमयी को कभी देखा नहीं था। उसका नाम और उसके सौन्दर्य के विषय में सुरबाला के मुँह से सुन भर लिया था। लेकिन वह सौन्दर्य ऐसा है, इसकी कल्पना भी उसने नहीं की थी।

उपेन्द्र ने उसका परिचय दिया, "यह हम लोगों की भाभीजी – सरोजिनी।"

सरोजिनी ने निकट आकर नमस्ते किया।

किरणमयी ने उसका हाथ पकड़कर हँसकर कहा, "तुम्हरा नाम मैंने सबके मुख से सुना है। बहिन, इसलिए आज एक बार नेत्रों से देख लेने के लिए चली आयी हूँ।"

प्रत्युत्तर में सरोजिनी को क्या कहना चाहिए यह समझ न सकी। अपरिचित नर-नारियों के साथ मिलने-जुलने, वार्तालाप करने में बचपन से वह शिक्षित और अभ्यस्त है, लेकिन इस आश्चर्यजनक विधवा नारी के सामने वह चकित रह गयी।

किरणमयी ने उपेन्द्र की ओर एक बार घूमकर देखा। बोली, "लेकिन आज तो समय नहीं है। अधिक देर तक ठहरने का समय न होगा – बबुआजी, एक बार छोटी बहू के कमरे में चलकर बैठें।" यह कहकर उसने सरोजिनी की हथेली को ज़रा-सा दबाकर संकेत किया।

लेकिन जिस आवेश में पड़कर किरणमयी आज इस असमय में सुरबाला से भेंट करने आयी थी, उस उत्तेजना का कारण उससे अब छिपा नहीं रहा था। मार्ग में आते उसे अनेक बार यह ध्यान आया था, उसके साथ केवल दो ही दिनों का परिचय है, इस सुरबाला का विश्वास, और उसकी विद्या-बुद्धि जो भी हो, अकारण ही उसके घर पर धावा बोल देने जैसा अद्भुत हास्पास्पद कार्य और कुछ भी हो नहीं सकता। इसीलिए लौट जाना ही उचित है, इसमें भी उसे सन्देह नहीं था। फिर भी किसी तरह लौट न सकी। किसी ने मानो खींचकर उसे उपस्थित कर दिया। अन्याय! असंगत। यह बात भी उसने मन ही मन बार-बार कही। लेकिन अपनी भार्या के जिस अमूल्य ऐश्वर्य को उपेन्द्र ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ वरदान कहकर स्वीकार करने में लज्जित नहीं हुए, वह कुछ भी नहीं है, उसको वह क्षणभर में परास्त ओर टुकड़े-टुकड़े करके उसी के नेत्रों के आगे तिनके की भाँति उड़ा दे सकती है, इसको प्रमाणित करने की अदम्य आकांक्षा उसकी छाती के अन्दर प्रतिहिंसा की भाँति सुलग रही थी। किसी प्रकार भी वह इसको रोक नहीं सकी। फिर भी, आरम्भ से ही उसको यह खटका लगा हुआ था कि सतीश से उपेन्द्र का जो परिचय उसे मिला था, उससे उसका मन बार-बार कह रहा था, इच्छा करने से उपेन्द्र उत्तर दे सकते थे। लेकिन उन्होंने बात नहीं कही, वह केवल

मुस्कराते रहे। क्यों? किसलिए? यह क्या केवल सुरबाला के पास ले जाकर उसको एकदम तुच्छ-हीन बना देने के लिए? लेकिन सुरबाला यदि कोई उत्तर न दे? पति की भाँति यों ही मुँह दबाकर हँस कर चुप रह जाये? किस प्रकार वह अपनी विजय-पताका फहरा सकेगी?

इस प्रकार विचार करते-करते जब उसने सरोजिनी के पीछे-पीछे सुरबाला के कमरे में प्रवेश किया, तब फ़र्श पर बैठकर काशीदासी महाभारत में भीष्म जी की शरशय्या पढ़कर सुरबाला रो-रोकर व्याकुल हो उठी थी। एकाएक किरणमयी को देखकर उसने घबराहट के साथ पुस्तक बन्द करके आँखें पोंछ डालीं और उठकर खड़ी होकर उसके दोनों हाथ पकड़कर परम आदर से कहा, "आओ बहिन!"

वहीं चटाई पर उसे बिठाकर बोली, "मैंने कल तुम्हारे यहाँ जाने का विचार किया था बहिन!"

किरणमयी ने कहा, "मैं भी इसीलिए आज आ गयी बहन।"

उपेन्द्र निकट ही एक कुर्सी खींचकर बैठते हुए बोले, "रोना चल रहा था – सम्भवतः वह महा भारत है?"

सुरबाला लज्जा से आँचल के छोर से अपनी दोनों आँखें लगातार पोंछने लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "क्यों तुम उस झूठी रद्दी पुस्तक को लेकर प्रायः समय नष्ट करती हो, यह मैं समझ नहीं पाता। ऊपर से रोना-धोना आँखों के आँसू...।" बात समाप्त नहीं हुई। सुरबाला आँखें पोंछना भूलकर क्रुद्ध होकर बोल उठी, "सैकड़ों बार तुम यह क्या कहते रहते हो कि...।"

उपेन्द्र ने कहा, "कहता हूँ कि यह एकदम झूठ है। और कुछ नहीं कहता।"

इन सब विषयों में उसको रुष्ट करने में अधिक देर न लगती थी। उसने अपने रुष्ट लाल दोनों नेत्रों को पति के मुँह की ओर स्थिर करके कहा, "महाभारत झूठ है? ऐसी बात तुम कभी मुँह से मत निकालो। यह तमाशा नहीं है – इससे पाप होता है, यह जानते हो?"

उपेन्द्र ने कहा, "जानता हूँ, कुछ भी नहीं होता। अच्छा इनसे पूछो, ये भी विश्वास नहीं करतीं।"

इस बार सुरबाला किरणमयी के मुँह की ओर देखकर हँस पड़ी। बोली, "सुनती हो बहिन! कहते हैं, तुम महाभारत में विश्वास नहीं करतीं? इनकी ऐसी ही बातें होती हैं! कुछ भी कहते रहते हैं।"

किरणमयी मौन रही। पति-पत्नी के इस अद्भुत वितण्डावाद का अर्थ वह समझ न सकी। उसको लगा कि यह एक अभिनय है, और उसी को लक्ष्य करके आड़ में कोई एक रहस्य छिपा हुआ है।

उपेन्द्र ने सरोजिनी से पूछा, 'अच्छा आप महाभारत की कहानियाँ सच्ची समझती हैं?'

सरलभाव से सरोजिनी ने जवाब दिया – 'कुछ सच्चाई तो अवश्य होगी। पूरी की पूरी तो कोई भी सच नहीं मानता, मैं भी नहीं मानती।

शुरू में तो सुरबाला यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गयी, फिर मज़ाक समझ उड़ा दी। लेकिन

सरोजिनी की और दो-चार बातों तथा उपेन्द्र के व्यंग्य-विद्रूप भरे तानों से और भी विस्मित व क्रुद्ध हो उठी। देखते-देखते तीनों में ज़ोर की बहस छिड़ गयी। लेकिन किरणमयी एक शब्द भी नहीं बोली थी। लेकिन सब वाद-विवाद परिहास के अतिरिक्त और भी कुछ हो सकता है, यह वह सोच न सकी। जिसके साथ दर्शन पर वह तर्क करने आयी है, वह जब समस्त महाभारत को ही अखण्ड सत्य कहकर प्रमाणित करने को कमर बाँधकर बैठी हुई है, तब ऐसी अचिन्तनीय बात को सत्य कहकर वह किस प्रकार अपने मन में ग्रहण करेगी। इधर तर्क और बातों की काट-छाँट लगातार चलने लगी? लेकिन किरणमयी केवल तीक्ष्ण दृष्टि से सुरबाला की ओर मौन होकर निहारती रही। देखते-देखते उसके सन्देह का नशा भाप की तरह लुप्त हो गया। उसने देखा, सुरबाला के कण्ठ-स्वर, नेत्रों की दृष्टि, समूचे चेहरे, यहाँ तक कि सर्वांग से संशयहीन दृढ़ विश्वास मानो फूट रहा है। वह विपुल विराट ग्रन्थ उसके लिए प्रत्यक्ष सत्य है। यह तो परिहास नहीं है, यह मानो सजीव विश्वास है। उसके बाद कुछ क्षण के लिए कौन क्या कहता है, उस ओर उसका ध्यान नहीं रहा। वह मानो अभिभूत की भाँति इस सुरबाला के अन्दर अपरिचित भाव की धुँधली आकृति देखने लगी। यह एक अपूर्व दृश्य था।

लेकिन, इस तरह वह कब तक रहती कहा नहीं जा सकता। सहसा वह उपेन्द्र और सरोजिनी की सम्मिलित ऊँची हँसी के स्वर से अपने में लौट आयी। उसने देखा हँसी से सुरबाला चकरा गयी है। वह बेचारी अकेली थी। इसीलिए किरणमयी को हठात् मध्यस्थ मानकर क्षुब्ध स्वरसे कहा, "अच्छा बहिन, यह क्या कभी असत्य हो सकता है?"

उपेन्द्र ने किरणमयी से कहा, "भाभी, तर्क यह है कि भीष्म की शरशय्या के समय अर्जुन बाणों से पृथ्वी को विदीर्ण करके गंगाजी को ले आये थे, यह बात झूठ है। वे कभी नहीं लाये।"

सुरबाला ने पति के मुँह की ओर तीव्र दृष्टिपात करके कहा, "यदि नहीं लाये तो सुनो। कहती हूँ, भीष्म जी ने शरशय्या पर लेटकर पानी पीना चाहा, दुर्योधन सोने के पात्र में जल ले आये, उन्होंने नहीं पिया यह तो असत्य नहीं है। गंगा यदि नहीं आयी तो उनकी प्यास मिटी कैसे?"

सरोजिनी यह सुनकर चुप न रह सकी। बोली, "कैसे! यदि प्यास मिट गयी तो वह उनके उसी सुवर्ण पात्र के जल से ही। उन्होंने दुर्योधन के उसी सुवर्णपात्र का जल पिया था।"

इस बार सुरबाला ने अत्यन्त उत्तेजित और रुष्ट होकर कहा, "तो क्यों लिखा है कि पिया नहीं? और यदि सोने के पात्र का जल ही उन्हें पीना था, तो उस दशा में अर्जुन को इतना कष्ट उठाकर बाण द्वारा पृथ्वी को विदीर्ण करके गंगा लाने की क्या आवश्यकता पड़ी थी। यह बताओ, बहिन तुम ही बताओ, यह तो किसी प्रकार भी असत्य नहीं हो सकता?" यह कहकर उसने क्रुद्ध लेकिन करुण नेत्रों से किरणमयी को देखा। क्षणभर उपेन्द्र की ऊँची हँसी से कमरा भर गया। सरोजिनी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

उपेन्द्र ने कहा, "लीजिये भाभी, उत्तर दीजिये। गंगाजी यदि नहीं आयीं तो प्यास मिटी

कैसे? और जब प्यास मिट गयी जब गंगाजी आयेंगी क्यों नहीं?" यह कहकर फिर एक बार ठहाका मारकर हँस पड़े।

लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि किरणमयी इस हँसी में सम्मिलित न हो सकी। वह विस्मित नेत्रों से सुरबाला के मुँह की ओर देखती हुई स्थिर हो रही। उसके बाद अकस्मात विपुल आवेग से उसको छाती में खींचकर चुपके से बोली, "झूठ नहीं है बहिन, कहीं भी, इसमें तनिक भी झूठ नहीं है। गंगाजी तो आयी थीं। तुमने जो समझा है, जो पढ़ा है, सब सत्य है। सत्य को तो सभी पहचान नहीं सकते बहिन, इसलिए परिहास करते हैं।" यह कहते-कहते उसकी दोनों आँखें आँसुओं से भर गयी।

सरोजिनी और उपेन्द्र दोनों ही आश्चर्य से उसके मुँह की ओर ताकते रहे। पर किरणमयी ने उस ओर एक बार भी न देखा। उसको उसी तरह छाती में दबाये आँखें पोंछकर धीरे-धीरे बोली, "बहिन, जो लोग अनेक धर्म-ग्रन्थ पढ़ चुके हैं, वे जानते हैं, आज तुमने जिस तरह सिद्ध कर दिया, इससे अधिक विचार किसी धर्म-ग्रन्थ में कोई पण्डित किसी दिन कर नहीं सके हैं – उन सभी लोगों को इसी प्रकार अपने मन की बातें कहनी पड़ी हैं। यह बात जो जानता है, उसमें सामर्थ्य नहीं है कि आज तुम्हारे मुँह की इन थोड़ी-सी बातों को सुनकर हँसे। यह कहकर उसको छोड़कर सरोजिनी की ओर देखकर बोली, "क्यों बहिन, तुम क्या मेरा विचार-व्यवहार देखकर आश्चर्य में पड़ गयी हो! पड़ने की बात ही है।" कहकर वह मुस्करा उठी।

लेकिन सबसे अधिक आश्चर्यचकित हो गया था उपेन्द्र। वस्तुतः किरणमयी के इस अद्भुत भाव-परिवर्तन का कारण वह बिल्कुल ही समझ न सका था। जिसने, अभी कुछ ही क्षण पहले स्पष्ट रूप से कहा था – बुद्धि के अतिरिक्त किसी दूसरे तुलादण्ड की वह परवाह नहीं करती और जो वस्तु इसके बाहर है उन्हें अन्दर प्रवेश कराने की कुछ भी आवश्यकता अनुभव नहीं करती, वह इस अत्यन्त सरलता और लड़कपन से किस तरह विचलित हो गयी! उसको छाती में खींचकर जो बातें इसने अभी कही हैं, यह तो मन रखने की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त किरणमयी अवश्य ही जानती है कि उसने जो कुछ कहा है, उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम करना सुरबाला के सामर्थ में नहीं है। फिर उसकी आँखों में अकस्मात आँसू उमड़ आना सबसे आश्चर्यजनक है। वे कैसे आ गये? इसके अतिरिक्त एक बात और थी, उपेन्द्र निःसन्देह जानता था कि इस प्रकार तीक्ष्ण बुद्धि के स्त्री-पुरुष किसी भी अवस्था में आवेग प्रकट करना पसन्द नहीं करते। किसी तरह प्रकट हो जाने पर उनकी लज्जा की सीमा नहीं रहती। लेकिन, तनिक-सी लज्जा भी उसने अपने व्यवहार से अनुभव की हो, यह लक्षण तो सम्पूर्ण अपरिचिता सरोजिनी को भी दिखायी नहीं पड़ा।

संध्या हो गयी। किरणमयी सबसे विदा होकर धीरे-धीरे गाड़ी पर जा बैठी।

दिवाकर घर में नहीं था, संध्या को घूमने के लिए बाहर चला गया था। इसलिए इधर-उधर देखकर उपेन्द्र को अकेले ही अन्दर जा बैठना पड़ा। लेकिन किरणमयी ने फिर मानो उसको देखा ही नहीं। गाड़ी के एक कोने में माथा रखकर वह मौन हो रही।

कुछ समय बीत गया। इस तरह चुपचाप बैठे रहना भी अरुचिकर था। इसके अतिरिक्त उपेन्द्र अवश्य ही समझ रहे थे कि किरणमयी कुछ सोच रही है। लेकिन क्या सोच रही है, इसी की परीक्षा करने के लिए उन्होंने कहा, "देख आयी न। इसी बुद्धिमती को लेकर मुझे गृहस्थी चलानी पड़ती है। लेकिन यों ही तो उससे पार पाने का उपाय नहीं है, उस पर आप आज परिहास करके जो प्रमाण-पत्र दे आयी उससे तो अब उसके पास तक पहुँचा ही न जायेगा।"

किरणमयी ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करके उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "किन्तु यहाँ ही इसका अन्त नहीं है भाभी। ऐसी महामूर्ख है कि जन्म से लेकर आज तक कभी झूठी बात बोल ही नहीं सकती।"

किरणमयी पूर्ववत् मौन ही रही।

उपेन्द्र ने कहा, "क्यों नहीं बोल सकती, जानती हो? पहले तो तैंतीस करोड़ देवी-देवता उसको चारों ओर से घेरकर पहरा दे रहे हैं, इसके अतिरिक्त, जो घटना हुई नहीं है, उसको अपनी बुद्धि-व्यय से कुछ अनुमान करने की शक्ति भी उसमें नहीं है।"

किरणमयी ने रुँधे स्वर से कहा, "अच्छा ही तो है।"

उपेन्द्र ने कहा, "यही अच्छी बात है, मैं ऐसा नहीं समझता। गृहस्थी को चलाने के लिए एकाध झूठ का आश्रय लेना ही पड़ता है। जिससे किसी को कोई हानि नहीं है बल्कि किसी अशान्ति या उपद्रव से मुक्ति मिलती है, वैसी झूठी बात में दोष ही क्या है। मैं कहता हूँ, वह अच्छा ही है।

"अच्छा तो है, पर यह बात आप सिखा नहीं सकते?"

"सीखेगी किस तरह भाभी? एक अत्यन्त छोटी-सी झूठी बात के लिए युधिष्ठिर की दुर्गति हुई थी यह तो महाभारत में ही लिखा हुआ है। देवी-देवता लोग जिस तरह मुँह बाये उसकी ओर देखते हुए बैठे हुए हैं, उस दशा में जान-बूझकर झूठी बात बोलने से फिर क्या उसकी रक्षा होगी। वे लोग उसे घसीटकर नरक में डुबो देंगे।" फिर थोड़ा-सा रुककर बोले, "भाभी, देवी-देवताओं का स्वरूप वह आँखें बन्द करके इतना स्पष्ट देख पाती है कि वह एक आश्चर्यजनक बात है। कोई ढाल-तलवार लेकर कोई शंख-चक्र-गदा-पद्म लेकर, कोई बाँसुरी हाथ में लेकर प्रत्यक्ष रूप से उसके आगे आ खड़े होते हैं। यह सुनकर तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। और किसी के मुँह से मैं ऐसा सुनता तो मैं झूठी मनगढ़न्त कहानी कहकर हँसकर उड़ा देता। लेकिन उसके सम्बन्ध में यह शिकायत तो मुँह से निकालने का उपाय ही नहीं है। यह कहकर श्रद्धा, प्रेम और गर्व से पुलकित होकर उपेन्द्र ने स्नेहपूर्ण कौतुक के स्वर से कहा, "इसीलिए यही सब देख-सुनकर उसे मनुष्य न कहकर जानवर कह देने से भी काम चल सकता है, क्यों भाभी? बलिहारी है उसकी बुद्धि की। जिन्होंने बचपन में इसका नाम पशुराज रखा था – क्या हुआ, भाभीजी?"

गाड़ी के मोड़ पर घूमते ही मार्ग में उज्जवल गैस का प्रकाश एकाएक किरणमयी के मुख पर आ पड़ने से उपेन्द्र ने चौंककर देखा उसका समूचा मुख आँसू से भीगता जा रहा

है।

उपेन्द्र लज्जा से स्तब्ध होकर मुँह झुकाये बैठे रह। अनजाने में जहाँ वह आनन्द के माधुर्य से निमग्न होकर स्नेह से, सम्भ्रम से परिहास पर परिहास करता जा रहा था, वहीं ठीक उसी के मुँह के सामने बैठकर वह किस बात की वेदना से रोती हुई वक्ष विदीर्ण कर रही थी, यह बात अब तक उन्हें ज्ञात न हो सकी।

पाथुरियाघाट के मकान पर दोनों जब पहुँचे तब रात एक पहर बीत चुकी थी। प्रायः पूरे रास्ते में किरणमयी चुप ही रही लेकिन अन्दर कदम रखकर तुरन्त ही अनुतप्त स्वर में बोल उठी, "हाय मेरा फूटा भाग्य! केवल साथ लेकर घूम ही तो रही हूँ। लेकिन एक बूँद पानी पीने को भी तुमको नहीं मिला बबुआ, वह इस अभागिनी की दृष्टि में पड़ी नहीं। हाथ-मुँह धोओगे? अच्छा, रहने दो। मेरे साथ रसोईघर में चलो, दो पूड़ियाँ पका देने में दस मिनट से अधिक समय न लगेगा। तू चूल्हे में ईंधन जलाकर घर जाना दाई! जा तो झटपट जा! तू रानी माँ है।"

नौकरानी दरवाज़ा खोलने आयी थी और इधर से घर जाने की इच्छा थी। लेकिन आदेश पालन करने के लिए ऊपर जाना पड़ा। मुख्य द्वार बन्द करके वह द्रुतपद से चली गयी।

लेकिन पूड़ी पकाने के इस प्रस्ताव से उपेन्द्र अत्यन्त घबरा उठे। उन्होंने तीव्र प्रतिवाद करके कहा, "यह किसी प्रकार नहीं हो सकता, भाभी! आज आप बहुत ही थक गयी हैं। मैं लौट जाने पर ही खाऊँगा। अपने लिए आपको व्यर्थ कष्ट उठाने न दूँगा।"

"नहीं क्यों?"

उपेन्द्र ने कहा – "नहीं, यह हो ही नहीं सकता – किसी सूरत से भी।

मुस्कराते हुए किरणमयी बोली, "तुम यश के बड़े भूखे हो देवर जी! इतना यश लेकर कहाँ रक्खोगे?"

अचानक इस तरह का मन्तव्य सुनकर विस्मित हो गये उपेन्द्र।

किरणमयी बोली, "हाँ, यही तो है देवर जी! तुम चाहते हो कि तुम्हारा परोपकार इतना निर्लिप्त, इतना निःस्वार्थपरक हो कि स्वर्ग-मर्त्य कहीं भी उसकी जोड़ का न मिले। हम लोगों के लिये तुमने जितना किया है, पाँव भी धो-धोकर पियूँ तो भी तुम्हारा आपत्ति करना नहीं जँचेगा। लेकिन चार पूरी उतारने की बात पर सिर हिला रहे हो? तुम हम लोगों को क्या समझते हो भला? हम इन्सान नहीं हैं? या हमारे शरीर में इन्सान का रक्त नहीं है?

अत्यन्त लज्जित व कुंठित होकर उपेन्द्र बोले, "ऐसी कोई बात सोच कर मैंने मना नहीं किया था भाभी। मैं तो – "

– "तो क्या देवर जी? शायद घर पहुँचने की जल्दी में होश नहीं रहा?"

बच गये उपेन्द्र। परिहास के पुनः सहज सरल हो जाने से खुशी-खुशी बोले, हाँ, यह बराई तो है मुझमें भाभी, इसे मैं अस्वीकार नहीं करता। लेकिन इस समय इसलिए मना नहीं किया था। मैंने वास्तव में यही सोचा था कि आज आप बहुत थक गयी हैं।

"थक गयी हूँ? भले ही थकी हूँ।" यह कहकर किरणमयी फिर ज़रा हँस पड़ी। उसके

बाद एकाएक गम्भीर होकर बोली, "हाय रे! आज यदि मेरे सतीश बबुआ रहते, अपनी बात अपने मुँह से कहनी न पड़ती। वह सहस्र मुख से वक्तृता आरम्भ कर देते। नहीं बबुआजी, उन सब श्रान्ति-क्लान्ति का शोक करने की मेरी अवस्था ही नहीं है, इसके अतिरिक्त बंगाली के घर की किसी भी स्त्री के लिए यह बदनामी सम्भवतः लागू नहीं होती। आत्मीय हो, या अनात्मीय हो, पुरुष का खाना नहीं हुआ है सुनने से बंगाली की लड़की मरने की दशा में रहने पर भी एक बार उठ खड़ी होती है।"

– "जानता हूँ, अच्छी तरह जानता हूँ भाभी। मान लेता हूँ कि गलती हो गयी – अब और नहीं। भूख भी लगी है, चलिये क्या दे रही हैं खाने को।"

– "आओ, कहकर किरणमयी चल दी। सास के कमरे के सामने आकर झाँक कर देखा गहरी नींद सो रही थीं वह।"

रसाईघर में जाकर, जैसे सतीश को पीढ़ा बिछाकर बैठाती थी, उसी तरह उसने उपेन्द्र को बैठा दिया।

दासी चूल्हा जलाकर दूसरी तैयारियाँ करने के लिए बाहर चली गयी तो किरणमयी ने अपने इस नवीन अतिथि की ओर देखकर कहा, "अच्छा बबुआजी, मुझे कष्ट होगा इसलिए बिना खाये ही चले जाने का जो प्रस्ताव किया था, वही यदि और कहीं किसी के सामने करते तो आज तुमको क्या सज़ा भुगतनी पड़ती, जानते हो?"

उपेन्द्र बोले, "जानता हूँ। लेकिन यहाँ तो वह सज़ा भोग करने का भय नहीं है भाभी!"

दासी मैदे की थाली रखकर चली गयी। किरणमयी ने थाली आगे खींचकर सिर झुकाये मधुर स्वर से कहा, "कहना कठिन है बबुआजी, भाग्य में लिखा रहने से किससे क्या बात हो जाती है, कहाँ और कौन-सा भोग भोगना पड़ा है, पहले से उसका कोई लेखा-जोखा नहीं मिलता। भाग्य की लिखावट क्या टाली जा सकती है? नहीं बबुआजी, वह आप ही आकर गरदन पर सवार हो जाती है।"

उपेन्द्र यह गूढ़ रहस्य ठीक-ठीक समझ न सके। बोले, "यह तो ठीक ही है।" किरणमयी ने भी उस समय कोई बात नहीं कही। एक बार केवल उपेन्द्र के मुँह की ओर ही देखकर आँखें झुकाकर मैदा गूँधने लगी। लगा, मानो वह चुपके-चुपके हँस रही है।

कुछ देर तक चुपचाप काम करते-करते एकाएक आँखें ऊपर उठाये बिना ही उसने कहा, "अच्छा, आज इतना आडम्बर रचकर बहू को दिखाने के लिए ले जाने का क्या मतलब था, बाताओ तो?"

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "आडम्बर, दिखावा तो मैंने कुछ भी नहीं किया भाभी।"

किरणमयी बोली, "तो सम्भवतः कहने में मुझसे गलती हुई। कहती हूँ, इस प्रकार छल-चातुरी करने की क्या आवश्यकता थी?"

उपेन्द्र ने कहा, "छल-चातुरी मैंने क्या की?"

किरणमयी ने कहा, "वही जैसे कि मूरख-ऊरख, तरह-तरह की बातों का जाल रचकर।

किन्तु झूठी बातों की काट-छांट करने से अब क्या होगा बबुआजी? उस बहू को यदि मूर्ख ही समझते हो, तो इस भाभी का भी तो कुछ परिचय पा गये हो? इतनी सरलता से भुलावे में डाल सकोगे ऐसा सोचते हो?"

"नहीं, यह तो मैंने नही कहा।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। क्योंकि जिस तरह छोटा-सा उत्तर उपेन्द्र देना चाहते थे, उस तरह वह दे नहीं सके। इच्छा न रहने पर भी उनका कण्ठ-स्वर गम्भीर हो गया, लेकिन किरणमयी ने इसे लक्ष्य किया या नहीं, यह पता नहीं लगने दिया और उसी तरह परिहास के स्वर में कहा, "तो?"

उपेन्द्र अपने कण्ठ-स्वर की गम्भीरता अनुभव करके लज्जित-से हो उठे थे, इस बीच उन्होंने भी अपने को सम्भाल लिया। हँसकर बोले, "भाभी, आपको धोखा देना क्या सहज है? लेकिन छल-चातुरी न करने से तो आप जाती नहीं। मैं कितनी बड़ी मूर्ख को लेकर गृहस्थी चलाता हूँ यह तो आपको बिना देखे पता न चलता।"

किरणमयी ने कहा, "वह देखने से मेरा लाभ?"

उपेन्द्र बोले, "लाभ आपका नहीं है। लाभ है मेरा। सभी अपना दुःख जताकर दुःख कम कर देना चाहते हैं। मनुष्य का स्वभाव यही है। इसीलिए छल-चातुरी करके यदि दुःख भी मैंने दिया हो तो वह आपकी कृपा प्राप्त करने के लिए। और किसी कारण नहीं।"

किरणमयी कुछ देर तक मौन रही। उसके बाद उसने बातें कहीं, किन्तु मुँह ऊपर उठाकर देखा नहीं। कहा, "अब तो मैं पार नहीं पा सकती बबुआजी, यह अभिनय अब बन्द कर दो न। अपनी मूर्ख बहू को मूर्ख समझकर यदि कुछ कम प्यार करते तो सम्भवतः और कुछ देर तक ये बातें सुनी जा सकती थीं। सम्भवतः कुछ कृपा भी तुम पा जाते। लेकिन सतीश बबुआ के मुँह से मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ। यह तो अच्छी बात है, उसको खूब प्यार करो, लेकिन इसीलिए क्या इस तरह ढोल पीटकर घूमना ठीक है। तनिक भी रुकावट हिचक नहीं होती?"

यह बात सुनकर उपेन्द्र, क्या कहें, क्या सोचें, इसका निश्चय ही न कर सके। यह कैसा बोलने का ढंग है। यह कैसा कण्ठ-स्वर है! परिहास तो यह किसी प्रकार भी नहीं है, किन्तु यह है क्या? व्यंग्य है? ईर्ष्या है? विद्वेष है? यह किस बात का आभास है, जिसे यह विधवा रमणी इस रात्रि में, इस निर्जन कमरे में आज उसके सामने व्यक्त करने का प्रयास कर रही है!

फिर किसी के भी मुँह से कोई बात नहीं निकली। कुछ काल दोनों ही मौन होकर मुँह झुकाये बैठे रहे।

दासी ने दरवाज़े के बाहर से एक बार खाँस दिया। उसके बाद तनिक मुँह बढ़ाकर बोली, "अब तो अधिक देर मैं रुक नहीं सकती बहूजी। सदर दरवाज़ा ज़रा बन्द न कर देने से मैं आ भी तो नहीं सकती।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "जायेगी! तो तुम ज़रा बैठो बबुआ, मैं सदर

दरवाज़ा बन्द करके जा रही हूँ।"

यह कहकर उसके चले जाने पर तुरन्त ही इस कमरे में अकेले बैठे हुए उपेन्द्र का हृदय एक ऐसी घृणा से भर उठे जिसका अपने जीवन में पहले कभी उन्होंने अनुभव नहीं किया था। उनका उन्मुक्त चरित्र बहुत दिनों से स्फटिक स्वच्छ प्रवाह की भाँति बहता रहा है। कहीं भी कोई रुकावट नहीं पड़ी है। कहीं भी किसी दिन बिन्दुमात्र कलंक की छाया आकर भी अपनी परछाई उन पर फेंक नहीं पायी है। लेकिन आज इस निर्जन कमरे में वही अत्यन्त निर्मलता मानो मलिन हो उठी।

सत्ताईस

दासी को बिदा करके किरणमयी अपने स्थान पर वापस आकर जब बैठ गयी, तब उपेन्द्र गरदन उठाकर एक बार देख भी न सके। किरणमयी की दृष्टि से यह भाव छिपा नहीं रहा, लेकिन वह भी कोई बात न कहकर चुपचाप अपना काम करने लगी।

दस मिनट तक जब इसी तरह समय बीत गया, तब किरणमयी ने धीरे-धीरे कहा, "अच्छा, बबुआ, यदि कोई हमें इस प्रकार चुपचाप बैठे देख ले तो क्या सोचेगा, बताओ तो?" यह कहकर वह हँस पड़ी।

उपेन्द्र ने इस हँसी को नेत्रों से न देखने पर भी हृदय में अनुभव किया। कहा, "सम्भवतः अच्छा न सोचेंगे!"

– "तो फिर?"

– "क्या करूँ भाभी, करने को कोई बात ही नहीं मिल रही।"

– "नहीं मिल रही? अच्छा मैं ढूँढ देती हूँ। लेकिन पहले एक बात बता दूँ, वह यह कि खाना बना-खिलाकर भेजने में आधे घण्टे से अधिक समय नहीं लगेगा। उतनी देर तुम प्रसन्न वदन बातें करो, इस तरह मन भारी करके मत बैठे रहो।"

ज़बर्दस्ती ओठों पर हँसी लाकर उपेन्द्र ने कहा, "ठीक है, कहिये।"

पुनः मुस्कुरा दी किरणमयी। बोली, "चलो भाभी का मान रखकर हँसे तो। देवर जी, जब से तुम्हें देखा है, प्रायः एक बात मन में आती है, लेकिन सुनकर फिर से उल्टा समझकर गुस्से से मुँह तो नहीं फुला लोगे?"

"नहीं, क्रोध किसलिए?"

"क्या जानते हो बबुआजी, अच्छे-अच्छे काव्यों में कहा जाता है, वे हमारे देश के हों, या विदेश के ही हों, प्रथम दर्शन से ही एक प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होना – अच्छा, इसे क्या सम्भव मानते हो?"

उपेन्द्र का मुख एकाएक लज्जा से लाल हो उठा। उसने कहा, "अच्छा-बुरा किसी काव्य के सम्बन्ध में मेरा विशेष कोई ज्ञान नहीं है भाभीजी, यह बात मैं नहीं जानता!"

किरणमयी बोली, "यह कैसी बात कहते हो बबुआ? इतना लिख-पढ़ चुके हो, इतनी

परीक्षाएँ पास करके कितने ही रुपयों की मिठाइयाँ वसूल कर चुके हो और काव्य के सम्बन्ध में तुम कुछ भी नहीं जानते? शकुन्तला, रोमियो-जूलियट, इन दोनों को भी क्या तुमने नहीं पढ़ा है?"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन पढ़कर पास करने में तो सम्भव-असम्भव निश्चय नहीं करना पड़ा है। पुस्तक में जो लिखा है कण्ठस्थ करके परीक्षा में लिख आया था। आपकी तरह किसी परीक्षक ने कभी प्रश्न नहीं किया – यह होता है या नहीं। मुझे क्षमा करना पड़ेगा भाभी, ये सब आलोचनाएँ आपके साथ मैं न कर सकूँगा।"

किरणमयी ने उदास होकर एक लम्बी साँस लेकर कहा, "इसीलिए पूछा था, मुझ पर क्रोध न करोगे?"

"लेकिन क्रोध तो मैंने किया नहीं।"

"न करने से ही अच्छा है!" कहकर किरणमयी ने गरम कड़ाही में घी डाल दिया।

तीन-चार पूड़ियाँ तलकर किरणमयी एकाएक बोली, "जिस बात को मैंने जान लेना चाहा था, उसकी आलोचना ही तुमने करने नहीं दी। मेरा भाग्य ही ऐसा है! लेकिन एक और बात मैं पूछती हूँ बबुआजी, प्रेम को लोग अन्धा क्यों कहते हैं?"

उपेन्द्र ने कहा, "सम्भवतः आँखें रहने से जिस मार्ग से मनुष्य नहीं जाता – इससे उस मार्ग में भी वह उसको ले जाता है।"

किरणमयी ने उत्सुक होकर पूछा, "ले जाता है क्या? क्या यह बात सत्य है कि प्रेम अन्धा होता है?"

"सच तो अवश्य है। बहुतों की बहुत-सी अभिज्ञता से ही तो यह कहावत प्रचलित है।"

किरणमयी ने कहा, "अच्छी बात है। यदि यही होता है, तो अन्धा जब गर्त में जाता है, लोग दौड़ते हुए आकर उसे उठा देते है। उसके लिए दुःख मानते हैं, जिसमें जैसी शक्ति रहती है उसके अनुसार सहायता करने की चेष्टा करता है, लेकिन प्रेम के कारण अन्धा बनकर कोई जब गर्त में गिर पड़ता है, कोई भी तो उसे उठा देने के लिए दौड़कर नहीं आता। बल्कि, और हाथ-पैर तोड़कर उसी गर्त में मिट्टी डाल दी जाती है। जिस सत्य का मनुष्य स्वयं ही प्रचार करता है, आवश्यकता पड़ने पर उस सत्य की कोई मर्यादा ही नहीं मानता। मेरी बात तुम समझ रहे हो न बबुआ?"

उपेन्द्र ने गरदन हिलाकर कहा, "समझ रहा हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "समझ सकते हो इसीलिए तो तुमसे पूछ रही हूँ, लेकिन इसी दशा में देखो, दूसरों के मामलों में बहुत कुछ जानते हुए भी लोग बरबस भूल जाना चाहते है। अन्धे को आँख वाले की संज्ञा देकर अपने को वीर समझने लगते हैं। दूसरे के विषय में विचार करते समय यह बत उसे स्मरण रहती नहीं कि आँख खो देने पर गर्त में गिर जाने की उसकी सम्भावना उस मनुष्य की अपेक्षा कुछ भी कम नहीं होती।"

उपेन्द्र ने तनिक अप्रसन्न तथा आश्चर्य के साथ कहा, "यह नहीं भी हो सकता है, लेकिन मैं समझ नहीं सकता भाभी, ये सब आलोचनाएँ क्यों कर रही हैं? सच हो, झूठ हो, आपके

जीवन के साथ इस मीमांसा का कोई सम्बन्ध नहीं है।"

किरणमयी उपेन्द्र की अप्रसन्नता देखकर भी हँस पड़ी। बोली, "अन्धा आलोचना करके गर्त में नहीं गिरता बबुआ, गिरकर आलोचना करता है। मैं गिर नही पड़ी हूँ, या गिर पड़ने के लिए उस ओर बढ़ती नहीं जा रही हूँ यही बात तुम किस तरह जान गये?"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन आप तो अन्धी नहीं हैं। मैंने तो आपकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें देख ली हैं भाभी!"

किरणमयी बोली, "वही तो कठिनाई है बबुआजी, दो प्रकार के अन्धे होते हैं, जो लोग आँखें बन्द करके चलते हैं, उनके सम्बन्ध में तो सोचना नहीं पड़ता – वे पहचाने जाते हैं। लेकिन जो लोग दोनों आँखों से देखते हुए चलते हैं, फिर भी देख नहीं पाते, उन लोगों को ही लेकर सब गड़बड़ियाँ हैं। वे स्वयं भी धोखा खाते हैं, दूसरों को भी धोखा देने से बाज नहीं आते।"

उपेन्द्र कुण्ठित होकर बैठे रहे। उनसे उत्तर न पाकर किरणमयी ने एकाएक उत्सुक होकर मानो प्रश्न किया, "अच्छा, तुमने जो यह बात कही बबुआ, कि मेरी बड़ी-बड़ी दो आँखें तुमने देखी हैं, तो वह किस समय देखीं। क्या यह मैं पूछ सकती हूँ?"

उपेन्द्र बोले, "वह तो आपके पति की मृत्यु के बाद ही उस दिन आपको जिसने देखा है, वह किसी दिन आपके विषय में भूल न करेगा। क्यों आप अपने को अन्धी कहकर डर रही हैं, यह बात आप ही जानती हैं, लेकिन मैं जानता हूँ, यह बात सच नहीं है। उस दिन आपकी दोनों आँखों में मैंने जो ज्योति देख ली थी, उससे मैं निश्चित रूप से जानता हूँ। कितना भी अन्धकार आपके चारों ओर घना होकर क्यों न आ जाये, वह आपको भुलावे में न डाल सकेगा। आप ठीक मार्ग देखकर चिर जीवन चली जा सकेंगी।"

किरणमयी ने कुछ देर तक चुप रहकर कहा, "इतनी देर में सम्भवतः मैं यह बात समझ गयी हूँ बबुआ, उस दिन जिस तरह चेतना खोकर मैं उनके पैरों के नीचे पड़ी थी उसे देखकर सम्भवतः तुम्हारे मन में यह धारणा उत्पन्न हुई।"

उपेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, "यह बात भी हो सकती है, लेकिन वह देखना क्या भूल हो सकती है भाभी?"

सुनकर किरणमयी हँस पड़ी। उसके बाद संकोच-रहित सहज कण्ठ से बोली, "भूल की तरह ही ज्ञात हो रहा है। मैं तो अपने पति को प्यार नहीं करती थी।"

उपेन्द्र आश्चर्यचकित होकर निहारते रहे। किरणमयी कहने लगी, "सचमुच ही उनको मैंने किसी दिन प्यार नहीं किया। और केवल मैंने ही नहीं, उन्होंने भी मुझे प्यार नहीं किया। तो क्या उस दिन की वह मेरी छलना थी? वह बात भी नहीं है, यह भी सत्य है। सचमुच ही उस दिन मैं अपना होश खो चुकी थी।" यह कहकर उपेन्द्र का स्तम्भित मुँह देखकर वह ज़रा ठिठक गयी। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे बलपूर्वक दूर करके बोली, "नहीं, डरने से मेरा काम न चलेगा। तुमको सभी बातें आज बता देनी पड़ेंगी।"

उपेन्द्र ने कष्ट से मुँह ऊपर उठाकर कहा, "चलेगा क्यों नहीं। मैं सुनना नहीं चाहता,

तो भी मुझे क्यों सुननी ही पड़ेगी?"

किरणमयी ने कहा, "इसका कारण यह है कि तुम हो मेरे गुरु। तुम्हारे सामने सब स्वीकार न करने से मैं किसी प्राकर शान्ति न पाऊँगी।"

उपेन्द्र स्थिर होकर निहारते रहे। किरणमयी दृढ़ किन्तु मृदु स्वर से बोली, "मेरे अन्दर जो गम्भीर अर्न्तदृष्टि तुमने देखी थी बबुआ, वह आँखों की भूल नहीं थी, सच्ची थी, लेकिन बहुत ही कम, क्षणकाल के लिए थी। पति को मैंने किसी दिन प्यार नहीं किया, लेकिन तन-मन से प्यार करने की चेष्टा मैंने आरम्भ की थी। लेकिन वे बचे नहीं, मेरी भी वह चेष्टा स्थायी नहीं हुई। पुस्तकों में ये सब बातें पढ़कर कभी मैं सोचती थी, ये झूठी बातें हैं, कभी सोचती थी, कवि की कल्पना है, कभी मन में यही विचार करती थी सम्भवतः मुझ में प्यार करने की शक्ति ही नहीं है। इसलिए ऐसा होता है। यह शक्ति मुझमें है या नहीं, आज भी मैं नहीं जानती बबुआ, किन्तु प्यार करने की इच्छा मेरी कितनी अधिक है इस बात का पहले मुझे पता लगा तुमको देखकर। इसीलिए तुम ही गुरु हो।" कुछ देर मौन रहकर मानो आप ही आप उसने कहा, "दो दिनों के बाद तुम लोग चले जाओगे। फिर जब भेंट होगी, तब अपनी बातें कहने योग्य मन की अवस्था सम्भवतः न रहेगी। हो सकता है कि यही कह देने के लिए तब मैं लज्जा से मर जाऊँगी। नहीं बबुआजी, यह होगा नहीं, आज ही तुमको अपनी सभी बातें सुनाकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगी!"

उपेन्द्र ने कातर होकर कहा, "भाभी, आज विभिन्न कारणों से आपका मन अत्यन्त उत्तेजित हो गया है, मैं देख रहा हूँ। इस अवस्था में क्या कहना उचित है, क्या उचित नहीं है, यह समझ न सकने से – नहीं-नहीं, भाभी, मैं अनुरोध कर रहा हूँ किसी दूसरे दिन आकर आपकी सब बातें सुन जाऊँगा, लेकिन आज नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "ठीक इसीलिए तो आज तुमको सभी बातें सुनाना चाहती हूँ बबुआजी। फिर उस दिन लज्जा आकर बाधा न डाल दे, सांसारिक भले-बुरे की विचार-बुद्धि मुँह दबाकर पकड़ लेगी। आज मुझे रखकर, ढककर, समझ-बूझकर, सजाकर, बचाकर कहने की शक्ति भी नहीं है, प्रवृत्ति भी नहीं है – आज ही तो कहने का दिन है। इसके बाद सम्भवतः तुम इस जन्म में फिर मेरा मुँह न देखोगे – तो भी मैं प्रार्थना करती हूँ और कुछ देर तक मेरी यह दुर्बुद्धि मेरा यह उन्माद बना रहे, जिससे मैं तुम्हारे सामने सब खोलकर कह सकूँ।"

उसके मुख की ओर देखकर उपेन्द्र का निर्मल, शुद्ध हृदय अज्ञात भय से त्रस्त हो उठा। अन्तिम बार के लिए बाधा देकर वह बोले, "भाभी, मनुष्य मात्र की ही गुप्त बातें रहती हैं। उन्हें तो किसी के सामने खोल देने की आवश्यकता नहीं है। वरन् प्रकट कर देने में अधिक अकल्याण है, केवल तुम्हारा और मेरा ही नहीं और भी दस आदमियों का।"

किरणमयी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पूड़ियों का पकाना समाप्त हो गया था। एक थाली में खूब अच्छी तरह सजाकर उपेन्द्र के आगे रखकर उसने कहा, "तुम खाओ, मैं अपना कहना समाप्त कर डालूँ।"

"अच्छा होगा यदि आप न कहें भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "प्रार्थना कर रही हूँ बबुआ, अब मुझे बाधा मत दो। सब सुन लेने पर तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरी सास के साथ ही मेरा भी भार ले लेना। इच्छा न हो तो मैं अपना मार्ग स्वयं ही ढूँढ़ लूँगी। मैंने बहुतों को धोखा दिया है बबुआजी, लेकिन मैं तुमको ठग न सकूँगी।"

"तो कहिये!" यह कहकर उपेन्द्र ने पूड़ी का एक टुकड़ा अपने मुँह में डाल लिया।

किरणमयी ने कहा, "तुमको मैंने बता दिया है बबुआजी, पति को मैंने कभी प्यार नहीं किया, उनका प्यार मुझे मिला भी नहीं। इसके लिए हमें कोई दुःख नहीं था। घर में सास-पति दोनों को साथ रहा। एक थे दार्शनिक! वह मुझे जी-जान से पढ़ाने में ही प्रसन्न रहा करते थे, और एक थीं घोर स्वार्थपरायण – वह जी-जान से मुझे काम में लगाये रहने में ही प्रसन्न थीं। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे और सम्भवतः कट भी जाते लेकिन एकाएक सब कुछ उलट-पलट गया। पति बीमार पड़ गये। उनसे मैंने अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। नाटक-उपन्यास भी मैंने कम नहीं पढ़े हैं, लेकिन हम दोनों ही पढ़-पढ़कर केवल हँसते रहते थे। प्यार की गन्ध भी हममें नहीं थी। इसीलिए कोई आदमी जैसे रहते हैं जन्म के बहरे, जन्म के अन्धे, मेरे पति भी वैसे ही थे जन्म के नीरस। लेकिन मुझमें कितना रस था, यह उस समय तक भी मैं जान नहीं सकी थी। लेकिन उस बात का एकाएक मुझे पता लग कि प्यार करने की और उसे वापस पाने की तृष्णा मेरी भी किसी स्त्री से कम नहीं है – नहीं, नहीं, इतने में ही इन पूड़ियों को हटा रखने से काम न चलेगा।"

उपेन्द्र ने उदास होकर कहा, "किसी तरह भी भोजन अच्छा नहीं लग रहा है भाभी।"

किरणमयी ने पलभर मौन रहकर कुछ सोचकर कहा, "मैं जानती हूँ बबुआजी, थोड़ी देर बाद ही पूरी-तरकारी का स्वाद तुम्हारी जीभ पर ज़हर बन जायेगा, लेकिन अभी तो इसमें देर थी। तुम और कुछ खा सकते थे।"

उपेन्द्र और भी उदास हो गये।

किरणमयी उनकी ओर देखकर ही कहने लगी, "यदि मैं यह कहूँ कि तुम्हारे यह न खाने का जो दुःख है, वह मेरा दाहिना हाथ नष्ट हो जाने की अपेक्षा भी अधिक है तो तुम विश्वास न कर सकोगे। लेकिन तुम विश्वास करो, या न करो, मैं तो जानती हूँ कि यह सच है! तो भी रुक जाने का उपाय नहीं हैं बबुआजी, मुझे कहना ही पड़ेगा।"

"अच्छी बात है, कहिये।"

"कहती हूँ। अपने पति की बीमारी में केवल गहनों को छोड़कर और जो कुछ भी मेरे पास संचित था, वह सब ही एक-एक करके चला गया, तब आ गये एक नये पास किये डाक्टर – अच्छा बबुआ, अनंग डाक्टर को तुम लोगों ने देखा था न?"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ!"

किरणमयी ने विद्रूप की हँसी हँसकर कहा, "उन्होंने ही! वाह रे फूटा भाग्य! इस कमरे में पति मरने की दशा में थे, उस कमरे में मैं चली गयी उनको लेकर प्रेम का स्वाद मिटाने।"

उपेन्द्र गरदन झुकाये मौन बैठे रहे। किरणमयी और कहने जा रही थी, लेकिन किसी ने मानो उसका गला दबा दिया। थोड़ी देर तक प्रबल चेष्टा करने के बाद सूखे स्वर से बोली, "सुनते ही तुम्हारी गरदन झुक गयी, तो भी उस अनंग डाक्टर को नहीं पहिचानते। पहिचानने से तुम समझ सकते थे, कितने वर्षों की घोर अनावृष्टि की ज्वाला मेरे इस हृदय के अन्दर जमी हुई थी, इसीजिये यह असम्भव घटना सम्भव हो सकी थी। जानते हो, जिस तृष्णा से पनाले से गाढ़े काले पानी को अँजुली से भरकर मुँह में भर लेते हैं, मुझे भी वही पिपासा थी, लेकिन वह ख़बर मुझे मिली उस पानी को गले के अन्दर ढाल देने पर। उसके बाद – ओह! यह कैसा था। कै करने की-सी दशा में दिन बीतते रहे।" यह कहते-कहते उसका सम्पूर्ण अंग थरथरा उठा। एक उत्कट दुर्गन्धमय विषाक्त उद्गार मानो उसके गले तक उच्छ्वसित हो उठा। पलभर मौन रहकर अपने आपको सम्भालकर किरणमयी ने कहा, "लेकिन मैं कै कर भी न सकी, सास ने मेरा मुँह दबा दिया। उस समय अनंग ने गृहस्थी का आधा भार सम्भाल लिया था।"

उपेन्द्र उसी भाव से पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रहे। उनके निर्वाक् झुके हुए मुँह की ओर एक बार देखकर किरणमयी बोली, "उसके बाद आसक्ति-घृणा के, तृष्णा-वितृष्णा के लगातार संघर्ष से जो विष दिन-रात उठने लगा, देव-मानव के निष्ठुर मन्थन से पीड़ित वासुकि सम्भवतः उतना जहर, उतने बड़े अपने मुँह से निकाल न सका था। मुझे जान पड़ता है, इस घर की प्रत्येक ईंट-लकड़ी, दरवाज़ा-खिड़की, धरन तक विष से नीले रंग की हो गयी हैं।"

ज़रा रुककर उसने कहा, "कितने दिनों में किस प्रकार इसका अन्त होता यह मैं नहीं जानती। कितना ही मैंने सोचा लेकिन किसी ओर भी उसका कूल-किनारा मेरी निगाह में नहीं पड़ा। लेकिन क्या ही अमृत हाथों में लेकर तुम निकल पड़े बबुआ, कहाँ चली गयी वह ज़हर की ज्वाला और कहाँ रह गयी विद्वेष घृणा! पल भर में ये सब ऐसी तुच्छ हो गयीं कि अनंग को विदा कर देने में मुझे एक क्षण नहीं लगा। तुम ही मानो आकर मेरे कान में उपाय बता गये! जानते तो हो बबुआजी, स्त्रियाँ गहनों पर कितना प्रेम रखती हैं। बड़े दुःख के मेरे गहने मानो मेरी छाती की पसलिया ही थीं। वही जहाँ सिर झुकाये, तुम इस समय बैठे हो, ठीक वहीं पर पसलियों को निकालकर उसके चरणों पर मैंने डाल दिया। मेरे ऊपर उसकी आसक्ति चाहे जितनी ही बड़ी क्यों न रही हो, इतने गहने हाथ में पा लेने से, वह फिर कभी मुँह न दिखायेगा, जन्म भर के लिए मुझे मुक्ति देकर चला जायेगा यह मंत्र तुमने ही मानो मुझे सिखा दिया। ओह! कितना भय, कितनी चिन्ताएँ मुझे थीं, पीछे कहीं इस दुर्दिन के दबाव से किसी दिन मेरे यह गहने नष्ट न हो जाये। वे चले ही तो गये – मैं उनको पकड़कर तो रख ही न सकी। लेकिन ओह! वह कैसी तृप्ति थी, कैसा वह आश्चर्यजनक आनन्द था बबुआ, ऐसी ही एक अँधेरी संध्या में जब उन्हीं के लोभ में पड़कर वह अपनी वीभत्स पूछ को मेरे समूचे अंग से खोलकर चोर की भाँति चुपचाप चला गया। मन में अनुभव हुआ कि मैं बच गयी।"

उपेन्द्र को स्मरण आया कि उसके और सतीश के बीच से एक दिन सबेरे चोर की तरह अनंग डाक्टर चला आया था। लेकिन कोई बात न कहकर वह मौन रह गये थे।

किरणमयी कहने लगी, "तुमको स्मरण आ रहा है बबुआजी, मेरी उस रात की वह उग्र मूर्ति? उस दिन मैंने क्या-क्या काण्ड कर डाला था। छिपकर तुम लोगों की बात चीत सुनना, नीचे जाकर तुम लोगों को लाल आँखें करके कितना ही भय दिखाना, उसके बाद तुम लोग चले गये। अपने विष की वह कैसी ज्वाला थी! किन्तु उसके बदले में दो वस्तुएँ मुझे मिलीं, बबुआजी, वह था मेरा स्वर्ग, वह था मेरा अमृत। श्रीरामचन्द्र के पाद-स्पर्श से पत्थर की अहिल्या जैसे सजीव हो गयी थी, मैं भी मानो उसी तरह बदल गयी। अहिल्या ने स्त्री बन जाने पर क्या पाया था, मैं नहीं जानती, लेकिन मैंने जो कुछ पा लिया, उसकी तुलना नहीं है। मेरा भाई नहीं था, सतीश को पा गयी, अपना-सहोदर भाई, और पा गयी तुमको – छिः! ऐसे उदास मत हो बबुआ, पुरुष को क्या ऐसी लज्जा शोभा देती है?"

उपेन्द्र ने बलपूर्वक सिर सीधा करके दृढ़ स्वर से कहा, "जो लज्जा की वस्तु है, वह स्त्री-पुरुष दोनों के ही लिए समान है भाभी। मैं ये सब बातें सुनना नहीं चाहता – या तो आप चुप हो रहिये, नहीं तो मैं इसी क्षण उठकर चला जाऊँगा।"

किरणमयी ने कहा, "ज़बर्दस्ती?"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने कहा, "उस दशा में भी ज़बर्दस्ती पकड़ रखने की चेष्टा करूँगी। लेकिन यह मैं पहले ही कह देती हूँ बबुआ, इस बल की परीक्षा में मुझे लाभ के सिवा हानि नहीं है।"

इस उत्तर के बाद उपेन्द्र गरदन झुकाकर बैठे रहे। किरणमयी फिर हँसकर बोली, "डरने की बात नहीं है जी, डरने की बात नहीं है, तुम्हारी इच्छा न रहने पर स्वयं तुम्हारे शरीर पर जाकर हाथ रक्खूँगी, ऐसी पागल अभी तक मैं नहीं हुई हूँ। इच्छा हो तो उठ जाओ, मैं बाधा न दूँगी!"

उपेन्द्र मुँह झुकाये मौन बैठे रहे। बादल से छिपा चन्द्रमा आँख से दिखायी न पड़ने पर भी चारों ओर की फीकी चाँदनी के आभास से वास्तविक वस्तु जैसे पहचान ली जाती है, इन दोनों नर-नारियों का गुप्त सम्बन्ध भी इतनी देर तक उसी प्रकार आवरण में पड़ा था। लेकिन हवा बहने लगी है, बादल तेजी से हटते जा रहे हैं, हृदय में यह निश्चित रूप से अनुभव करके ही उपेन इस प्रकार भाग जाने की चेष्टा कर रहे थे लेकिन सब विफल हो गया। एकाएक हवा का झोंका आ जाने से समस्त आवरण फटकर जहाँ तक दिखायी पड़ता है वहाँ तक सामने आकाश अनावृत हो गया।

किरणमयी ने धीरे-धीरे कहा, "जाने भी दो, तुमको जो मैं प्यार करती हूँ, यह तुमको बताकर मानो मैं बच गयी। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही करो, मुझे कुछ भी कहना नहीं है। लेकिन यह विचार मत करना बबुआजी, मैंने अन्धी आशा से भूलकर यह बात बता दी है। मैं तुमको पहचानती हूँ, मैं जानती हूँ यह निष्फल है। रक्षक होने के लिए आकर

तुम भक्षक न हो सकोगे, किसी प्रकार भी नहीं, यह मैं जानती हूँ।"

इतनी देर में उपेन्द्र ने बात कही। उन्होंने मृदु स्वर से प्रश्न किया, "जब यह श्रद्धा मेरे ऊपर है तो आपने बताया क्यों?"

किरणमयी ने कहा, "इसके दो कारण हैं। पहला यह है कि न बताने से मैं पागल हो जाती। दूसरा कारण यह है कि तुमको सब बातें न बताकर तुम्हारा आश्रय लेना मेरे लिए असम्भव है। उस दिशा में मुझे केवल यही ज्ञात होता है कि सुरबाला ही मानो मुझे खिला-पहना रही है, लेकिन अब यदि इसके बाद भी तुम मेरा भार लेते हो – तो ज्ञात होगा कि तुम्हारा ही खा रही हूँ, पहन रही हूँ और किसी का नहीं। अच्छा, सुरबाला से भी मेरी बातें बतलाओगे तो?"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं।"

किरणमयी ने प्रश्न किया, "नहीं क्यों? सुनने से वह दुःखी होगी।"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं भाभी, वह दुःखी न होगी। वह बहुत ही मूर्ख है। भले घर की लड़की पति के अतिरिक्त और किसी पुरुष को किसी अवस्था में भी प्यार कर सकती है, यह बात सहस्र बार कहने पर भी उसके दिमाग़ में न घुसेगी! अब अनुमति दें तो मैं उठूँ?"

इस बात ने किरणमयी को तीक्ष्ण आघात पहुँचाया, लेकिन उसने सहज स्वर से कहा, "अनुमति न देने पर भी तो उपाय नहीं है, देनी ही पड़ेगी, लेकिन ज़रा और बैठो। तुमको जो मैंने प्यार किया था, यही तो केवल बताया गया, लेकिन भूल जानना भी चाहा था, आज यह बात भी तुमको ज्ञात नहीं है। लेकिन इसमें मेरा गुरु कौन है, जानते हो बबुआ? वही जो मूर्खों में अग्रगण्य लड़की छोटी बहू बनकर तुम लोगों के घर में गयी है, वे ही।"

उपेन्द्र के मुख पर आश्चर्य का आभास देखकर किरणमयी ने कहा, "हाँ, वे ही। तुम लोग जिसको पशुराज कहकर परिहास करते हो, वही सुरबाला मेरी गुरु है, तुमने जो बात सिखाई, उन्होंने उसे ही भुला देना चाहा। वे मेरी पूज्य हैं।"

उपेन्द्र चुप होकर बैठे रहे। किरणमयी कहने लगी, "तुमको मैं बार-बार कहती हूँ बबुआजी, आज जो तुम्हारे पैरों पर अपनी लज्जा के समस्त जंजाल को तिलांजलि मैंने दे दी है तो उसका समस्त फलाफल जानकर ही। मैं जानती हूँ, तुम्हारी सुरबाला है और है तुम्हारी कठोर पवित्रता। वह है स्फटिक की भाँति स्वच्छ, वज्र की भाँति कठोर, उसके शरीर पर दाग लगा सकूँ, यह बल मुझमें नहीं है। लेकिन जानते तो हो बबुआजी, मनुष्य का ऐसा ही जला हुआ स्वभाव है कि जो बात उसकी शक्ति के बाहर है, उसी पर उसका सबसे अधिक मोह रहता है। भगवान को कोई पा नहीं सकता, इसीलिए मनुष्य सब कुछ देकर उसको पाना चाहता है। इसीलिए मुझे यही ध्यान आता है कि तुम मेरे लिए इतनी बड़ी अप्राप्य वस्तु न रहते तो सम्भवतः मैं तुमको इतना अधिक प्यार नहीं करती। लेकिन जाने दो उस बात को।"

क्षणभर मौन रहकर सहसा एक लम्बी साँस लेकर किरणमयी ने कहा, "एकलव्य के जैसे द्रोणजी गुरु थे, मेरी गुरु वैसी ही सुरबाला है लेकिन वह कैसे हो गयी, वही आज तुमको

मैं बताकर मैं छुट्टी दूँगी। वहीं जहाँ तुम खाने के लिए बैठे हो बबुआ, एक दिन रात के समय सतीश बबुआ भी उसी तरह खाने के लिए बैठे थे। किस प्रकार मुझे स्मरण नहीं है, एकाएक तुम लोगों की चर्चा छिड़ गयी। जानते ही हो, वह मेरे भाई हैं कि तुम लोगों की बाते चलने पर बिल्कुल मस्त हो जाते हैं। तब उनको सम्भालना कठिन ही है। मेरी अपनी भी तब प्रायः वही दशा थी। प्रेम की मदिरा उस समय तुरन्त ही पात्र में भरकर पीकर, तुम्हारे नशे में तब मेरे हाथ-पाँव अशक्त हो गये थे, दोनों आँखें लुढ़कती जा रही थीं, ऐसे ही समय में सतीश बबुआ ने कितने ही उदाहरण दे-देकर बताया कि तुम अपनी सुरबाला को कितना प्यार करते हो। कब तुमने उसको छोटी चेचक की बीमारी होने पर आहार-निद्रा छोड़ दी थी, कब उसने तुम्हारे सिर में ज़रा-सा दर्द उठने पर सारी रात हाथ में पंखा लेकर सिरहाने बैठकर बिता दी थी – इसी प्रकार के कितने दिनों और कितनी रातों की छोटी-मोटी कहानियाँ। उनकी तो वे सब सुनी हुई बातें थीं। सम्भवतः कोई झूठी थी, अथवा बढ़ा-चढ़ाकर कही गयी थी, लेकिन उससे हम दोनों की कोई हानि नहीं हुई। तुम दोनों पति-पत्नी में प्रेम की गंगा बहती जा रही है, हम दोनों भाई-बहिन देखते-देखते उसमें निमग्न हो गये। उसके बाद बड़ी रात को सतीश अपने डेरे पर चले गये, लेकिन मैं उसी रसोईघर में बैठी रही। कितनी देर तक, मैं नहीं जानती, बाहर निकलकर मैंने देखा कि सामने ही शुक्रतारा उगा हुआ है। मुझे एकाएक यह स्मरण आया कि सुरबाला का मुँह मानो ऐसा ही है, ऐसा मधुर है, ऐसा ही उज्ज्वल है। ठीक इसी प्रकार ही सम्भवतः उसके मुँह से आँखें हटायी नहीं जातीं। मन ही मन उसको मैंने कहा, "तुमको तो मैंने देखा नहीं है कि तुम कैसी हो, लेकिन जैसी भी क्यों न हो, आज से तुम मेरी गुरु हो गयी। तुम्हारे पास से ही मैंने पति-प्रेम का पाठ लिया। प्रेम का स्वाद मैं पा गयी हूँ – इसको अब मैं छोड़ न सकूँगी। प्रेम मुझे अवश्य ही चाहिए – मुझे प्रेम करना ही पड़ेगा तो दूसरे को प्यार करके क्यों इसको व्यर्थ करूँ? आज भी तो मेरे पति जीवित हैं, अभी तक तो मैं विधवा नहीं हुई हूँ – तो फिर क्यों मैं यह भूल करूँ? तुम्हारी ही भाँति आज से मैं अपने पति को ही प्यार करूँगी – और किसी को नहीं। यह कहने के साथ ही मेरा मन मानो अपनी सारी शक्ति को एकत्रित करके बोला – प्रेम वापस पाने की आशा तुमको नहीं है यह सच है, लेकिन तो भी तुमको ही प्यार करना पड़ेगा। लेकिन मेरा ऐसा ही फूटा भाग्य है बबूआ, कि वह बचे नहीं। मेरी साधना अंकुर में ही सूख गयी। इसीलिए उनकी मृत्यु के दिन मेरा जो मुख तुम लोगों ने देखा था, उसमें एक बिन्दु भी छलना नहीं थी।" यह कहते-कहते उसका कण्ठ स्वर करुण और गीला होता जा रहा था, उपेन्द्र ने इसे लक्ष्य किया, लेकिन उन्होंने कोई बात नहीं कही। किरणमयी स्वयं भी कुछ देर मौन रहकर बोली, "बबुआजी, जो लोग मूर्ख हैं, जो कट्टर हैं, वे समझेंगे नहीं, लेकिन तुम जानते हो, संसार में सभी वस्तुओं के ही प्राकृतिक नियम हैं। उस नियम की उपेक्षा न करके पति-पत्नी में से कोई भी अपने उस चिर मधुर सम्बन्ध पर पहुँच नहीं सकता। ब्याह का मंत्र कर्तव्यबुद्धि दे सकता है, भक्ति दे सकता है, सहमरण की प्रवृत्ति दे सकता है, लेकिन माधुर्य देने की शक्ति तो उसमें नहीं है। वह

शक्ति है केवल उस प्रकृति के हाथ में। उसके दिये हुए नियमों के पालन में जब समय था, सामर्थ्य था तब हम दोनों ही दोनों पैरों से उस नियम को कुचलते रहे, उसका कोई सम्मान हमने नहीं किया। आज असमय में, जबकि पति मृतप्राय हैं, प्रयोजन होने के कारण, उनके पास मैं जाऊँगी किस मार्ग से? लेकिन तो भी मैंने पतवार छोड़ नहीं दी थी बबुआजी। आशा थी एक मार्ग सम्भवतः तब तक भी खुला था। वह था उनकी सेवा का। मैंने सोचा था, अपनी पति-सेवा से ही सम्भवतः एक दिन उनको मैं पाऊँगी। लेकिन ऐसी ही अभागिनी हूँ मैं – उतना-सा भी अवसर नहीं मिला, वह इहलोक त्याग करके चले गये।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य से मुँह ऊपर उठाकर देखा, किरणमयी की दोनों आँखें आँसुओं से भर गयी हैं। उन्होंने कहा, "मैंने सुना है, आपने जैसी उनकी सेवा की है, वैसी सेवा कोई मनुष्य कर नहीं सकता। उस ओर पत्नी के कर्तव्य में आपकी कोई भी त्रुटि नहीं हुई है।"

किरणमयी ने कहा, "सम्भवतः वह नहीं हुई है, लेकिन मनुष्य नहीं कर सकता तो मैं ही कैसे कर सकी बबुआजी? यह बात नहीं है – वैसी सेवा सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं। लेकिन मैंने तो कर्तव्य कहकर कुछ भी नहीं किया है। दूसरे सभी मार्ग बन्द थे, इसीलिए मैंने अपनी सेवा के द्वारा उनको पाना चाहा था। इसीलिए उस ओर शक्ति के अनुसार मैंने कभी अवहेलना नहीं की। मैंने सोचा था, यदि एक बार उनको हृदय में पा जाऊँ, तो जितने दिन बचूँगी, जहाँ जिस तरह भी रहूँगी, शान्त भाव से जीवन बिता सकूँगी। लेकिन मेरी सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी। उनको पाना आरम्भ आवश्य कर दिया था, लेकिन पा न सकी। पहले से ही वही जो तुम मेरे हृदय को घेरे रहे, किसी प्रकार भी वहाँ से फिर तुमको मैं हटा न सकी – अपने पति को भी अपने हृदय में न पा सकी।"

उपेन्द्र उठ खड़ा हुआ। बोला, "काफ़ी रात हो गयी भाभी, मैं जाता हूँ।"

किरणमयी भी उठ खड़ी हुई। बोली, "चलो, तुमको द्वार तक पहुँचाकर सदर दरवाज़ा बन्द कर आऊँ। कल भेंट होगी न?"

"नहीं, कल मैं घर जाऊँगा।"

"और किसी दिन भेंट होगी?"

"हो जाना तो सम्भव है। नमस्कार भाभी।"

"नमस्कार बुबुआ! दिवाकर को यहाँ भेजोगे न?"

"भेजूँगा तो अवश्य ही भाभी। उसके माँ-बाप नहीं हैं, मैं ही इतने दिनों से उसकी देख-भाल करता रहा हूँ। आज से उसको मनुष्य बनाने का भार जब कि आपने लेना चाहा है, वह भार आप ही के हाथ मैंने सौंप दिया।"

किरणमयी के नेत्रों में आँसू उमड़ते आ रहे थे। उसने कहा, "इतनी बातें सुन लेने के बाद भी इतने बड़े विश्वास का भार मेरे ऊपर किस प्रकार डालोगे बबुआ? तुम दिवाकर को कितना प्यार करते हो यह तो मैं जानती हूँ।"

उपेन्द्र ने दरवाज़े के बाहर आकर कहा, "इसीलिए तो मैंने आपको दे दिया भाभी। मैं जिसको प्यार करता हूँ उसका अकल्याण आपसे कभी न होगा, यही तो मुझे विश्वास है।"

कहकर शीघ्रता से आगे बढ़ गये। किरणमयी ने अँधेरी गली में अपना मुँह बढ़ाकर ऊँचे स्वर से पूछा, "एक बात और तुम मुझे बता जाओ बबुआ, सतीश क्या कलकत्ता में नहीं हैं?"

उपेन्द्र ने दूर से ही उत्तर दिया, "नहीं।"

किरणमयी ने फिर पूछा, "वह जब मुझे बिना बताये चला गया है तो वह बड़े ही दुःख से गया है बबुआ। उसको क्या तुमने इस घर में आने को मना कर दिया है?"

उपेन्द्र ने कहा, "करने की इच्छा थी, लेकिन मैंने किया नहीं।"

किरणमयी ने पूछा, "यदि इच्छा ही थी, तो किया क्यों नहीं?"

उपेन्द्र चुप हो रहे।

उत्तर न पाकर किरणमयी ने कहा, "ऐसी इच्छा क्यों हुई थी, वह भी क्या मैं नहीं जान सकती?"

उपेन्द्र ने कहा, "मुझसे भूल हो सकती है। जो भी हो, वह कहाँ है इसका पता लगाकर आपके पास आने के लिए उसको पत्र लिख दूँगा। उससे ही पूछ लेना।" यह कहकर उपेन्द्र दूसरे प्रश्न की प्रतीक्षा किये बिना ही अँधेरी गली को पार कर गये।

अट्ठाईस

जो पक्की सड़क सीधी संथाल परगने के बीच से होती हुई वैद्यनाथ से दुमका को गयी है, उसी के निकट बग़ीचे में बैद्यनाथ से प्रायः दो कोस की दूरी पर एक बंगला था। कलकत्ता से चले आने पर सतीश पता लगाकर इस बंगले को किराये पर लेकर रह रहा था। अपने साथ समझौता कर लेने के लिए वह इस एकान्त स्थान में अज्ञातवास कर रहा था। इसीलिये जब उसने देख लिया कि, इसके आसपास गाँव नहीं है, सामने के मार्ग में लोगों का चलना-फिरना भी बहुत कम है तब प्रसन्न होकर उसने कहा, "यही मुझे चाहिए। ऐसी ही निर्जन नीरवता की मुझे आवश्यकता है।" कलकत्ता से वह जो दुःख और अपयश का बोझ लेकर आया था, एकान्त में बैठकर एक-एक करके इन्हीं सबका लेखा-जोखा कर लेना उसके मन को अभीष्ट था। सबसे पहले सावित्री को अत्यन्त घृणा करने की उसे आवश्यकता है, दूसरी बात पाथुरियाघाट की भाभी को भूल जाना चाहिए और तीसरी बात उपेन भैया के साथ सम्बन्ध विच्छेद कर ही देना पड़ेगा। इन सब कठिन कामों को इस वन में बैठकर पूरा कर डालन ही उसका उद्देश्य है। उसके साथ था बिहारी और देशी रसोइया ब्राह्मण। बिहारी का काम था बाबू की सेवा करके शेष समय में रसोइया के साथ वादानुवाद करके उसे मूर्ख और अनाड़ी सिद्ध करना और दूसरे का काम था दाल-भात पकाकर शेष समय में बिहारी के साथ झगड़ा करके यही सिद्ध करना कि सब्जी आदि का पैसा दोनों हाथों से चुरा रहा है, इसीलिए इन लोगों का समय तो एक तरह से बीतने ही लगा, लेकिन जो मालिक थे, वे प्रतिक्षण केवल संसार तत्वचिन्तन में ही मग्न रहते थे। संसार में कामिनीकंचन ही सभी अनर्थों की जड़ है, वैराग्य ही परम वस्तु है, पक्षियों की बोली ही चरम संगीत है,

वन-पर्वत ही सौन्दर्य का सच्चा आदर्श है, इस सत्य को पूर्ण रूप से हृदयंगम करना ही उनकी साधना की वस्तु है। इसलिए, बरामदे में एक टूटी आरामकुर्सी पर सारा दिन बैठकर सतीश पक्षियों का कलरव कान खड़े कर सुनने लगा। महुआ के वृक्ष पर हवा की सों-सों की आवाज़ किस राग-रागिनी से भरी हुई है इस पर विचार करने लगा, आकाश में भाँति-भाँति के बादलों को देखकर उच्छ्वसित होकर मन ही मन प्रशंसा करने लगा और दूर पहाड़ पर बाँसों की पत्तियों में आग लगाने की आवाज़ सारी रात जागता हुआ सुनने लगा।

इधर मांस-मछली खाना छोड़कर उसने सात्त्विक भोजन आरम्भ कर दिया और कहीं से पत्थर का एक टुकड़ा लाकर दिन को उसकी पूजा करने और रात को आरती उतारने लगा।

फिर भी, इस नवीन पद्धति की जीवन-यात्रा के साथ किसी समय भी उसका परिचय नहीं था। इससे पहले बराबर ही उसको पक्षियों के स्वर की अपेक्षा सितार की ध्वनि ही मधुर लगती रही है, हवा में राग-रागिनी का अस्तित्व है इसकी स्वप्न में भी उसने कल्पना नहीं की और आकाश में मँडराते हुए बादलों ने किसी दिन भी उसे विचलित नहीं किया। वास्तव में, प्रकृति देवी की इन सब शोभा-सम्पत्तियों की वे चाहे जितनी भी बहुमूल्य क्यों न हों, ख़बर लेने का अवकाश सतीश को कभी नहीं था! जहाँ गाना-बजाना होता था, जहाँ थियेटर-नाटक होते थे, जहाँ फुटबाल-क्रिकेट के खेल होते थे, वहाँ सतीश दिन बिताया करता था। कहाँ मारपीट करनी पड़ेगी, किस बैठक में स्टेज बनाना पड़ेगा, किसके घर का मुर्दा जलाना पड़ेगा, किसकी विपत्ति में दस रुपये जुटाकर देने पड़ेंगे – ये ही उसके कार्य थे।

पक्षियों के गान में माधुर्य है या नहीं, कोयल पंचम स्वर से पुकारती है या नहीं, आकाश-पट पर किसकी तूलिका रंग फैलाती हैं, नदी का जल कलकल शब्दों से किस वाणी की घोषणा करता है, कामिनी-कंचन संसार में किस परिणाम में अनर्थ की जड़ हैं, इन सब सूक्ष्म तत्त्वों ने कभी भी उसके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं किया था, और इनके लिए दुःख प्रकट करते भी उसको किसी ने नहीं देखा था। यह है सीधा-सादा मनुष्य, संसार का कारोबार वह सीधे ढंग से ही कर सकता है, जिसको वह प्यार करता है, उसको बिना विचार किये ही करता है, और उसके ऊपर कोई आघात पड़ने पर क्या करना चाहिए इसका निश्चय नहीं कर सकता। इस संसार में दो नर-नारियों को उसने सबसे अधिक प्यार किया था। एक है सावित्री और दूसरे हैं उसके उपेन भैया सावित्री उसको धोखा देकर दुराचारी विपिन के साथ कहीं चली गयी, और उपेन भैया कोई प्रश्न न करके ही एक अँधेरी रात में उसको छोड़कर चले गये। केवल खड़ा होने का एक स्थान था – वह था किरणमयी के पास। लेकिन उस द्वार को भी बन्द देखकर लौट आने का फिर उसे साहस नहीं हुआ। इसीलिए वह उस निर्जन स्थान में आकर आकाश-वायु पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों के साथ बरबस एक नया सम्पर्क स्थापित करके वैराग्य-साधना में लग गया था। लेकिन जीवन में सदा ही जो मनुष्य आमोद-प्रमोद, मित्र-स्वजनों को लेकर हल्ला-गुल्ला मचाकर ही दिन बिताता रहा, उसी की इस नवीन चेष्टा से बूढ़े बिहारी की आँखों में जब-तब आँसू आ जाते थे।

वह किसी दिन आकर कहता, "बाबू, दो भले मानस बंगाली सामने के मार्ग से सम्भवतः

त्रिकूट देखने जा रहे हैं।"

बात समाप्त न होती कि सतीश 'कहाँ है रे?' कहकर झटके से उछल उठने के बाद तुरन्त ही 'जाने दो' कहकर उदास मुख से अपनी कुर्सी पर बैठ जाता।

बिहारी कहता, "बुलाकर तनिक बातचीत.... ।"

सतीश कहता, "किसलिए?" उसके बाद एक सूखी हँसी हँसकर कहता, "मुझे अब उस सब बातचीत का प्रयोजन नहीं है – अच्छा भी नहीं लगता। तू जानता है बिहारी, वन के पक्षी आजकल मुझे गाना सुनाते हैं, पेड़-पौधे बातें करते हैं, हवा बहकर देश भर की कितनी ही कहानियाँ मुझे सुनाती है, मुझे अब फालतू लोगों के साथ हास-परिहास में समय नष्ट करने की इच्छा नहीं होती है। यदि मेरे यथार्थ मित्र कोई कहे जा सकते हैं तो ये ही लोग हैं। समझ गया न, बिहारी।" बिहारी निरुत्तर म्लान मुख से लौट जाता है। लेकिन बड़ी देर तक मालिक का यह करुण कण्ठ-स्वर उसके कानों में गूँजता रहता है।

बिहारी की एक आदत थी कि वह कोई वचन देकर उसे तोड़ नहीं सकता था। बहुत से विशेष भले आदमी जिस लोभ को सम्भाल नहीं पाते उसे सम्भालने की शक्ति इस छोटे बिहारी में थी। मन ही मन एक प्रकार से समझ सकता था कि उस रात को सावित्री किस प्रकार की धोखाधड़ी मचाकर चली गयी। वह सतीश की विशेष हितैषिणी है और सतीश को वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, इस विषय में बिहारी के मन में कुछ भी सन्देह नहीं था, फिर भी वह किसलिए, जो अपराध उसने किया नही है, उसे ही स्वीकार करके और जो पाप किसी दिन था ही नहीं, उसी का बोझ अपने हाथों से सिर पर रखकर अपने मालिक को इतनी व्यथा दे गयी, इस बात पर निरन्तर विचार करके भी वह कुछ समझ नहीं पाता था। लेकिन सुना जाता है कि सावित्री पर बिहारी की असीम भक्ति थी। उसको वह माँ कहकर पुकारता था और शापभ्रष्टा देवी समझता था, इसीलिए अपनी बुद्धि में कूल-किनारा न पाकर वह यह कहकर अपने मन को शान्त कर लेता था कि अन्त में कुछ भला ही होगा। और इस भलाई की आशा से ही वह उस सम्बन्ध में बिल्कुल ही चुप हो गया था। स्वामी का मुख देखकर सावित्री की वास्तविक दशा खोलकर कह देने के लिए कभी-कभी उसके हृदय में भारी आवेश उठ आता था, तब यह कहकर वह अपने आपको सम्भाल लेता था कि अपनी माँ की अपेक्षा तो बाबू को मैं अधिक प्यार नहीं करता, वह स्वयं ही जबकि यह दुःख दे गयी तो मैं क्यों बाधा पहुँचाऊँ! वह बिना समझे ही तो मुझे सिर की सौगन्ध दिलाकर मना नहीं कर गयी हैं।

इसी प्रकार इन लोगों के एकान्तवास की अवधि बीत रही थी। सम्भवतः कुछ समय और भी बीत जाता, लेकिन एकाएक एक दिन बाधा पड़ गयी।

जिसे काल वैशाखी कहते हैं, उस दिन वही समय था। समस्त दिन मन में यद्यपि दुर्दिन का कोई लक्षण नहीं था, लेकिन लगभग तीसरे पहर बीस मिनट के अन्दर ही आकाश में प्रबल तूफ़ान छा गया। पलभर में सतीश ने घोड़े के पैरों की आवाज़ सुनकर देखा, एक अच्छा घोड़ा पीठ पर साज लिये तूफ़ान के साथ उन्मत्त वेग से भागता चला जा रहा है।

सतीश ने पुकारा कहा, “बिहारी, वह किसका घोड़ा दौड़ता हुआ भाग गया, जानता है?”

बिहारी ने कमरे में बत्ती साफ़ करते-करते कहा, “किसी बाबू-वाबू का होगा।”

सतीश ने पूछा, “इस तरफ़ बाबू और कौन है रे यहाँ?”

बिहारी ने कहा, “इस तरफ़ भले ही न हों, देवघर से प्रायः बाबू-भैया लोग गाड़ी पर सवार होकर त्रिकूट देखने, तपोवन देखने के लिए आते हैं। उन्हीं लोगों में से किसी का होगा। तूफ़ान के डर से दौड़ रहा है”

“तब तो बड़ी मुश्किल है।” यह कहकर सतीश फिर अपनी आरामकुर्सी पर लेट गया। लेकिन उस बात को वह अपने मन से निकाल न सका। उसके मन में विचार उठने लगा, कुछ भी हो स्त्री के साथ रहने से विपत्ति तो साधारण नहीं हो सकती। इस स्थान में गाड़ी-पालकी तो दूर की बात है, एक आदमी की सहायता पाना भी कठिन है। इसके अतिरिक्त संध्या होने में तो देर नहीं है। सम्भवतः वर्षा होने लगेगी। सतीश बैठा न रह सका, बरामदे के कोने से लाठी उठाकर बाहर निकल पड़ा। मार्ग में आकर उसने देखा, पत्थरों का चूरा आँधी के वेग से छर्रों की भाँति शरीर में बिंध रहा है और सम्पूर्ण मार्ग में धूल और बालू से अँधेरा हो गया है। एकाएक उस अन्धकार से तूफ़ान की ओर से एक हो-हो की चिल्लाहट आने लगी। होली की छुट्टी पाकर हिन्दुस्तानी दरबानों का दल जिस प्रकार की चिल्लाहट-भरी आवाज़ करते हुए रास्ते में निकल पड़ता है – यह उसी प्राकर की आवाज़ थी। बात क्या है यह देखने के लिए सतीश ने उस धूलि में कुछ मार्ग तय करते ही देखा, मार्ग पर एक टमटम है, और उसी को घेरकर आठ-दस आदमी आनन्द-ध्वनि कर रहे हैं। किसी के सिर पर टोपी है, किसी के सिर पर पगड़ी है – सभी का पहनावा हिन्दुस्तानी है।

यह आनन्द किस बात का है, यह बात जानने के लिए सतीश ने और कई कदम आगे बढ़ते ही देखा, टमटम की एक बाँह पकड़कर एक स्त्री माथा झुकाये अत्यन्त सिमटी हुई खड़ी हुई है और उसी को लक्ष्य करके जमा हुए लोग जिस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं, उसे उच्चारण कर पाना किसी सभ्य आदमी के लिए सम्भव नहीं है। सतीश को पहले यह ध्यान आया कि ये लोग इस ओर कहीं स्त्री को लेकर आनन्द मनाने आये थे और अब घोड़ा भाग जाने से एक प्रकार की खुशी मना रहे हैं। एक बार उसने सोचा कि लौट जाये लेकिन मालूम नहीं वह क्यों आज किसी प्रकार की कौतूहल रोक न सका। ठीक उसी समय आश्चर्य के साथ उसकी निगाह पड़ गयी उस स्त्री के पहनावे पर। संध्या और बालू के अन्धकार में भी जान पड़ा कि, उसका पहनावा मानो बंगाली स्त्रियों की तरह का है। पैरों में लखनऊ के बने जूते नहीं हैं, बल्कि अंग्रेज स्त्रियाँ जो पहनती हैं वे ही हैं।

अकस्मत! उस स्त्री ने ऊँचे स्वर से पुकारकर कहा, “महाशय! मुझे बचाइये!”

“बचाइये!” एक ही क्षण में सतीश के वैराग्य का नशा हवा हो गया। कामिनी अत्यन्त घृणित है, इस तत्त्व को वह भूल गया – बाघ की तरह कूदकर वह एकदम ही उस औरत के निकट जा खड़ा हुआ। उसने कहा, “क्या हुआ है?”

उस स्त्री ने इतनी देर तक अकेले बहुत की कष्ट सहन किया था। इस बार मुँह ढककर बैठ गयी ओर रोने लगी।

सतीश ने व्यग्र होकर पूछा, “क्या बात है? क्या हो गया है?”

“ये लोग मेरा बहुत अपमान कर रहे हैं।”

“अपमान कर रहे हैं? कौन हैं ये लोग?”

“मैं नहीं जानती।”

“जानती नहीं हो?” सतीश एक ही साथ बहुत से प्रश्न कर बैठा, “तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? तुम्हारे घर के लोग कहाँ हैं, यह गाड़ी किसकी है?”

उस स्त्री ने आँखें पोंछकर रुँधे कण्ठ से कहा, “मेरा साईस घोड़ा पकड़ने के लिए साथ-साथ दौड़ता गया है – और कोई नहीं हैं। मैं त्रिकुट देखने के लिए आयी थी – प्रायः आती हूँ – वहाँ से ही ये लोग मुझे तंग करते आ रहे हैं।”

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, “अच्छा किया है। आप क्या मेम साहब हैं टमटम हाँककर इतनी दूर तक आयी हैं? आप क्या अंग्रेज की स्त्री हैं कि जहाँ भी इच्छा हो अकेले जाने पर कोई भय नहीं है? हमारे देशी आदमी असहाय देशी स्त्रियों को पाने से उसका अपमान करेंगे, उनके ऊपर अत्याचार करेंगे यही है इस देश का नियम, इसे क्या आपके माँ-बाप नहीं जानते?” यह कहकर हिन्दुस्तानियों में जो सबसे बड़ा था, उसके ऊपर अग्निदृष्टि डालकर उसने कहा, “तुम लोग यहाँ खड़े क्यों हो?”

उसने कहा, “हमारी खुशी।”

उन लोगों की आँखों की ओर देखने से ही समझ में आता था कि उन्होंने या तो भांग, गांजा अथवा दोनों ही वस्तुओं का सेवन किया है। सतीश ने हाथ से सीधा मार्ग दिखाकर संक्षेप में कहा, “जाओ।”

उत्तर में उस व्यक्ति ने अपने मुँह को अत्यन्त विकृत बनाकर कहा, “अरे, जाओ रे।”

प्रत्युत्तर में सतीश ने उसके गाल पर ऐसा एक थप्पड़ लगा दिया कि वह उस ‘रे’ शब्द को ही और ज़रा-सा खींच लेने का अवसर भर पा गया, उसके बाद बेहोश होकर मार्ग पर चक्कर खाकर गिर पड़ा और उसके पास निरीह की भाँति जो छोकड़ा खड़ा था, वह बिना अपराध के ही सतीश के बायें हाथ का चपेटा खाकर टमटम के साईस के बैठने के स्थान पर और उसके बाद पहिये के नीचे आँखें बन्द करके बैठ गया। बाकी जो कई आदमी थे, उनमें से कुछ तो नशे के गुण से हतबुद्धि की भाँति देखते खड़े रहे। सतीश ने सामने के आदमी को बुलाकर कहा, “अब तुम जाओ।”

प्रत्युत्तर में वह बिजली की भाँति तेजी से सबके पीछे जा खड़ा हुआ।

सतीश ने उस स्त्री से कहा, “उठिये...।”

वह चुपचाप उठ खड़ी हुई। सतीश ने कहा, “पानी आने में देर नहीं है – आइये मेरे साथ।”

स्त्री ने डरते-डरते कहा, “मैं क्या शहर तक पैदल चल सकूँगी?”

सतीश ने कहा, "शहर में नहीं, मेरे घर पर। उसी बग़ीचे में। पानी आ रहा है, अब खड़ी रहकर सोचने से काम न चलेगा। न चलेंगी तो यहीं खड़ी रहकर भीगिये, मैं जा रहा हूँ।"

स्त्री ने कहा, "चलिये। आपके साथ चलने में हर्ज क्या है?"

बूँद-बूँद पानी गिरना आरम्भ हो गया और आँधी का वेग शिथिल होने पर भी रुका नहीं था। दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे, बग़ीचे के फाटक के सामने एकाएक सतीश बोला, "लेकिन घर पर कोई स्त्री नहीं है – मैं अकेला रहता हूँ।"

स्त्री ने पूछा, "तो फिर आपकी रसोई पकाने, घर-गृहस्थी का काम कौन करता है? स्वयं करते हैं?"

"नहीं, नौकर है। लेकिन वह भी कोई स्त्री नहीं है।"

"भले ही न हो। लेकिन आप खड़े क्यों हो गये? चलते-चलते बताइये न।"

सतीश ने कुण्ठित होकर कहा, "यही कहता हूँ कि मेरे यहाँ कोई स्त्री नहीं है। इस रात्रि को अन्दर जाने से पहले आपको बता देना उचित है।"

स्त्री ने कहा, "यदि उचित है तो वहीं क्यों नहीं बता दिया। लेकिन मैं अब खड़ी नहीं रह सकती – मेरे हाथ-पैर काँप रहे हैं। इसके अतिरिक्त मुझे बड़ी प्यास लगी है।"

"आइये, आइये!" कहकर सतीश घबड़ाकर अँधेरे बग़ीचे में मार्ग दिखाता हुआ चलने लगा। इन सब भद्दी घटनाओं के बाद यह कैसे थक गयी है, यह मन ही मन अनुभव करके सतीश लज्जित हो उठा। थोड़ी देर के बाद ही उसने धीरे-धीरे कहा, "आपकी आवाज़ मैंने कहीं सुनी है ऐसा ज्ञात हो रहा है।" स्त्री ने इसका उत्तर नहीं दिया। लेकिन वह समझ गयी कि अन्धकार में सतीश उसका मुँह नहीं देख सका। बरामदे में जाकर सतीश की टूटी आरामकुर्सी पर बैठकर उसने कहा, "साथ में बिहारी है न?"

यह कहकर उसने ऊँचे स्वर से पुकारा, "बिहारी, मेरे लिए एक गिलास पानी तो लाओ।"

बिहारी उधर के बरामदे में था। पुकार सुनकर पानी लेकर उपस्थित हुआ। बरामदे की दीवाल पर टिमटिमाती हुई एक मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी, उसी क्षीण प्रकाश में उसने उस स्त्री को देखते ही पहिचानकर आश्चर्य के साथ कहा, "बहिनजी, आप हैं!"

"वह तो लम्बी कहानी है।" कहकर स्वयं उठकर बिहारी के हाथ से पानी का गिलास लेकर सारा का सारा एक साँस में पीकर बिहारी के हाथ में लौटाकर उसने कहा, "भैया को ख़बर देनी पड़ेगी बिहारी। पता बता देने से इस रात को तुम मकान का पता लगा सकोगे न?"

बिहारी ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं बहिनजी, मैं तो शहर का कुछ भी नहीं जानता। इसके अतिरिक्त बूढ़ा आदमी ठहरा, इस आँधी-पानी में अँधेरे मार्ग में क्या चल सकूँगा?"

"तब क्या होगा बिहारी? यदि घोड़ा जाकर अस्तबल में घुस गया होगा, तो भैया सोच में पड़कर व्याकुल हो जायेंगे। किसी भी उपाय से उनको ख़बर देनी होगी कि कोई भय

नहीं है, मैं निरापद हूँ।” बिहारी ने सोचकर कहा, “हमारा रसोइया ब्राह्मण इसी देश का आदमी है, राह-घाट सब पहचानता है। ज्योतिष बाबू का डेरा बताने से वह अवश्य ही जा सकेगा।”

सतीश यह जान गया कि वह स्त्री कौन है। उसने कहा, “भैया को एक पत्र लिख दीजिये।”

उस स्त्री ने कहा, “वह तो लिखना पड़ेगा ही।”

सतीश बोला, “इस प्रकार लिख दीजियेगा कि बहिन को मेम साहब बना देने का फल आज क्या हुआ। साहब आदमी सुन लेने पर सम्भवतः प्रसन्न ही होंगे।”

व्यंग्य सुनकर सरोजिनी क्रुद्ध हो गयी। उसका आज का आचरण दुर्भाग्यवश अत्यन्त भद्दा हो गया था, यह सच है। इसके लिए उसे स्वयं भी कम पछतावा नहीं हुआ, लेकिन दूसरा कोई आदमी इसीलिए बार-बार मेमसाहब के साथ तुलना करके व्यंग्य बोलेगा तो वह सहा नहीं जा सकता। उसने कड़े स्वर से उत्तर दिया, “भैया को आप ही लिख दीजिये, उनकी बहिन को कैसी विपत्ति से आज आपने बचा लिया है!”

उसकी खीझ का कारण सतीश समझ गया। लेकिन स्वयं वह यह सब साहबी चाल सह नहीं सकता था। उसने कहा, “लिख देना ही उचित है। इस पर भी यदि आप लोगों के समाज को होश आये।”

सरोजिनी ने कहा, “हमारे समाज के प्रति आपको बड़ी घृणा है न? आप की धारणा यह है कि हम लोग मनुष्य नहीं हैं?”

– “मेरी धारणा जो भी हो। आप लोगों की खुद की धारणा क्या है? कि आप लोगों के अलावा बंगाल में मनुष्य ही नहीं होते, यही न?”

– “हम लोगों में जिनकी यह धारणा है, कम-से-कम मैं उन्हें इसके लिये दोष नहीं देती।”

– “मालूम है। इसीलिये आज आपको और अधिक सज़ा मिलनी चाहिये थी। वहाँ आपको पहचान जाता तो चुपचाप वापस चला आता, मुँह से एक शब्द भी नहीं निकालता।”

– “क्या सजा मिलती, ज़रा मैं भी तो सुनूँ? अपमान और अत्याचार – यही न?”

– “हाँ यही,” सतीश ने ज़ोर से कहा।

– “अच्छा अब समझ में आया कि असहाय औरत का अपमान करना ही देशी लोगों का चरित्र होने की बात आपने क्यों कही थी। आपको चाहिये था कि बाकी का अपमान घर लाकर खुद करते। अब पहचान निकल आने के कारण बाधा पड़ जाने का गुस्सा है आपको।”

सरोजिनी की बात में कटुता देखकर क्रोधित होते हुए भी सतीश को हँसी आ गयी। बोला, ‘हाँ, बिल्कुल यही बात है। आपका अपमान न कर पाने के कारण ही यह गुस्सा है। हमारे यहाँ कृतज्ञता नाम का एक शब्द है, लेकिन लगता है कि आप साहब-मेमसाहबों के अभिधान में वह शब्द ही नहीं है।”

बादलों में छिपी बिजली की तरह सरोजिनी के होंठों पर हँसी दौड़ गयी; तब भी क्रोध प्रकट करते हुए बोली, "हाँ, नहीं है। ये साहब-मेमसाहब जितने अकृतज्ञ होते हैं, उतने ही पाखण्डी। आप जब तक उनके दल में शामिल नहीं होंगे उनके परित्राण का कोई उपाय ही नहीं है। कहिये शामिल होंगे उनके दल में।"

प्रत्युत्तर में सतीश भी हँसी को दबाकर कुछ कहने जा रहा था। ऐसे ही समय बिहारी ने हनुमान पाण्डेजी को लाकर उपस्थित किया। सरोजिनी ने हैंड बेग खोलकर पाँच रुपये निकालकर कुर्सी की बाँह पर रखकर कहा, "यह है तुम्हारा इनाम पाण्डेजी, यदि इसी शहर में जाकर यह चिट्ठी दे आ सको।" यह कहकर उसने पूरा पता बता दिया।

पाण्डेजी ने अपनी एक महीने की आमदनी पर ललचाई दृष्टि डालकर एक क्षण में ही राजी होकर हाथ बढ़ा दिया। उसके पसारे हुए हाथ में सरोजिनी उन थोड़े से रुपयों को रखकर चिट्ठी लिखने के लिए कमरे के अन्दर चली गयी। लिखने की मेज़ सामने ही थी। थोड़ी ही देर के बाद उसने पत्र लाकर पाण्डेजी के हाथ में दे दिया। पाण्डेजी सावधानी से अपनी मिरजई में रखकर बायें हाथ में छोटी लालटेन और हाथ में खूब लम्बी और मोटी बाँस की लाठी लेकर बाहर की मूसलाधार वर्षा में ही पलभर में अन्तर्धान हो गये।

बिहारी ने कुण्ठित भाव से कहा, "बाबू, महाराज कब लौटेगा इसका ठिकाना नहीं – रसोई का क्या होगा?"

सतीश सरोजिनी के मुँह की ओर एक बार देखकर, बात को दबा रखने के लिए लापरवाही के साथ बोला, "अरे, छोड़ो भी! वह पीछे हो जायेगी।"

बिहारी की घबराहट उससे कुछ भी कम नहीं हुई। उसने कहा, "किस प्रकार हो जायेगी, मैं तो समझ नहीं पाता बाबू!"

सतीश ने रुष्ट होकर कहा, "तुझे समझना न पड़ेगा बिहारी, तू जा। यह सब मैं ठीक कर लूँगा। इसके अतिरिक्त आज मुझे भूख भी नहीं है।"

बिहारी एक कदम भी नहीं डिगा। क्योंकि इस बात पर उसने तनिक भी विश्वास नहीं किया। क्योंकि पहले तो साधारण लोगों की अपेक्षा मालिक की भूख की मात्रा अधिक है, इसके अतिरिक्त इतने दिनों की नौकरी में उसने उन में इस वस्तु की कमी एक दिन भी नहीं देखी। संकोच से उसने कहा, "यह क्या हो सकता है बाबू!"

सतीश ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "यही तो तेरा दोष है बिहारी, तू सभी बातों में तर्क करता है। कह रहा हूँ कि यह सब मैं ठीक कर लूँगा, जाने के लिए कह रहा हूँ, जाता नहीं, मुँह के आगे खड़ा रहकर बराबरी का जवाब दे रहा है।"

बिहारी क्षुब्ध चित्त से चला जा रहा था। सरोजिनी ने पुकारकर वापस बुलाकर कहा, "आज मेरे ही कारण तुम लोगों पर इतनी विपत्ति आ पड़ी है बिहारी! रसोई की तैयारी क्या कुछ भी नहीं हुई है?"

बिहारी ने कहा, "हुई क्यों नहीं है बहिनजी, किन्तु रसोई बनायेगा कौन? महाराज के लौट आने में कितनी देर होगी इसको तो कोई ठिकाना नहीं हैं।" यह कहकर वह अप्रसन्न

मुँह से जाने लगा।

सरोजिनी ने कहा, "मेम साहब या जो भी हूँ, तो भी आपके साथ एक ही जाति की तो हूँ। उसके हाथ का तैयार खाना खाने से क्या किसी की जाति जायेगी?"

प्रश्न सुनकर सतीश हँस पड़ा। बोला "जाति जायेगी या नहीं, मैं कह नहीं सकता, किन्तु मेम साहब के हाथों की बनी रसोई गले से नीचे उतरेगी या नहीं, यही असली बात है।"

"ऐसी बात है! मेम साहब के हाथ की बनी रसोई खाने से वे भूल न सकेंगे।" यह कहकर सरोजिनी हँसी और इत्र की गंध से समूचे कमरे को मानो तरंगित करके तेज कदम से उठकर दूसरे कमरे में चली गयी। पाँच-छः मिनट के बाद जब वह बाहर आयी तब उसकी ओर देखकर सतीश क्षणभर के लिए मुग्ध हो गया।

जूता-मोजा के बदले दोनों पैर खाली थे। रेशम की कुर्ती साड़ी के बदले केवल कमीज पर एक सादी लाल पाड़ की धोती पहिने थी। देखकर सतीश की दोनों आँखें शीतल हो गयी। उच्छ्वसित कण्ठ से बोला, "क्या ही सुन्दर आप दिखायी पड़ रही हैं! मानो लक्ष्मी देवी ही हैं।"

सुनकर सरोजिनी की शिराओं में आनन्दकी बाढ़ आ गयी लेकिन अत्यन्त लज्जा से सिर झुकाकर उसने कहा, "जाइये, परिहास करने से पकाऊँगी नहीं, कहे देती हूँ, तब उपवास करना पड़ेगा।"

लेकिन इस लज्जा को उसने उसी क्षण दबा दिया। क्योंकि वह जानती थी, लज्जा को प्रश्रय देने से वह उत्कट हो उठती है। इसीलिए सिर ऊपर उठाकर उसने हँसते हुए कहा, "प्रशंसा बाद में होगी। अब रसोईघर किस मुहल्ले में है, दिखा देने को कह दीजिये।" कहकर वह स्वयं ही आगे बढ़ गयी।

उनतीस

भोजन करने के बाद बरामदे में दो कुर्सियों पर दोनों ही आमने-सामने बैठे थे।

सरोजिनी ने कहा, "एक बात हम लोगों में से किसी के ध्यान में नहीं आयी कि भैया के मकान का पता यदि महाराज ढूँढने पर न लगा सका तो स्वयं ही एक गाड़ी बुला लावेगा। लेकिन यह यदि न हो सका तो क्या होगा सतीश बाबू?"

सतीश ने कहा, "यह बात ध्यान में आने पर भी विशेष कोई लाभ न होता। इतनी रात को इतनी दूर कोई गाड़ी वाला भी सम्भवतः आना नहीं चाहता। या तो आपको यहीं रात्रिवास करना पड़ेगा, या फिर पैदल चलना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तीसरा उपाय नहीं है।"

"मैं पैदल चल सकती हूँ, लेकिन आपके अतिरिक्त किसी अन्य के साथ नहीं।"

"इसका अर्थ? मेरे साथ जाने से ही क्या विपत्ति की सम्भावना नहीं है?"

"क्यों नहीं? लेकिन उसकी पूरी जिम्मेदारी आपके ऊपर है। जवाबदेही आपको करनी

पड़ेगी, मुझे नहीं।"

सतीश ने कहा, "मुझे क्यों जवाबदेही करनी पड़ेगी? मेरा अपराध?"

"और किसी के सामने आप भले ही न करें, अपने सामने तो करनी ही पड़ेगी।" यह कहकर एकाएक सरोजिनी चुप हो गयी।

सतीश ने फिर उसका प्रतिवाद नहीं किया। लेकिन उसने स्पष्ट अनुभव किया, दोनों की क्षणिक नीरवता के बीच से लज्जा की हवा का एक झोंका बह गया।

"कोई आ रहा है न?" यह कहकर सरोजिनी कुर्सी छोड़कर उठ पड़ी और कुछ देर तक बरामदे की रेलिंग पर टिककर अँधेरे बग़ीचे की ओर देखती हुई खड़ी रही।

थोड़ी ही देर के बाद जब 'कोई नहीं है' कहकर वह अपने स्थान पर लौट आयी और अपने कपड़े-लत्ते एक बार फिर अच्छी तरह सम्भालकर बैठ गयी, तब सतीश कोई बात ही न कह सका।

इसके बाद दोनों ही चुप होकर बैठे रहे। तब तक बाहर तूफ़ान बन्द हो जाने पर भी वर्षा रुकी नहीं थी। एकान्त स्थान में स्वल्प प्रकाशयुक्त बरामदे में ये दोनों तरुणावस्था के नर-नारी एक-दूसरे के आमने-सामने जब नीरव हो बैठे रहे, तब एक और अन्धे देवता अन्तरिक्ष में अवश्य ही मुँह दबाकर हँसे होंगे। यह हँसी काले मेघों के भीतर छिपा खेल खेलता रह गया।

बाह्य प्रकृति आकाश-वातास, प्रकाश-अन्धकार के माध्यम से कैसे मनुष्य के मनोभावों व चित्तवृत्ति को आकर्षिक करती है, इसकी ख़बर सतीश को कुछ दिन पहले पता लगी थी। जिस दिन बिहारी के मुँह से सावित्री के विपिन के साथ चले जाने की बात सुनकर, अपने भविष्य को दुःख के सागर में डूबा हुआ समझकर बिल्कुल ज्ञानशून्य हो गया था और अकेला निर्जन स्थान में जाकर पड़ गया था, उस दिन ऐसे ही काले आकाश ने अपने शीतल हस्त से उसके हृदय की ज्वाला शान्त करके सावित्री को क्षमा करना सिखाया था। और आज की यह उद्दाम चंचल प्रकृति अपनी सजीवता के स्पर्श से उसके निराशा पीड़ित चित्त को दुर्निवार वेग से किसी दूसरे ही रास्ते की ओर ठेल रही थी।

सरोजिन ने एकाएक प्रश्न किया, "आपके इस वनवास का अर्थ क्या है?"

सतीश बोला, "अर्थ कुछ अवश्य ही है।"

"वह तो है ही। लेकिन किसी को भी न बताकर क्यों भाग आये?"

"लेकिन मैं भाग आया हूँ, यह समाचार किसने दिया?"

सरोजिनी ने ज़रा हँसकर कहा, "समाचार का मैंने स्वयं ही आविष्कार किया है। आप जिस दिन सबेरे चले आये उस दिन मैं स्वयं आपके डेरे पर जा पहुँची थी।"

सतीश ने आश्चर्य से कहा, "समझ गया। उपेन भैया सम्भवतः मुझ ढूँढने के लिए गये थे और आप उनके साथ थीं। वे जायेंगे यह मैं जानता था। लेकिन मुझे अनुपस्थित पाकर उन्होंने क्या कहा?"

सरोजिनी ने कहा, "उन्होंने अवश्य ही कुछ कहा था, लेकिन मैंने सुना नहीं। क्योंकि

वे स्वयं वहाँ नहीं गये, मेरे हाथ से उन्होंने चिट्ठी भिजवा दी थी।"

सतीश ने पूछा, "उसके बाद?"

सरोजिनी ने कहा, "मैंने जाने पर सुना, आप सबेरे की गाड़ी से चले गये हैं। मन में न जाने क्या विचार आया कि ब्राह्मण महाराज से कहकर दरवाज़ा खुलवाकर सारे डेरे को घूम-घूमकर मैंने देखा। बाहर के बरामदे में एक साड़ी सूख रही थी, पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह कपड़ा है माईजी का। वे बीमार हैं, आप उनको लेकर पश्चिम को चले गये हैं। अच्छा, वह कौन हैं? कहाँ, इस डेरे में तो उनको मैं देख नहीं रही हूँ।"

सतीश का चेहरा पीला पड़ गया। कुछ देर तक मौन रहकर कहा, "ब्राह्मण महाराज ने कहा कि मैं उनको साथ लेकर पश्चिम को चला गया हूँ? बदमाश! झूठा! उपेन भैया ने उस पर विश्वास कर लिया?"

सतीश के मुँह का भाव और कण्ठ-स्वर सुनकर सरोजिनी आश्चर्य में पड़ गयी। उसने कहा, "उपेन बाबू तो थे नहीं। और विश्वास करने में भी दोष क्या है? यह माईजी आपकी कौन हैं सतीश बाबू?"

सतीश ने उपेक्षा से कहा, "मेरी कौन! कोई भी नहीं, हमारे पुराने डेरे की नौकरानी। शैतान! बदमाश औरत! बूढ़ी उम्र में बीमारी से मर रही है, इसीलिए कुछ भीख माँगने आयी थी। मैं उसको लेकर पश्चिम को चला गया हूँ, हरामजादा उल्लू मेरे सामने कहे तो उसका. ..।"

सरोजिनी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। थोड़ी देर तक चुपचाप देखती रहकर उसने कहा, "दासी! लेकिन, इस बात से आप इतना उत्तेजित क्यों हो रहे हैं?"

सतीश ने कहा, "अनुचित निन्दा करने से कौन उत्तेजित नहीं होगा बताइये?"

"वह उस रात को बेहोश हो गयी थीं!"

सतीश ने ठीक उसी तरह उत्तेजित स्वर से कहा, "हाँ, हो गयी थी, लेकिन इससे भी क्या हुआ? उसका बेहोश हो जाना क्या मेरा अपराध है? और आप भी उसके बारे में इतने सम्मान के साथ बातें क्यों कह रही हैं? घर की दासियों और नौकर-चाकरों से आप लोग 'आप' 'जैसी आज्ञा' कहकर बातें करती हैं?"

सरोजिनी ने इसका उत्तर नहीं दिया, वह मौन होकर बैठी रही। इतनी देर तक उसके हृदय में जो आनन्द का चाँद उग गया था, उसको न जाने कहाँ से काले बादलों ने आकर घेर लिया। एक बार उसके मन में यह प्रश्न उठा, क्यों उस रात को उपेन्द्र सपत्नीक उसके डेरे पर आकर तुरन्त ही चले गये थे। लेकिन उसने प्रश्न नहीं किया। मन ही मन वह एक प्रकार से समझ गयी थी – इसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें उपेन्द्र स्वयं ही प्रकट नहीं कर सके हैं और सतीश भी न कर सकेगा।

लेकिन यह क्षुब्ध नीरवता दोनों को ही खलने लगी। और चुपचाप न रह सकने के कारण सरोजिनी ने धीरे-धीरे पूछा, "एक बात मैं आपसे पूछ सकती हूँ?"

सतीश ने ज़रा अभिमान के स्वर से कहा, "कौन बात?"

"आपने इतने दिन हम लोगों के इतने निकट रहकर भी कभी दर्शन नहीं दिया, क्यों?"

सतीश के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं था। उसने कहा, "तरह-तरह के कारणों से समय नहीं मिला।"

"कारण क्या है? लिखना-पढ़ना?"

"नहीं, लिखना-पढ़ना तो नाम मात्र का चलता है। उससे मुझे किसी दिन कहीं जाने में रुकावट नहीं होती।"

– "तो फिर?"

हँसने की कोशिश करते हुए सतीश बोला, "देखिये, आपको सच बात बता देता हूँ। आप लोगों का ख़्याल न आया हो, ऐसी बात नहीं है, पर हम लोग जिस समाज में रहे हैं, जैसी शिक्षा-दीक्षा हुई है, उससे आप लोगो के बीच जाते हुए जाने कैसी हिचक सी होती है। शायद इसीलिये नहीं आ पाया।"

सरोजिनी ने कहा, "शायद! अच्छा, आप लोगों के समाज व शिक्षा के बारे में जान सकती हूँ कुछ? उपेन बाबू वगैरह के समाज के साथ भी शायद कोई विशेष समानता नहीं हैं, क्योंकि उन्हें तो हमारे साथ मिलने-जुलने में कोई हिचक नहीं होती।"

सतीश के डेरे पर उस अज्ञात स्त्री की चर्चा छिड़ जाने के बाद से ही उसके हृदय में एक ज्वाला धधक रही थी, इन अनाप-शनाप बातों से भरी कैफियत से उस ईर्ष्या की दाह और भी बढ़ गयी। सतीश को छिपे तौर से अगर प्यार न करती तो यह सब छिपाना-चुराना सम्भवतः उसके लिए छिपा ही रह जाता, किन्तु प्रेम की अन्तर्दृष्टि को इतनी सरलता से प्रसारित न किया जा सका। ठीक बात क्या है, इसकी जानकारी न होने पर भी उसका हृदय किस तरह मानो असल बात समझ गया। सतीश ने व्यथा-भरे आश्चर्य के साथ सरोजिनी की ओर देखा। उसके कण्ठ की आवाज़ में झगड़े का जो दबा स्वर था, उसने सतीश के कानों में तीक्ष्ण भाव से पहुँचकर सावित्री की याद दिला दी। किन्तु इसके बीच ही सरोजिनी भी उसको पर कर सकती है, ऐसी सम्भावना सतीश के मन में सपने में भी उदित नहीं हुई। इसीलिए उसकी इस उत्तप्त प्रश्नोत्तर माला का वास्तविक कारण वह स्पष्ट रूप से देख न सका। इसको उच्च शिक्षा प्राप्त महिला का कोरा-स्पर्धा भरा अभिमान कल्पना करके वह स्वयं भी मन ही मन जल उठा और उसने उत्तर भी उसी तरह दिया। बोला, "उपेन भैया के समाज व शिक्षा से तो आप भलीभाँति परिचित हैं। फिर भी वह बेझिझक आप लोगों के साथ मिला-जुल लेते हैं, लेकिन अगर कोई और ऐसा न कर सके तो उसे कैफ़ियत देनी होगी, इसका तो कोई मतलब नहीं है। जो भी हो, मुझे माफ़ करिये। इस बहस में मुझे कोई सार्थकता दिखायी नहीं देती।"

स्तब्ध हो गयी सरोजिनी। सतीश भी चुप हो गया। इतने में एक गाड़ी आकर फाटक के सामने खड़ी हो गयी, और ज्योतिष बाबू ऊँचे स्वर से सतीश का नाम लेकर पुकारते-पुकारते बत्ती और आदमियों के साथ बग़ीचे में आ गये।

असंख्य धन्यवाद, निमंत्रण-आमंत्रण आदि यथाविधि सम्पन्न करके ज्योतिष जब अपनी

बहिन को साथ लेकर प्रस्थान करने को तैयार हो गये तब सतीश ने सरोजिनी से पूछा, “एक बात आपसे पूछना बाकी रह गया। हारान बाबू नामक एक उपेन बाबू के मित्र थे, उनके क्या हाल हैं, आप बता सकती है?”

ज्योतिष ने कुछ आश्चर्य के साथ उसका उत्तर दिया, “वाह! आपने सुना नहीं? वह तो मर गये।”

यह समाचार सुनकर सतीश थोड़ी देर तक स्तब्ध खड़ा रहा, फिर बोला, “उनकी माँ, उनकी स्त्री, वे लोग कहाँ हैं, आप जानते हैं?”

सरोजिनी ने इसको उत्तर दिया। उसने कहा, “वे लोग तो अपने मकान में ही हैं। निश्चय हुआ है कि दिवाकर बाबू उनके मकान में रहकर कॉलेज में पढ़ेंगे – वे उनका भार लेंगी।”

ज्योतिष ने एकाएक अपनी बहिन से पूछा, “हारान बाबू की स्त्री हम लोगों के घर एक दिन आयी थीं न?”

सरोजिनी ने कहा, “हाँ बड़ी देर तक वह रही थीं, बहुत-सी बातें की थीं।”

उसके अपने बारे में क्या बातें हुई थीं, पति के शोक से भाभी की क्या हालत हुई थी, आदि जानने के लिए सतीश ने सरोजिनी के मुँह की ओर एक उत्सुक दृष्टि डाली। क्योंकि उसके विषय में कड़ी आलोचना हुई थी, इसमें उसे सन्देह नहीं था। लेकिन उस अस्पष्ट प्रकाश में या तो सरोजिनी उसके चेहरे का भाव न समझ सकी, अथवा समझकर भी, सतीश का कौतूहल दूर करने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। उसने भैया को आगे चलने के लिए हलका धक्का लगाकर मृदु स्वर से कहा, “अब देर मत करो भैया, चलो....।”

“हाँ बहिन, चल।” कहकर सतीश को नमस्कार करके वह बोले, “फिर एक बार आपको असंख्य धन्यवाद सतीश बाबू! कल-परसों एक दिन ग़रीब के यहाँ भी चरण-धूलि पड़ जाती तो अच्छा होता।”

सतीश ने प्रतिनमस्कार करके अस्पष्ट स्वर से जो कुछ कहा, वह समझ में नहीं आया। सरोजिनी लौटकर खड़ी हो गयी और सतीश को एक छोटा-सा नमस्कार करके चली गयी।

वहीं खड़े-खड़े सतीश की आँखें भर आयीं। क्यों वह स्वयं कारण समझ नहीं सका। जाने क्यों मन बार-बार कहने लगा कि उसकी सावित्री, उसकी भाभी, उसके उपीन, सब ने उसे एक साथ छोड़ दिया है। इस निर्जन कुटिया को छोड़कर उसका अन्यत्र कहीं स्थान नहीं है।

तीस

दो महीने पूर्व हारान की मृत्यु के समय केवल दो-चार दिनों के ही लिए कलकत्ता में रहकर दिवाकर वापस चले जाने को बाध्य हो गया, इस बार यह निश्चय हो जाने से कि वह किरणमयी के संरक्षण में रहकर कलकत्ता के कॉलेज में बी.ए. पढ़ेगा, वह अपने नये खरीदे हुए स्टील के बक्स में किताबें, काग़ज़ और कपड़े आदि भरकर एक दिन शाम को

हारान बाबू के पाथुरियाघाट के मकान पर जा पहुँचा।

किरणमयी ने उसको अल्पवयस्क छोटे भाई की तरह स्नेह के साथ ग्रहण किया।

मामा के घर में सुरबाला के अतिरिक्त दिवाकर की देखभाल करने वाला कोई नहीं था। फिर उस देखभाल में भी महेश्वरी की कड़ी दृष्टि, शनि की दृष्टि की भाँति अधिकांश समय में ही बहुत-सा रस सुखा डालती थी। लेकिन यहाँ इन सब उपद्रवों में से एक भी नहीं था।

उपेक्षा से लगाया हुआ गमले का पौधा संयोगवश पृथ्वी की गोद में आश्रय पाकर काफ़ी रस मिलने से जिस प्रकार उसकी सूखी पतली जड़ें मिट्टी के भीतर सहस्रों भुजाएँ बढ़ाने लगती हैं, किरणमयी के आश्रय में भी दिवाकर की ठीक वही दशा हुई।

महानगरी के विस्तृत और विचित्र वातावरण में पड़कर देखते-देखते उसकी संकुचित आशा तथा अन्धकारपूर्ण भविष्य फड़क उठा। अपने को उसने बड़े रूप में अनुभव किया। बी.ए. फेल करके विद्याभ्यास का उसका पुराना बन्धन छिन्न हो गया है फिर भी नये बन्धन में अभी देर है, इस मधुर अवकाश काल में वह निरन्तर सर्वत्र घूम-घूमकर ज्ञान संग्रह करने लगा।

थियेटर देखकर कल्पना लोक में पहुँच गया, जू देखा तो दाँतों तले उंगली दबा ली, म्यूजियम देखकर स्तम्भित हो गया, शिवपुर का कम्पनी बाग़ देखकर एक निबन्ध लिख डाला, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की ऊँचाई को सिर उठाकर मुँह बाये देखता ही रह गया, और फिर अन्त में एक दिन गाड़ी के नीचे आकर पैर में चोट लेकर लौट गया।

चोट बहुत ज़्यादा नहीं थी। किरणमयी ने जल्दी से चूना-हल्दी गरम करके लेप लगाते हुए मुस्कुराकर पूछा, "किसके नीचे आ गये छोटे देवर? घोड़गाड़ी थी या बैलगाड़ी?"

गुस्से से दिवाकर ने कहा, "घोड़ागाड़ी।"

– "चलो बच गये। नहीं तो लँगड़े पैर थाने में जुर्माना भरने जाना पड़ता।"

लज्जित स्वर में दिवाकर ने कहा, "कुछ नहीं है, कब सबेरे तक ठीक हो जायेगी।"

किरणमयी बोली, "वो तो हो ही जायेगी। पर ज़्यादा दूर मत जाना। सुना है बच्चे पकड़ने वालों का दल आया हुआ है यहाँ।"

इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। अघोरमयी विभिन्न तीर्थस्थानों में घूमकर एक दिन घर लौट आयी। इसके पहले दो-एक दिन जो उन्होंने दिवाकर को देखा था तब पुत्र-शोक से मन इतना दुःखी था कि उसके चेहरे की ओर नजर ही नहीं पड़ी। आज इस दाढ़ी-मूँछ विहीन सुन्दर कान्तिवाले मनोहर लड़के की ओर देखते ही उनका मातृ-हृदय स्नेह से पिघल गया। उन्होंने कहा, "दिबू मैं रिश्ते में तुम्हारी मौसी लगती हूँ मुझे मौसी कहकर पुकारना बेटा।"

इसके भी माँ-बाप जीवित नहीं हैं, सुनकर उनकी दोनों आँखें छलछला आयीं और बड़े-बड़े दो बूँद अश्रुकण आँचल के छोर से उन्होंने पोंछ डाले। उन्होंने कहा, "भगवान ने मेरे हारान को छीन लेने पर भी यदि मुझ अभागिनी को बचा रखा है तो अब इने-गिने दिन जीवित रहूँ, तू बेटा मुझे छोड़कर कही मत जाना।" यह कहकर हाथ से उसका मस्तक छूकर उन्होंने अपनी उँगलियों का छोर चूम लिया। उनकी बातें सुनकर और आँखों के आँसू

देखकर दिवाकर आँखों के आँसू छिपाकर सामने से हट गया। इसके बाद कुछ ही दिनों में उनका दिवाकर के प्रति पुत्र-प्रेम जादूगर के माया-वृक्ष की भाँति बढ़ता ही चला गया।

इसी मकान मे कई माह पूर्व उनका पुत्र मर गया था, उस निष्ठुर शोक के मातृत्व के खुराक में जगा रही थीं। इन दिनों वही शोक अपेक्षाकृत शान्त हो जाने से उनका क्षुधातुर मातृहृदय सन्तान के अभाव में टुकड़े-टुकड़े होकर बिल्कुल ही बिखर पड़ता इससे पहले ही उन्होंने सन्तान परित्यक्त उस शून्य सिंहासन पर दिवाकर को बड़े लाड़ से बैठा लिया था।

सच बात यह है कि इस पुत्रहीना जननी ने कुछ दिन प्रवास में बिताकर घर लौट आने पर पुत्र का अभाव समूचे हृदय से पूरा कर लेना चाहा।

एक ओर वह थीं और दूसरी ओर थी किरणमयी, आदर-यत्न की कोई सीमा नहीं रही।

भूख न होने पर, ज़रा सा सर्दी-जुखाम हो जाने पर जवाबदेही देनी पड़ती है। स्नेह के इस रहस्य को नहीं जानता था। जीवन के इस आकस्मिक परिवर्तन के प्रथम कुछ दिन उसको कुछ अटपटे से जान पड़े, चिरभ्यस्त अनधिकार का संकोच बिल्कुल कट जाना नहीं चाहता था, तो भी थोड़े ही दिनों में उसका संकीर्ण मन इन दोनों नारियों के अपरिमित स्नेह से अपरिमित रूप से फैल गया। अन्त में एक दिन उसके बहुक्लेशार्जित दुःख सहने के अभ्यास सूखे चमड़े की भाँति शरीर से अज्ञात रूप से झर गये, इसको वह जान भी न सका।

क्रमशः देखने की सारी जगहें एक-एक कर देख डाली उसने। कलकत्ते की सड़कों से अच्छी तरह परिचित व अभ्यस्त हो जाने के कारण गाड़ी-वाड़ी के नीचे आने की सम्भावना भी अब खत्म हो गयी थी, अतः दिवाकर ने सभा समिति में योगदान देना, थोड़ा-बहुत लिखना शुरू किया। अल्पावधि में ही वह एक मासिक पत्रिका का उत्साही व मान्य लेखक हो गया था। बचपन से ही गाने-बजाने व साहित्य के प्रति अनुराग था, थोड़ी बहुत तुकबन्दी भी कर लेता था। अब दिवाकर बंदोपाध्याय के नाम से कहानियाँ लिखने लगा। कॉलेज के कुछ लड़कों ने मिलकर ‘चन्द्रोदय’ नाम की मासिक पत्रिका निकाली थी, उसी को लेकर दिवाकर पागल हो उठा था।

अब वह जब तक घर से बाहर नहीं निकलता, उसको बहुत काम रहता है। टूटी छत के निर्जन कोने में पेंसिल-कापी लेकर गम्भीर मुँह से वह बैठा रहता है, स्नान-भोजन की बात उसे स्मरण ही नहीं रहती – बहुत बुलाहट के बाद उसको नीचे उतारा जा सकता है। उसके मानस राज्य के इन नवीन उपद्रवों को भय के साथ लक्ष्य करके अघोरमयी कहने लगीं, “इसी घर का दोष है। मेरे हारान ने लिख-पढ़कर प्राण दे दिया, इसको भी देखती हूँ उसी रोग ने पकड़ लिया है – नहीं बाबू, पराया लड़का।”

किरणमयी सब कुछ ही लक्ष्य कर रही थी। उसने हँसकर कहा, “इसकी चिन्ता तुम मत करो माँ, उन्होंने जो लिखने-पढ़ने में मन लगाया है, उससे परमायु घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है।”

इसके कुछ ही दिन बाद ‘चन्द्रोदय’ में दिवाकर की ‘जहर की छुरी’ नामक कहानी प्रकाशित हुई। ‘सूर्योदय’ पत्र ने उसकी समालोचना करके कहा, ‘बंगाल के गौरव, सुप्रसिद्ध

नवीन लेखक श्रीयुत दिवाकर वन्द्योपाध्याय लिखित प्रेम का एक सच्चा चित्र।'

इस निर्लज्ज चापलूसी को एक अकाट्य सत्य मानकर ग्रहण करने में दिवाकर ने तनिक भी संकोच नहीं किया। प्रथम यौवनावस्था। इसके बीच ही उसने दो-चार भक्त इष्ट-मित्रों की सहायतासे सुनहली टोपी माथे पर पहन ली थी, 'सूर्योदय' के सम्पादक ने उसके ही चारों तरफ़ पोथियों की एक माला लपेट दी।

अपरूप साहित्य का यह किरीट माथे पर धारण कर दिवाकर एक दिन सबेरे गर्वोन्नत मुख से रसोईघर में आ पहुँचा। उसके हाथ में वही 'सूर्योदय' पत्र था।

किरणमयी रसोई पका रही थी, बोली, "तुम्हारे हाथ में यह कैसी पत्रिका है बबुआ?"

"ओह! यह एक मासिक पत्र 'सूर्योदय है – नया निकला है। लेकिन कुछ भी कहो भाभी, खूब लिखता है!"

किरणमयी 'सूर्योदय' पत्रिका के बारे में कुछ नहीं जानती थी। आग्रह के साथ बोली – "सच? तब एक बार देखूँगी।"

"अभी देखोगी?"

"अभी नहीं, मेरे बिछौने पर रख दो। दोपहर को देखूँगी।"

दोपहर को काम-काज से छुट्टी पाकर किरणमयी 'सूर्योदय' खोलकर बैठ गयी।

इधर-उधर देखते-देखते ठीक जगह पर ही उनकी दृष्टि पड़ गयी। दिवाकर पास वाले कमरे में ही था। उठकर उसके पास जाकर उसने कहा, "कहो बबुआ, 'जहर की छुरी' कहाँ है? समालोचना तो तुमने दिखा दी, अब असल चीज़ निकालो।"

दिवाकर लज्जित होकर विनयपूर्ण कहने लगा, "ओह! वह कहानी? वह तो कुछ भी नहीं है – वह तो हड़बड़ी में लिखी हुई है।"

किरणमयी हँसकर बोली, "भले ही हो, तुम मुझे दो।" यह कहकर उसने आप ही ढूँढ़कर 'चन्द्रोदय' का वह अंक निकाल लिया, वहीं उसे खोलकर वह कुर्सी पर बैठ गयी। वह मौन होकर पढ़ने लगी, लेकिन दिवाकर आशा और आकांक्षा की तीव्र उत्तेजना छिपाकर झूठमूठ एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। उसकी 'जहर की छुरी' नामक कहानी की नायिका असाधारण सुन्दरी है और षोडशी है। धनवान जमींदार की लड़की होकर भी उसने दैवयोग से एक दरिद्र रूपवान युवक को प्रेम किया है। जमींदार को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने विजयकुमार को देश निकाला दे दिया। लेकिन नगेन्द्रनन्दिनी को कुछ भी ज्ञात नहीं था, बसन्त के मालती कुंज में बैठकर वह माला गूँथ रही थी। उधर रूप से मुग्ध पूर्णचन्द्र पेड़ की ओट में झाँक रहा था, लेकिन आकाश में आने का साहस नहीं करता। प्रभात की कल्पना करके बीच-बीच में कोयल कूकती है, ऊपर लुब्ध भौंरा गुनगुनाता हुआ निद्रालसा मालती की नींद तोड़ रहा है। उस समय धीरे-धीरे वह कौन आ रहा है? हाँ, वही तो है! लेकिन यह कैसा वेश है? गेरुआ कपड़ा, अंग पर विभूति, गले में रुद्राक्ष की माला। नगेन्द्रनन्दिनी के हाथ में मालती की माला गिर पड़ी। विजयेन्द्र ने निकट आकर गीले कण्ठ से कहा, "विदाई दो, जा रहा हूँ।"

नगेन्द्रनन्दिनी के सिर पर मानो सहसा वज्रपात हो गया। हृदय में लाखों बिच्छुओं ने डंस दिया। जान पड़ा, मानो हृदय के सैकड़ों टुकड़े हो रहे हैं। उसकी आँखों में चन्द्रमा का प्रकाश काला पड़ गया, कानों में कोयल की कूक उल्लू की चिल्लाहट में बदल गयी। युवती फिर खड़ी न रह सकी – मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

यहाँ तक पढ़कर किरणमयी ने सहसा मुँह उठाकर कहा, "छोटे बबुआ, तुम अवश्य ही किसी को प्यार करते हो? ठीक है?"

दिवाकर ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "मैं?"

"जी हाँ, तुम। अवश्य ही छिपे तौर से तुम किसी को प्यार करते हो।"

इस आकस्मिक अपवाद की प्रबल लज्जा से दिवाकर हतबुद्धि हो गया। क्षणभर बाद कुण्ठित और व्यग्र होकर बोला, "मैं? छिः! राम कहो...... कभी नहीं..... किसी तरह भी नहीं. ....।"

"नहीं? बबुआ को किसी दिन बिच्छू ने डंक नहीं मारा?"

"नहीं, किसी दिन नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "आश्चर्य है! क्या किसी को डंक मारते भी नहीं देखा है?"

"नहीं, यह भी मैंने नहीं देखा है।"

किरणमयी ने और भी आश्चर्य में पड़कर कहा, "तुम्हारा हृदय भी किसी दिन सैकड़ों टुकड़ों में फट गया हो, यह भी तो नहीं मालूम होता, किसी दिन तुमने किसी को प्यार नहीं किया, छोटा-सा बिच्छू भी तुमने नहीं देखा, वज्राघात की व्यथा भी कैसी होती है, यह भी नहीं जानते, तो फिर बिरह ऐसा भयानक होता है इसका पता तुमको कैसे लगा?"

किरणमयी उसे किस ओर ठेल रही है यह दिवाकर की समझ में आ गया था – क्रुद्ध होकर बोला "बिना ऐसा हुए यह जाना नही जा सकता?"

– "कैसे जाना जा सकता है, मुझे तो नहीं मालूम – हाँ, यह ज़रूर है कि सुनकर या किसी किताब से चोरी करके लिखा जा सकता है।"

दिवाकर उत्तेजित हो उठा। बोला, "तुम कहना चाहती हो कि मैंने चोरी की है?"

मुस्कुरा कर किरणमयी ने कहा, "हाँ, यही कहना चाहती हूँ। चोरी तो की ही है, उस पर चोरी करने का पता भी नहीं लगा ऐसे अनाड़ी हो तुम। गुस्सा मत करो देवर जी, लेकिन एक वृश्चिक और वज्राघात के अलावा कोई सम्बल नहीं है तुम्हारे हाथ में। इतनी-सी पूँजी लेकर यह समुद्र पार करोगे? नावेल लिखना इतना आसान काम नहीं है। और अगर एक छलाँग में समुद्र लाँघना चाहते हो तो भी भगवान की कृपा चाहिये – ऐसे ही नहीं हो जाता।"

उस अप्रत्याशित रूढ़ता से दिवाकर स्तम्भित हो गया। आज तक जिससे मीठी-मीठी बाते ही सुनता आया था, उसी की अवहेलना और व्यंग्यपूर्ण बातों का क्या जवाब दे, सूझा ही नहीं।

कुछ क्षण चुप रहकर उसने धीरे-धीरे कहा, "तो इतने मनुष्य जो लिख रहे है, उन सभी ने क्या प्यार किया है, या स्वयं विरह की ज्वाला सह चुके हैं? कब ज्वाला सहने का अवसर

पाऊँगा इस आशा में बैठे रहने से तो देखता हूँ साहित्य चर्चा भी छोड़ देनी पड़ेगी।"

उसकी उत्तेजना देखकर किरणमयी ने हँसकर कहा, "इसी को साहित्यचर्चा कहते है? इसको कहते हैं अनधिकार चर्चा।" कहते-कहते उसके मुँह की हँसी अकस्मात् अत्यन्त कठोर हो उठी और अपनी ही बातों मानो हृदय के अन्तस्तल को हिलाकर रक्त से भीगकर भारी और लाल हो गयी। म्लानमुख बोली, मेरी बात आज तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी देवर जी, और कभी समझ में आये भी नहीं, यही भगवान से प्रार्थना करती हूँ, लेकिन उम्र में मैं तुमसे बड़ी हूँ अतः एक बात मान लो मेरी – वह यह है कि जिस बात को या चीज़ को खुद न समझो, उसे दूसरे को समझाने की चेष्टा मत करना। जिसे स्वयं न पहचानो उसका उल्टा-सीधा परिचय मत देना किसी और को।

दिवाकर ने कोई बात नहीं कही। किरणमयी थोड़ी देर तक चुप रही। उसने भारी गले को साफ़ करके कहा, "यह क्रोध-अभिमान की बात नहीं है बबुआ, यह भाग्य की बात है, यह बहुत बड़े अभाग्य की बात है। इस संसार में जिन दो-चार अभागों को इस निगूढ़ रहस्य का सच्चा परिचय देने का सच्चा अधिकार प्राप्त होता है, इस गुरुभार को उन्हीं के हाथों में छोड़कर दूसरे कामों में मन लगाओ, उससे काम भी होगा, नुकसान भी कम होगा। व्यर्थ छत के कोने में मुँह भारी बनाकर बैठे-बैठे कल्पना करने से कोई लाभ नहीं होगा, यह बात मैं तुमको निश्चित रूप से कहे देती हूँ।"

दिवाकर ने नरम होकर कहा, "कल्पना क्या कोई वस्तु ही नहीं है?"

किरणमयी ने कहा, "कुछ भी नहीं है यह बात मैं नहीं करती, लेकिन कोरी कल्पना जो वस्तु गढ़ सकती है, वह प्राण नहीं डाल सकती। ढो सकती है, मार्ग नहीं दिखा सकती। उसी राह दिखाने के प्रकाश का पता जब तक तुम नहीं पाते, तब तक तुम्हारा बिच्छू केवल तुम्हीं को डंक मारेगा, और किसी के शरीर पर डंक गड़ा न सकेगा।'

उसकी अन्तिम बात पर दिवाकर मन ही मन जल उठा और मुँह उदास बनाकर बैठा है देखकर किरणमयी ने फिर मुस्कराकर कहा, "लेकिन मैं सोचती हूँ बबुआ, कि तुम्हारे इस 'सूर्योदय' महाशय के आँसू न रुकने का कारण क्या है? अन्त में नगेन्द्रनन्दिनी विष खाकर मर तो नहीं गयी?"

कुपित दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

किरणमयी कहानी के अन्तिम भाग पर दृष्टि डालकर बोल उठी, "यही तो है!" यह कहकर ऊँचे स्वर से वह पढ़ने लगी – लेकिन श्मशान में वह किसका शव लोग लिए जा रहे थे? किसके पीछे वे असंख्य मनुष्य छाती पीटते-पीटते चले जा रहे हैं? किसके शोक में नृपति तुल्य परम प्रतापी जमींदार पागल की भाँति हो गये हैं? ओह! यह क्या ही हृदयविदारक दृश्य है! विजयेन्द्र धीरे-धीरे उसी ओर अग्रसर होने लगा – इसके आगे किरणमयी और न पढ़ सकी। हँसकर पत्रिका दिवाकर के ऊपर फेंककर उसने कहा, "बहुत देर हो गयी, जाऊँ।" यह कहकर हँसती हुई वह चली गयी।

इकत्तीस

पाँच-छह दिन बाद एक दिन मध्याह्न में दिवाकर ने किरणमयी के कमरे में जाकर आश्चर्य के साथ देखा, वह अत्यन्त ध्यान लगाकर एकाग्रचित्त से भूमि पर बैठ हुई एक हस्तलिखित मूल संस्कृत रामायण पढ़ रही है। किरणमयी साधारण गृहस्थ घर की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पढ़ी-लिखी है और बंगला, अंग्रेजी दोनों भाषाएँ अच्छी तरह जानती है, यह बात दिवाकर जानता था। लेकिन इस कारण ही हाथ की लिखी संस्कृत पोथी पढ़ने की योग्यता भी अच्छी तरह है, ऐसी बात दिवाकर ने स्वप्न में भी नहीं सोची थी। पलभर में आश्चर्य और श्रद्धा से झुककर वह वहीं बैठ गया।

किरणमयी ने हाथ के पन्ने को ठीक स्थान पर रोककर मुँह ऊपर उठाकर कहा, "अचानक ऐसे असमय में कैसे आये?"

दिवाकर ने ज़रा कुण्ठित होकर कहा, "तुम पढ़ रही हो यह मैंने नहीं सोचा था भाभी। मैं समझता था सम्भवतः।"

"सो रही हूँ। इसीलिए एकान्त सोचकर मुझे जगाने आये हो?"

दिवाकर ने लज्जा से लाल होकर कहा, "जब-तब इस तरह परिहास करती रहोगी तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊँगा, कहे देता हूँ भाभी।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "भाग जाऊँगा, कहने से ही क्या भागा जा सकता है? भूलभुलैया का मार्ग मालूम रहना चाहिए। अच्छा, बैठो, बैठो। क्रोध करके उठनान पड़ेगा। मैं सोचती थी बबुआ, द्वार बन्द करके बैठे-बैठे 'ज़हर की छुरी' के बाद तलवार-कटार की तरह कोई बड़ी चीज़ तैयार कर रहे हो। इसीलिए मैंने भी बुलाया नहीं। नहीं तो, मुझे ही क्या दोपहर को रामायण पढ़ना अच्दा लगता है?"

दिवाकर ने पूछा, "रामायण में तुम विश्वास करती हो?"

किरणमयी ने कहा, "करती हूँ।"

दिवाकर ने अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर कहा, "किन्तु बहुत से लोग नहीं करते। वास्तव में इसमें इतने झूठ, इतने असम्भव, इतने प्रक्षिप्त अंश हैं कि उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

किरणमयी ने ज़रा हँसकर पोथी को हाथ से ठेलकर कहा, "यही तो मूल ग्रन्थ है। इसमें से प्रक्षिप्त विषयों को निकाल दो तो देखूँ?"

दिवाकर ने सहमकर कहा, "मैं किस तरह निकालूँगा भाभी, मैं तो संस्कृत नहीं जानता।"

किरणमयी ने कहा, "जानते नहीं हो, इसीलिए इस प्रकार झट से ऐसी बात तुम्हारे मुँह से निकल गयी। विद्या न रहने से ही अविद्या आ घुटती है। उसके ही फलस्वरूप मनुष्य जिस बात को नहीं जानता, वही दूसरों को बात देना चाहता है, जो समझता नहीं, वही अधिक समझना चाहता है। बुरी आदत को छोड़ दो।"

दिवाकर अत्यन्त लज्जित हो गया। यह बात कहने का उसका कोई विशेष उद्देश्य नहीं

था। उसने सोचा था धर्मग्रन्थ में अश्रद्धा या अविश्वास दिखाने से भाभी प्रसन्न होंगी।

किरणमयी ने ज़रा हँसकर कहा, "लिखना कैसा हो रहा है?"

दिवाकर ने कहा, "मैं तो अब लिखता नहीं हूँ।"

किरणमयी आश्चर्य से बोली, "लिखते नहीं हो! कहते क्या हो बबुआ? लेकिन तुमने जो कुछ लिखा था, वह बुरा नहीं था, छोड़ क्यों दिया बताओ तो?"

दिवाकर बोला, "क्यों लज्जित कर रही हो भाभी, मैंने उसके बाद बहुत विचार करके देखा है, तुम्हारी बात सत्य है। मेरा यह लेख दूसरे की चोरी भले ही न हो, दूसरे का अनुकरण है तो अवश्य! वास्तव में मैं प्रेम का क्या जानता हूँ, कि इतनी बातें लिखने लगा। इसीलिए अब मैं लिखता नहीं – केवल सोचता हूँ।"

"सोचते हो, दिन-रात सोचते हो बताओ तो? मुझे ही तो नहीं?"

दिवाकर ने इस बात पर ध्यान न देकर कहा, "फिर भी, मुझे लगता है कि उपन्यास लिखने की झक को भी मैं किसी दिन छोड़ न सकूँगा। आज इसीलिए यही सोचकर मैं यहाँ आया हूँ कि तुमसे कुछ सीखूँगा।"

किरणमयी ने कहा, "मुझसे तुम क्या सीखोगे बबुआ, प्रेम?"

दिवाकर ने प्रबल लज्जा को किसी प्रकार रोककर गम्भीर होकर कहा – "सब कुछ सीखूँगा। आवश्यकता पड़ेगी तो वह भी सीखूँगा।"

किरणमयी ने भी मुँह को कृत्रिम गम्भीरता से परिपूर्ण करके कहा, "लेकिन इसमें एक बखेड़ा है बबुआ! मुझे पकड़कर प्रेम सीखने लगोगे तो लोग क्या कहेंगे!"

दिवाकर झट से उठ खड़ा हुआ। बोला, "जाओ, मैं जा रहा हूँ, तुम तो केवल मज़ाक करती हो।"

किरणमयी ने लपककर उसका हाथ पकड़कर मुस्कराकर कहा, "तो स्पष्ट कहो न भाई, कि परिहास नहीं चाहते, सच्ची बात चाहते हो।"

दिवाकर अपना हाथ तेज़ी से खींचकर शीघ्रतापूर्वक बाहर चला गया।

किरणमयी ने मन ही मन हँसकर अपनी पोथी बन्द कर दी। उसके बाद उचित स्थान र उसे रखकर वह धीरे-धीरे दिवाकर के कमरे में चली गयी।

दिवाकर मुँह उदास बनाये खिड़की के बाहर देखता हुआ चुपचाप बैठा था, किरणमयी ने कहा, "क्रोध करके क्यों चले आये, बताओ तो?"

दिवाकर ने बिना मुँह घुमाये ही कहा, "यह सब हँसी-मज़ाक मुझे अच्छा नहीं लगता।"

किरणमयी क्षणभर चुप रहकर मीठे स्वर से बोली, "तुम तो मेरे देवर लगते हो बबुआ! तुम्हारे साथ तो हँसी-मज़ाक चलना ही चाहिए। यह सब न करने से मैं कैसे ज़िन्दा रह सकूँगी, बताओ तो!"

इस स्नेह-भरे कोमल स्वर से दिवाकर का क्रोध शान्त हो गया। आज सहसा पहले-पहल उसे ज्ञात हो गया कि यह तो सत्य ही है। मुझे लज्जित होने की तो कोई बात ही नहीं है। हम लोगों का सम्बन्ध ही तो हास-परिहास का है।

यह बात झूठी भी नहीं कि बंगाली समाज में देवर-भौजाई में एक मधुर हास-परिहास का सम्बन्ध प्रचलित है और ठीक कहाँ पर इसकी सीमा-रेखा है, यह भी बहुतों की दृष्टि में नहीं पड़ती, पड़ने की आवश्यकता भी वे नहीं समझते। लेकिन इस निर्दोष हास-परिहास की अधिकता से कभी-कभी कितने विषबीज झर पड़ते हैं और अदृश्य में, वे ही बीज अंकुरित होकर विषवृक्ष में परिणत हो जाते हैं और किसी समय समूचे पारिवारिक बन्धन को कलुषित कर देते हैं, इसका हिसाब-किताब लोग रखते हैं?

दिवाकर ने मुँह फेरकर अभिमान के स्वर से कहा, "मैं सीखने गया और तुमने परिहास करके मुझे भगा दिया।"

किरणमयी ने बिछौने के एक छोर पर बैठकर कहा, "क्या सीखने गये थे?"

दिवाकर ने कहा, "वही जो मैंने कहा था कि कहानी लिखने का झक मैं किसी प्रकार भी छोड़ न सकूँगा। इसीलिए मैंने सोचा है कि तुम सिखा दोगी, बोलती जाओगी, मैं लिखता जाऊँगा।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "वह तो फिर मेरा ही लिखना होगा बबुआ।"

"होगा तो होने दो, लेकिन मेरा तो सीखना होगा। केवल जानने से ही तो नहीं होता, व्यक्त करने की शक्ति भी तो होनी चाहिए।

"वह तो चाहिए ही। लेकिन व्यक्त करोगे क्या, सुनूँ तो?"

"वही तो तुम बता दोगी भाभी!"

हँसी आ गयी फिर किरणमयी को। बोली, 'तब तो किसी और को पकड़ो जाकर देवर जी, यह काम मेरा नहीं है। जल की मछली अगर यह समझना चाहे कि मरुभूमि में मनुष्य प्यास से कैसे मरता है तो फिर कोई दूसरा ढूँढ़ना पड़ेगा, मेरी बुद्धि से बाहर है यह।

ज़रा चुप रहकर दिवाकर बोला, भाभी, यह सच है कि मरुभूमि की तृष्णा से मैं अभिज्ञ नहीं हूँ, परन्तु मैं जलचर भी नहीं हूँ। तुम्हारी तरह जब मेरा वास भी डांग पर है तो पिपासा की धारणा भी है। तुम कहकर तो देखो एक बार मैं समझ पाता हूँ कि नहीं।

किरणमयी चुप ही रही। केवल हँसते हुए मुख से ताकती रही।

दिवाकर भी कुछ क्षण स्थिर रहकर बोला, "यहाँ जो इतनी देर तक तुम रामायण पढ़ रही थीं भाभी, मैं उसी की बात कहता हूँ। सीता के जिस रूप की अग्नि में रावण सपरिवार भस्म हो गया, नारी का वह रूप क्या है? और अकेला रावण ही तो नहीं, ऐसे अनेक रावणों का इतिहास मौजूद है। कवि लोग कहते हैं रूप की प्यास। तुमने भी उसी तरह की उपमा दी है। तुम यह मत सोचना भाभी, कि मैं तुमसे तर्क कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पैरों के पास बैठकर मैं बहुत दिनों तक सीख सकता हूँ। मैं तो केवल यही जानना चाहता हूँ कि इसे प्यास कहते हैं क्यों? पानी देखने से ही तो मनुष्य को प्यास नहीं लग जाती। तो फिर रूप देखने से ही उसको प्यास क्यों लगेगी?"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर एकाएक हँसकर कहा, "प्यास लगती है क्या बबुआ?"

इस हँसी और प्रश्न का यथार्थ अर्थ समझकर दिवाकर पलभर के लिए हतबुद्धि-सा हो

रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सम्भालकर बोल उठा, "अवश्य लगती है।"

उसका संकुचित और दबा हुआ साहस इतनी देर में किस हद तक जाग गया था, इसे वह स्वयं भी नहीं जानता था। उसने कहा, "न लगने से संसार में बड़े-बड़े कवि लोग शकुन्तला भी नहीं लिखते, रोमिओ जूलिएट भी नहीं लिखते। इसीलिए मैं जानना चाहता हूँ। भाभी, नारी का यह रूप वास्तव में क्या वस्तु है? और प्रेम भी उसके साथ इस प्रकार घनिष्ठ रूप में लिपटा क्यों रहता है?"

किरणमयी ने गम्भीर होकर कहा, "तब तो तुम्हारी अवस्था अभी उतनी बिगड़ी नहीं है।"

दिवाकर व्यथित होकर बोला, "सभी बातों को यदि तुम हँसकर उड़ा दोगी भाभी, तो रहने दो। मैं अब कुछ न पूछूँगा।"

उसकी ओर देखकर किरणमयी ने विषाद का ढोंग रचकर कहा, "मैं मूर्ख स्त्री हूँ बबुआ, मैं इन सब बड़ी-बड़ी बातों का हाल क्या जानूँ, जो तुम क्रोध कर रहे हो?"

दिवाकर को उस दिन की बात याद आ गयी जिस दिन वेद के प्रति भी अवहेलना भरी उक्ति सुनकर उसने कानों में उँगली डाल ली थी। उसने कहा, मैं जानता हूँ भाभी, तुम भारी पण्डित हो। तुम चाहो तो सभी विषय मुझे समझा सकती हो।"

किरणमयी ने कहा, "समझा सकती हूँ? अच्छा यदि मैं कहूँ कि स्त्री का रूप एक भ्रम मात्र है, वास्तव में यह कुछ भी नहीं है, मृग-मरीचिका की भाँति मिथ्या है। क्या तुम विश्वास करोगे?"

दिकाकर ने कहा, "नहीं। इसका कारण यह है कि मरीचिका भी मिथ्या नहीं है, चाहे वह कुछ भी हो, दर्पण में मनुष्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। वह प्रतिबम्ब है, आदमी नहीं है, यह तो मानी हुई बात है। प्रतिबिम्ब को मनुष्य कहकर पकड़ने की चेष्टा करना मूर्खता है। लेकिन रूप तो उस प्रकार किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं है। साँप को रस्सी समझकर पकड़ने जाना भूल है, मरीचिका को भी पानी समझकर पकड़ने जाना भूल है। लेकिन रूप के पीछे तो मनुष्य केवल रूप की ही तृष्णा से दौड़ जाता है भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "बबुआ, अभी तुमने दर्पण में प्रतिबिम्ब देखने की उपमा दी है। जिस दिन तुम समझ जाओगे कि रूप भी मनुष्य का प्रतिबिम्ब ही है, मनुष्य नहीं है, उसी दिन प्रेम का पता पाओगे। लेकिन छोड़ो इस बात को। मैं पूछती हूँ कि रूप के ही पीछे मनुष्य क्यों दौड़ता हुआ जाता है?"

"यह मैं नहीं जानता। भ्रमर जैसी स्त्री को छोड़कर भी गोविन्दलाल रोहिणी के पीछे दोड़ गया था। यह बात मुझे बहुत ही अद्‌भुत ज्ञात होती है।"

"लेकिन उसका फल क्या हुआ?"

"फल जो कुछ भी हो भाभी, इस पर विचार करने का भार मनुष्य के हाथ में नहीं है। रोहिणी में रूप था, गुण नहीं था। किन्तु रूप के साथ गुण रहने से गोविन्दलाल की क्या दशा होती, कहा नहीं जा सकता।"

किरणमयी मौन ही रही! बी.ए. फेल हुए इस लड़के पर मन ही मन उसकी श्रद्धा नहीं थी। केवल फेल हो जाने के ही कारण नहीं, पास हो जाने पर भी, वह सोचती कि ये लोग केवल पाठों को कण्ठस्थ करके केवल पास भर कर सकते हैं, और कुछ नहीं कर सकते। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर इनका शिक्षित मन तर्क भी कर सकता है, यह धारणा ही उसकी नहीं थी। उसने कहा, "रूप प्रतिबिम्ब नहीं है इस बात को इतने असन्दिग्ध रूप से स्थिर मत रखो। जो भी हो, मैं तुमसे पूछती हूँ बबुआ, ये सब बातें तुमने स्वयं ही सोची हैं या किसी की सोची हुई बात सुनकर कर रहे हो?"

दिवाकर ने मुस्कराकर कहा, "नहीं भाभी, मेरी अपनी ही बातें हैं। बचपन से ही भगवान ने मुझे सोचने की सुविधा दी थी।"

किरणमयी ने क्षणभर मौन रहकर कहा, "फिर इतनी सुविधा रहने पर भी रूप का तत्व ढूँढ़कर तुम न पा सके। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सतीश बबुआ ने भी मुझसे ठीक यही बात एक दिन पूछी थी, और भी एक व्यक्ति ने पूछी थी, और आज तुम भी पूछ रहे हो। मैं सोचती हूँ मेरा रूप देखकर ही क्या तुम लोगों के मन में यह प्रश्न नहीं आता?"

दिवाकर एकाएक चौंक पड़ा। लज्जा से उसका मस्तक फट जाने लगा। उसने अपना मुँह झुकाकर कहा, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जानता नहीं था।"

किरणमयी ने हँसते हुए कहा, "एकाध बार नहीं भाई, तुमको तो मैं सौ बार क्षमा करती हूँ।" यह कहकर और पलभर मौन रहकर उसने मानो मन में आने वाली एक दुविधा को ज़ोर से धकेलकर निकाल दिया और अपनी अत्यन्त सुन्दर ग्रीवा ज़रा ऊँची कर एक प्रकार के कोमल करुण स्वर से बोली, "बबुआ, आज तुमने जितनी बातें मुझसे पूछी हैं, उनका यदि स्पष्ट उत्तर देने लगूँ, तो मेरी बाते दम्भ की तरह होंगी। उसे तुमको भूल जाना पड़ेगा। नहीं तो, अपनी भूल से मुझे ग़लत समझकर सब ही बातों को तुम गड़बड़ कर दोगे। मेरी बात तुम्हारी समझ में आती है न?"

दिवाकर ने चुपचाप सिर हिला दिया।

किरणमयी क्षणभर स्थिर रहकर कहने लगी, "मेरे शरीर का यह रूप केवल पुरुषों की ही दृष्टि में नहीं, मेरी अपनी भी दृष्टि में एक अद्भुत वस्तु है। इसी से इसकी बात मैंने बहुत सोची है। जो कुछ मैंने सोचा है, सम्भवतः वही ठीक भी है। हो सकता है नहीं भी हो, लेकिन वह जो कुछ भी हो, अपनी इस भावना को जब एक देवर से कहने में मैंने संकोच नहीं किया, तब तुमसे कहने में भी मैं न हिचकूँगी। अपने आपको देखकर मुझे कैसा जान पड़ता है जानते हो? ज्ञात होता है सन्तान धारण करने के लिए जो सब लक्षण सबसे अधिक उपयोगी हैं वह नारी का रूप है। सारे विश्व के साहित्य में, काव्य में, यही वर्णन उसके रूप का वास्तविक वर्णन है।"

दिवाकर मौन होकर निहारता रहा। किरणमयी उसके स्तब्ध मुख पर नवीन यौवन की सद्यः जाग्रत क्षुधा की मूर्ति अकस्मात अनुभव करके संकोच से एकाएक रुक गयी। लेकिन

पल भर में, दूसरे ही क्षण उस भाव को बलपूर्वक दबाकर बोली, “वास्तव में बबुआ, इसी स्थान पर मानो रूप का एक छोर दिखायी पड़ता है, इसीलिए नारी का बाल्य रूप मनुष्य को आकर्षित करने पर भी उसे उन्मत्त नहीं करता। फिर जबकि वह सन्तान धारण करने की उम्र पार कर जाती है तब भी ठीक यही दशा हो जाती है। सोचकर देखो बबुआ, केवल नारी की ही नहीं, पुरुष की भी यही दशा है। तभी एक नारी का रूप रहता है, जब तक कि वह सन्तानोत्पादन कर सकती है। यह सृष्टि करने का सामर्थ्य ही उसका रूप है, यौवन है, सृष्टि करने की इच्छा ही उसका प्रेम है।”

दिवाकर ने धीरे से कहा, “लेकिन...।”

किरणमयी बीच ही में रोककर बोल उठी, “नहीं, लेकिन के लिए इसमें स्थान नहीं है। विश्व चराचर में जिस ओर इच्छा हो, आँखें उठाकर देखो, वही एक बात मिलेगी बबुआ, सृष्टितत्व की मूल बात तुम्हारे सृष्टिकर्ता के ही लिए रहे, लेकिन इसके काम की ओर एक बार ध्यान से देखो। तुम देखोगे इसका प्रत्येक अणु-परमाणु निरन्तर अपने को नये रूपों में सृजन करना चाहता है। किस प्रकार वह अपने को विकसित करेगा, कहाँ जाने से, किसके साथ मिलने-जुलने से, क्या करने से यह और भी सबल तथा उन्नत होगा, यही उसका अविराम उद्यम है। दृश्य हो, अदृश्य हो, अन्दर हो, बाहर हो, इसी से प्रकृति का नित्य परिवर्तन होता रहता है। और इसीलिए नारी में पुरुष जब ऐसा कुछ देख पाता है, ज्ञान से हो या अज्ञान से हो, जहाँ वह अपने को अधिक सुन्दर और सार्थक बना सकेगा, तो उस लोभ को वह किसी प्रकार भी रोक नहीं पाता।”

दिवाकर ने धीरे से कहा, “तब तो इस दशा में चारों ओर ही मारकाट मच जाती है?”

किरणमयी ने कहा, “कभी-कभी मच जाती है अवश्य। लेकिन मनुष्य में लोभ दमन करने की शक्ति, स्वार्थत्याग करने की शक्ति, समझ तथा शासन की शक्ति, कितनी ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनके कारण चारों ओर एक ही साथ आग नहीं लग सकती। फिर भी इस सामाजिक मनुष्य का ही एक दिन ऐसा था, जब कि प्रवृत्ति के अतिरिक्त और किसी का शासन नहीं मानता था। रूप का आकर्षण ही उसकी दुर्दमनीय प्रवृत्ति का संचालन था। वही था उसका प्रेम, बबुआ, इसको ही संस्कृति तथा सभ्यता के वस्त्र पहनाकर सजावट सिंगार से तैयार कर देने से उपन्यास का निर्दोष प्रेम हो जाता है।”

दिवाकर ने चकित होकर कहा, “कहाँ तो पाशविक प्रवृत्ति की ताड़ना और कहाँ स्वर्गीय प्रेम का आकर्षण! जो मनुष्य पशु की प्रवृत्ति से भरा हुआ है वह शुद्ध, निर्मल, पवित्र प्रेम की मर्यादा क्या समझेगा? इस वस्तु को वह पायेगा कहाँ? तुम किसके साथ किसकी तुलना करने चली हो भाभी?”

“मैं तुलना नहीं करती भाई। केवल यही बता रही हूँ कि दोनों हैं एक ही वस्तु। इंजिन की जो वस्तु उसको आगे की ओर ढकेलकर ले जाती है, वही वस्तु उसे पीछे को भी ठेल सकती है, दूसरी नहीं। जो प्रेम कर सकता है, वही केवल सुन्दर-असुन्दर सभी प्रेमों में अपने को डुबा सकता है, दूसरा नहीं। उसकी जिस वस्तु ने भ्रमर को प्रेम किया था, ठीक वही

वस्तु उसको रोहिणी की ओर भी खींच ले गयी थी। लेकिन हरलाल जो वह कर नहीं सका। उसने सांसरिक भले-बुरे, कर्तव्य-अकर्तव्य, सुविधा-असुविधा पर सोच-विचार करके आत्मसंयम किया था, लेकिन गोविन्दलाल यह नहीं कर सका। फिर भी हरलाल गोविन्दलाल से अच्छा मनुष्य नहीं था, बहत बुरा था। तो भी उसने जिसे घृणा से त्याग दिया था दूसरे ने उसी को सिर पर चढ़ा लिया।"

'यह सिर पर चढ़ा लेना तरह-तरह के कारणों से व्यर्थ हो सकता है। लेकिन समस्त दुःख-ग्लानि-लज्जा के अतिरिक्त, एक वृहत्तर सार्थकता का संकेत एक व्यक्ति को खींचकर एक-दूसरे के पास ले जाता हो, ऐसी बात भी तो कोई बलपूर्वक कह नहीं सकता भाई!"

दिवाकर क्षोभ के साथ बोला, "तुम्हारी सभी बातों को यद्यपि मैं समझ नहीं सका, लेकिन पवित्र प्रेम स्वर्गीय नहीं है, ऐसी अद्‌भुत बात को मैं किसी प्रकार भी मान नहीं सकता, भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "तुम्हारे मानने पर तो कुछ भी निर्भर करता बबुआ! हम लोगों का यह शरीर भी तो अत्यन्त नश्वर है, बिल्कुल ही पार्थिव वस्तु है, लेकिन इसमें तो मैं कोई दुःख का कारण नहीं देखती। शिशु जन्म लेने के बाद जब तक अपने जड़ शरीर में सृष्टि-शक्ति का संचय नहीं करता, तब तक प्रेम का सिंहद्वार उसके लिए बन्द ही रहता है। प्रवृत्ति की ही ताड़ना से वह उस सिंहद्वार को पार कर आता है। उसके पहले वह अपने माता-पिता को, भाई-बहिन को प्यार करता है, इष्ट-मित्रों को भी प्यार करता है, किन्तु जब तक उसका पंचभूत का शरीर बड़ा नहीं हो जाता तब तक तुम्हारे पवित्र प्रेम की कोई भी ख़बर का अधिकार उसको नहीं मिलता। तब तक स्वर्गीय आकर्षण उसे तिल भर भी नहीं हिला पाता। पृथ्वी का आकर्षण तो सदा से ही उपस्थित है, लेकिन उस आकर्षण से वृक्ष का पका फल ही आत्मसमर्पण करता है। कच्चा फल नहीं कर सकता। उसका रेशा-गूदा पृथ्वी के रस से ही पकता है, स्वर्गीय रस से नहीं पकता। सुन्दर पुष्प रूप से, गन्ध से, मधुमक्खियों को खींचकर फल पर परिणत हो जाता है। वही फल फिर समय पर भूमि पर गिरकर अंकुर में परिणत हो जाता है – यही है प्रवृत्ति, यही है उसका स्वर्गीय प्रेम। सारे विश्व में यह जो अविच्छिन्न सृष्टि-नाटक चल रहा है, रूप का खेल चल रहा है, वह स्वर्गीय नहीं है इसलिए दुःख मानने या लज्जित होने का तो कोई कारण ही मैं नहीं देखती।"

कुछ रुककर किरणमयी बोली, "अन्धकार में भूतों के भय से यदि नेत्र बन्द करके ही तुम आराम पाते हो, तो मैं तुमको नेत्र खोलकर देखने को नहीं कहती। लेकिन मैं प्रवृत्ति की ताड़ना नहीं चाहती, स्वर्गीय प्रेम का ही उपभोग करूँगी – प्रेम ऐसी साधारण वस्तु नहीं है।"

दिवाकर ने पूछा, "तो फिर संसार पें पवित्र प्रेम, घृणित प्रेम – ये दो क्यों हैं?"

किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "तुम्हारा यह तर्क तो ठीक सतीश बबुआ के तर्क की तरह हुआ। संसार में इन दोनों के रहने की बात है, इसीलिए है। जिसको तुम घृणित कहते हो, वास्तव में वह तो सुबुद्धि का अभाव है अर्थात् जिसको प्रेम करना उचित नहीं था उसे ही प्रेम करना। अपनी ही असावधानी से पेड़ से गिरकर हाथ-पैर तोड़ लेने का अपराध पृथ्वी

के प्रत्याकर्षण पर मढ़ देना और प्रेम को कुत्सित, घृणित कहना एक ही बात है। बबुआ, इसी प्रकार संसार में एक का अपराध दूसरे के सिर पर रख दिया जाता है।" यह कहकर एकाएक किरणमयी मौन हो रही और अपने हृदय में क्या है इसे मानो भली-भाँति देखने लगी। दूसरे ही क्षण बोली, "जीवन का प्रत्येक अणु-परमाणु अपनी उत्कृष्ट परिणति के बीच विचार करने का लोभ किसी प्रकार भी संवरण कर सकता है। जिस देह में उसका जन्म होता है, उस देह में जब उसकी परिणति की निर्दिष्ट सीमा समाप्त हो जाती है, तब वही उसकी यौवनावस्था कही जाती है। तभी वह दूसरी देह के संयोग से सार्थक होने के लिए शिराओं और उपशिराओं में विप्लव का जो ताण्डव नृत्य आरम्भ करती है, उसे तो पण्डित लोगों ने नीति-शास्त्र में पाशविक कहकर घृणा की है। इसका तात्पर्य समझ न सकने से ही हतबुद्धि विज्ञ लोग लोग इसे घृणित कहते हैं, वीभत्स कहकर सान्त्वना पाते हैं। लेकिन आज मैं तुमको निश्चित रूप से कहती हूँ, बबुआ, कि इतना बड़ा आकर्षण किसी प्रकार भी ऐसा घृणित, ऐसा हीन नहीं हो सकता। यह सत्य है। सूर्य के प्रकाश की भाँति सत्य है। ब्रह्माण्ड के आकर्षण की भाँति सत्य है। कोई भी प्रेम किसी दिन घृणा की वस्तु नहीं हो सकता।"

यह बात सुनकर दिवाकर सचमुच ही विह्वल हो उठा। उसकी छाती में एक प्रकार की धड़कन होने लगी। ऐसा उत्तप्त तीव्र कण्ठ-स्वर तो उसने किसी दिन सुना ही नहीं था। नेत्रों की ऐसी उत्कट दृष्टि भी तो उसने कभी नहीं देखी थी।

डरते-डरते उसने पुकारा, "भाभी!"

"क्यों बबुआ?"

"मेरे जैसे नासमझ को उपदेश देने में सम्भवतः तुम्हारा धीरज नहीं रहता।"

"यह क्या बबुआ, मुझे बहुत ही अच्छा लग रहा है।"

दिवाकर ने ज़रा हँसने की चेष्टा करके कहा, "अच्छा लगने से तुम्हारे मुँह से ये सब उल्टी-सीधी बातें क्यों निकलीं? अभी-अभी तुमने स्वयं ही कहा कि जिसे प्रेम करना उचित नहीं है, उसे प्रेम करने को ही घृणित प्रेम कहते हैं, फिर कह रही हो, इसका तात्पर्य समझ न सकने के कारण ही विज्ञ लोग उसे बुरा करते हैं। तो फिर सत्य कौन है?"

किरणमयी ने कहा, "दोनों ही सत्य हैं।"

"विधवा रोहिणी को प्यार करना क्या गोविन्दलाल का अनुचित काम नहीं था?"

"प्रेम करना क्या कोई एक काम है कि उसका न्याय-अन्याय होगा? स्त्री को छोड़ जाना ही उसका बुरा काम था।"

दिवाकर फिर एक बार उत्तेजित हो उठा। बोला, "छोड़कर चला जाना तो अवश्य ही बुरा काम है। हज़ार बार बुरा काम है! लेकिन अपनी स्त्री को छोड़कर किसी दूसरी स्त्री को मन-ही-मन प्यार करना भी क्या अन्याय नहीं है?"

उसकी उत्तेजना पर किरणमयी हँसने लगी। बोली, "बबुआ, अपने को इतना शक्तिशाली न समझना चाहिए, अहंकार का कुछ कम रहना ही ठीक है। तुम क्यों सोचते हो कि मनुष्य

इच्छा करने से ही जो चाहे कर सकता है? गोविन्दलाल इच्छा करने से ही रोहिणी को प्यार कर सकता था या फिर नहीं भी कर सकता था, क्या तुम्हारी यही धारणा है?"

"नहीं, मेरी यह धारणा नहीं है। इच्छा के साथ प्रयत्न भी करना चाहिए।"

किरणमयी ने कहा, "फिर उसके साथ अक्षमता और क्षमता भी तो रहनी चाहिए! केवल प्रयत्न करने से ही काम नहीं चलता। उस छत के नीचे बैठे-बैठे यदि तुम्हारे सिर पर पेड़ भी उग जाये, तो भी कालिदास की भाँति तुम एक और मेघदूत न लिख सकोगे। मेघ देखकर तुमको आँधी-पानी की आशंका ही होगी। सर्दी लग जाने के भय से ही तुम व्याकुल हो उठोगे, विरही का दुःख सोचने का समय न पाओगे। लाख प्रयत्न करने से भी नहीं। यह अक्षमता अस्थि-मज्जा में मिली हुई है। इसको जीता नहीं जा सकता।" यह कहकर वह चुप हो गयी।

दिवाकर ने भी उत्तर नहीं दिया। सिर झुकाये मौन होकर बैठा रहा। बहुत देर तक फिर कोई बात न निकली। निस्तब्ध कमरे के कोने से केवल एक जीर्ण-शीर्ण पुरानी घड़ी से टिक्-टिक् शब्द आने लगा।

बहुत देर तक मौन रहकर किरणमयी एकाएक बहुत ही मीठे स्वर से बोली, "तुमसे और दो बातें कहना चाहती हूँ। उस दिन तुम्हारी 'जहर की छुरी' लेकर चाहे जो कुछ मैंने कह डाला हो बबुआ, मैंने यह भी देखा था कि तुम्हारे हृदय में एक ऐसी भी वस्तु है, जो वास्तव में ही प्रेमिका है, सचमुच कवि है। इस वस्तु को यदि तुम नष्ट न करना चाहो तो दूसरों को अपराधी बनाने के सुख से अपने को ही वंचित करना होगा। इस बात को कभी मत भूल जाना कि कवि विचारक नहीं है। नीति-शास्त्र के मत के साथ यदि तुम्हारा मत अक्षर-अक्षर न भी मिले, तो उससे तुम लज्जित मत होना। मैं जानती हूँ मनुष्य दूसरे की असमर्थता और अपराध को एक ही तराजू पर तौल कर दण्ड देता है लेकिन उनके बटखरे लाने से तुम्हारा काम न चलेगा। तुमने बार-बार गोविन्दलाल का उल्लेख किया था। वही गोविन्दलाल कितनी बड़ी शक्ति के सामने परास्त होकर सर्वस्व त्याग कर चला गया था। इस संसार में जिन्होंने केवल भले-बुरे का विचार करने का भार लिया है, यह प्रश्न उनका नहीं है, यह प्रश्न तुम्हारा है। हत्या के अपराध में जज साहब जब किसी अभागे को फाँसी की सज़ा देते हैं, तब वे विचारक हैं, लेकिन अपराधी के हृदय की दुर्बलता अनुभव करके जब वे सज़ा हल्की कर देते हैं, तब वे कवि बन जाते हैं। बबुआजी, इसी प्रकार संसार के सामंजस्य की रक्षा होती है, इसी प्रकार संसार की भूलें, भ्रान्तियाँ और अपराध असहनीय नहीं होने पाते। कवि केवल सृष्टि ही करता है, यह बात नहीं है, कवि सृष्टि की रक्षा भी करता है। जो स्वभावतः सुन्दर है, उसको जैसे और भी असुन्दरता के साथ प्रकट करना उसका काम है, जो सुन्दर नहीं है उसको असुन्दर के हाथों से बचाना भी उसका काम है।"

दिवाकर ने ज़रा सोचकर कहा, "इस दशा में क्या अन्याय को प्रश्रय देना न होगा?"

किरणमयी ने कहा, "ठीक मैं नहीं जानती। हो भी सकता है। सुनती हूँ, मन के विरुद्ध अत्यन्त घृणा उत्पन्न कर देना भी सम्भवतः कवि का ही काम है। लेकिन अच्छे के प्रति

अत्यन्त लोभ जगा देना क्या उसकी अपेक्षा बड़ा काम नहीं हैं? इसके अतिरिक्त जब तक इस संसार से पाप बिल्कुल ही मिटा न दिया जायेगा, जब तक मनुष्य का मन पत्थर न बन जायेगा तब तक इस पृथ्वी में अन्याय, भूल-भ्रान्ति होती ही रहेगी और उसे क्षमा करके प्रश्रय भी देना ही पड़ेगा। पाप दूर करने की शक्ति भी नहीं है, सहन करने का सामर्थ्य भी न रहेगा, तो उससे ही क्या कोई सुविधा होगी बबुआ?"

दिवाकर ने उत्तर दिया, "सुविधा ही तो सब कुछ नहीं है। असुविधा में भी तो न्याय धर्म का पालन करना चाहिए। जो शुभ है, जो निर्मल है, जो सूर्य के प्रकाश की भाँति है, उसको सबसे ऊपर स्थान देना उचित है।"

किरणमयी ने कहा, "नहीं। यदि पाप मनुष्य के रक्त के साथ न लगा रहता तो उस दशा में तुम्हारा कहना ही सच होता। एक न्याय के अतिरिक्त संसार में और कुछ भी न रहने पाता। दया, माया, क्षमा आदि चित्तवृत्तियों के नाम तक भी किसी को ज्ञात न रहते। तुम सूर्य के प्रकाश के श्वेत रंग के साथ न्याय की तुलना कर रहे थे, लेकिन क्या श्वेत रंग सब रंगों के मेल से ही नहीं बनता। यह उज्ज्वल प्रकाश जैसे टेढ़े शीशे के भीतर जाने से रंगीन हो उठता है, उसी प्रकार न्याय भी अन्याय, अधर्म, पाप-ताप के टेढ़े रास्ते से दया, मामा, क्षमा से चित्रित होकर दिखायी देते हैं। अन्याय को क्षमा करने से अधर्म को ही प्रश्रय देना होता है, यह बात मैं मानती हूँ, लेकिन अधर्म भी तो क्षमा का रूप नहीं, यह बात भी तो स्वीकार किये बिना नहीं रह सकती। तर्क करके सम्भवतः मैं अपनी बात तुमको समझा न सकूँगी बबुआजी, लेकिन जो क्षमा प्रेम के भीतर से पैदा होती है उस प्रेम का मर्म यदि तुम किसी दिन जान जाओगे तो समझ जाओगे कि अन्याय, अक्षमता को क्षमा कर प्रश्रय देना धर्म का ही अनुशासन है। लेकिन दिन तो अब बहुत ही ढल गया बबुआजी, क्या आज तुमको भूख-प्यास नहीं लगी है?" यह कहकर घबराकर वह कमरे से बाहर निकल गयी।

संध्या के बाद दिवाकर खाना खाने के लिए बैठा तो धीरे-धीरे बोला, "आज सारा दोपहर का समय मेरा बहुत ही आनन्द से बीता। कितनी नयी बातें मैंने सीखीं, यह मैं कह नहीं सकता।"

किरणमयी ने मुस्कराते हुए कहा, "अनेक बातें ही तुमने सीखी हैं? तो मुझे अपना गुरु मानना चाहिए।"

दिवाकर उत्साहित होकर बोल उठा, "अवश्य, अवश्य, सौ बार मैं तुमको अपना गुरु स्वीकार करता हूँ? सच कहता हूँ भाभी, यदि इस तरह सदा ही तुम्हारे पास रहने पाऊँ तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

"क्या कहते हो? इतने में ही इतना आकर्षण?"

दिवाकर का चित्त उसकी बातों की धारा में मग्न हो गया था, सरल मन से बोला, "तुमको छोड़कर एक दिन भी मैं कहीं रह न सकूँगा भाभी।"

किरणमयी हँस पड़ी और बोली, "चुप-चुप, यदि कोई सुन लेगा तो चकित हो जायेगा।",

दिवाकर होश में आकर अत्यन्त लज्जित हो गया।

बत्तीस

बिछौना बिछाते-बिछाते किरणमयी उसी के एक कोने में बैठकर म्लान करुण कण्ठ से बोली, "यह क्या तुम्हारी नौकरी है या व्यवसाय है बबुआजी, कि इसकी सफलता-विफलता मालिक की इच्छा पर या दुकान की खरीद-बिक्री पर निर्भर करेगी? यह तो अपने हृदय का धन है। बाहर के लोगों में इसे विफल करने की शक्ति नहीं है बबुआ।" यह कहकर वह कुछ देर तक आँखें मूँदे बैठी रही।

दिवाकर ने भक्ति भरे चित्त से उस सुन्दर मुख की ओर देख धीरे-धीरे कहा, "अच्छा भाभी, तुम क्या आँखें मूँदने पर अपने स्वामी का मुख अन्तः करण में देख पाती हो?"

किरणमयी ने आँखें खोलकर कुछ विस्मित होकर कहा, "स्वामी का? हाँ, देख पाती हूँ, जो मेरे यथार्थ स्वामी हैं वे निश्चय ही मेरे इसी स्थान में रहते हैं।" कहकर उसने उँगली से अपना हृदय दिखाया।

दिवाकर ने इस बात को सरल भाव से समझकर नम्रता से कहा, "लेकिन इसे देखने से क्या लाभ है भाभी? तुम देवी-देवता नहीं मानतीं, तुम इहलोक-परलोक को भी नहीं मानतीं, फिर मरने के बाद तुम किस प्रकार उनके पास जाओगी?"

किरणमयी ने कहा, "मरने के बाद मैं किसी के पास नहीं जाना चाहती।"

"कहीं, किसी के पास नहीं? बिल्कुल अकेली रहना चाहती हो?" इतना कहकर दिवाकर मानो हतबुद्धि होकर ताकता रहा और उसका प्रश्न सुनकर किरणमयी भी थोड़ी देर के लिए अवाक् हो गयी। लेकिन दूसरे ही क्षण वह ज़ोर से हँसकर बोली, "लेकिन जब-तब तुम मेरे सम्बन्ध में बातें क्यों सुनना चाहते हो, बबुआ?"

"क्या जानूँ भाभी, पर मुझे सुनने की बड़ी इच्छा होती है।"

किरणमयी ने बिछौने की चादर बिछा देने के बहाने मुँह घुमाकर कहा, "मैं एक आदमी के पास जाना चाहती हूँ। लेकिन वह मरण के उस पार नहीं है, इसी पार है।"

दिवाकर ने कहा, "लेकिन वे तो मरण के उस पार चले गये हैं। इस पार किस प्रकार फिर तुम उनको पाओगी।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "वह मेरा अब भी इसी पार में उपस्थित है, अब तक चली भी गयी होती लेकिन....।"

"लेकिन क्या भाभी?"

"केवल यदि मुझे वह बात देता कि वह मुझे चाहता है या नहीं।"

दिवाकर ने फिर आश्चर्य में पड़कर पूछा, "कौन इस पार है? कौन बतायेगा कि वह तुमको चाहता है या नहीं? तुम कहती क्या हो भाभी?"

किरणमयी के मुख पर पलभर के लिए एक मलिन छाया पड़ गयी, लेकिन क्षणभर में ही वह हट गयी और फिर उसका समूचा मुख उज्जवल हो उठा। कृत्रिम क्रोध के स्वर में उसने कहा, "तुम बड़े ही दुष्ट हो बबुआजी। अपना मुँह खोलकर स्वयं कुछ भी नहीं कहना

चाहते, केवल मेरे मुँह से एक सौ बार सुनना चाहते हो? जाओ, उसकी ख़बर मैं तुमको बात न सकूँगी।" यह कहकर अपने मुँह को ज़रा ओट में करके वह मुस्कराने लगी। दिवाकर ने यह हँसना देख लिया और एक अज्ञात आवेग में उसका हृदय तीव्र गति से धड़कने लगा। अपने को सम्भालकर उसने कहा, "मेरे पास कहने की कौन-सी बात है भाभी, कि मुँह खोलकर मैं तुमसे कहूँगा?"

किरणमयी उसकी ओर घूमकर खड़ी हो गयी। बोली, "इतने दिनों से तुमको मैंने इतना सिखाया वह सबका सब व्यर्थ हो गया? एक बार अपनी छाती पर हाथ रखकर देखो तो वहाँ एक भयानक बात खलबली मचा रही है या नहीं? सच कहो।"

दिवाकर ने मंत्रमुग्ध की भाँति कहा, "क्या बात है, मुझे क्या सिखाया तुमने?"

किरणमयी ने कहा, "तुमने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया बबुआजी। इसी आयु में क्या अभिनय करना सीख गये हो? लेकिन तुम मुँह खोलकर न कहोगे तो मैं भी कुछ न कहूँगी, इससे मेरी ही छाती फट जाये या तुम्हारी ही फट जाये!" यह कहकर ही एकाएक झुककर दिवाकर की ठोड़ी को एक बार हाथ से हिलाकर वह तेजी से कमरे से बाहर चली गयी।

दिवाकर को जैसे साँप सूँघ गया। इससे पहले कई बार किरणमयी ने तरह-तरह के मजाक किये थे, सैकड़ों बार छल से स्पर्श किया था, लेकिन आज का यह परिहास, यह स्पर्श कान तक झनझना उठे, धमनियों में जैसे बिजली दौड़ गयी। शरीर के प्रत्येक रक्त-बिन्दु के ऐसे द्रुत वेग का अनुभव इससे पहले उसे कभी नहीं हुआ था।

तैंतीस

बहुत दिनों के बाद आज फिर प्रातः काल अघोरमयी मुहल्ले की कई बूढ़ी स्त्रियों के साथ कालीजी के दर्शन करने कालीघाट गयी थीं। बता गयी थीं कि माता कि आरती हो जाने पर थोड़ी रात बीत जाने पर घर लौटूँगी।

रात के लगभग आठ बजे थे। दिवाकर अपने बिछौने पर चुपचाप लेटा हुआ था। उसके सिरहाने एक मिट्टी का दीपक टिमटिमाता हुआ जल रहा था। इसी क्षीण प्रकाश में थोड़ी ही देर पहले वह दुर्गेशनन्दिनी नामक पुस्तक पढ़ रहा था। उसी को मुँह पर रखकर वह सम्भवतः मन ही मन आयेशा के ही विषय में सोच रहा था। उसी समय आकर किरणमयी ने पूछा, "छोटे बबुआ, क्या सो रहे हो?"

दिवाकर ने मुँह पर से उस पुस्तक को बिना हटाये ही कहा, "नहीं, सिर में बहुत दर्द है?"

किरणमयी ने कहा, "तो अच्छी दवा हो रही है। सिरहाने दीपक जला रखने से क्या सिर-दर्द मिट जाता है बबुआजी?"

दिवाकर ने कहा, "यह पुस्तक कल ही लौटा देनी है, इसीलिए इसे समाप्त कर रहा हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "नेत्र बन्द करके आयेशा की चिन्ता करते रहने से ही पुस्तक समाप्त न होगी भाई, आँखें खोलकर पुस्तक पढ़ी जाती है। तो रहने दो, खा-पीकर ही समाप्त करना। अब चलो, खाना ठण्डा हो रहा है।"

दिवाकर की उठने की इच्छा नहीं थी। उसने विनय के साथ कहा, "अभी रहने दो भाभी, मौसी को आ जाने दो, तभी खाऊँगा।"

किरणमयी के कहा, "वह किस समय लौटेंगी, इसका क्या ठीक है बबुआ? आज मेरी भी तबियत ठीक नहीं है। सोचती हूँ, उनके कमरे में उनको भोजन ढ़ककर रख दूँगी। फिर थोड़ा सोऊँगी। उठो, तुमको खिला दूँ।" कहने के पश्चात् पास आकर दिवाकर की पुस्तक को ऊपर उठा दिया।

पास ही दिवाकर का लोहे का सन्दूक़ रक्खा था, वापस आकर उसी पर बैठ गयी और फिर से ताकीद करते हुए बोली, 'अब उठो भी!'

– "मेरी उठने की ज़रा भी इच्छा नहीं हो रही भाभी। इससे तो कोई बात करो – मैं सुनता हूँ।"

– "खाली बात करने से पेट तो नहीं भरता देवर जी, समय पर खाना भी पड़ता है। क्यों क्या ख़्याल है?" ज़रा चुप रहकर दिवाकर ने पूछा, "अच्छा भाभी, मेरे नहाने, खाने, सोने को लेकर तुम इतनी परेशान क्यों रहती हो?"

मुस्कुराकर उल्टे प्रश्न किया किरणमयी ने – "क्यों रहती हूँ, नहीं जानते?"

– "बिना बताये कैसे जानूँगा?"

– "यह तुम्हारी गलत बात है। बिना बताये भी जाना जाता है, और तुम जानते भी हो?"

शर्म से गड़ गया दिवाकर। कुछ देर चुप रहकर ज़रा उदास व करुण स्वर में बोला, "अच्छा भाभी, एक बात पूछूँ?"

– "एक क्यों, हजार पूछो। लेकिन पहले खा-पीकर मुझे छुट्टी दे दो – फिर अगर कहोगे तो सारी रात तुम्हारी बातों का जवाब देती रहूँगी। क्यों तैयार हो?" कहकर वह फिर हँसने लगी। इस परिहास का जवाब देने का प्रयास करत हुए कृत्रिम सहानुभूति के स्वर में दिवाकर बोला, "ठीक है भाभी, तुम शायद इसी सख़्त बक्से पर बैठे-बैठे सारी रात मेरी बातों का जवाब देती रहोगी?"

मुस्कुराकर किरणमयी ने कहा, 'मेरे इस बक्से पर बैठने से अगर तुम्हें कष्ट होता हो देवर जी तो तुम्हारे गुदगुदे बिस्तर पर ही बैठ जाऊँगी। क्यों? फिर तो क्षोभ नहीं होगा?'

फिर से दिवाकर के कान तक शर्म से लाल हो गये। करवट बदल कर लेट गया वह।

किरणमयी ने उसके पास आकर कहा, "चलो उठो। मुझे छुट्टी दो। करवट बदलकर सोने की आवश्यकता अब नहीं हैं!"

रसोईघर से नौकरानी का स्वर सुनायी पड़ा, "मैं यहाँ से सुन रही हूँ, तुम नहीं सुन पातीं बहू? माँ नीचे पुकार रही हैं।"

किरणमयी लौट आयी और फिर उसी सन्दूक़ पर बैठ गयी। क्रोध करके बोली, "घमण्ड तो कम नहीं है। मैं जाकर दरवाज़ा खोल दूँ, तू नहीं खोल सकती?"

"मेरे हाथ खाली नहीं हैं, इसी से कहना पड़ा है बहूँ" यह कहकर नौकरानी बड़बड़ाती हुई शीघ्रता से नीचे गयी। दरवाज़ा खोलते ही अघोरमयी झिड़ककर बोल उठी, "तुम दोनों के कान क्या एकदम बहरे हो गये हैं। आधे घण्टे से किवाड़ का कुण्डा बजा रही हूँ।"

इस बार नौकरानी भी गरज उठी। बोली, "अन्धी-बहरी न होती तो क्या तुम्हारे घर नौकरी करने आती माँ जी? अब तुम किसी आँख-कान वाली को रख लो, मुझे जवाब दे दो। रसोईघर से मैं सदर दरवाज़े की पुकार न सुन पाऊँगी।"

अघोरमयी ने कोमल होकर कहा, "बहू कहाँ है?"

दासी ने अस्फुट स्वर से कहा, "देवर को लेकर सारा दिन प्रेम-लीला हो रही है और क्या होगा? अभी जो मैंने दरवाज़ा खोल देने को कहा तो आँखें लाल करके मेरे गरूर का ताना मारने लगीं। "अरे, यह तो बड़े बाबू आ गये।" कहकर दासी सहमकर बगल में जा खड़ी हुई।

अघोरमयी ने मुँह घुमाकर कहा, "उपेन, चलो बेटा, ऊपर चलो।"

"चलो मौसी, चल रहा हूँ।" कहकर उपेन्द्र अघोरमयी के पीछे-पीछे सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। लेकिन दासी के मुँह से निकली सभी बातें उनके कानों में पहुँच चुकी थीं।

ऊपर आकर अघोरमयी ने कड़े स्वर से पुकारा, "कहाँ हो, बहू, ज़रा बाहर तो आओ। उपेन आ गया है।"

अँधेरी कोठरी में बैठी किरणमयी की छाती धड़कने लगी और बिछौने पर लेटे हुए दिवाकर का सर्वांग शिथिल हो गया।

अघोरमयी ने फिर पुकारा, "कहाँ गयी? एक चटाई तो लाकर बिछा दो बहू, उपेन्द्र क्या खड़ा ही रहेगा?"

किरणमयी ने बाहर आकर बरामदे में चटाई बिछा दी। उसके मुँह से सहसा बात नहीं निकली।

उपेन्द्र ने निकट आकर प्रणाम करके कहा, "आप अच्छी तरह तो हैं भाभी?"

किरणमयी ने अपने को सम्भाल लिया। गरदन हिलाकर कहा, "हाँ, तुम कैसे हो बबुआजी? बहू अच्छी तरह हैं न? ख़बर न देकर इस प्रकार अचानक कैसे आ गये?"

लेकिन किरणमयी का कण्ठ-स्वर सुनकर उपेन्द्र आश्चर्य में पड़ गये। गले में मानो कहीं रस का लेशमात्र भी नहीं था, बिल्कुल ही सूखा और नीरस था।

उपेन्द्र ने कहा, "मुवक्किल के पैसों से यह आना हुआ है भाभी, फिर कल तीसरे पहर ही मुझे लौट जाना पड़ेगा। कालीघाट का काम समाप्त करके बाहर निकलते ही मैंने मौसी को देखा तब से साथ ही साथ हूँ। दिवाकर की ख़बर क्या है, बताइये तो। बाहर गया है क्या?"

किरणमयी ने कहा, "सिर में दर्द है इसीलिए लेटे हुए हैं। क्या मालूम सम्भवतः सो गये

हैं।”

अघोरमयी का स्वभाव अच्छा नहीं था। यों तो बहू का दोष दिखाने का अवसर पाते ही उसे कभी छोड़ती नहीं थीं, उस पर से दिवाकर पर भी उनका चित्त प्रसन्न न था। सबेरे उसको अपने साथ लेकर उन्होंने कालीघाट जाना चाहा था, लेकिन काम का बहाना करके दिवाकर ने अस्वीकार कर दिया था। तीखे स्वर से बोलीं, “अभी तो तुम उसके कमरे से निकली हो बहू, वह सो गया है या नहीं, यह भी तुम नहीं जानतीं?”

“नहीं जानती।” कहकर किरणमयी ने सास पर एक विषभरी दृष्टि डाल दी।

उपेन्द्र ने ऊँचे स्वर से पुकारा, “दिवाकर!”

कोई आहट नहीं मिली।

फिर उन्होंने पुकारा, “दिवाकर सो गया है क्या?”

वह जाग ही रहा था, इस प्रकार की उपेक्षा न कर सका। ‘आता हूँ’ कहकर धीरे-धीरे बाहर आ खड़ा हुआ। प्रणाम करके अस्पष्ट स्वर से पूछा, “तुम कब आ गये छोटे भैया?”

“सबेरे। तेरे सिर में दर्द है क्या?”

“बहुत साधारण!”

“अघोमयी ने क्रोध करके कहा, “सिर में दर्द होगा क्यों नहीं बेटा। पहले तो कुछ इधर-उधर घूम-फिर भी आते थे। अब तो तुम घर से एकदम ही बाहर नहीं निकलते। सबेरे मैंने कहा, ‘मेरे साथ ज़रा कालीघाट चलो तो बेटा।’ तुमने जवाब दिया, ‘नहीं मौसी, मुझे काम है।’ तुमको कौन काम था, बताओ तो?”

दिवाकर चुपाचाप खड़ा रहा। उपेन्द्र ने पूछा, “चिट्ठी-पत्री लिखना तूने बन्द कर दिया है। किसी कॉलेज में भर्ती हुआ?”

दिवाकर ने मीठे स्वर से कहा, “कॉलेज खुलते ही भर्ती हो जाऊँगा। अभी तक नहीं हुआ।”

यह सुनकर उपेन्द्र के दोनों नेत्र अंगारे की तरह जलने लगे। बोले, “कॉलेज खुले सोलह-सत्रह दिनों से अधिक हो गये हैं – तुझे सम्भवतः यह भी जानकारी नहीं है?”

दिवाकर का चेहरा काग़ज़ जैसा सफ़ेद पड़ गया। वह काठ की मूर्ति की भाँति खड़ा रहा।

अघोरमयी अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगीं, “उसको ख़बर कैसे होगी उपेन? इन दोनों में दिन-रात न जाने क्या हँसी-खेल, काना-फूसी, गप्प-शप्प होता रहता है इसे ये ही लोग जानते हैं! मैं बार-बार कहती हूँ, ‘बहू, पराया लड़का है, लिखने-पढ़ने के लिए यहाँ आया है, उसके साथ आठों पहर इतना मिलना-जुलना किसलिए? भले ही देवर है – जवान देवर के साथ कुछ लाज-शर्म भी करनी चाहिए?’ लेकिन कौन किसकी सुनता है?”

उपेन की ओर देखकर बोलीं, “तू यहाँ बैठा है उपेन, इसीलिए, नहीं तो अब तक आकर मेरा झोंटा मुट्ठी में पकड़ लेती। यह मेरी बहू ऐसी ही लक्ष्मी है! मैं शपथपूर्वक कह सकती हूँ उपेन, सब दोष इसी मुँहजली का है।”

किरणमयी चुपचाप निकट ही खड़ी थी – एक बात का भी उसने उत्तर नहीं दिया। धीरे-धीरे वह रसोईघर की ओर चली गयी।

अघोरमयी ने उसी प्रकार क्रुद्ध स्वर में कहा, "अजी, बड़े आदमी की लड़की! मेरे लड़के ने दिन भर खाया नहीं है – कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करोगी? इस प्रकार चले जाने से तो काम न चलेगा!"

किरणमयी लौटकर खड़ी हो गयी। फिर स्वाभाविक स्वर से बोली, "इसी के लिए जा रही हूँ माँ।" उपेन्द्र को लक्ष्य करके कहा, "भाग मत जाना बबुआ! मुझे कुछ पूड़ियाँ बना लाने में दस मिनट से अधिक समय न लगेगा।"

स्तब्ध मूर्च्छितप्राय दिवाकर से उसने कहा, "छोटे बबुआ, चलो तुमको वहीं खाने को दे दूँ – रसोईघर में चलो। माँ, दासी को क्या दुकान पर ज़रा भेज दूँ बबुआजी के लिए कुछ मिठाई खरीद लाये?"

अघोरमयी या उपेन्द्र कोई भी उसकी बातों का उत्तर न दे सके। इस बहू के अपरिमित संयम और असीम अहंकार ने मानो एक ही साथ बुद्धि के परे होकर, कुछ देर के लिए इन लोगों को निर्वाक वज्राहत-सा बना दिया।

लगभग एक घण्टे तक बातचीत करके अघोरमयी संध्या-वंदना और माला जपने के लिए चली गयी। किरणमयी ने निकट आकर कहा, "मैंने अपने कमरे में तुम्हारा खाना परोस रखा है, बबुआ, उठो।"

उपेन्द्र चुपचाप उठकर आसन पर जा बैठे। किरणमयी पास ही भूमि पर बैठ गयी। बोली, "आज थोड़ा-बहुत जो कुछ है, इसी से खा-पी लो बबुआजी, और अधिक वस्तुएँ पकाने से व्यर्थ में बड़ी रात हो जाती।"

उपेन्द्र ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। दीपक के क्षीण प्रकाश में उनका चेहरा पत्थर की भाँति कठोर दिखायी पड़ रहा था। भोजन की थाली को एक ओर ठेलकर वह बोले, "भाभी, खाने के लिए इतना ही यथेष्ट है लेकिन मैं खाने के लिए नहीं आया हूँ, आपके साथ एकान्त में दो बातें करने आया हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "यह तो मेरा अहोभाग्य है, लेकिन खाओगे क्यों नहीं?"

उपेन्द्र पलभर टकटकी बाँधे निहारते रहे। उनका कठोर मुख मानो और भी कठोर दिखायी पड़ने लगा। उन्होंने कहा, "आपका छुआ खाने में मुझे घृणा हो रही है।"

किरणमयी चुपचाप गरदन झुकाये बैठी रही। बड़ी देर बाद मुँह ऊपर उठाकर वह धीरे-धीरे बोली, "तो इस दशा में खाने की आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर उसने फिर सिर झुका लिया। बाद को फिर मुँह ऊपर उठाकर ज़रा हँस पड़ी। बोली, "घृणा होने की तो बात ही है! लेकिन मुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनूँगी, ऐसा मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। केवल एक ही मनुष्य ऐसा था, जो घृणा से थाली ठेल सकता था – वह है सतीश। तुम नहीं बबुआ।"

उपेन्द्र क्रोध से, घृणा से, आश्चर्य से अवाक होकर देखने लगे। किरणमयी उसी प्रकार

शान्त कठोर भाव से कहने लगी, “तुम्हारा क्रोध कहो, तुम्हारी घृणा कहो, सब ही तो दिवाकर के लिए है न बबुआजी। लेकिन विधवा के लिए जैसा वह है, वैसे ही तो तुम हो, उसके साथ मेरा सम्बन्ध कहाँ तक, कैसा जा पहुँचा है, यह तो तुम लोगों का केवल अनुमान मात्र है। लेकिन उस दिन जबकि अपने ही मुँह से मैंने तुम्हारे प्रति अपना अनुराग प्रकट कर दिया था, उस दिन तो मेरी दी हुई भोजन की थाली इस प्रकार घृणा से तुमने हटा नहीं दी थी। अपनी बात होने से क्या कुलटा स्त्री के हाथ की मिठाई में प्रेम की मिठास अधिक मिलती है बबुआ?”

उपेन्द्र ने अन्दर के न दबाने योग्य अपने क्रोध को बलपूर्वक रोककर कहा, “भाभी, आपको स्मरण दिला देता हूँ कि आज भी मेरी सुरबाला जीवित है। वह कहती है, ‘मुझे जो एक बार स्नेह करता है उसकी मजाल नहीं है कि फिर किसी दूसरे को स्नेह करे। ‘मैंने केवल इसी भरोसे पर दिवाकर को आपके हाथों सौंप दिया था! मैंने सोचा था, इन विषयों में सुरबाला से कभी भूल नहीं होती।”

बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि किरणमयी ने अकस्मात अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा, “ठहरो बबुआ, उससे भूल हुई है तुमसे नहीं हुई है, इस बात पर तुमने कैसे संशय छोड़कर विश्वास कर लिया।”

उपेन्द्र एकाएक उठ खड़े हुए। बोले, “रात बीतती जा रही है, तर्क करने का समय मेरे पास नहीं है भाभी। मैं आपको पहचानता हूँ! लेकिन इस बात को आप निश्चित रूप से जान लीजिये कि आप किसी को प्यार न कर सकेंगी, वह सामर्थ्य ही आप में नहीं है। आप केवल सर्वनाश ही कर सकेंगी। छिः! छिः! अन्त में दिवाकर को.....।”

घृणा से उनका गला रुँध गया। लेकिन सामने ताककर देखा, किरणमयी का समूचा चेहरा ऐसा बदरंग हो गया है मानो किसी ने उसकी छाती के ठीक बीच में गोली मार दी हो।

दरवाज़े के बाहर से अघोरमयी ने पूछा, “तुम्हारा खाना हो चुका बेटा उपेन?”

“नहीं मौसी, खाया नहीं, तबीयत ठीक नहीं है।”

“तबीयत ठीक नहीं है? यह क्या है रे? तो आज फिर यहीं सो जा, अब मत जा बेटा!”

“नहीं मौसी, मुझे जाना ही होगा।” कहकर उपेन्द्र बाहर चले आये, दिवाकर के कमरे के सामने आकर उन्होंने पुकारा, “दिवा!”

दिवाकर दीपक बुझाकर लेटा हुआ था। उसके हृदय की बात केवल अन्तर्यामी ही जान रहे थे। अस्पष्ट शब्दों से “हाँ” कहकर काँपते पैरों से वह बाहर आकर खड़ा हुआ।

उपेन्द्र ने कहा, “अपना सामान बाँधकर ठीक कर ले, मेरे साथ चलना पड़ेगा।”

अघोरमयी आश्चर्य में पड़कर घबराहट के साथ बोलीं, “यह क्या उपेन, इस रात के समय लड़का कहाँ जायेगा?”

“मेरे साथ जायेगा। इसके लिए चिन्ता क्या है मौसी। जल्दी सब ठीक-ठाक कर ले रे, मैं गाड़ी ला रहा हूँ।”

अघोरमयी उपेन्द्र का हाथ पकड़कर विनय करने लगीं, “नहीं बेटा, आज अमावस्या की

रात में किसी प्रकार भी उसका जाना न हो सकेगा। लड़का ही तो है, हो सकता है कि कुछ अनुचित ही कर गया हो, यहाँ न रखना चाहो तो कल-परसों चला जायेगा, लेकिन आज रात को तो मैं किसी प्रकार भी न जाने दूँगी।"

बाधा पाकर उपेन्द्र ने हताश होकर कहा, "लेकिन उसको एक रात भी यहाँ रखने की मेरी इच्छा नहीं है मौसी। अच्छा, आज अमावस्या की रात बीत जाने दो, लेकिन कल सबेरे फिर आप मत रोकियेगा। दिन में दस बजे के भीतर ही उसे ज्योतिष के घर भेज देना।" यह कहकर अघोरमयी को प्रणाम करके शीघ्रता से वह नीचे उतर गये। मुख्य द्वार के निकट अँधेरे में पीछे से उनकी चादर को किसी ने खींचा। मुँह फेरकर देखते ही किरणमयी ने झुककर उनके दोनों पाँव पकड़ लिए। कहा, "मेरी छाती फटती जा रही है बबुआ, सब झूठी बातें हैं। छिः! छिः! तुम मझे ऐसी नीच समझ रहे हो!"

"चुप रहिये! बहुत अभिनय आप कर चुकीं, अब और नहीं।" कहकर उपेन्द्र ने अत्यन्त घृणा से उसके माथे को ज़ोर से धकेल दिया। धकेलने के साथ ही पैरों को छोड़कर वह एक ओर झुककर गिर पड़ी।

"नास्तिक! अपवित्र! निर्लज्ज!" कहकर उपेन्द्र उसकी ओर तनिक भी न देखकर शीघ्रता से बाहर चले गये।

किरणमयी फौरन उठ बैठी। सम्भवतः उसने चिल्लाकर कुछ कहना चाहा, लेकिन उसके गले से आवाज़ नहीं निकली। केवल खुले दरवाज़े की ओर निहारती रही और नेत्रों से मानो आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं।

बहुत दिनों पूर्व, ठीक इसी स्थान पर खड़ी होकर उसके दोनों नेत्रों से ऐसी ही उन्मत्त दृष्टि, ऐसी ही प्रज्वलित बह्नि-शिखा दिखायी पड़ी थी जिस दिन सतीश के साथ उपेन्द्र पहले-पहल यहाँ आकर बाहर निकले थे। फिर आज अन्तिम विदाई के दिन भी उसी के विरुद्ध उन्हीं दोनों आँखों में उसी तरह आग जलने लगी।

"अरी बहू! तुम इस तरह क्यों बैठी हो?"

"तू क्या घर जा रही है।" कहकर किरणमयी हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और दासी का हाथ पकड़कर बोली, "ज़रा मेरे कमरे में चल तो, तुझसे दो बातें कर लूँ।" यह कहकर वह उसे बलपूर्वक अपने कमरे में खींच ले आयी, और चिराग़ तेज़ करके उसने बक्स खोलकर उसमें से चाँदी के दो मोटे-मोटे कड़े निकालकर दासी के हाथ में दे दिये और कहा, "तेरी लड़की को पहनने के लिए दे रही हूँ, नहीं-नहीं, मेरे सिर की कसम, तुझे लेना ही पड़ेगा, सम्भवतः फिर कभी भेंट न हो।" यह कहते-कहते उसकी आँखों से झरझर आँसू बहने लगे।

"यह कैसी बात बहू!" कहकर दासी विह्वल दृष्टि से निहारती रही।

किरणमयी ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा, "तेरे अतिरिक्त मेरा अपना कोई नहीं है। तू मुझे यहाँ से बचा। यहाँ रहने से मेरी छाती फट जायेगी।"

दासी ने चुपचाप किरणमयी को सिर से पैर तक ध्यान से देखकर कहा, "मैं सब समझती हूँ बहू, मैं भी तो औरत ही हूँ। मेरे मर्द ने जिस दिन पोखरे के घाट पर रोककर कहा था,

'मैं अब जाता हूँ मुक्ता, सम्भवतः अब फिर भेंट न होगी!' तब मैंने भी तो उसके पैरों पर गिरकर रोकर कहा था, 'मुझे अपने साथ ले चलो, छोड़कर चले जाने से मेरी छाती फट जायेगी!' शायद कल सवेरे ही छोटे बाबू जाने वाले हैं?"

किरणमयी ने कहा, "हाँ! लेकिन कलकत्ता में अब हमारा रहना न हो सकेगा। कहाँ जायें, बता तो भला?"

दासी तनिक भी चिन्ता न करके बोली, "तो तुम अराकान जाओ न, सुख से रहोगी। मेरी छोटी बहिन भी वहीं है। मेरा नाम लेने से वह तुम लोगों को बड़े आदर से रखेगी। आज है मंगलवार, कल तड़के ही जहाज छूटेगा। वहाँ जाओगी बहू?"

किरणमयी ने दासी का हाथ थामकर कहा, "जाऊँगी।"

दासी ने धैर्य देकर कहा, "तुम लोग तैयार रहना, मैं तड़के ही गाड़ी लेकर आऊँगी। कोई भी न जान सकेगा कि तुम लोग कहाँ चले गये। जाओ बहू, जाओ, छोटे बाबू को छोड़कर तुम बचोगी नहीं।"

"बबुआजी!"

उस समय सम्भवतः भोर का समय था, दिवाकर चौंककर उठ बैठा। ठीक सामने ही किरणमयी दिखायी दी। दिवाकर ने चौंककर कहा, "कौन? भाभी हो क्या?"

"हाँ बबुआजी, मैं ही हूँ।" कहकर वह विह्वल दिवाकर की छाती के ऊपर अचानक औंधी होकर गिर पड़ी। बोली, "बबुआजी, सुनती हूँ, तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहाँ जाओगे, देखूँ तो!"

उत्तर में दिवाकर अवाक हो गया, उसके दोनों नेत्रों में आँसू भर आये।

किरणमयी उठ बैठी और आँचल से उसके नेत्र पोंछकर बोली, "छिः! क्यों रोते हो भाई!"

"भाभी, मैं तो निरुपाय हूँ। छोटे भैया ने तो आज सबेरे ही मुझे चले जाने को कहा है।"

उपेन्द्र का नाम सुनते ही किरणमयी क्रोध से अन्धी होकर बोली, "कौन है छोटे भैया! कौन है यह! वह क्या मेरी अपेक्षा भी तुम्हारा अधिक अपना है। तुमको देखे बिना क्या उसकी भी छाती फट जाती है? नहीं बबुआ, संसार में किसी में ऐसी शक्ति नहीं है कि हम दोनों को अलग कर सके। बाहर गाड़ी खड़ी है, चलो, हम लोग चलें।"

"कहाँ भाभी?"

"जहाँ मैं ले चलूँगी वहीं चलना होगा।"

"अच्छा चलो।" कहकर दिवाकर चलने को तैयार हो गया। एक बार उसको यह विचार हुआ कि वह जागता नहीं है, नींद के नशे में स्वप्न देख रहा है। लेकिन दूसरे ही क्षण किरणमयी का अनुसरण करता हुआ धीरे-धीरे बाहर आ गया।

चौंतीस

कोई कीड़ा जैसे पतंगे को बरबस खींच लाता है, उसी प्रकार मानो किसी दुर्निवार जादू मंत्र के बल से किरणमयी अर्धचेतन अभागे विमूढ़चित्त दिवाकर को जहाजघाट पर खींच ले गयी और टिकट लेकर अराकान जाने वाले जहाज पर जा बैठी। इस जहाज में भीड़ न रहने के कारण जहाज के अधिकारियों ने इन दोनों को पति-पत्नी समझकर एक केबिन में दिवाकर और किरणमयी को स्थान दे दिया। उसी जगह किरणमयी को बिठाकर दिवाकर डेक के एक एकान्त स्थान पर रेलिंग पकड़कर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे डेक पर यात्रियों की भीड़ कम होने लगी, कुलियों का हल्ला-गुल्ला बन्द हो गया और लंगर उठाये जाने के कर्कश शब्द से जहाज के अन्दर बैठे दिवाकर की छाती के अन्दर भी कम्पन होने लगा। पलभर में जहाज भागीरथी के मध्य भाग में पहुँचा और अपार समुद्र में प्रवेश करने के उद्देश्य से धीरे-धीरे गतिमान होने लगा। जब ठीक मालूम हो गया कि जहाज चल रहा है तब दिवाकर की दोनों आँखें आसुँओं से भर गयीं और उसने अपनी दोनों हथेलियों से मुख को ज़ोर से दबाकर किसी प्रकार रुलाई के वेग को रोककर अपनी लज्जा को छिपा लिया। पूरब की ओर का आकाश उस समय बालसूर्य की आभा से लाल हो उठा था और उधर उसके आने के विषय में सन्देह न रखने वाले उपेन भैया ज्योतिष साहब के घर शय्या त्याग कर उठे नहीं थे। भाग जाने के उद्देश्य से घर से बाहर निकल पड़ने के समय से जो भयंकर अव्यक्त ग्लानि दिवाकर के चि त्त में एकत्रित होती जा रही थी, उसका अन्त कितना कुत्सित और दुःखकर है, उसका दृश्य अब उसके नेत्रों के सामने स्पष्ट हो उठा। एक भले घर की गृहस्थ बहू को कुल से निकालकर वह स्वयं किसी अनजान देश में ले जा रहा है। ऐसी असम्भव बात उसके हृदय में अब तक आयी ही नहीं थी। अपनी शिक्षा, अपने संस्कार, चरित्र, स्कूल, कॉलेज, देश, मित्र और सर्वोपरि अपने उपेन भैया, सभी से वह किस प्राकर निर्मम भाव से विच्छिन्न होता जा रहा है, इस बात को वह उसी समय स्पष्ट रूप से समझ गया, जिस समय कि उसने देख लिया कि वास्तव में जहाज का चलना शुरू हो गया है। अपने उपेन दादा के लिए वह आज एक बालक मात्र है। उसी उपेन भैया का मनोभाव, इस समाचार को सुनकर कैसा हो उठेगा, यह स्मरण करके उसकी छाती की धड़कर बन्द-सी होने लगी। उसी स्थान पर वह दोनों घुटनों के बीच माथा टेककर बैठ गया और एक ही क्षण में उसकी अदम्य आँखों से आँसू झरने लगे। उसी समय किरणमयी उसके पास आ खड़ी हुई और उसके माथे पर हाथ रखकर स्नेह-भरे स्वर से बोली, "बबुआ, ज़रा कमरे में चलो।"

बहुत चेष्टा से और बड़ी देर में दिवाकर अपनी आँखों के आँसू रोककर मुँह झुकाये उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे किरणमयी के पीछे-पीछे केबिन में जा पहुँचा। किरणमयी ने दरवाज़ा बन्द करके दिवाकर को अपने पास बिठाया। उसके दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर, उसके मुँह को देखकर अत्यन्त करुण स्वर से पूछा, "तुम रो क्यों रहे थे भाई?"

यह प्रश्न सुनकर दिवाकर के नेत्रों से फिर आँसू झरने लगे।

किरणमयी ने अपने आँचल से उन्हें पोंछकर कहा, "सच-सच बताओ, बबुआ, तुम मुझे प्यार करते हो या नहीं?"

दिवाकर कुछ भी न कह सका। बिल्कुल ही छोटे बच्चे की भाँति घबराने लगा।

किरणमयी ने आँसू से भीगे उसके मुख को अपनी छाती पर खींचकर दबा लिया और धीरे-धीरे उसके माथे पर उँगलियाँ फेरती हुई चुपचाप सान्त्वना देने लगी।

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया। बड़ी देर में दिवाकर की अश्रुधारा अपने आप ही समाप्त हो गयी तो पहले की अपेक्षा उसका मन भी कुछ हलका हो गया। वह उठ बैठा। फिर कुछ भी न कहकर दरवाज़ा खोलकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया। जहाज उस नदी के तट से हटकर टेढ़ी-मेढ़ी चाल से, रेत से बचता हुआ, जल को नापता हुआ धीरे-धीरे समुद्र की ओर चला जा रहा था और छोटी-छोटी डोंगियाँ और माल से लदी नावें, बड़े जहाज की बड़ी मर्यादा की रक्षा करती हुई दूर-ही-दूर रहकर अत्यन्त सावधानी से बढ़ती जा रही थीं।

दिवाकर रेलिंग के पास एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया और दूरी पर या निकट के जल-थल में जो कुछ उसे दिखायी पड़ने लगा, उसी से मन-ही-मन अत्यन्त पीड़ा तथा वेदना के साथ सदा के लिए विदाई लेने लगा और अन्तःकरण की असह्य पीड़ा से अन्तर्यामी से निवेदन करने लगा।

थोड़ी देर में केबिन से फिर पुकार हुई।

"दिन बहुत चढ़ गया। तुम स्नान कर आओ। तब तक मैं तुम्हारे खाने-पीने का प्रबन्ध करती हूँ।"

वह स्वयं अभी-अभी स्नान कर चुकी थी। पीठ पर भीगे बालों को फैलाकर केबिन के फ़र्श पर बैठकर हण्डिया का मुँह खोलकर वह खाद्य-सामग्री का हिसाब-किताब लगा रही थी। रात में ही नौकरानी की सहायता से उसने यह सब सामग्री जुटा ली थी।

दिवाकर ने उत्तर दिया, "तुम खाओ, मुझे तनिक भी भूख नहीं है भाभी।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठकर देखा। बोली, "यह नहीं होगा। तुम न खाओगे तो मैं भी न खाऊँगी। तुम इस समय मेरे सर्वस्व हो, तुमको खिलाये बिना मैं किसी प्रकार भी न खा सकूँगी।"

यह बात सुनकर दिवाकर लज्जा से गड़-सा गया और कोई भी बात न कहकर बाहर चले जाने को ज्यों ही तैयार हुआ कि किरणमयी ने उसे पकड़कर कहा, "यह तो सप्तरथियों का चक्रव्यूह है बबुआजी, भागकर कहाँ जा रहे हो? प्रवेश करने का पथ है, लेकिन बाहर निकलने का पथ क्या सभी जानते हैं? यदि यही इच्छा थी तो इस विद्या को उपेन भैया से तुमने सीख क्यों नहीं लिया?"

कुछ देर मौन रहकर वह बोली, "परिहास की बात नहीं है बबुआजी, मेरी बात मानो – जाओ, स्नान कर आओ और कुछ खा लो। उसके बाद बाहर रेलिंग पकड़कर जितनी इच्छा हो रोते रहना, मैं रोकूँगी नहीं। लेकिन यह भी मैं बताये देती हूँ बबुआ, कि आँखों के आँसू की इसके बाद बहुत आवश्यकता पड़ेगी, बिना आवश्यकता के व्यर्थ में खर्च कर डालने से पीछे कहीं पछताना न पड़े।"

दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। आने वाले दिनों के इस निष्ठुरतम परिणाम के संकेत को सिर झुकाये सुनकर स्नान के लिए चुपचाप बाहर चला गया और सूने कमरे में किरणमयी भी मौन होकर बैठी रही। क्योंकि उसके उपहास के इस शूल ने केवल दिवाकर को ही नहीं, वरन सहस्रों गुना बढ़कर स्वयं उसकी अपनी ही छाती में भी यातना भर दी।

बाहर आकर दिवाकर इधर-उधर घूमने लगा। फिर जहाज के जिस हिस्से में तीसरे दर्जे के यात्री एक-दूसरे से सटे हुए बैठे थे वहीं चला गया और विभिन्न प्रान्तों के तरह-तरह के यात्रियों में रहकर अपने को भुला रखने का उपाय खोजने लगा। इस भारतवर्ष में कितनी विभिन्न जातियाँ हैं, कितने विचित्र पहनावे हैं, कितनी अज्ञात भाषाएँ हैं यह पहले-पहल अपने जीवन में देखकर दिवाकर आश्चर्य में पड़ गया। जहाज के अन्दर भी वही जनता की भीड़ थी और तरह-तरह की भाषाओं के मिश्रण से जो अपरूप शब्द उठ रहे थे वे भी विचित्र थे। सीढ़ियों से उतरकर दिवाकर वहाँ जा पहुँचा और निर्विकार आश्चर्य से स्तब्ध हो रहा।

थोड़े से स्थान पर अधिकार जमाने के लिए इसके पहले यात्रियों में जो ठेलाठेली और धक्कम-धक्का मचा हुआ था, वह अब बन्द हो गया था। अपने-अपने अधिकृत स्थान पर बिछौना बिछाकर अपने सामने सामानों का घेरा बना ये यथासम्भव निश्चिन्त हो गये थे और अब उनको अपने निकट के यात्रियों पर ध्यान देने का भी अवसर मिला था। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे का सन्तोषजनक परिचय पाने के लिए उत्सुक था।

एक स्थान पर दिवाकर की दृष्टि पड़ते ही उसने देखा कि एक बंगाली चिल्लाकर उसे बुला रहा है, "बाबूजी, इधर आइये, ज़रा आइये!"

उस व्यक्ति के पास एक हृष्ट-पुष्ट स्त्री बैठी हुई थी। उसने भी उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से उससे आने का अनुरोध किया। दिवाकर बड़े परिश्रम से बहुत-से लोगों के तिरस्कार और झिड़कियाँ सहता, भीड़ के बीच में सावधानी से पैर रखता हुआ उनके पास जा पहुँचा। उसके पहुँचते ही उस मनुष्य ने अपने पास के टीन के सन्दूक़ पर बैठने की जगह दिखाकर कहा, "यह मेरा सन्दूक़ टीन का नहीं है, असली लोहे का है, आराम से बैठिये। आप कौन हैं?"

दिवाकर ने कहा, "ब्राह्मण।"

उसी क्षण उस मनुष्य ने दोनों हाथ बढ़ाकर दिवाकर के जूतों के ऊपर से ही पदधूलि लेकर अपनी जीभ पर, माथे पर और गले पर लगाकर कहा, "सोच रहा था, ये कई दिन कैसे बीतेंगे। आप कहाँ बैठे हैं?"

दिवाकर ने उँगली से ऊपर दिखा दिया।

उसने पूछा, "आप केबिन में हैं? चाहे जहाँ रहें, संध्या को रोज एक बार पदधूलि दे जाया करें। कहाँ जाइयेगा? रंगून?"

दिवाकर ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं अराकान।"

"अराकान में तो मैं भी रहता हूँ। आज बीस वर्षों से मैं वहीं रह रहा हूँ। आपको तो मैंने कभी नहीं देखा। क्या पहली बार जा रहे हैं? वहाँ आपके कोई स्वजन सम्बन्धी हैं क्या? नहीं हैं? नहीं भी हों तो क्या – कुछ भी चिन्ता मत कीजियेगा। आप लोगों की दया से

मैं वहाँ के एक मकान का मालिक हूँ। मेरे मकान में बहुत-से कमरे खाली पड़े हुए हैं। आप मेरे साथ ही चलिए।" पास बैठी हुई स्त्री को दिखाकर कहा, "यह मेरी मकान मालकिन हैं।"

यह स्त्री अब तक टकटकी बाँधे दिवाकर की ओर देख रही थी। उसने बहुत ही मोटे गले से पूछा "क्या आपकी पत्नी आपके साथ हैं?"

दिवाकर ने मुँह लाल करके सिर हिलाकर किसी प्रकार बतला दिया, "हाँ, साथ ही हैं।" उसकी बातें टेढ़ी-मेढ़ी थीं, ललाट पर गोदना था, माँग में सिन्दूर की चौड़ी रेखा थी, नाक में नथ थी, और दोनों कानों में बीस-तीस बालियाँ थीं। आँचल का जो थोड़-सा भाग माथे पर था, वह भी उत्साह तथा आवेश से नीचे खिसक गया। उसने कहा, "बहुत बुरा स्थान है – मग लोगों का देश हैं – लेकिन मेरे मकान की ओर आँख उठाने का साहस किसी का नहीं है – मैं साधारण मकान वाली नहीं हूँ। उस देश में ऐसा कोई आदमी नहीं है जो कामिनी से डरता न हो। आप मेरे ही मकान में रहियेगा, डरने की कोई बात नहीं है। किराया पाँच रुपया है, आप चार ही रुपया महीना दीजियेगा। ऐ मकान वाले, आपके कारखाने में इनको कोई काम मिल ही जायेगा।"

मकान वाले ने ज़रा हिचककर कहा, "कोई न कोई काम मिल ही जायेगा।"

दिवाकर ने पूछा, "आपका नाम?"

"हरीश भट्टाचार्य! नहीं, नहीं, ऐसा न करें – अपराध लगेगा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, केवट (मल्लाह) हूँ।" पढ़-सुन लेता हूँ, इसलिए लोग आदर से भट्टाचार्य कहते हैं। कण्ठी धारण करके माँस-मछली का त्याग कर दिया है। बहुत देख लिया जीवन में – बाकी नहीं रहा कुछ। दो-ढाई हजार रुपये खर्च करके चारों धाम की यात्रा कर आया हूँ, चार साल हो गये घर में देवी की स्थापना भी कर ली थी! इसलिए घरवाली से कहता हूँ कि चल, अराकान में जो कुछ भी है, बेच खोचकर किसी तीर्थस्थान पर चलें। कहकर उदास भाव से ऊपर आसमान की ओर देखने लगे भट्टाचार्य महाशय। घरवाली ने भी समर्थन कहते हुए कहा, मैं भी तो यही कहती हूँ। कच्ची उम्र में अदृष्ट के फेर से जी भी किया, किया – वह चेहरे पर तो लिखा नहीं है – चल अब चलें। कहकर वह भी चुप होकर ऊपर की ओर देखने लगी। दिवाकर को अभी इतनी समझ तो थी नहीं – उनकी बातों का यथार्थ अर्थ न समझकर चुप बैठा रहा।

मकान वाली ने कहा, "ऐ मकान वाले, अब तो चिवड़ा भिगो दूँ।"

मकान वाले का ध्यान टूट गया। धीरे-धीरे उसने कहा, "भिगो दो।"

दुनियादारी से अनजान दिवाकर इस संकेत का अर्थ अब समझ गया। वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "मैं अब जा रहा हूँ, फिर आऊँगा।"

हरीश से विदा लेकर दिवाकर ऊपर डेक पर आकर पुनः एक आरामकुर्सी पर बैठ गया और बैठे-बैठे उसी तरह सो गया। उसे पता भी नहीं लगा कब नदी का गंदला जल पार करके जहाज कृष्णवर्ण समुद्र के बीच आ गया था। अस्फुट कोलाहल से आँख खुली तो

देखा सूर्य अस्त हो रहा था। उसी को देखते हुए लोग ज़ोर-ज़ोर से बातचीत कर रहे थे। जिस सूर्यास्त का विवरण उसने अंग्रेजी व बंगला की किताबों में कई बार पढ़ा था, यही वह सूर्यास्त था! यही वह वास्तविक समुद्र था! चारों ओर नज़र दौड़ाकर अनन्त जलराशि को देखा और फिर अस्ताचल की ओर जाते सूर्य को नमस्कार किया। फिर से आँखें भर आयीं। सूर्य अस्त हो गया, आकाश मलिन हो गया और धीरे-धीरे अँधेरा गहराने लगा, पर वैसे ही उसी तरह निश्चेष्ट बैठा रहा वह।

रात की शीतल वायु तेज गति से बह रही थी। ऊपर डेक प्रायः जनशून्य था। माथे पर कृष्ण पक्ष का गम्भीर नीला आकाश था, नीचे वैसा ही समुद्र का नीला जल था। उसके ही बीच दिवाकर अपने अन्तःकरण की गम्भीर कालिमा को निमिज्जत करके कुछ क्षण के लिए शान्ति अनुभव कर रहा था। उसी समय एकाएक किसी के कोमल हाथों के स्पर्श से उसका ध्यान भंग हो गया। घूमकर देखा किरणमयी है।

किरणमयी ने कहा। क्या हो रहा है बबुआ! तुम क्या आमरण अनशन व्रत कर रहे हो?"

दिवाकर ने उत्तर नहीं दिया, चुप ही रहा।

किरणमयी ने पलभर उत्तर की प्रतीक्षा की। 'कमरे में चलो,' कहकर वह बलपूर्वक उसे केबिन में खींच ले गयी और भूमि पर बिछाये हुए बिछौने पर बिठाकर बोली, "कुछ भी यदि समझते तो कम से कम इतना तो अवश्य ही समझ सकते हो कि बहुत रोने-धोने से भी तो जहाज तुमको देश को वापस न ले जायेगा। बिना खाये सूख कर मर जाने पर भी नहीं, समुद्र के जल में कूद पड़ने पर भी नहीं। अराकान तुमको चलना ही पड़ेगा। तो क्यों निरर्थक स्वयं सूखकर मुझे भी सुखा रहे हो? जो देती हूँ ले लो, जितना खा सको खाओ, उसके बाद जहाज जब अराकान पहुँच जायेगा, तब जहाँ इच्छा हो उतर जाना, जब इच्छा हो लौट आना – तुम्हारी शपथ खाकर कहती हूँ बबुआ, मैं रोकूँगी नहीं।" यह कहते-कहते किरणमयी का कण्ठ-स्वर तीखा हो उठा और भूख-प्यास से व्याकुल दोनों नेत्र आग की तरह जलने लगे। दिवाकर सिर ऊपर उठाकर मुग्ध की भाँति निहारने लगा। आज इतने दिनों के बाद उसे ज्ञात हुआ, मानो परदे की ओट में उसे सत्य वस्तु अचानक ही दिखायी पड़ गयी। किरणमयी के दोनों सुन्दर नेत्रों की वासना-दीप्त भूखी दृष्टि के अन्दर, और जो कुछ भी क्यों न हो, लेकिन उसके लिए तनिक भी प्रेम नहीं है। फिर भी उसने कोई बात नहीं कही, चुपचाप अपने नेत्र नीचे किये दोनों घुटनों के बीच सिर छिपाये पत्थर की तरह बैठा रहा।

थोड़ी ही देर के बाद किरणमयी उठ पड़ी और एक हाँडी से कुछ मिठाई एक छोटी-सी तश्तरी में ले आयी। दिवाकर के सामने तश्तरी रखकर घुटनों पर टेककर ऊँची हो बैठ गयी और बलपूर्वक एक हाथ से उसका मुँह ऊपर को उठाकर एक-एक करके उसके मुँह में डालने लगी। इसी प्रकार सब समाप्त करके किरणमयी ने पलभर कुछ सोचा, फिर दूसरे ही क्षण झुककर दिवाकर के भींगे हुए होंठों को चूमकर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इस विषैले चुम्बन और निष्ठुर हँसी को दिवाकर ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर सह लिया, लेकिन रात को जब एक ही बिछौने पर सोने का प्रबन्ध होने लगा तब वह किसी प्रकार भी स्थिर न रह सका। वह उठकर खड़ा हो गया और बोला, "यह नहीं होगा भाभी, यह मैं दशा में भी न कर सकूँगा। मुझे तुम छोड़ दो, मैं जहाँ भी हो सकेगा बाहर कहीं जाकर सो रहूँगा, लेकिन तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के लिये किसी प्रकार भी मैं कोठरी में रात न बिता सकूँगा – किसी प्रकार भी न होगा।"

किरणमयी उस समय बिछौना बिछा रही थी – पलटकर उसने देखा। दिवाकर फिर दृढ़ स्वर से बोला, "यह किसी प्रकार भी न होगा।"

किरणमयी ने पहले तो हँसने की चेष्टा की लेकिन हँसी नहीं आया, "क्या सोना नहीं होगा?"

उसके दोनों नेत्र घायल शेरनी की भाँति जल उठे। उसने दाँतों पर दाँत दबाकर धीरे-धीरे कहा, "तुम क्या समझते हो कि सारा अपराध मेरे सिर मढ़कर भले आदमी की तरह देश लौट जाकर, अपने भैया उपेन के पाँव स्पर्श करके शपथ खाकर कहोगे कि "मैं साधु हूँ और तुम्हारे उपेन भैया सिर ऊपर उठाकर चलेंगे? यह न होगा बबुआ! तुम मेरी सब बात न समझ सकोगे, समझने की आवश्यकता भी नहीं है – तुम साधु हो, या नहीं हो, इसके लिये भी कुछ चिन्ता नहीं करती। लेकिन अपराध के भार से जब मेरा सिर झुक जायेगा तब मैं ऐसी दशा न होने दूँगी कि तुम्हारे उपेन भैया अपना सिर ऊपर उठाकर चल सकेंगे – यह तुम निश्चय जान लो।" यह कहकर वह बिछौना बिछाने लगी, और पास ही गद्दीदार बेंच पर दिवाकर सिर झुकाये बैठा रहा।

रात को दोनों एक ही बिछौने पर आस-पास सो रहे। भाग्य के फेर से सर्वस्व दान देकर जैसे हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल के हाथ अपने को सौंप दिया था वैसी ही घृणा के साथ दिवाकर ने किरणमयी के बिछौने के किनारे आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन उसकी यह घृणा किरणमयी से छिपी न रही।

सारी रात लगातार उसके तन्द्राच्छन्न दोनों कानों में कहीं से रुलाई का प्रवाह-सा पहुँचने लगा और उसी के बीच में किसी की क्रुद्ध लम्बी साँसें रह-रहकर गरज उठने लगीं। भोर में शरीर हिल जाने से वह जाग उठा और जागते ही समझ गया कि बाहर प्रचण्ड वेग से हवा बह रही है और जहाज का हिलना आरम्भ हो गया है। नेत्र खोलकर उसने देखा, किरणमयी का कोमल बायाँ हाथ उसकी छाती पर निद्रित सर्प की भाँति पड़ा हुआ है। पीछे वह जागकर कहीं उसे काट न खाये, इस आशंका से उसने मानो उठने का साहस नहीं किया, फिर नेत्र बन्द करके पड़ा रहा। हवा और जहाज हिलने का वेग क्रमशः बढ़ने लगा, और किरणमयी की नींद टूट गयी। दिवाकर की छाती पर पड़े हुए हाथ को ज़रा दबाकर उसने धीरे से पूछा, "बाहर वह क्या हो रहा है – तूफ़ान आया है क्या?"

"दिवाकर ने कहा, "हाँ।"

"क्या होगा?"

दिवाकर ने कुछ भी उत्तर न दिया।

किरणमयी ने कहा, "सम्भवतः तुम भगवान से यही प्रार्थना कर रहे हो कि जहाज टूट जाता तो अच्छा होता – यही बात है न बबुआजी?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं।"

बस एक छोटी-सी बात "नहीं – तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर के बने हो बबुआ!" यह कहकर उसने बलपूर्वक दिवाकर को अपनी छाती में खींच लिया और बोली, "जहाज यदि डूब जाये तो हम दोनों इसी तरह मरें। बहकर किनारे जा लगेंगे, लोग देखेंगे, अख़बारों में ख़बर छपेगी, तुम्हारे उपेन भैया पढ़ेंगे – यह कैसी बात होगी बबुआ!"

इस काल्पनिक चित्र की घृणित कल्पना ने दिवाकर को ठेलकर उठा दिया और किरणमयी के बन्धन से बल लगाकर अपने को मुक्त कर हिलता-डोलता वह कोठरी के बाहर चला गया।

पैंतीस

डेक पर कुर्सी पर बैठकर वह टकटकी लगाये निहारता रहा। छाती के अन्दर कैसा होने लगा था, उसको अस्पष्ट रूप से अनुभव करने के अतिरिक्त बुद्धि द्वारा हृदयंगम करने की शक्ति उसमें नहीं थी। जहाज पर ऊँची-ऊँची लहरें उन्माद की भाँति उछलती हुई गिर रही हैं, फिर चूर्ण-विचूर्ण होकर विलीन होती जा रही हैं, फिर दौड़ती हुई आ जाती हैं, फिर लुप्त हो जाती हैं। इसी के घात-प्रतिघात का खेल दिवाकर आत्मविस्मृत होकर देखने लगा। ऊपर पूरब के आकाश में दिगन्त के धुँधले बादल पहाड़ की तरह उमड़ते जा रहे थे और उनके ही पीछे बालसूर्य उग चुका है या नहीं, इस ख़बर को नीचे पहुँचाने के लिए किरण की एक रेखा को भी मार्ग नहीं मिला। दूसरे ही क्षण डेक पर जहाज़ के खलासी घबराकर इधर-उधर आने-जाने लगे और कप्तान का घण्टा बार-बार बजने लगा। तूफ़ान का वेग लगातार बढ़ता ही जा रहा है और भविष्य में और भी बढ़ जायेगा, इसका संकेत आकाश के बादलों और समुद्र की लहरों ने जहाज़ के कप्तान से लेकर नीचे की कामिनी नामक मकान वाली औरत तक सभी को सुस्पष्ट रूप से दे दिया। उसी समय एक खलासी ने आकर कहा, "बाबू, पानी बरसने में अब देर नहीं है, आधी-पानी में बाहर बैठकर क्यों कष्ट पायेंगे, केबिन में चले जाइये। देखिये, वहाँ न जाने अब तक क्या हो रहा है!"

दिवाकर ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ है वहाँ?"

खलासी चटगाँव का मुसलमान था। हँसकर न समझने योग्य अपनी बोली में बोला, "कुछ भी नहीं हुआ है। लेकिन जहाज बहुत हिल रहा है न, इसीलिए कह रहा हूँ बाबू, आप जाकर देखिये वहाँ औरतें क्या कर रही हैं। इतनी हिलोरें सहना बहुत ही कठिन है।" दिवाकर उठ खड़ा हुआ और तुरन्त ही समझ गया कि खलासी की बात बिल्कुल ही सच है। वह गिरने लगा था, उसे पकड़कर खलासी ने कहा, "चलिये बाबू, आपको पहुँचा आऊँ।" उसी

की सहायता से दिवाकर किसी प्रकार केबिन के दरवाज़े तक पहुँचा। दरवाज़ा ठेलकर अन्दर जाकर उसने देखा, किरणमयी बिछौना छोड़कर पास की लोहे की बेंच पर उसके ही एक छोर को ज़ोर से दबा कर पट होकर लेटी हुई है। दिवाकर उसके सिरहाने जाकर बैठ गया। बोला, "कष्ट हो रहा है भाभी?"

किरणमयी ने कोई बात नहीं कही, सिर भी ऊपर नहीं उठाया, केवल चुपचाप दिवाकर की गोद में अपना दायाँ हाथ रखकर पड़ी रही। जहाज उलटने-पलटने लगा। बाहर क्रुद्ध हवा साँय-साँय की आवाज़ के साथ चिल्लाहट मचाने लगी और उत्ताल तरंगों के उड़ते हुए पानी के छींटे प्रबल वेग से छोटी खिड़की के मोटे शीशे पर बार-बार पछाड़ खा-खाकर गिरने लगे।

उसका सिर चकराने लगा और बैठा रहना असम्भव जानकर उस पतली-सी बेंच पर ही किरणमयी के सिर के पास सिर रखकर वह मूर्च्छित की भाँति लेट रहा।

किरणमयी ने उसका सिर सहलाकर मृदु स्वर में कहा, "लेट रहे हो, सिर में चक्कर आ रहा है क्या?"

दिवाकर ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने कुछ क्षण मौन रहकर पूछा, "अच्छा बबुआ, तूफ़ान तो बराबर बढ़ता ही जा रहा है, जहाज़ क्या डूब जायेगा, तुम्हारा क्या ख़्याल है?"

दिवकार ने कहा, "नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "हाँ, नहीं-नहीं – तुम कचहरी में क्या गवाही दे रहे हो बबुआजी?" यह कहकर बड़ी देर तक चुप पड़ी रही। बहुत देर के बाद धीरे-धीरे बोली, "डूब जाने से ही अच्छा होता। यदि न भी डूबे तो भी इस प्रकार हम लोगों के कितने दिन चलेंगे?"

दिवाकर ने उत्तर नहीं दिया। यह देखकर किरणमयी ने दिवाकर के सिर को हाथ से हिलाकर कहा, "सुन रहे हो न?"

"सुन रहा हूँ। जितने दिन चल सकेंगे, चलने दो।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद भी समुद्र में जल रहेगा, गले में बाँधने के लिए रस्सी भी मिल जायेगी। दोनों में से किसी एक को चुन ही लेना पड़ेगा!"

इतनी देर के बाद दिवाकर के मुँह से एक बड़ी बात सुनकर किरणमयी बड़ी देर तक चुपचाप पड़ी रही। उसके बाद वह स्वाभाविक स्वर से बोली, "ऐसा मत करो – घर लौट जाओ। तुम तो पुरुष हो, जाकर कह देने से ही बाद समाप्त हो जायेगी। सम्भव है कि इसकी भी आवश्यकता न पड़ेगी – तुम्हारे अपने लोग इस बात के लिए कोई चर्चा-बखेड़ा करना न चाहेंगे।"

दिवाकर चुप रहा। ऐसा प्रस्ताव चाहे जैसा भी लोभनीय क्यों न हो, वह इसे ग्रहण न कर सका। बड़ी देर तक मौन रहकर बोला, "और तुम?"

किरणमयी पहले की भी भाँति सहज शान्त स्वर में बोली, "मुझे यहीं रह जाना पड़ेगा।"

दिवाकर ने कहा, "कैसे रहोगी? वहाँ कौन है?"

किरणमयी ने कहा, "कोई नहीं।"

"तो फिर?"

"तो भी रहना ही पड़ेगा।"

दिवाकर उत्कण्ठा से उठ बैठा। बोला, "तनिक स्पष्ट बताओ न भाभी, तुम कह रही हो कि कोई नहीं है, फिर भी रह जाओगी, कैसे, मैं तो समझ ही नहीं पाता। तुम क्या वहाँ अकेली ही रहोगी?"

किरणमयी हँस पड़ी। उस हँसी को दिवाकर देख न सका – देखता तो समझ जाता। किरणमयी ने कुछ देर तक मौन रहकर कहा, "नहीं बबुआ, अकेली न रह सकूँगी – मेरी वह आयु नहीं है! लेकिन तुमसे इन बातों की आलोचना की आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर उसने दिवाकर का दायाँ हाथ अपने मुँह के पास खींचकर व्यथा से कहा, "लेकिन तुमको मैंने व्यर्थ ही कष्ट दिया। इसके लिए क्षमा माँग रही हूँ बबुआ।"

दिवाकर फिर अवसन्न की भाँति लेट रहा, लेकिन इतना समझ गया कि घर लौट जाने के अँधेरे मार्ग के लिए जो आशा-प्रदीप पलभर पहले ही उसने मूढ़ की भाँति जला दिया था, उसको बुझा देने का समय आ गया है।

प्रदीप बुझ गया अवश्य लेकिन उसकी दुर्गन्ध से भरी हवा से दिवाकर की छाती मानो भारी बोझ से दब गयी। रुँधी हुई साँस की गम्भीर पीड़ा से वह उठ बैठा और तीखे स्वर से पूछा, "तुम क्या अब तक मुझसे परिहास कर रही थीं भाभी?"

"मुँह-चोर नाजुक स्वभाव वाले दिवाकर की इस आकस्मिक उग्रता से किरणमयी चौंक पड़ी, "कैसा परिहास बबुआजी!"

"मेरे घर लौट जाने की बात। इस व्यंग्य की क्या आवश्यकता थी?"

किरणमयी ने कहा, "परिहास या व्यंग्य कुछ तो मैंने नहीं किया।"

"तो क्या यह सच है?"

"सच ही तो है भाई।"

"तुम अकेली रह जाओगी, यह भी क्या सच है?"

"यह भी सच है।"

"ओह! इसीलिए क्या तुम अराकान जा रही हो! लेकिन किसके पास, किस तरह से रहोगी, सुनूँ तो?"

प्रत्युत्तर में किरणमयी ने केवल एक लम्बी साँस ली।

किरणमयी ने गहरी साँस ली, बस। वह भलीभाँति जानती थी कि उनका इस तरह भागना दिवाकर के लिए कितना भयावह था, उसकी लज्जा कितनी दुःसह थी तथा इस निदारुण अवस्था के संकट में पड़ने से उसका मन कितना विकल हो उठा था – यह भी उससे अविदित नहीं था। दिवाकर को उसने प्यार किया भी नहीं था और करना भी असम्भव था, तथापि आश्चर्य तो इस बात का था कि उसकी पूर्ण उदासीनता से वह मन ही मन

व्यथित हो रही थी।

किन्तु जैसे ही दिवाकर ने अपने रूखे व तीव्र स्वर में किये गये प्रश्न के माध्यम से ईर्ष्या की ज्वाला प्रकट कर दी, उसके अन्तर की निभृत वेदना हर्ष में परिणत हो उठी। इस पुलक का एक कारण और था – इससे पहले जब वह अपरिपक्व युवक अपने यौवन की प्रारम्भिक सौन्दर्य पिपासा को शान्त करने के लिये उसके अलौकिक रूप का तिल-तिल पान करते हुए उसकी ओर आकृष्ट हो रहा था, तब तो किरणमयी ने देखकर भी अनदेखा कर दिया था, जानते हुए भी कुछ न जानने का दिखावा किया था। और आज जब चोट लगने पर अकस्मात मधु रिसने लगा तो इस निर्वासन में जो व्यक्ति उसका एकमात्र अवलम्बन था, उसी के मधुचक्र में सयत्न संचित एवं प्रच्छन्न मधु के भण्डार के प्रति किरणमयी की सतर्क दृष्टि निबद्ध हो उठी। हँसकर बोली, "कैसे, किसके पास रहूँगी, यह सुनकर तुम्हें क्या लाभ होगा देवर जी? जब तुम्हें लौट ही जाना है तो इस अनावश्यक कौतूहल की कोई सार्थकता नहीं रह जाती।"

दिवाकर कुछ क्षण स्थिर रहा। फिर बोला, "लौट जाऊँगा ही, यह बात तो मैंने एक बार भी नहीं कही। वह तो तुम्हारे ही मुँह की बात है – मेरे मुँह की नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "यह ठीक है। लेकिन मेरे मुँह से तुम्हारे मन की बात ही निकल पड़ी है।" यह कहकर वह तीव्र प्रतिवाद की आशा करके प्रतीक्षा करती रही। लेकिन प्रतिवाद नहीं हुआ। किरणमयी उसको सोचने का समय देकर धैर्य धारण किये रही। बहुत समय बीत गया – बाहर आँधी-पानी के लगातार आक्रमण से जहाज काँपने लगा, खलासियों का अस्पष्ट कोलाहल बीच में स्पष्ट सुनायी पड़ने लगा, किरणमयी के धीरज का बाँध भी टूट जाने की नौबत आ गयी, लेकिन काठ की बनी इस छोटी-सी कोठरी की निस्तब्धता पूर्ववत बनी रही।

दिवाकर प्रतिवाद न करेगा, इस बात पर किरणमयी के मन में जब तनिक भी संशय न रह गया, तब उसने लम्बी साँस छोड़कर धीरे-धीरे कहा, "तो क्या तुम्हारा लौट जाना ही पक्का रहा?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं।"

किरणमयी ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया।

छत्तीस

उस रात को आँधी-पानी का वेग कम हो गया। लगातार ऊधम मचाकर उन्मत्त सागर भोर होते-होते शान्त हो गया। लेकिन ऊपर का आकाश-प्रकाश प्रसन्न नहीं हुआ – मुँह भारी बनाये ही रहा।

सबेरे क्षण भर के लिए सूर्योदय ज़रूर हुआ, पर सूर्यदेव इस जहाज पर स्थित अर्द्धमृत

यात्रियों को वास्तविक सान्त्वना दे गये या लाल आँखें दिखाकर चले गये – यह निश्चित रूप से समझा नहीं जा सका।

इसी समय दिवाकर बाहर आकर एक आरामकुर्सी पर लेट गया। न जाने क्यों, आत्मग्लानि की ज्वाला आज उसको पहले की भाँति जला नहीं रही थी; लज्जा का वारिधि भी आज वैसा दुस्तर नहीं जान पड़ा – कहीं पर मानो रहे रंग के पेड़-पौधों से भरा हुआ एक धुँधला-सा किनारा उसे दिखायी पड़ने लगा। हृदय का असह्य बोझ – इस प्रकार जब हल्का हो गया तब स्थिर होकर दिवाकर फिर एक बार किरणमयी के तर्क पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने लगा। कल रात को किरणमयी ने यह कहकर तर्क किया कि हम लोग यथार्थ में अन्याय तभी करते हैं जब किसी को उसके न्यायोचित अधिकार से वंचित करते हैं। इसीलिए किसी कार्य में प्रवृत्त होने के पूर्व यही देखना आवश्यक है कि हम किसी के सच्चे अधिकार में हाथ डाल रहे हैं या नहीं! फिर यह अधिकार जैसा बाहर है, भीतर भी वैसा ही है। अपने ऊपर भी अपना एक सच्चा अधिकार है, अपना होने के कारण वह किसी से तुच्छ नहीं है। उस अधिकार के बाहर किसी का हस्तक्षेप सहना अपने ऊपर अन्याय करना है, यही मेरी बात है।

क्षणभर स्थिर रहकर उसने कहा, था, "हम लोग चोरी-डकैती आदि जैसे कामों से जिस प्रकार दूसरे के अधिकार में हाथ डालकर अन्याय करते हैं, शराबी के लिए पैसे जुटाकर उसे देकर भी वही अन्याय करते है; क्योंकि उसके अच्छे रहने के अधिकार में हम हस्तक्षेप करते हैं।"

दिवाकर चुपचाप सुन रहा था। यह देखकर किरणमयी ने फिर कहा, "यद्यपि सामाजिक लोगों का यह अधिकार अत्यन्त व्यापक है, और कहाँ इसकी सीमा रेखा है, कहाँ क़दम रखने से अनधिकार प्रवेश न होगा, इस बात को लेकर संसार में अनेक द्वन्द्व हुए हैं, अनेक मतभेद हैं, तो भी सीमा तो एक है ही, इस विषय में किसी को सन्देह नहीं है। इस सीमा का उल्लंघन करने की शक्ति किसी में नहीं है, समाज में भी नहीं है। समाज इस सीमा को लाँघकर केवल दूसरों को ही नष्ट नहीं करता, बल्कि स्वयं अपने को भी कमज़ोर बनाता है, नष्ट कर डालता है। तुमको अपना मन इतना उदास बनाकर रहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती बबुआजी, यदि तुम एक बार इसी बात को सोचकर देखते कि मुझे घर से निकालकर किसी के सच्चे अधिकार पर हस्तक्षेप किया है या नहीं! मैं हूँ विधवा, मेरे ऊपर किसी का न्यायसंगत अधिकार नहीं है, तुम हो अविवाहित, तुम्हारे हृदय पर किसी का अधिकार नहीं है, अतएव मुझे प्यार करके तुमने कुछ भी अन्याय नहीं किया है, यह बात समझना तो कठिन नहीं है।"

दिवाकर ने हतबुद्धि होकर कहा था, "यह क्या भाभी, यदि अवैध प्रणय अन्याय नहीं है तो फिर संसार में अन्याय क्या है?"

किरणमयी ने कहा था, "अवैध कहाँ है? जिसको तुम अवैध समझ रहे हो, वह तुम्हारा संस्कार है – वह युक्ति नहीं है। अच्छी बात है, तुम्हारी अवैध वस्तु क्या है, सुनूँ तो?"

दिवाकर ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया था, "जो विवाह के द्वारा सुपवित्र नहीं है – जिसको समाज स्वीकार नहीं करता, जिसे आत्मीय स्वजन, इष्टमित्र घृणा की दृष्टि से देखेंगे, वही अवैध है। यह तो एक सीधी-सी बात है।"

किरणमयी ने हँसकर उत्तर दिया था, "सीधी बात कहाँ है? ज़रा विचार करके देखने से ज्ञात हो जायेगा कि सीधी बातें भी ऐसी टेढ़ी हो जाती है कि दुनिया की बहुत-सी टेढ़ी वस्तुएँ ही उसके सामने हार मान जाती हैं। तुमको तो मैंने अनेक बार कहा है बबुआ, तुम्हारा यह सुपवित्र-अपवित्र ज्ञान, संस्कार है – युक्ति नहीं है। इस संसार में ही स्त्री-पुरुष के ऐसे अनेक मिलन हुए हैं, जिन्हें किसी प्रकार भी पवित्र नहीं कह सकते। मैं इस सम्बन्ध में उदाहरण देकर बात बढ़ाना नहीं चाहती, तुम्हारी इच्छा हो तो इतिहास-पुराण पढ़कर देखो। फिर भी, उन मिलनों को भी समाज ने स्वीकार कर लिया था, और अन्त में वे विवाह के मंत्रों से भी सुपवित्र बना लिए गये थे। बबुआजी, हमारे पाथुरियाघाट के उस मकान के पास यदि कण्व मुनि का आश्रम रहता तो शकुन्तला ने जो काण्ड कर डाला था, उसके कारण केवल मुनि-महाराज को ही अपने भाई-बन्धुओं के साथ नहीं, बल्कि पाथुरियाघाट के सभी लोगों को जाति से च्युत हो जाना पड़ता। कहाँ, उस प्रेम-कहानी को पढ़ने में तो किसी भी सती-साध्वी का मुख-मण्डल लज्जा से लाल नहीं हो जाता।

"नहीं-नहीं, तुम घबराओ मत बबुआ, मैं सती-साध्वी स्त्रियों पर कटाक्ष नहीं करती, अथवा इस युग से उस युग की तुलना भी नहीं करती। यह युग यही युग बना रहे, और वे लोग जहाँ हैं वहीं अच्छे होकर रहें। मुझे किसी में आपत्ति नहीं है, लेकिन उस युग की शकुन्तला को इस युग के स्त्री-पुरुष किस कारण अपने हृदय में बुरी कहकर घृणा नहीं कर सकते, यही एक विचित्र बात है।"

क्षणभर चुप रहकर उसने कहा, "घृणा क्यों नहीं कर सकते, जानते हो, बबुआजी? केवल इसीलिए वे घृणा नहीं कर सकते, बबुआ, कि उनका मिलन चाहे जैसा भी क्यों न रहा हो, मिलन के आदर्श को उन्होंने शुद्ध रूप में ही रखा था। क्षणभर में ही जिस बन्धन में अपने को सदा के लिए बाँध लिया था, वह बन्धन पक्का नहीं है ऐसा सन्देह या किसी प्रकार का संकोच उन्होंने मन में नहीं रखा था। वास्तविक बात क्या है, इस पर अच्छी तरह विचार करके देखो।"

दिवाकर को एक बात भी अच्छी नहीं लगी थी। उसने असहिष्णु होकर कहा, "आदर्श चाहे जैसे भी क्यों न हों, आजकल का समाज इसे स्वीकार न करेगा। और जिसकी समाज से स्वीकृति न मिलेगी, वह चाहे वैध हो, या अवैध हो, उसके द्वारा समाज पर आघात ही पहुँचेगा। समाज में रहकर समाज पर आघात करना और आत्महत्या करना दोनों बराबर हैं।"

किरणमयी ने उत्तर दिया था, "बबुआजी, समाज पर आघात करना और समाज के अविचार पर आघात करना एक वस्तु नहीं है। तुमको तो मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि सब वस्तुओं में ही सच्चा अधिकार रहता है। समाज उद्धत होकर तब सत्य की सीमा को

लाँघता है तब उस पर आघात करना ही उचित है। इस आघात से समाज नहीं मरता – उसको चेतना मिल जाती है। उसका मोह छूट जाता है। लिखना-पढ़ना सीखने के लिए हो, या देश के लिए ही क्यों न हो, विलायत जाना समाज ने स्वीकार नहीं किया है। इसके कारण उसे बार-बार चोटें खानी पड़ी हैं। तो भी ऐसी ही उसकी कठोर प्रतिज्ञा है कि वह आज तक भी अपना अहंकार छोड़ नहीं सका है। इससे क्या तुम समाज के सुविचार की प्रशंसा करते हो?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं, मैं ऐसा नहीं करता। इसे अच्छा समझने का कारण नहीं है इसीलिये।"

किरणमयी ने कहा, "ठीक यही बात है। लेकिन यह असन्दिग्ध स्पष्ट उत्तर तुमको कहाँ से मिला है? अपनी बुद्धि-विवेचना से, समाज से तो नहीं?"

दिवाकर ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया, "लेकिन यदि सभी कामों में अपनी बुद्धि-विवेचना का प्रयोग करने लगे, तब तो समाज भी न टिकेगा।"

किरणमयी ने कहा था, "मैं तो तुमको अब तक यही बात बताने का प्रयत्न करती रही हूँ। सभी कामों में अपनी बुद्धि लगाने से जैसे समाज नहीं रहता, समाज भी यदि सदा और सभी कामों में अपना ही मत चलाना चाहे तो उससे भी मनुष्य नहीं टिकता। मनुष्य ही भूल करना और अन्याय करना जानता है, समाज क्या नहीं जानता बबुआजी? दोनों की ही सीमा निर्धारित है – मूर्खता से हो, प्रवृत्ति के झोंके से हो, अनुचित हठ के कारण ही हो – जिस प्रकार भी क्यों न हो, उसका उल्लंघन करना ही अमंगल है। उस अमंगल को रोक रखने की शक्ति तुम्हारे भगवान में भी नहीं है।"

दिवाकर ने इसके उत्तर में कोई बात नहीं कही। किरणमयी ने कुछ देर चुप रहकर फिर कहा था, "फिर भी, यह सीमा किसी भी समाज में सर्वदा एक ही स्थान में बँधी नहीं रहती। आवश्यकता के अनुसार यह बदलती रहती है।"

दिवाकर ने पूछा, "कौन बदलता है?"

किरणमयी ने कहा था, "कोई भी नहीं बदलता। जिस नियम से विश्व-ब्रह्माण्ड में परिवर्तन होता है उसी नियम से यह भी आप ही आप परिवर्तित होता है। बदल गया है या नहीं, इसका पता उसी समय चल पाता है जब कोई इस पर प्रहार करता है।"

दिवाकर अभी तक किरणमयी के सारे तर्कों को अपने इस पलायन के समर्थन में मन से स्वीकार नहीं कर पाया था। इस कार्य के अतिशय गर्हित होने में उसे रंचमात्र भी सन्देह नहीं था और सारा अपराध नतमस्तक स्वीकार करने को स्वयं को तैयार कर रहा था। किन्तु जब उसने देखा कि वह गर्विता नारी इतने बड़े अपराध को भी अपराध मानने को तैयार नहीं, उल्टे समाज को ही दोषी ठहराना चाहती है तो असहनीय लगने लगा था। कोई कड़ी बात कहना उसके आदत के विरुद्ध था। अतः ताना मारते हुए धीरे से बोला था – 'हमारे समाज पर इस तरह प्रहार करने से उसका दर्प और मोह कितना भंग होता है, भविष्य ही बतायेगा! क्यों क्या ख़्याल है भाभी?'

दोनों कोहनियों के बल उल्टी लेटकर दिवाकर की ओर देखते हुए किरणमयी ने कहा था, "हमने प्रहार किया ही कहाँ देवरजी? डरकर भाग आना और सामने खड़े रहकर प्रहार करना क्या एक ही बात है जो समाज का दर्प चूर्ण होगा? इससे तो बल्कि दर्प और बढ़ेगा।" कहकर वह सीधी होकर चादर खींचकर लेट गयी।

बाहर थमती हुई आँधी की दबी हुई आवाज़ को भेदकर ऊपर जहाज के घण्टे में बारह बज गये। डेक की एक कुर्सी पर लम्बी साँस लेकर दिवाकर चुपचाप बैठा हुआ था, एकाएक दबी हुई आवाज़ से पुकार हुई, "बबुआ!"

दिवाकर चौंक उठा। झटपट उसने उत्तर दिया, "क्या भाभी?"

किरणमयी ने कहा, "तुम लौट जाओ।"

दिवाकर ने ज़ोर लगाकर कहा, "किसी प्रकार भी नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "नहीं क्यों? बिना समझे-बूझे तुमने एक अन्याय किया है, समझ लेने पर उसका प्रतिकार न करोगे, पाप का बोझ ढोते फिरोगे, मैं तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझती बबुआ।"

दिवाकर ने कहा, "तुम नहीं समझतीं, मैं समझता हूँ। इसके अतिरिक्त लौट जाने से ही क्या पाप का बोझ उतर जायेगा भाभी?"

किरणमयी ने कहा, "आज ही उतर जायेगा यह बात मैं नहीं कहती। लेकिन दो दिनों बाद उतर भी सकता है।"

दिवाकर ने मृदु कण्ठ से पूछा, "लेकिन मैं जाऊँगा कहाँ?"

किरणमयी ने कहा, "अपने घर, अपने आत्मीय स्वजनों के पास, अपने उपेन भैया के पास। सब ही तो तुम्हारे हैं।"

दिवाकर क्षणभर चुप रहकर बोला, "तुम जो कुछ मेरे पास है, कह रही हो, वह मेरा नहीं है, यह तुम भी जानती हो। हैं केवल उपेन भैया लेकिन उनको तो तुम पहचान नहीं सकी हो। उनके ही पास मुझे लौट जाने को कहती हो भाभी?"

"हाँ, उपेन के ही पास लौट जाने को कहती हूँ!"

दिवाकर थोड़ी देर तक मौन रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "मैंने सोचा था, तुम उनको पहचान चुकी हो। लेकिन तुमने पहचाना नहीं। मैं भी उनको पहचानता हूँ, ऐसी बात नहीं है, सम्भवतः अच्छी तरह उनको पहचाना ही नहीं जा सकता। लेकिन बचपन से उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है अतः मैं इतना तो समझ गया हूँ कि अब इसके बाद उनके सामने जाकर खड़े होने की अपेक्षा मेरे लिए आग में कूद जाना ही सरल है।"

एकाएक किरणमयी चकित हो उठी। दिवाकर के मुँह की ओर देखकर बोली, "क्यों, वह इतने निष्ठुर हैं? जो अपराध तुम्हारा नहीं है, उसको समझाकर बताने से भी क्या वे तुम्हें दण्ड देंगे? यह बात कभी सम्भव नहीं हो सकती बबुआजी!"

किरणमयी के आकस्मिक उत्साह के प्रति दिवाकर ने ध्यान नहीं दिया। दीवार पर जो बत्ती टंगी हुई थी, उसी ओर देखता हुआ अन्यमनस्क की भाँति धीरे-धीरे बोला, "उनको

कोई बात समझाकर कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। न जाने किस प्रकार वे सब कुछ जान जाते हैं, अवश्य ही मैं तुम्हारी तरह यह नहीं सोच सकता कि मेरा दोष नहीं है लेकिन यदि तुम्हारी ही बात ठीक हो, यदि सचमुच ही मैं निर्दोष हूँ, तो उस दशा में जिस दिन मैं उनके पास जाकर खड़ा हो जाऊँगा, उसी दिन वे जान लेंगे। लेकिन मैं खड़ा न हो सकूँगा। तुमने दण्ड की बात कही थी, तो मैं कैसे जानूँ भाभी कि वे कैसा दण्ड मुझे देंगे। अब तक कभी भी उन्होंने मुझे कोई दण्ड नहीं दिया।"

वह और कुछ न कह सका, दोनों हथेलियों से आँखें ढककर चुप हो गया।

किरणमयी ने कोई बात नहीं कही। दोनों नेत्र खोलकर उसके मुख की ओर निहारती रही। उसके हृदय में जो विप्लव चल रहा था, उसको केवल अन्तर्यामी ही जान सके।

थोड़ी देर के बाद दिवाकर ने बात कही। अत्यन्त व्यथित कण्ठ से वह कहने लगा, "कल तुमने कहा था कि तुम उपेन भैया का सिर नीचा कर दोगी। उस दिन रात के समय तुम लोगों में क्या बाते हुई थीं, किस क्रोध में आकर तुमने बात कही थी, इसे मैं अभी तक समझ नहीं सका। सम्भवतः इसका कोई कारण तुम्हारे लिए होगा ही, लेकिन वह कारण चाहे जैसा भी हो, उस सिर को नीचा कर देने का दुःख कितना बड़ा है इस बात को यदि तुम जानतीं, तो यह बात तुम मुँह से न निकालतीं। तुम ऐसी चेष्टा मत करना। जब तक वह स्वयं नीचा होकर तुम लोगों की ओर न देखेंगे, तब तक उनके सिर को नीचा कर देने की शक्ति संसार में किसी में नहीं है भाभी।"

उसी गम्भीर रात्रि में ये दोनों विपरीत प्रकृतियाँ उपेन्द्र के प्रति भक्ति, श्रद्धा और प्रेम के तट पर पहुँचकर एकाएक बहुत ही अच्छी तरह सम्मिलित हो गयीं, यहाँ कोई विरोध ही नहीं था। जहाँ कहने की अपेक्षा सुनने, समझने की अपेक्षा समझाने की अभिलाषा अत्यन्त प्रबल हो उठी।

भोर में किस समय दिवाकर बिछौना छोड़कर बाहर चला गया, इसका पता निद्रामग्न किरणमयी को नहीं चला। इसीलिए नींद टूटते ही वह दिवाकर के लिए व्याकुल हो उठी। कल रात को बातों ही बातों में किरणमयी बहुत-सी बातें जान गयी थीं। दिवाकर वास्तव में कितना निस्सहाय है और अपने उपेन भैया से अलग हो जाना उसके लिए कैसी चोट पहुँचाने वाली दुर्घटना है, इस बात को अत्यन्त स्पष्ट रू से समझ लेने के बाद से किरणमयी अपने नारी-हृदय के अन्तस्तल में तनिक भी शान्ति नहीं पा रही थी। इस सरल, विनीत, सत्यवादी और सच्चरित्र को उसके यौवन के प्रारम्भ में ही अकारण पथभ्रष्ट कर देने का अपराध उसकी निद्रावस्था में भी उसको बींध चुका था। इसीलिए निद्रा भंग होते ही एक अभिनव स्नेह के साथ इस निरपराध अभागे की ओर उसने पहले ही मुँह घुमाकर देखा, दिवाकर नहीं था। उठकर बाहर गयी, पर वहाँ भी नहीं दिखायी पड़ा। जहाज के काम करने वाले लड़के से ढूँढने के लिए कहा, वह भी न पा सका।

उसी समय से किरणमयी अत्यन्त व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रही थी। लेकिन आज उसकी इस उत्कण्ठा के बीच भी बहुत दूर से आयी हुई मृदु सुगन्ध की भाँति एक अस्पष्ट

आनन्द का आभास पाकर उसका हृदय पुलकित हो रहा था।

उसे अति तुच्छ दिवाकर के साथ, जिसको वह कभी भी प्यार न कर सकी, अपनी ही कुबुद्धि के कारण उसकी घर-गृहस्थी उसे सम्भालनी पड़ेगी। प्रेम का अभिनय करना पड़ेगा, जहाज पर चढ़ जाने के बाद से यही धिक्कार उसको भीतर ही भीतर मानो पागल बनाता जा रहा था।

फिर अन्त यहीं तो नहीं था। इस बनावटी प्यार का आकर्षण एक दिन खत्म होकर रहेगा, एक दिन आयेगा जब यह छद्मलीला हृदय में वितृष्णा पैदा कर देगी, यह सीख उसे डाक्टर अनंगमोहन से मिल चुकी थी। उस दिन प्राणान्तकर घृणा का जो फन्दा शनैःशनैः उसके गले में कसता जायेगा, उसे वह कौन-से अस्त्र से काटकर फेंकेगी, यही दुश्चिन्ता उसे खाये जा रही थी। लेकिन कल गम्भीर रात्रि में उपेन्द्र के राजसिंहासन के नीचे बैठकर संधिपत्र पर जब दोनों के हस्ताक्षर हो गये, तब मानो उसकी निद्रा भंग हो गयी और इस निरीह लड़के के लिए करुणा और व्यथा से वह इधर जिस प्रकार व्यथित हो उठी थी, उसी प्रकार इस अवश्यम्भावी घृणा से मुक्ति पाकर मानो वह बच गयी।

कमरे में अकेली बैठकर लम्बी साँस छोड़ती हुई बार-बार यही बात कहने लगी – अब मुझे भय नहीं है, मुझे कोई भय नहीं है। जिसको मैं प्यार न कर सकूँगी, कम से कम स्नेह देकर ही उसके मन की कालिमा तो बहुत कुछ पोंछ सकूंगी। तो भी, एक भय उसके हृदय में झाँकने लगा – बाद में प्रलोभन को न रोक सकने के कारण दिवाकर पतंगे की भाँति जल मरने को कटिबद्ध हो जाये, तो क्या गति होगी, उसके रूप के आकर्षण में कैसी अमोघ शक्ति है, यह बात तो उससे छिपी नहीं थी।

उसे अपने मृत पति की बात स्मरण हो आयी। वही नीरस, कठोर विद्या का मूर्तिमान अभिमान। उसके पास तो वह एक दिन भी जा न सकी थी, तो भी उसके दिन कटे ही थे। लिखने-पढ़ने, भात पकाने, साँस की झिड़कियाँ सुनने और घर के काम-काज करने में ही दिन व्यतीत हो जाता था। फिर रात में थकावट से चूर होकर किसी समय वह सो जाती थी, फिर प्रभात होता, फिर रात आती, इसी प्रकार महीने पर महीने, वर्ष पर वर्ष बीत गये थे। भीख माँगने के लिए कोई भिखारी मकान में नहीं आया। किसी पड़ोसी ने भी आकर नहीं पूछा कि तुम कैसी हो, एक दिन के लिए भी सूर्य-किरणों ने प्रकाश नहीं दिया, एक क्षण के लिए भी आकाश की वायु ने मार्ग भूलकर प्रवेश नहीं किया। तो भी दस साल का लम्बा समय बीत गया था। उससे अपने माँ-बाप की बात तो स्मरण नहीं पड़ती, केवल स्मरण पड़ती है कि बाल्यावस्था में कालना के पास के एक छोटे गाँव में रहने वाले दुखी मामा के घर से बहू के वेश में निकलकर उसने इस अँधेरे घर में प्रवेश किया था। पति ने छात्रा के रूप में उसे ग्रहण किया था। उसी समय से आजीवन गुरु-शिष्य का वह कठोर सम्बन्ध कभी दूर नहीं हुआ। पति ने एक दिन के लिए भी आदर नहीं किया, प्यार करते थे या नहीं, एक दिन के लिए भी उन्होंने यह बात नहीं बतायी।

बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी के पाठ याद करने को देते थे, पाठ सुनते थे। पाठ याद न

करने पर तिरस्कार करते थे, मारते भी थे। क्रोध, अभिमान करने पर कभी नहीं मनाते थे, रोते-रोते सो जाने पर किसी दिन जगाकर खाने के लिए मुझसे नहीं कहा – यही उसके वधू जीवन का इतिहास है।

सास की परीक्षा और भी कठोर थी। वहाँ अत्यन्त छोटी-सी भूल के लिए भी क्षमा नहीं थी। अघोरमयी ने अपने रसोईघर की कलछी-संड़सी से लेकर जलती हुई लकड़ी तक के चिह्न इस छोटी बहू के शरीर पर अंकित कर दिये थे। एक दिन किसी अपराध पर उन्होंने उसके सिर के सब बाल काट दिये थे। दुख से, अभिमान से, जब बहू रसोईघर के एक कोने में मुँह ढँककर फूट-फूटकर रोने लगी थी, तब पीठ पर जलती हुई लकड़ी से मारकर उन्होंने चुप रहने का अंदेगा दिया था। जल जाने का वह घाव ठीक होने में एक महीने का समय लगा था।

एकाएक वही घाव मानो फिर रिसने लगा। किरणमयी क्षणभर के लिए चंचल होकर स्थिर होकर बैठ गयी।

कब किशोरावस्था को पार करके उसने यौवनावस्था में पैर रखा, यह बात उसे स्मरण नहीं रही। सम्भवतः उषा की भाँति चुपके-चपके ही प्रभात का वह उज्ज्वल प्रकाश फूट उठा था।

यौवन में, अनजान दशा में जबकि शरीर सौन्दर्य से परिपूर्ण हो उठने लगा तब वह पति के साथ सूक्ष्म विषय पर विचार करने में व्यस्त हो रही थी। क्यों उसका शारीरिक पीड़न समाप्त हो गया, क्यों वह गृहणी हो चली, यह बात एक बार सोचने का भी उसे अवसर नहीं मिला। पति कहा करते थे, “सुखी जीवन ही एकमात्र ध्येय है; शेष सभी उपलक्ष्य है। दया, धर्म, पुण्य ये सभी उपलक्ष्य है। इहकाल की हो या परकाल की, अपनी हो या और पाँच आदमियों की, स्वदेश की हो या विदेश की – किस उपाय से सुख-वृद्धि की जा सकती है – यही जीवन का कर्म है और जाने में हो या अनजाने में, इसी चेष्टा में लोगों का सारा जीवन समाप्त हो जाता है। और यही एकमात्र उपदण्ड है, जिसके द्वारा सब भले-बुरे का वजन किया जा सकता है, अपने लिए है या दूसरे के लिए इस ओर दृष्टि मत डालना। किरण, तुम केवल यही समझने का प्रयत्न करना कि इससे सुख की मात्रा बढ़ती है या नहीं।”

किरणमयी कहती, “ठीक ऐसा ही करूँगी, लेकिन किस प्रकार मैं जानूँगी कि मेरे कामों से संसार में सुख की समष्टि बढ़ रही है? सुख का स्वरूप तो सबकी दृष्टि में एक-सा नहीं होता।”

हारान अपनी शून्य दृष्टि से पल भर तक जालों तथा कालिख से भरी कड़ियों की ओर देखकर कहते, “खण्ड-खण्ड करके देखने से तो एक नहीं है लेकिन समग्र रूप से देखने से एक ही है। तुमको इसी पर विचार करना चाहिये।”

किरणमयी के लिए सुख का कोई रूप स्पष्ट नहीं था। वह असहिष्णु होकर बोल उठती, ‘खण्ड-खण्ड’ करके यह समग्र रूप से, ये सब बातें केवल कहने के लिए ही हैं। अपने को सुख कैसे मिलता है, इसी बात को अच्छी तरह से मनुष्य समझ सकता है, वह भी सब समय, सब अवस्थाओं में नहीं। जबकि अपने ही सम्बन्ध में मनुष्य भूल से नहीं बच पाता, तब

सारे विश्व का दायित्व हाथ में लेने का साहस जिसे हो, होने दो, मुझे तो ऐसा साहस नहीं होता। उस पार के वे जूट मिल वाले सम्भवतः सोचें कि काशी के सभी मन्दिरों में जूट मिलें खड़ी कर देने से मनुष्य के सुख की मात्रा बढ़ जायेगी, लेकिन सभी क्या ऐसे ही सोचेंगे? सुख नामक वस्तु क्या है, यह बात जब तक मुझे समझाकर न बता सकोगे, तब तक मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनूँगी।" यह कहकर ज्यों ही किरणमयी उठकर जाने को प्रस्तुत होती त्यों ही हारान उसका हाथ पकड़कर कहते, "ज़रा बैठो तो। इतना पढ़-लिखकर भी यदि तुम इतनी छोटी-सी बातों से रुष्ट हो जाओगी तो सब कुछ ही झूठ हो जायेगा। देखो किरण, मैं तुमसे सच कहता हूँ – मैं ठीक नहीं जानता कि सुख नामक वस्तु क्या है। किसी देश में कोई भी इसे जान पाया या नहीं, यह बात मुझे ज्ञात नहीं है। सम्भवतः यह बात जानी भी नहीं जाती। हमारे देश में बहुत दिन पूर्व तीन प्रकार की चेष्टाएँ दुख-निवृत्ति के लिए हो चुकी हैं – उनको अलग करके जो वस्तु शेष रह जाती है – वही सुख है, यह कह देने से भी काम नहीं चलता।"

प्रत्युत्तर में किरणमयी अत्यन्त अधीर होकर बोल उठती, "जब कहने से काम नहीं चलता, तब किसी के सुख का परिहास करना जैसा असंगत है साधारण रूप से सुख के परिमाण को बढ़ा देने की चेष्टा करना भी वैसा ही पागलपन है। भले-बुरे की तौल करने के पूर्व तुम्हारा तुलादण्ड ठीक होना चाहिये। उसको तुम किस आदर्श से ठीक करोगे इसे तो मैं समझ नहीं पाती।"

कुछ पल चुप रहकर हताश स्वर में हारान ने कहा था, किरण, मैं जानता हूँ तुम्हारे मन की गति किस ओर है, लेकिन जब तक तुम परलोक की, आत्मा की, ईश्वर की कल्पना आदि भावनाओं के जंजाल से मन को मुक्त नहीं करोगी, संशय बना रहेगा। सुख ही जीवन का चरम लक्ष्य है और सुखी होने में ही जीवन की चरम सार्थकता है, यह बात जानते हुए भी नहीं समझोगी। यही लगता रहेगा कि क्या जाने, शायद और भी कुछ है। और इस और कुछ का सन्धान कभी नहीं मिलेगा तुम्हें। यह बात तुम्हें परेशान तो करती रहेगी, पर कोई गति नहीं दे पायेगी; आकांक्षा जगायेगी पर परितृप्ति नहीं देगी। रास्ते की बात तो बतायेगी पर रास्ता दिखा नहीं पायेगी।

इसी प्रकार शिक्षा और गृहस्थी के बीच पड़कर किरणमयी बालिकावस्था से बढ़कर सयानी हो गयी थी। आज एक-एक करके उसे ये सब बातें स्मरण आने लगीं। इसी प्रकार उसकी विचार-प्रक्रिया जब वर्तमान दुख को लाँघकर बहुत दूर जाकर अतीत के अगाध अतल दुख के सागर में डूबती हुई गोते खा रही थी, उसी समय दिवाकर शुष्क म्लान मुख लिए केबिन के भीतर आया। उसको देखते ही किरणमयी के दुख-स्वप्न का नशा पलभर में हट गया। वह अपने मुख को स्नेह की हँसी से उज्ज्वल बनाकर तिरस्कार के स्वर में बोली, "बात क्या है बताओ तो बबुआ जी? किस धुन में घूम रहे हो, क्या खाना-पीना नहीं होगा? तुम तो अच्छे लड़के हो भाई।"

उसके कण्ठ-स्वर से दिवाकर इतने दिनों के बाद चौंक पड़ा। अचानक उसे लगा मानो

कितने ही सहस्त्र वर्ष बीत चुके हैं, भाभी का ऐसा स्वर उसे सुनने को नहीं मिला। उस स्वर में आक्षेप की ज्वाला नहीं थी। जो स्वर सचमुच ही स्नेह की वेदना से कोमल होकर निकलता है वहाँ मनुष्य के कान भूल नहीं करते, किसी तरह उसे पहचान लेते हैं। दिवाकर अभिभूत की भाँति निहारता रहा।

किरणमयी ने फिर मुस्कराकर कहा, "सबेरे से अब तक तुम कहां थे?"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "नीचे।"

"नीचे? इतनी देर तक नीचे क्यों बैठे रहे? एक बार ऊपर आकर कुछ खा जाने का अवकाश तुम्हें नहीं मिला?"

प्रत्युत्तर में दिवाकर केवल मौन होकर टकटकी बाँधे देखता ही रहा। किरणमयी ने पूछा, "तुम नीचे क्या कर रहे थे?"

उसके मुख पर बड़ी बहन का वही निर्मल स्नेह-हास्य था, स्नेह की वैसी ही मधुरता थी जिसे कलकत्ता आकर किरणमयी से पाकर दिवाकर कृतार्थ हो गया था। आनन्द से दिवाकर के नेत्रों में आँसू छलछला आये। उसने किसी प्रकार रोककर कहा, "भाभी, नीचे एक बंगाली अपनी स्त्री को साथ लिये अराकान जा रहा है, उनका वहाँ मकान भी है।"

किरणमयी ने कहा, "क्या कहते हो बबुआ?"

दिवाकर ने कहा, "मैं सच कहता हूँ, भाभी, वे लोग बड़े अच्छे आदमी हैं।"

किरणमयी उसकी बात के बीच में ही बोल उठी, "तो ऐसी अवस्था में हम लोग उनके ही मकान में जाकर ठहर सकते हैं। उनकी स्त्री के साथ मेरा परिचय क्या तुम करा सकते हो?"

दिवाकर ने प्रसन्न होकर कहा, "क्यों न करा सकूँगा? मकान वाली कह रही थी तुम्हारे साथ एक बार...।"

किरणमयी ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "मकान वाली कौन है बबुआ?"

दिवाकर ने कामिनी का संक्षिप्त परिचय देकर कहा, "हरीश बाबू इसी नाम से अपनी स्त्री को पुकारते हैं, उनका अपना एक मकान भी तो है।"

सुनकर किरणमयी मौन हो गयी। क्योंकि 'मकान वाली' शब्द इसके पूर्व कलकत्ता में नौकरानियों के मुँह से जिन मकान वालियों के लिए उसने सुना था, उनमें से कोई भी भले घर की गृहिणी नहीं थी। इसीलिए दिवाकर जब उनको अपने साथ यहाँ लाने के लिए तैयार हुआ तो उस समय किरणमयी ने तनिक हँसकर स्निग्ध स्वर से कहा, "वे लोग अच्छे आदमी तो हैं न बबुआ?"

दिवाकर उसी क्षण गर्दन हिलाकर आवेग के साथ बोला, "बहुत ही अच्छे आदमी हैं वे लोग भाभी। एक बार बातचीत करने से..."

किरणमयी ने कहा, "तो आज रहने दो न। किसी दूसरे दिन।"

दिवाकर सिर हिलाकर बोला, "नहीं भाभी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, वह इसी समय आना चाहती हैं। जबकि उनके ही मकान में जाकर ठहरना पड़ेगा तब, जाऊँ भाभी बुलाने?" यह

कहकर दिवाकर अत्यन्त अधीर होकर उठ खड़ा हुआ और साथ ही उसके नेत्रों और कण्ठ स्वर से छोटे भाई का स्नेह-भरा हठ निकलकर मानो किरणमयी की भूल को गरम शूल की तरह बनाकर उसके हृदय में बिंध गया। एकाएक प्रबल शोक-भरी लम्बी साँस उसके गले तक उमड़ उठी और निकलते हुए आँसू को छिपाने के लिए किरणमयी ने किसी प्रकार कहा, "अच्छा, तो जाओ।"

यह बात सच है कि किसी अपरिचित स्थान को जाने के मार्ग में कोई मित्र या साथी मिल जाये तो यह सौभाग्य की ही बात मानी जाती है। अन्त में यही विचार करके सम्भवतः उसने दिवाकर के व्यग्र अनुरोध को स्वीकार किया था। लेकिन जब वह सचमुच ही उसे बुलाने के लिए जल्दी बाहर चला गया तो उस समय अपनी स्थिति को स्मरण करके किरणमयी को बड़ी लज्जा जान पड़ने लगी। जो आकर उपस्थित होगी वह बंगाली औरत है, उम्र बड़ी हो चुकी है। कौन जाने उसके नेत्रों को धोखा देना सम्भव होगा या नहीं। दिवाकर की आयु के साथ उसकी आयु की तुलना करने से बंगाली समाज की दृष्टि में अच्छी न जँचेगी, केवल इसी बात का विचार करके किरणमयी लज्जा से संकुचित हो उठी।

थोड़ी ही देर बाद दिवाकर के पीछे-पीछे मकान वाली आ पहुँची। उसकी ओर दृष्टिपात करने के साथ ही किरणमयी को पता चल गया कि यह भले घर की स्त्री नहीं है। जो स्त्रियाँ कलकत्ता में दासीवृत्ति करके जीवन-निर्वाह करती हैं, यह उन्हीं में से एक है। उसकी छाती के ऊपर से एक बोझ हट गया। हँसते हुए मुख से उसने कहा, "आओ बैठो?"

किरणमयी का रूप देखकर मकानवाली अभिभूत होकर खड़ी रही। बाद को गले में आँचल डालकर उसने झुककर प्रणाम किया और दरवाज़े के निकट बैठकर कहा, "बाबू के मुँह से सुनकर मकान वाले ने कहा, जाओ तो ब्राह्मणी हैं, उनको प्रणाम कर आओ। तो माँजी, मगों के देश में तो तुम जा रही हो, लेकिन वहाँ कोई भी ऐसा मर्द या औरत नहीं है जो मकान वाली के मकान में चूँ तक भी करे। झाड़ू से मारकर उसका विष झाड़ फेंकूँगी न?" यह कहकर झाड़ू के अभाव में मकान वाली ने केवल अपना हाथ ऊपर उठाकर दिखा दिया।

किरणमयी प्रसन्न होकर बोली, 'चलो जान में जान आयी। नयी जगह जा रहे हैं, सोच-सोच कर डर के मारे रातों की नींद हराम हो गयी थी हम दोनों की तो।'

घरवाली बोली, "डरने की क्या बात है? मैं बड़ी रोब-दाब वाली घरवाली मानी जाती हूँ वहाँ। मेरा नाम सुनकर तो यमराज भी रास्ता छोड़ देते हैं। मेरे यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा तुम लोगों को। वैसे तो किराया पाँच रुपये है, पर तुम लोग चार ही देना; जब बाबू को काम-वाम मिल जायेगा फिर देखाा जायेगा। और उसकी भी फ़िक्र मत करो बहू, मेरा घरवाला जिस साहब को भी जाकर पकड़ लेगा, वह ना थोड़े ही कहेगा। तुम लोगों के आशीर्वाद से इतना सम्मान तो है ही हम लोगों का।' कहकर होंठ फैलाकर एक विशिष्ट भंगिमा में सिर हिलाया घरवाली ने।

गहरी साँस लेकर किरणमयी ने कहा, 'भगवान तुम्हारा भला करेंगे।"

उसके मुँह की ओर एकाएक दृष्टिपात करके मकान वाली बोल उठी, "यह कैसी बात है बहू, तुमने अपना सिर ऐसा धो डाला है कि माँग में सिन्दूर का तनिक भी चिह्न नहीं है। सिंधौरा ज़रा दे दो तो, मैं माँग में सिन्दूर लगा दूँ।"

किरणमयी इसके लिए पहले से ही तैयार बैठी थी। उसने बायाँ हाथ दिखाकर कहा, "नहीं, सिर धोने से नहीं, मेरी माँग का सिन्दूर एक साल से काली माई के पैरों से बँधा हुआ है। उस वर्ष बाबू के प्राणों की आशा नहीं थी, सिन्दूर को बन्धक रखकर ही अपनी सुहाग की चूड़ियों को बचा सकी हूँ।" यह कहकर एक लम्बी साँस खींचकर उसने दिवाकर की ओर कनखियों से देखा, उसका मुख लज्जा से और कुण्ठा से एकदम बदरंग हो गया था।

"ऐसी बात है!" कहकर मकानवाली ने सहानुभूति प्रकट करके कहा, "तो हमारे यहाँ भी काली जी का मन्दिर है। वहाँ पहुँचते ही पूजा चढ़ाकर सिन्दूर बन्धक से छुड़ा लेना बहू, नहीं तो लोग न जाने क्या सोचने लगेंगे। अराकान जैसी बुरी जगह तीनों लोक में कहीं भी कोई है क्या? केवल हमारे ही डर से वहाँ के लोग कुछ-कुछ दबे रहते, नहीं तो...।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "इसी विषय पर तो बाबू के साथ आज दो दिनों से बातचीत चल रही है। वे तुम दोनों की बहुत ही प्रशंसा कर रहे थे। वह तुम्हारे सामने मैं क्या कहूँ? जहाज़ पर चढ़ने के बाद से हम दोनों भय के मारे सूखे जा रहे हैं। क्या होगा? यह तो भगवान ही...।"

बात पूरी भी न हो सकी, "भय कैसा माँ जी!" कहकर अभय प्रदान करके मकान वाली अपनी बड़ाई की झड़ी लगाने लगी और देखते-देखते दोनों की घर-गृहस्थी, सुख-दुख की कहानी इस प्रकार जम गयी कि कोई भी यह नहीं कह सकता कि दस मिनट पहले दोनों में तनिक भी परिचय नहीं था।

निकट ही कुर्सी पर दिवाकर जो बैठा तो फिर उस पर से उठा नहीं। किरणमयी कितनी ही असत्य बातें कैसे निःसंकोच और सहूलियत के साथ बे-रोक-टोक बोल सकती है, यह सुनते-सुनते वह मानो हत-चेतन की भाँति स्तब्ध हो गया था। इतनी देर बाद एकाएक होश में आकर वह ज्यों ही उठकर चले जाने को तैयार हुआ, त्यों ही किरणमयी बोल उठी,"सारा दिन तो तुमने खाया नहीं, फिर बाहर जा रहे हो क्या?" प्रत्युत्तर में दिवाकर ने जो बात कही, वह सुनायी नहीं पड़ी, लेकिन समझ में आ गयी। किरणमयी ने घबराकर कहा, "नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। तुम एक बार बाहर जाओगे तो फिर शीघ्र न आओगे, यह मैं जानती हूँ।" मकान वाली के मुँह की ओर देखकर हँसते हुए मुख से उसने, "सार-ससुर नहीं हैं, ब्याह होने के बाद से मुझे सदा इसी बात का दुख रहता है। खिलाने के लिए मानो मारपीट तक करनी पड़ती है।" फिर तनिक मुस्कराकर बोली "मैं ही ऐसी हूँ कि ज़ोर-ज़बर्दस्ती करके खिला-पिला सकती हूँ, और कोई स्त्री होती तो आँसू बहाते-बहाते और रोते-रोते उसके दिन बीत जाते।"

घोर लज्जा से दिवाकर का सिर एकदम झुक गया।

मकान वाली ने हँसकर कहा, "हाँ बाबू इसी प्रकार क्या तुम दोनों विदेश में जाकर

घर-गृहस्थी चलाओगे? लेकिन मेरे मकान में यह न होगा बाबू, मैं बहू को दुख न देने दूँगी, यह मैं कहे देती हूँ।" किरणमयी के मुँह की ओर देखकर वह एकाएक पूछ बैठी, "हाँ बहू, बाबू सम्भवतः तुमसे उम्र में बहुत बड़े नहीं हैं, समान ही उम्र के जान पड़ते हैं, ठीक है न?"

किरणमयी ने उसी क्षण सिर हिलाकर कहा, "कुलीन ब्राह्मण का घर ही तो है, मैं ही आयु में बड़ी न हुई यही मेरा सौभाग्य है! हम दोनों एक ही उम्र के हैं! वैसाख में उनका जन्म हुआ था, और मेरा जन्म आषाढ़ में हुआ था, यही सिर्फ़ दो ही महीने के ही तो बड़े हैं। बहुत से लोग तो मुझे ही आयु में बड़ी बताते हैं। यह कैसी लज्जा की बात है।" यह कहकर किरणमयी मुँह बन्द कर मुस्कराने लगी।

मकान वाली इस हँसी में सम्मिलित नहीं हुई, बल्कि गम्भीर मुँह से उसने कहा, "कुलीन घर के लिए यह लज्जा की क्या बात है! सुनती हूँ कि दस वर्ष के वर के साथ पचास वर्ष की बुढ़िया का भी ब्याह हो जाता है। भले ही हो जाये, इसके लिए कोई बात नहीं। वहाँ जाकर पूजा चढ़ाकर सिन्दूर चूड़ी पहन लेना, नहीं तो सुहागिन की तरह नहीं जान पड़ती हो। अब मैं जाती हूँ, तुम लोग खाओ-पिओ, फिर संध्या के बाद आऊँगी।" यह कहकर किरणमयी के पैरों की धूलि सिर पर चढ़ाकर वह उठ खड़ी हुई।

सैंतीस

सतीश के एकान्तवास की व्यवस्था यद्यपि आज भी वैसी ही है, लेकिन उसकी उस वैराग्य-साधना की धारा इस बीच ठीक मार्ग से हटकर कितनी दूर चली गयी, यह बात जिस किसी ने दो महीने पूर्व देखी है, उसी की दृष्टि में पड़ जायेगी।

जो मनुष्य अपनी इच्छा से निर्वासन का दण्ड ग्रहण कर इस स्वजन-शून्य स्थान में अकेले रहने के लिए आया है, उसका एकाएक वेशभूषा के प्रति अनुराग बढ़ जाने का कारण क्या है, और किसलिए पक्षियों के गाने के बदले में उसकी अपनी गाने की पुस्तकें फिर पेटी के अन्दर से निकल पड़ी हैं और सारंगी, सितार, बाँसुरी आदि बाजे क्यों अपने-अपने अनादृत स्थानों को छोड़कर फिर पुराने मित्रों की भाँति मेज़ के ऊपर आ जमा हुए, और उसके मुख की वह मलिन छाया भी किस प्रकार सहसा तिरोहित हो गयी, यह सब सोचने की बातें हैं।

वास्तव में दो-तीन महीने पूर्व के सतीश और इस समय के सतीश में इतना अन्तर हो गया है कि एकाएक उसको पहचानना भी कठिन हो गया है।

यद्यपि इस इतने बड़े अद्‌भुत परिवर्तन का कारण खोलकर न बताने से भी सम्भवतः काम चल सकता था, लेकिन केवल यही भय हो रहा है कि कहीं सन्थाल परगने की असाधारण आबहवा अच्छी समझकर कितने ही नासमझ लोग उस ओर दौड़ न पड़ें।

इसलिए इतना ही बता देना आवश्यक है कि यद्यपि किसी ओर से विवाह का प्रस्ताव अभी तक स्पष्ट रूप से उठाया नहीं गया है, फिर भी आत्मीय स्वजनों के निकट सतीश

और सरोजिनी के मन की बात सुस्पष्ट हो जाने में कुछ भी शेष नहीं था।

सरोजिनी की माँ जगततारिणी का आग्रह ही इस विषय में सबसे प्रबल है, यह एक बात एक वर्ष पूर्व कलकत्ता में ही ज्ञात हो गयी थी। लेकिन आग्रह व्याकुलता से अधिक रहने के कारण ही सम्भवतः केवल जगतजारिणी के मन में ही इस संशय की भी एक छाया पड़ी थी कि उनकी शिक्षाभिमानिनी कन्या, पुराने समाज और संस्कारों को अच्छा न समझकर सतीश को ग्रहण करने को प्रस्तुत होगी या नहीं। अभी थोड़े दिन हुए, वह अपने नैहर शान्तिपुर गयी हैं। जाते समय वह इस बात का संकेत कर गयी हैं कि वहाँ से लौटते ही वह यह बात पक्की कर देंगी।

सबेरे सतीश बेले पर नया तार चढ़ा रहा था। उसी समय बिहारी के साथ एक भले आदमी आ गये। ज्योतिष के घर के मुनीम थे। जगतूतारिणी के साथ वह शान्तिपुर गये थे, फिर उनके साथ ही लौट आये हैं।

मुनीम ने नमस्कार करके कहा, "माँजी ने आज आपको निमंत्रण भेजा है। वहीं भोजन करना पड़ेगा।"

ख़बर सुनकर सतीश की छाती मानो उछल उठी, उसने पूछा, "वह कब लौटीं?"

मुनीम ने कहा, "आज तीन दिन हुए।"

प्रायः छः-सात दिनों से सतीश उस ओर नहीं गया था। अपने सम्बन्ध की बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाने के बाद से ज्योतिष बाबू के घर जब-तब जाने में उसे लज्जा जान पड़ती थी। उसने कहा, "अच्छा, आप माँ जी से कह दीजियेगा, मैं दस-ग्यारह बजे के अन्दर ही आ जाऊँगा।"

"जैसी आज्ञा!" कहकर वह आदमी नमस्कार करके चला गया।

सतीश को निमंत्रण भेजकर भी जगततारिणी भोजन का कोई प्रयास न करके ही निश्चिन्त थीं, क्योंकि उनकी धारणा थी कि सतीश संध्या के पहले न आयेगा। अब मुनीम के मुँह से यह समाचार सुनकर वह घबरा गयीं और रुष्ट भी हो उठीं।

आज एकादशी थी। उनको अपने लिए किसी तैयारी की आवश्यकता नहीं थी। और जो विधवा ब्राह्मणी उनके घर रसोई पकाती थी, वह भी दो दिन से शान्तिपुर में ही मलेरिया ज्वर से बीमार पड़ गयी थी।

बहुत ही झुँझलाकर उन्होंने मुनीम से कहा, 'तुम इस वक्त के लिए निमंत्रण क्यों दे आये? तुमको क्या तनिक भी बुद्धि नहीं है?"

मुनीम ने डरते-डरते कहा, "मैंने तो कही नहीं, उन्होंने स्वयं ही इस वक़्त आने की बात कही थी।

जगततारिणी ने तब क्रोध करके कहा, "तो तुम ही जाओ, देखो मछली कहाँ मिलती है, जाकर जल्द ख़रीद लाओ।"

आज सबेरे ही जिस लिए उनका मन बिगड़ गया था, उसका कारण था। सतीश के पास निमंत्रण भेजने के बाद ही उनको ख़बर मिली कि कल रात को सहसा शशांक मोहन

फिर आ पहुँचे हैं। इस आदमी को उसके अंग्रेजी चाल-ढाल के कारण वे किसी दिन अच्छी दृष्टि से नहीं देखती थीं, और विशेष रूप से जबसे उन्होंने सुना था कि वह सरोजिनी से विवाह करना चाहता है तभी से वह मनुष्य उसकी दोनों आखों का शूल-सा बन गया था। बीस दिन पूर्व जब वह किसी काम के बहाने कलकत्ता से यहाँ आया था, तब जगततारिणी ने उससे एक प्रकार स्पष्ट रूप से कह दिया था कि उसकी कन्या के साथ उनका विवाह होना असम्भव है। फिर भी, यह निर्लज्ज, बिना सूचना दिये ही पुनः आ गया है, सुनकर उनका चित्त संशय से कंटकित हो उठा था। इसके अतिरिक्त यह ख़बर पहले उनको मिल गयी होती तो वह सम्भवतः सतीश को निमंत्रण ही नहीं भेजतीं। किसलिए यह ख़बर ठीक समय पर उनको नहीं दी गयी, इसके लिए ज्योतिष से लेकर घर के नौकर तक पर बिगड़ उठी थीं। सरोजिनी बाहरी बैठकखाने से निकलकर किसी प्रकार माँ की दृष्टि से बचकर ऊपर चली जा रही थी – शशांकमोहन के आने की ख़बर वह भी नहीं जानती थी लेकिन जगततारिणी ने उसका सिर से पैर तक क्षण भर निरीक्षण किया और क्रोध के स्वर से कहा "घूमना हो गया न? अब जूता-मोज़ा तो थोड़ी देर के लिए खोल डालो बेटी। सतीश आज यहाँ खायेगा, मैं स्वयं रसोई न पकाऊँगी तो वह तुम्हारे इस क्रिस्तान के घर में पानी तक भी न स्पर्श करेगा। आओ, घंघरे-टंगरे को उतारकर मेरे रसोईघर में आओ। बूढ़ी माँ की ज़रा सहायता करने से तुम्हारे ईसामसीह रुष्ट न होंगे बेटी! आओ!"

माँ क्रोध में आने पर किस प्रकार आग की मूर्ति-सी बन जाती थीं और सच-झूठ को लाँघकर जो मुँह से निकलता था, बोल जाती थीं, यह बात किसी से छिपी नहीं थी। सरोजिनी ने कुण्ठित होकर कहा, "मैं अभी आती हूँ माँ।"

लेकिन माँ का क्रोध इससे भी शान्त नहीं हुआ। उन्होंने कहा,"आकर ही तुम मुझे निहाल कर दोगी बेटी। सत्रह-अठारह साल की उम्र हो गयी, आज तक थोड़ा-सा भात पकाना भी नहीं सीखा। मैं भी ग़रीब के घर की लड़की नहीं थी बेटी, लेकिन उसी उम्र से गृहस्थी चलाती आ रही हूँ। जिस घर में धर्म-कर्म नहीं है, उस घर में लड़के-लड़कियों को पैदा करना ही व्यर्थ है!" इस कठोर मन्तव्य को कड़े स्वर से व्यक्त करके जगततारिणी मुँह झुकाकर स्वयं ही रसोईघर में चली गयी।

उनके अपने लड़के-लड़की पर एवं घर के आचार-व्यवहार पर इस मर्मान्तक आक्रोश का भी कारण था जो उनके पूर्व इतिहास को जाने बिना समझ पाना मुश्किल है।

उनके स्वर्गवासी पति परेशनाथ ने वकालत में अगाध अर्थ उपार्जन के बाद भी जब ढलती उम्र में और अधिक उपार्जन के ख़्याल से बैरिस्टर बनना चाहा तो रो-धोकर, उपवास करके सिर पटक कर किसी भी प्रकार वह उनको अपने निश्चय से नहीं डिगा पायी। उनकी एक नहीं सुनी परेशनाथ ने और बारह वर्ष के ज्योतिष व छह वर्ष की सरोजिनी को उनके साथ देश में छोड़कर वह विलायत चले गये। शुरू में कुछ दिन तो जगततारिणी बिल्कुल ही बेहाल हो गयी थीं, लेकिन बाद में प्रकृतिस्थ होकर नायब गुमाश्ते की मदद से कामकाज देखने लगी थीं। हाँ, पति की तरफ़ से दिल सदा के लिए टूट गया था। थोड़े दिनों बाद

बैरिस्टर बनकर वापस आने पर परेशनाथ धनोपार्जन करने लगे। कलकत्ते में नया विशाल बँगला बनवाकर नये ढंग से उसे सजाना शुरू कर दिया, बैरे बावर्ची रख लिये, पर जगततारिणी बिल्कुल तटस्थ बनी रहीं, पति के किसी काम में योगदान नहीं किया। इस प्रकार पति-पत्नी के बीच की खाई दिन पर दिन बढ़ती गयी। बातचीत तो बन्द थी ही, एक दूसरे की ख़बर लेना भी क़रीब-क़रीब बन्द हो गया।

एक दिन ज्योतिष ने आकर कहा, 'माँ, बाबा मुझे विलायत भेजना चाहते हैं'

यह आशंका उन्हें पहले से ही थी। कठोर होकर पूछा – 'कब?'

ज्योतिष ने कहा, 'शायद दो महीनों में।'

'अच्छा', कहकर उन्होंने मुँह फेर लिया और काम के बहाने वहाँ से चली गयीं। ज्योतिष के जाने के दिन वह कमरा बन्द करके बैठी रहीं, हारकर ज्योतिष रुद्ध द्वार के बाहर से ही माँ को प्रणाम करके चला गया। परेशनाथ सरोजिनी को साथ लेकर बम्बई तक छोड़ने गये, वापस आये तो पता चला कि जगततारिणी शान्तिपुर अपने मायके चली गयी थीं। उनके इस तरह अचानक जाने का कारण पूछने पर मालूम पड़ा कि उनके पीछे उनके चचिया ससुर गोविन्द बाबू मिलने आये थे लेकिन इस घर में पानी भी नहीं पिया।

वापस बुलाने के लिए आदमी भेजा, लेकिन वह नहीं आयीं। परेशनाथ ने सरोजिनी को बोर्डिंग में भरती कर दिया और स्वयं प्रैक्टिस प्रायः छोड़कर अकेले घर में राग-रंग में डूब गये। पिता के घर रहते हुए जगततारिणी को पति के अधःपतन का समस्त विवरण मिलता रहा, परन्तु न तो वह आयीं और ना ही उन्हें रोकने का कोई प्रयत्न ही किया। जिस पति ने उन्हें अपने रिश्तेदारों से बाहर खड़ा कर दिया था, उस पति पर उनके आक्रोश की सीमा नहीं थी।

इसी तरह पाँच वर्ष निकल गये। ज्योतिष वापस आ गये। माँ को लेने गये परन्तु वह अटल रहीं, घर नहीं लौटीं। रोकर बोलीं, "सब कुछ तो सुन लिया तूने बेटा! अब जिससे तुम लोग सुखी रहो, वही करो, लेकिन मुझे उस नरक में मत घसीटो – वह सब मुझसे नहीं सहा जायेगा।"

ज्योतिष ने कहा, हम लोग अलग मकान लेकर रहेंगे माँ, तुम्हारे ऊपर उस घर की छाया तक नहीं पड़ेगी। मैं जो भी कमाऊँगा, इसी में गुजारा कर लेंगे, तुम चलो तो सही।

बड़ी मुश्किल से वह तैयार हुईं। एक सप्ताह में ही घर ठीक करके वापस आकर ले जाने की बात कहकर ज्योतिष चला गया। परन्तु इतनी देर की आवश्यकता ही नहीं हुई। पाँच दिन बाद ही वह लौट आया। उसके नंगे पांव और नंगे बदन पर मात्र एक शाल देखकर जगततारिणी फुक्का फाड़कर रो दीं। ज्योतिष के कलकत्ता लौटने के तीसरे दिन ही अचानक हृदयगति बन्द हो जाने से परेशनाथ इस दुनिया से चले गये थे।

दारुण अभिमान से एक दिन जिस घर को जगततारिणी छोड़कर चली गयी थीं, पाँच वर्ष बाद उसी घर में रोते-रोते लौट आयीं।

लड़की को हास्टल से घर ले आयीं। उसको देखकर भय से, विस्मय से स्तब्ध रह गयीं।

ज्योतिष को आड़ में बुलाकर बोलीं, 'बहन की शादी कैसे करेगा अब तू?'

माँ के मन की बात समझकर ज्योतिष बोला, 'माँ, तुम कोई चिन्ता मत करो; उससे कहीं बड़ी लड़कियों का ब्याह भी होता है।'

विस्मय से आँखें फैल गयीं जगततारिणी की। बोलीं, 'चिन्ता कैसे नहीं करूँ रे? तेरे बाप जो कर गये हैं वह तो लौटेगा नहीं, लेकिन जब तक मैं हूँ लड़की किसी ईसाई मुसलमान के हाथ में तो दे नहीं सकती, फिर चाहे उसका ब्याह हो या न हो। तेरे लिये तो कोई चिन्ता नहीं है, प्रायश्चित करने से हो जायेगा – उसका विधान मैं काका से पूछ कर आयी हूँ, पर हजार प्रायश्चित करने पर भी लड़की की उम्र तो नहीं घटायी जा सकती? उसका क्या उपाय होगा?'

ज्योतिष ने कहा, 'तुम्हें उम्र घटानी नहीं पड़ेगी माँ, हाँ थोड़ा सबर करना पड़ेगा। मैं अच्छा ब्राह्मण लड़का ढूँढ दूँगा, मुसलमान ईसाई की नौबत नहीं आयेगी।'

गुस्से से जगततारिणी ने कहा, 'तू अभी और सबर करने को कह रहा है ज्योतिष?'

ज्योतिष ने जवाब दिया, 'दोष मेरा तो नहीं है माँ, जो सबर करने को कहना अपराध है। दोष तो तुम्हारा और बाबा का है। मैं तो विदेश में था।'

यह बात तो जगततारिणी भी समझती थीं। लेकिन अच्छा ब्राह्मण लड़का कहाँ, कैसे मिलेगा, सोच नहीं पा रही थी। बोलीं, 'जो ठीक समझकर बेटा, पर मैं बीच में नहीं पड़ूँगी किसी भी बात में, यह पहले से ही कहे देती हूँ।' इतना कहकर भाराक्रांत हृदय वहाँ से उठकर चली गयीं।

प्रायश्चित करके ज्योतिश ने पिता का श्राद्ध किया।

इसके कुछ दिन बाद ही विलायत से लौटा एक बंगाली साहब पात्र रूप में मिला। बैरिस्टरी पास करके दो साल पहले ही देश लौटा था।

शशांकमोहन का रंग तो नेटिव था पर मिजाज ब्रिटिश था – बंगला वह अशुद्ध बोलते थे और अंग्रेजी ग़लत। कुछ ही दिनों में उनके नियमित आने-जाने से सरोजिनी के प्रति उनके मन का भाव स्पष्ट हो उठा।

पर्दे के पीछे से भावी जामाता को देखकर जगततारिणी गुस्से से जल उठीं। और उनका वह गुस्सा उतरा सरोजिनी पर। उसको बुलाकर कहा, 'तू बेहया की तरह उसके सामने क्यों निकलती है?'

लज्जा से संकुचित होकर सरोजिनी चुप खड़ी रही। आँखों से आग बरसाती हुई जगततारिणी वहाँ से चली गयीं। इसके बाद शशांक मोहन कितनी ही बार आये, लेकिन जिसके लिए आते थे, वह दिखायी ही नहीं देती। माँ की बात याद करके सरोजिनी भीतर ही रहती, सामने नहीं पड़ती।

ज्यातिष ने यह बात लक्ष्य करके एक दिन पूछा, 'सरो, आजकल तू इस तरह अलग-अलग क्यों रहती है री?'

सिर नीचा करके सरोजिनी ने अस्फुट स्वर में कहा, 'माँ' – और कुछ नहीं कहना पड़ा,

सब कुछ समझकर ज्योतिष चुपचाप चले गये। इस घर में वह एक अक्षर ही काफ़ी था किसी बात को समझने के लिए।

प्रायः दो माह बाद एक दिन सुबह उस लड़के का प्रस्ताव ज्योतिष ने माँ के समक्ष रखा तो सदा की तरह डाँट खाकर चुप हो गये।

लड़के को चुप देखकर माँ ने ज़रा नरम पड़कर कहा था, 'अच्छा तुम लोग भी तो विलायत गये थे, लेकिन वैसे हो गये क्या?'

धीरे से ज्योतिष ने कहा था, 'सब एक जैसे नहीं होते माँ, कोई-कोई थोड़ा बहुत बदल भी जाता है। पर इतनी सी बात के लिये ऐसा लड़का हाथ से निकल जाने देना ठीक है क्या? शशांक बैरिस्टर बनकर आया है, इतने से दिनों में प्रैक्टिस भी जमा ली है। मुझे तो नहीं लगता माँ, कि उससे शादी करके सरोजिनी किसी बुरे आदमी के पल्ले पड़ेगी। चाल-चलन में जो थोड़ा सा अन्तर आ गया है, उसे अगर नज़रअन्दाज कर दो तो मेरे ख़्याल से तो भविष्य में सब कुछ अच्छा ही होगा।'

जगततारिणी ने कहा, 'मैं कहती हूँ ज्योतिष, कभी अच्छा नहीं होगा। इसके अलावा जो विदेश जाकर विदेशी बन जाये उसका तो मैं कैसे भी विश्वास नहीं कर सकती। यह कौन-सी बात हुई जो जहाँ गया वहीं का हो गया – ना, ज्योतिष ना, उसे तू विदा कर दे बेटा, वह आदमी नहीं बन्दर है। बन्दर के हाथ मैं लड़की किसी भी तरह नहीं दूँगी।'

किसी के भी सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करने में जगततारिणी को ज़रा भी विलम्ब नहीं लगता था और उसमें किसी प्रकार का संशय या दुविधा भी नहीं होती थी। और फिर जिस अपराध के लिये उन्होंने अपने पति तक को त्याग दिया था, वह अपराध वह किसी भी प्रलोभन से क्षमा नहीं कर सकतीं, यह समझकर ज्योतिष आगे बिना कुछ कहे चले गए, लेकिन थोड़ी देर बाद आकर बोले, "माँ, एक बात सोचने की है।"

– "क्या?" जगततारिणी ने पूछा।

ज्योतिष ने कहा, "सरोजिनी को तुम लोगों ने जो शिक्षा दी है, उसमें उसकी असम्मति से कुछ नहीं किया जा सकेगा। ऐसा करना सबसे बुरा काम होगा। बचपन से ही उसका भार तुम लोगों ने न लेकर विदेशी मेमों पर छोड़ दिया। उस वातावरण में पलकर उसके मन का झुकाव किस ओर होगा, यह समझना मुश्किल नहीं है।"

जगततारिणी चुप रह गयीं। बात की सत्यता को मन ही मन अस्वीकार नहीं कर पायीं, पर साथ ही प्रकट में स्वीकार करना भी सम्भव नहीं था।

कुछ देर मौन रहकर बोलीं , 'तो ठीक है ज्योतिष, तुम सब ही अगर साहब और मेम बनना चाहते हो तो बनो, पर उससे पहले मुझे काशी भेज दो। जब मैं अब तक इतना सहन कर पायीं हूँ, तो यह भी कर लूँगी।'

ज्योतिष ने जल्दी से झुककर माँ की चरण धूल लेकर सिर से लगाते हुए मुसकराकर कहा, 'फिर तो मुझे भी काशी चलकर रहना पड़ेगा। तुम्हें छोड़कर मैं और कहीं नहीं रह सकता यह तो देश लौटने पर ही तय हो गया था माँ।'

नज़रें उठाकर देखा जगततारिणी ने। अन्तर की अग्नि पर पानी पड़ गया। स्नेहसिक्त स्वर में बोली, 'नहीं बेटा, तू हम लोगों का काशी वाला मकान खाली करने को लिख दो। यहाँ रहकर अपनी इच्छा हर बात में थोपकर तुम लोगों को कष्ट दूँ, यह उचित भी नहीं है और इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है।'

हँसकर ज्योतिष ने कहा, "ठीक है माँ, चलो, सब काशी चलकर रहेंगे।"

कलकत्ते के मकान में माँ-बेटे के बीच हुए उक्त कथोपकथन के कुछ दिन बाद ही सतीश उपेन्द्र के साथ वहाँ आया था।

जगततारिणी ने भी सतीश को देखा था, बदन पर मोटा जनेऊ था, पूजा-पाठ भी करता था, मुसलमान की छुई पावरोटी और बिस्कुट नहीं खाता था, श्रीमान था, निष्ठावान था, पिता की अगाध सम्पत्ति का वारिस था – मुग्ध हो गयी थी जगततारिणी। इसके बाद जब क्रमशः इस बात का आभास मिला कि उसके विलायत जाकर डिग्री न लेने पर भी, यहाँ तक कि इतने कुसंस्कार होते हुए भी लड़की के मन में इसके प्रति आकर्षण का भाव है – तबसे इनकी संशकित दृष्टि बदल गयी थी एवं इतने दिनों की पूंजीभूत वेदना को भी जैसे सहज हो जाने का रास्ता मिल गया था। और फिर सतीश ने उन्हें 'माँ' कहकर बुलाना भी शुरू कर दिया था।

लेकिन इसके बाद बहुत दिनों तक सतीश दिखायी नहीं दिया था। उसके न आने का हर दिन उन्होंने यद्यपि उद्वेग व चिन्ता में काटा था, किन्तु आगे बढ़कर स्वयं कोई खोज-ख़बर लेने का प्रयास भी कभी नहीं किया था। सबसे बड़ा डर तो उन्हें इस बात का था कि कहीं प्रयत्न करने पर कोई बुरी ख़बर सुनने को न मिले।

वह जानती थीं कि उनकी अपनी कन्या के मतामत के ऊपर ही विवाह निर्भर नहीं था। सतीश के वृद्ध पिता अभी जीवित थे। क्या जाने वह क्या कहें। और फिर यही कैसे निश्चय से कहा जा सकता था कि सतीश विलायत गये लोगों के घर रिश्ता करने को तैयार हो जायेगा। इसी शशोपंज में वह दिन काट रही थीं।

परन्तु उस दिन जब वैद्यनाथ के घर आकर सतीश को बैठे बात करते देखा तो आनन्द से आँखों में आँसू आ गये। उनको देखते ही सतीश ने उठकर पाँव छू लिये थे।

उसके कलकत्ता से भागकर अज्ञातवास करने से लेकर सरोजिनी के उसे ढूँढ निकालने तक की सारी बात ज्योतिष ने माँ को बतायी। संकट में पड़ने पर कन्या की रक्षा करने के लिये सतीश के सिर पर हाथ फेरकर असंख्य आशीर्वाद दिये उन्होंने और साथ ही अंग्रेजी सीखकर अंग्रेजों की नकल करने के लिये बुरा-भला कहकर बोली, "बेटा सतीश, मुझे विश्वास है कि यह लोग तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलेंगे। पर तुम्हें वहाँ अकेले जंगल में रहने की ज़रूरत क्या है? तुम तो घर के लड़के हो, जब तक हम लोग यहाँ हैं, यहीं क्यों नहीं आ जाते?"

हँसकर सतीश ने कहा, 'मैं ठीक हूँ माँ। मुझे वहाँ कोई कष्ट नहीं है।'

जगततारिणी बोलीं, "कष्ट की बात नहीं है बेटा, अकेले रहने में झंझट बहुत है। इस

घर में कितने कमरे खाली पड़े हैं, तुम यहीं आ जाओ। हवा-पानी तो जैसा वहाँ का है, वैसा ही यहाँ का भी है।"

सरोजिनी बोली, "फिर तो उनकी जात चली जायेगी माँ।"

अन्दर की बात जानती नहीं थी जगततारिणी, लड़की पर चिढ़कर बोलीं, "तेरी बहुत जबान चलने लगी है सरो! क्यों, हम लोग कौन हैं, जो हमारे यहाँ रहने से लोगों की जात चली जायेगी? बेटा सतीश, तुम उसकी बात पर मत जाओ। और अगर ऐसा ही है तो उपेन अपनी बहू के साथ हमारे घर कैसे इतने दिन रह गया? उनकी जात तो नहीं गयी? तू उसे डरा मत बेकार को।"

मुँह फेरकर सरोजिनी हँसने लगी। सतीश बोला, 'नहीं माँ, जात क्यों जायेगी? मैं प्रायः रोज ही आता हूँ यहाँ, रात का खाना भी हर बार यहीं खाता हूँ।'

सुनक जगततारिणी का चित्त पुलकित हो उठा, बोलीं, "ऐसे ही आते रहा करो बेटा। अब जब तक मैं यहाँ हूँ, मेरे पास ही खाना पड़ेगा तुम्हें रोज"। और वह खाने की व्यवस्था करने चली गयीं।

उनके जाने के बाद सरोजिनी ने कहा, 'आपने तो मुझे गाना सिखाने का वायदा किया था?'

– मैं तो रोज ही आता हूँ, क्यों नहीं सीखतीं? सतीश ने कहा।

– आपके आते ही तो आपका गाना सुनने के लिये भीड़ इकट्ठी हो जाती है – उसमें कैसे सीखा जा सकता है भला?

हँसकर सतीश बोला, "तो 'नो एडमिशन' का बोर्ड देकर दरबान को फाटक पर क्यों नहीं बैठा देतीं?"

– उससे तो अच्छा जो माँ ने कहा है वही करिये न! उस जंगल में न पड़े रहकर यहाँ आ जाइये।

जंगल में रहने का प्रयोजन और किसी से भले ही कहा जा सकता था, पर सरोजिनी से नहीं, अतः सतीश ने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रह गया।

सरोजिनी ने फिर कहा, "अच्छा, भैया कह रहे थे वह पाँच-छह दिन बाद कलकत्ता चले जायेंगे, तब उनकी अनुपस्थिति में हमारी देखभाल कौन करेगा?"

– कितने दिन के लिए जा रहे हैं? सतीश ने पूछा।

– कम से कम सात-आठ दिन तो लग ही जायेंगे।

– फिर तो वही व्यवस्था कर जायेंगे। और इतने डर की भी क्या बात है? आप लोग तो हमारे हिन्दू घर की लड़कियों की तरह असूर्यपश्या नहीं है कि घर में किसी पुरुष के न होने से मुश्किल में पड़ जायेगी! आप लोग तो उल्टे कितने पुरुषों के –

सरोजिनी का मुँह लाल हो गया। बीच में ही बोली, "क्या करती हैं हम लोग, बताइये? पुरुषों के कान काट लेती हैं? हम हिन्दू घर की लड़कियाँ नहीं हैं?"

अप्रतिभ होकर जल्दी से बात सम्भालने के लिये सतीश ने जैसे ही सिर उठाया, सामने

के दरवाज़े से ज्योतिष के साथ शशांकमोहन को अन्दर आते देखा।

कमरे में कदम रखते ही हाथ बढ़ाकर जल्दी से आगे आकर शशांकमोहन ने सरोजिनी से हाथ मिलाया और कुशल क्षेम पूछी और फिर अपने इस तह अचानक चले आने की कैफ़ियत देने लगे कि किस तरह कलकत्ते में एकदम उनका मन उचाट हो गया और वह बिना कुछ भी तय किये स्टेशन आकर देवघर का टिकट लेकर ट्रेन में बैठ गये। सरोजिनी के मुँह से ने तो हाँ-हूँ के अलावा कोई बात ही निकली और ना ही उनके आने से उसके चेहरे पर हर्ष प्रकट हुआ।

कोई दसेक मिनट बाद सतीश को उठकर जाते देख अपनी याददाश्त पर ज़ोर डालते हुए शशांक मोहन ने सरोजिनी से पूछा, 'लगता है इनको पहले कहीं देखा है न?'

सरोजिनी का चेहरा चमक उठा। संक्षेप में बोली, 'कह नहीं सकती, कहाँ देखा है।'

कुछ देर बाद जब अन्दर से जगततारिणी ने सतीश को नाश्ते पानी को बुलवाया तो पता चला कि वह किसी से भी कुछ कहे बिना चला गया था।

इसके बाद तीन दिन तक सतीश दिखायी नहीं दिया तो भीतर ही भीतर जगततारिणी क्रुद्ध व उद्विग्न हो उठीं। लड़के को बुलाकर कठोरता से पूछा, 'यह आदमी कितने दिन और रहेगा ज्योतिष? मैं कहती हूँ कि तुम उससे साफ़ कह दो कि उसके यहाँ रहने की कोई ज़रूरत नहीं है।'

माँ की आज्ञा का ज्योतिष ने कैसे पालन किया यह तो पता नहीं, लेकिन जाने से पहले शशांकमोहन को इस बारे में कोई शंका नहीं रही कि जिसके लिये वह आते हैं, उसके मिलने की कोई आशा नहीं है और सतीश ही वह भाग्यवान पात्र है।

मुँह उतर गया उनका, लेकिन आघात को भद्रता से सहन किया उन्होंने और जाते समय सरोजिनी से मिलने का प्रयत्न भी नहीं किया।

ट्रेन में बैठकर विदा लेने के पहले अचानक कुछ याद करके ज्योतिष से पूछा, 'सतीश बाबू कहीं डाक्टरी पढ़ रहे थे, वह पूरी हो गयी?'

सिर हिलाकर ज्योतिष ने कहा, "शायद नहीं। होम्योपैथी स्कूल में कुछ दिन पढ़े थे बस।"

"ओह... होम्योपैथिक स्कूल में! कहकर बात का रुख पलट दिया शशांक मोहन ने।"

अड़तीस

एकाएक अपने भाई की बीमारी का तार पाकर जगततारिणी को शीघ्रता से शान्तिपुर जाना पड़ा था। इसलिए उस समय सतीश के सामने प्रस्ताव रखने का अवसर उन्हें नहीं मिला। आज उसे अच्छी तरह खिला-पिलाकर बात चलायेंगी, मन-ही-मन यह संकल्प करके, सबेरे उठने के साथ ही उन्होंने मुनीम को निमंत्रण दे आने को भेज दिया था। इसी बीच

यह ऐसी घटना हो गयी, जिसको किसी ने सोचा भी नहीं था। जिसका आना सबसे अधिक अप्रीतिकर है, एकाएक वही शशांकमोहन सबेरे ही ट्रेन से आ पहुँचे हैं, सुनकर जगततारिणी के क्रोध का ठिकाना न रहा। मनुष्य की अत्यन्त अनिच्छित वस्तु से एकाएक बाधाग्रस्त हो जाने से उसके सन्देह का ठिकाना नहीं रहता। इसीलिए ठीक उसी समय एकाएक सरोजिनी को बाहर से आते देखकर उनके समूचे शरीर में विष की ज्वाला फैल गयी और यह विचार उत्पन्न हो गया कि शशांक के इस अचानक लौट आने में सम्भवतः इस अभागिनी लड़की का भी कोई हाथ है। बैरिस्टर लड़के पर तो वह किसी दिन भी पूर्ण विश्वास न कर सकी थीं। वास्तव में उनको दोष दिया भी नहीं जा सकता। उनके हिन्दू आचार-भ्रष्ट लड़के-लड़की सतीश की आचार-परायणता को प्रेम की दृष्टि से भी देख सकते हैं, इस बात को वे अपने हृदय में ग्रहण ही नहीं कर सकती थीं।

लड़की को कड़ी बातें सुनाकर वह रसोईघर में चली गयीं और दासी को रसोई की तैयारी ठीक करने का आदेश देकर स्नान करने चली गयीं। लेकिन एक घण्टे के बाद लौट आने पर लड़की की ओर देखकर माता के नेत्र शीतल हो गये।

इसी बीच झटपट स्नान कर रेशमी साड़ी पहनकर वह माँ के रसोईघर में चली गयी थी और हंसिये से तरकारी काट रही थी। पास ही बैठी हुई दासी उसे बताती जा रही थी।

जगततारिणी ने चुपचाप क्षणभर निहारकर कहा, "हिन्दू की लड़की और किसी भी पोशाक में अच्छी नहीं लगती। तुझे देखकर आज मुझे इसका पता चल गया बेटी। तेरी ओर देखकर इतनी खुशी मुझे और किसी दिन नहीं हुई थी।"

सरोजिनी लज्जा से सिर झुकाकर काम करने लगी। माँ उसी को ताने सुनाकर कहने लगीं, "मैं सब समझती हूँ बेटी, सब समझती हूँ। चाहे वह जितनी परीक्षाएँ क्यों न पास करे, मैं उसे बन्दर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहती। और जिसका संकेत पाकर वह निर्लज्ज फिर यहाँ आ जाये, मेरे जीवित रहते यह बात न होगी, यह मैं शपथ खाकर कहे देती हूँ बेटी!"

थोड़ी देर तक चुप रहकर उन्होंने फिर कहा, "ज्योतिष कहता है कि लड़कपन में जिसको जैसी शिक्षा मिली रहती है, उसके मन का खिंचाव भी उसी ओर हो जाता है। लेकिन यह बात सच होगी क्यों? दिन-रात हैट-कोट पहने रहने से वह पसन्द न आयेगा यह बात किस शास्त्र में लिखी है बेटी!"

तैयारी पूरी करके जगततारिणी रसोई बनाने बैठी और एक बार बोली, "मेरी मनोकामना भगवान यदि पूरी कर दे तो तू देख लेना बेटी, उससे तेरा भला ही होगा।"

सरोजिनी सिर झुकाये माँ की मनोकामना क्या है स्पष्ट रूप से सुन लेने की आशा से कान खोले रही, लेकिन जगततारिणी ने फिर उस बात को खोलकर नहीं बताया, अपने मन से वह रसोई पकाने लगी, वे चुपचाप मन-ही-मन क्या आलोचना करने लगीं, सरोजिनी यह समझ गयी और हैट-कोट के विषय में जिस लज़्जाजनक अपवाद का संकेत करके उन्होंने उसको बार-बार चोट पहुँचायी उसका प्रतिवाद करना भी कठिन नहीं था, लेकिन अत्यन्त

असहिष्णु स्वभाव वाली जगततारिणी को कोई भी बात अन्त तक सुनायी नहीं जा सकती, यह सोचकर वह चुपचाप बैठी रही।

दिन के लगभग दस बजे कुछ हल्ला-गुल्ला सुनायी पड़ा। मुनीमजी कहीं से खोजकर एक बहुत बड़ी रोहू मछली ले आये थे।

जगततारिणी ने रसोईघर से झाँककर मछली देख ली तो प्रसन्न होकर कहा, "वाह! यह तो बड़ी है, लेकिन...।"

सरोजिनी ने कहा, "सतीश बाबू के आने में देर है माँ, अभी दस नहीं बजे हैं।"

जगततारिणी ने कहा, "बजने-बजाने की बात नहीं है बेटी, आज तो मेरी एकादशी है, मैं मछली छूऊँगी नहीं। सोचती हूँ कि तुम्हारा ब्राह्मण रसोइया इसे पका सकेगा या नहीं? अच्छा देख तो एलोकेशी, उस घर की रसोई कहाँ तक बन चुकी है?"

दासी के बाहर जाते ही सरोजिनी ने लज़्जित होकर मुँह से धीरे से कहा, " तुम बताती रहोगी तो क्या मैं न बना सकूँगी?"

जगततारिणी ने आश्चर्य भरे मुँह से कहा, "तू बना सकेगी?"

"बना सकूँगी माँ। तुम केवल बतला दो।"

दासी ठिठककर खड़ी हो गयी। ऐसी सुन्दर बड़ी रोहू मछली के अनजान के हाथ में पड़ जाने की आशंका से वह डर गयी। बोली, "यह कैसे हो सकेगा माँ, बाहरी आदमी खाने वाले हैं।"

जगततारिणी ने कुछ देर तक कुछ सोचकर कहा, "इससे क्या? मेरा सतीश तो कोई बाहरी नहीं है, वह तो मेरे घर का ही लड़का है। तू मुँह बाए खड़ी मत रह एलोकेशी, उस ओर के चूल्हे को अच्छी तरह लीपकर मछली काटना। तू भी एक काम कर बेटी। रेशमी साड़ी पहने रहने से तो सुविधा न होगी। अच्छा रहने दे, अपना आँचल अच्छी तरह कमर में लपेट ले।" फिर हँसकर उन्होंने कहा, "आज मछली पकाने से ही तेरा इस विद्या का श्रीगणेश हो जाये। मैं आशीर्वाद देती हूँ, आज के दिन से तू सदा मछली ही पकाया करे।"

इस आशीर्वाद से सरोजिनी ने अपना मुँह और भी नीचे झुका लिया। एक घण्टे के बाद ज्योतिष किसी काम से माँ के पास आया। रसोईघर के दरवाज़े के निकट खड़ा होकर अत्यन्त आश्चर्य से अवाक हो गया। ध्यान से देखकर उसने कहा, "वह कौन रसोई बना रही है माँ! सरोजिनी है क्या?" माँ ने हँसकर कहा, "देख तो, पहचान सकता है या नहीं!"

"पहचान न सकने की ही बात है माँ। लेकिन वह क्या सचमुच ही रसोई बना रही है या गर्दन में ढोल बाँधकर बैठी हुई है।"

माँ ने एक गूढ़ बात का संकेत करके कहा, "हिन्दू की लड़की को क्या सीखने की आवश्यकता पड़ती है रे, यह बात तो हम लोग जन्म से ही सीखी रहती हैं। लेकिन...।"

"लेकिन क्या माँ?"

लड़के को तनिक आड़ में ले जाकर जगततारिणी ने कहा, "लेकिन मैं अब सोच रही हूँ कि यदि सतीश सुन लेगा तो वह उसके हाथ की बनाई रसोई खायेगा या नहीं।"

ज्योतिष के हँस उठते ही सरोजिनी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। ज्योतिष ने कहा, “माँ तुम सतीश को मनु या पराशर की श्रेणी में रखती हो?”

माँ ने कहा, “तुम लोगों से तो अच्छा ही है!”

ज्योतिष ने कहा, “क्या अच्छा है, सुनूँ तो? सरोजिनी जाकर दाल-भात पकाकर दे आयी थी, तभी उस रात को उसे भोजन मिला था, नहीं तो उपवास ही करना पड़ता, यह क्या जानती हो?”

माँ ने गद्‌गद्‌ होकर आश्चर्य से पूछा, “कब रे?”

ज्योतिष ने उस रात की सारी घटना वर्णन करके सुना दी। सुनकर आनन्द से विह्वल होकर अभिमान के स्वर से उन्होंने लड़की से कहा, “धन्य है बेटी तू! मैं तभी से सोच में पड़ी हुई मर रही हूँ, और तू चुप है?”

ज्योतिष ने हँसकर कहा, “वह भी कैसे जान पायेगी माँ कि तुम मन-ही-मन सोच में पड़कर मरती जा रही हो? लेकिन उस दिन तो मैं खा नहीं सका था, आज खाकर देखता हूँ कि जन्म लेने के साथ ही यह पकाना कैसे सीख चुकी है।” यह कहकर वह हँसते-हँसते बाहर चला गया।

जगततारिणी ने लड़की के लज्जा से झुके मुख की ओर देखकर कहा, “लज्जा की क्या बात है बेटी! अपने ही लोगों को रसोई बनाकर खिलाओगी, इससे बढ़कर सौभाग्य की बात किसी लड़की के लिए और क्या हो सकती है? मैं तब तक पूजा कर आती हूँ?” यह कहकर वह थोड़ी देर के लिए बाहर चली गयी।

उसके बाद सारा दिन बीत गया, लेकिन सतीश दिखायी न पड़ा। न आने का कारण भी किसी ने आकर नहीं बताया। सारा दिन छटपटाकर जगततारिणी ने संध्या के बाद ज्योतिष को बुलाकर कहा, “अवश्य ही वह किसी झंझट में पड़ गया है, तुमने किसी को ख़बर लेने के लिए भेज नहीं दिया?”

ज्योतिष ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया, “उतनी दूर मैं किसको भेजने जाऊँ माँ?”

जगततारिणी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, “क्यों, क्या दरबान एक बार नहीं जा सकता था?”

“आवश्यकता क्या है माँ?”

“यह तू क्या कह रहा है ज्योतिष? उसकी तबियत ख़राब हो गयी है या नहीं यह ख़बर लेने की भी क्या आवश्यकता नहीं है?”

“क्या आवश्यकता है? वह हमारा आत्मीय भी नहीं है, मित्र भी नहीं है, उसके लिए चिन्तित होकर मरते रहने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता।” यह कहकर ज्योतिष बाहर चला गया।

केवल इसी थोड़े से समय में सतीश अब उनका कोई नहीं है, उनके मुँह पर लड़के का वह उत्तर जगततारिणी को दुखस्वप्न की भाँति जान पड़ा। वह वहीं खड़ी रही। थोड़ी ही देर में उपवास से निर्बल हुए मस्तिष्क में कितनी ही प्रकार की विचारधाराएँ घूम गयीं,

इसे वह भली प्रकार समझ भी न सकीं।

चुपचाप ऊपर जाकर बिछौने पर लेट जाने पर जगततारिणी ने सरोजिनी को अपने पास बुलाया और उसके मुख की ओर देखते ही वह और भी डर गयीं। थोड़ी देर तक मौन रहकर उन्होंने कहा, "सरोजिनी, सतीश क्यों नहीं आया, तू जानती है?"

सरोजिनी ने कहा, "नहीं।"

लड़की के इस अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर से जगततारिणी उठ बैठी और बोली, "नहीं यदि तुम जानती ही नहीं थी तो आदमी भेजकर जान लेने में क्या हर्ज था? यह भी मेरे कहने की बात थी?"

सरोजिनी ने मधुर कण्ठ से कहा, "भैया का कहना है कि आदमी भेजने की आवश्यकता नहीं हैं"

"क्यों नहीं है यह बात मैं जान लेना चाहती हूँ। जाओ, अभी तुरन्त दरबान को भेज दो, जाकर उसकी ख़बर ले आये।"

"वह तो नहीं है माँ, भैया ने उसे उपेन बाबू के पास तार देने के लिए भेज दिया है?"

"उपेन बाबू को? एकाएक उसके पास तार भेजना क्यों पड़ा?"

"मैं सब बातें नहीं जानती। माँ, तुम भैया से ही पूछ लो।" यह कहकर सरोजिनी माँ की एक प्रकार से उपेक्षा करके चली गयी। अब जगततारिणी को एकाएक लगा कि सतीश को अवश्य ही इसके बीच मना कर दिया गया है। इसका कारण क्या है यह बात कोई भी उनको बताना नहीं चाहता यह सच है, पर कोई विशेष कारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं और इस भीषण अनिष्ट का मूल वही शशांकमोहन है, और इस दुरभिसन्धि को लेकर कारण चाहे जितना भी भयानक क्यों न हो, उनके स्वयं उपस्थित रहने की दशा में भी लड़के-लड़की ने उनकी अनुमति के बिना ही सतीश को मना कर दिया है, वह विचार मन में आते ही उनका चित्त क्रोध से परिपूर्ण हो उठा। उसी क्षण उन्होंने एलोकेशी को ज्योतिष को बुला लाने को भेज दिया। इसके आने पर उन्होंने पूछा, "तूने सतीश को इस मकान में आने के लिए मना कर दिया है?"

ज्योतिष ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "नहीं, यह तुमसे किसने कहा?"

"उपेन के पास तूने सतीश के विषय में कोई तार भेजा है?"

"हाँ।"

"क्या किया है सतीश ने?"

ज्योतिष तनिक चुप रहकर बोला, "जो काम किया है, वह यदि सच हो तो उस दशा में उसके साथ हम लोगों का अब कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह सकता।"

"यह ख़बर तुझे किसने दी, शशांकमोहन ने। वह दुष्ट है। उसकी बातों पर मैं तनिक भी विश्वास नहीं करती।"

ज्योतिष ने कहा, "मैं कहता हूँ, यदि उसकी आधी बात भी सच हो तो माँ, सतीश की परछाईं छूने में हमें घृणा होनी चाहिये!"

लड़के के तप्त कण्ठ-स्वर से जगततारिणी ने कोमल होकर कहा, "अच्छी बात है, मुझे स्पष्ट करके ही बता दो न बेटा कि क्या हुआ है। सतीश ने कोई चोरी-डकैती नहीं की है, हत्या करके भी भाग नहीं आया है कि उसकी परछाईं छूने से भी तुम लोगों को घृणा होगी। लड़का ही ठहरा, यदि किसी प्रकार की गलती उसने कर भी डाली हो तो कितने ही लोग ऐसा करते हैं, सुधरते कितनी देर लगती है?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं माँ, ऐसे अपराध क्षमा नहीं किये जा सकते। वस्तुतः सरोजिनी तो क्षमा न कर सकेगी, यह बात मैं तुमको निश्चित रूप से बताये देता हूँ।"

जगततारिणी ने कुछ सोचकर कहा, "उसका अपराध क्या है सुनूँ तो?"

कल सुन लेना माँ उपेन की चिट्ठी जब तक नहीं आती तब तक इस आलोचना की आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर जयोतिष दुबारा अनुरोध सुनने के पूर्व ही कमरे से बाहर चला गया।

इतनी देर तक उत्तेजना के आवेगों से जगततारिणी बिछौने पर बैठी हुई थीं, लड़के के चले जाने पर निर्जीव की भाँति पड़ गयीं और लम्बी साँस लेकर बोली, "भगवान, इस कलिकाल में किसी को भी तुमने विश्वास करने योग्य नहीं रखा है!"

अनुमान से ही वह बहुत-सी बातें समझ गयीं, इसीलिए केवल सतीश के लिए नहीं, पति की बातों को स्मरण करके उनकी दोनों आँखों से आँसू झरने लगे।

रात को उन्होंने लड़की को बुला भेजा था। एलोकेशी ने सरोजिनी की कोई आहट न पाकर, लौटकर कहा, "बहनजी सो गयी हैं।"

यह सुनकर उन्होंने अपने सिर पर हाथ पटका। वह लड़की ऐसी बुरी ख़बर सुनकर भी सो सकती है, अर्थात वह सतीश की अपेक्षा मन-ही-मन उसी बन्दर के प्रति अनुराग रखती है। यह बात सोचकर लड़की के प्रति उनके क्रोध और अनादर की सीमा न रही।

दूसरे दिन लगभग तीन बजे फाटक के सामने साइकिल खड़ी करके सतीश ने बाहर बैठकखाने में प्रवेश किया।

उसका सूखा मुँह, इधर-उधर बिखरे हुए रूखे बालों ने उपस्थित सभी लोगों की दृष्टि आकर्षित की। सरोजिनी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, लेकिन कोई बात नहीं कही। ज्योतिष ने पूछा, "आपकी तबियत क्या ठीक नहीं है सतीश बाबू?"

सतीश ने तनिक हँसने का प्रयास करके कहा, "नहीं।"

किसी ने फिर भी बात नहीं कही, यह देखकर सतीश मन-ही-मन अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया। वह सोचते-सोचते आ रहा था कि आज वहाँ पहुँचने के साथ ही अभियोग शिकायत का अन्त न रहेगा। इसीलिए उसने घर के अन्दर जाने को तत्पर होकर स्वयं ही कहा, "कल के अपराध के लिए पहले माँ से क्षमा माँग आऊँ, उसके बाद दूसरा काम होगा।"

शशांक अब त तीखी दृष्टि से सतीश की ओर देख रहा था। उसी ने कहा, 'माँ अभी सो रही हैं, उनको जगाकर अभी क्षमा माँगने के लिए जल्दी ही क्या है? बैठिये, आपके

साथ कुछ बातें करनी हैं।"

उसकी बातों के ढंग से सतीश अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर बोला, "मेरे साथ?"

शशांक बोला, "जी हाँ, दुर्भाग्यवश करने की आवश्यकता ही तो है।" फिर ज्योतिष को दिखाकर बोला, "आप तो जानते ही हैं, मैं उनका एक परममित्र हूँ, नहीं-नहीं, ज्योतिष बाबू, आप उठियेगा मत – आपके भाग जाने से कैसे काम चलेगा? अपनी नालिश आप लोगों के सामने ही करना चाहता हूँ। आप दोनों ही बैठिये।" यह कहकर उसने सरोजिनी की ओर तिरछी दृष्टि से देखा। लेकिन सरोजिनी इस प्रकार गर्दन झुकाये रही कि उसने कुछ देखा ही नहीं।

शशांक ने सामने की मेज़ पर हाथ पटककर कहा, "बचपन से मेरा यही स्वभाव है कि जिन लोगों को प्यार करता हूं, उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार भी मैं उदासीन नहीं रह सकता। इसीलिए कल यह बात सुनते ही मैंने मन ही मन कहा, यह तो अच्छी बात नहीं है, सतीश बाबू के इस निर्जनवास की ख़बर लेनी चाहिये। आप सम्भवतः रुष्ट होंगे सतीश बाबू! लेकिन मैं तो अपने स्वभाव के विरुद्ध चल नहीं सकता। आपका क्या विचार है ज्योतिष बाबू?"

ज्योतिष चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा। सतीश भी चुपचाप निहारता रहा।

इन श्रोताओं की अटूट नीरवता के बीच शशांक की उत्तेजना का वेग अपने आप ही ढीला पड़ गया। उसने पहले की अपेक्षा संयत कण्ठ से कहा, "ज्योतिष मेरे परम मित्र हैं, इसीलिए आपसे कुछ प्रश्न करने को मुझे अधिकार है। आप तो जानते हैं...।"

उस बात के बीच में ही सतीश ने गर्दन हिलाकर कहा, "नहीं, मैं मित्रता की बात कुछ भी नहीं जानता, लेकिन आपका प्रश्न क्या है, सुनूँ तो!"

शशांक ने गले को साफ़ करके कहा, "मैं जान लेना चाहता हूँ कि आप यहाँ आकर क्यों ठहरे हैं?"

सतीश ने कहा, "मेरी इच्छा। आपका दूसरा प्रश्न?"

कुछ घबराहट में पड़कर ज्योतिष के मुँह की ओर देखकर शशांक कहने लगा, "राखाल बाबू का कलकत्ता का डेरा खोजने में बड़ी कठिनाई हुई है।

सतीश बाबू को वे पहचानते हैं, उन्होंने ही कहा...।"

सतीश के दोनों नेत्र अंगारे की तरह जलने लगे, उसने कहा, "चूल्हे में जाये राखाल बाबू। आप अपनी बात कहिये।"

इस बार ज्योतिष ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "सतीश बाबू, शशांक मेरे अनुरोध से ही आपसे पूछ रहा है। आपकी इच्छा हो तो उत्तर नहीं भी दे सकते हैं, लेकिन उसका अपमान आप मत कीजिये। हम लोगों के साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसको ध्यान में रखते हुए आपसे कोई भी प्रश्न करना उचित नहीं था, केवल अपनी माँ के कारण ही मुझे आपके अपने ही मुँह से एक बार सुन लेने की आवश्यकता है। अच्छी बात है, मैं ही प्रश्न करता हूँ – सावित्री कौन है? और उसके साथ आपका क्या सम्बन्ध है?"

सतीश पल भर मौन होकर निहारता रहा, फिर बोला, "सावित्री कौन है, यह मैं नहीं जानता ज्योतिष बाबू। लेकिन उसक साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, इसका उत्तर देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता।"

"क्यों?"

"क्योंकि कहने से भी आप लोग समझ न सकेंगे।"

"लेकिन जिस प्रकार भी हो, हम लोगों का समझ लेना आवश्यक है। उसको लाकर आपने कहाँ रखा है, यह बता देने से ही सम्भवतः हम समझ जायेंगे।"

सतीश ने ज्योतिष के मुँह पर अपने जलते हुए नेत्र स्थिर करके शान्त स्वर से कहा, "देखिये ज्योतिष बाबू, मैंने किसी दिन प्रार्थना करके आप लोगों के साथ घनिष्ठता बढ़ाने की चेष्टा नहीं की, इसीलिये प्रश्नोत्तर के बहाने कुछ अप्रिय बातों से तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। मैं समझ गया हूँ क्या घटना हुई है। इसलिए आप लोगों को जितना जानने की आवश्यकता है उतना मैं स्वयं बतलाता हूँ। सावित्री कहाँ चली गयी है, यह मैं नहीं जानता। क्यों आप जानना चाहते हैं, क्या बात है? उसका विवरण एकदम अनावश्यक है। लेकिन यह बात स्वयं ही सच्ची है कि सावित्री चाहे जो हो, यदि अपनी इच्छा से वह मुझे छोड़कर चली न जाती तो मैं जितने दिनों तक जीवित रहता उसे अपने माथे पर रखता। यह बात केवल आप ही लोगों के सामने नहीं, सारी दुनिया के सामने स्वीकार करने में मुझे लज्जा नहीं मालूम होती। आशा है, इसके बाद और कुछ पूछने की आप लोगों को ज़रूरत नहीं है। रहने पर भी मैं उत्तर न दे पाऊँगा।"

सतीश के संक्षिप्त उत्तर से सभी एक साथ आँखें फैलाकर देखते हुए पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रह गये। सरोजिनी के मुँह पर उसकी इस अमानुषिक हृदयहीन स्पर्द्धा उसकी असीम निर्लज्जता को भी बहुत दूर छोड़कर चली गयी। बहुत देर तक स्तम्भित की भाँति बैठे रहकर ज्योतिष ने बड़े यत्न से अपने को होश में लाकर सिर हिलाकर कहा, "नहीं, अब आपसे हम लोगों को कुछ भी पूछना नहीं है। जो कुछ था, वह उपेन के उत्तर से पूरा हो गया है। यह देखिये।" कहकर उसने तार का फार्म उसके सामने डाल दिया।

"उपेन भैया का तार? कहाँ, देखूँ तो?" कहकर सतीश ने व्यग्र हाथों से फार्म उठा लिया। पूरा पढ़कर और लौटाकर थोड़ी देर चुप रहा। उसके बाद एक लम्बी साँस लेकर बोला, "सब सच है। मेरे उपेन भैया कभी झूठ नहीं बोलते। सचमुच ही मैं अच्छा नहीं हूँ, वास्तव में मेरे साथ किसी को सम्पर्क न रखना चाहिए। शायद मैं खुद मन ही मन इस बात को समझ गया था इसीलिए एक दिन इस तरह जंगल में भाग आया था।" यह कहते-कहते उसका कण्ठ-स्वर मानो किसी मंत्र-बल से ज्वर पीड़ित मनुष्य की आवाज़ की तरह गद्गद् हो गया। लेकिन किसी ने कोई बात नहीं कही और सतीश स्वयं भी स्तब्ध होकर बैठा रहा, लेकिन दूसरे ही क्षण कहीं छाती की लम्बी साँस के साथ उसे जान पड़ा कि एक जटिल समस्या की मीमांसा हो गयी। कल सबेरे भी जगततारिणी के निमंत्रण के साथ उसके मन में कितनी ही चिन्ताएँ उत्पन्न हुई थीं। सरोजिनी का हृदय पाने की आकांक्षा एकाएक कब उसके हृदय

में जाग उठी थी, यह बात अभी इस समय याद नहीं पड़ रही थी यह सच है, लेकिन निभृत अन्तःकरण में उसकी आकांक्षा तो थी ही। नहीं तो ऐसी घटना कैसे हो गयी? यह अमृत किस समुद्र के मन्थन से निकला था? सावित्री को खो देने के बाद से ही उसने इस सत्य की जानकारी कर ली थी कि युवती रमणी का मन पाना एक बात है, लेकिन उस प्राप्ति को काम में लगाना पूर्णतः भिन्न वस्तु है। क्योंकि यह प्राप्ति जब नर-नारियों के निभृत हृदय में गुप्त रीति से चुपके-चुपके पूर्णता को पहुँचती रहती है तब संसार के बाहरी लोगों को उसका पता नहीं चलता लेकिन जिस दिन बाहरी लोगों की सम्मति के बिना और एक कदम भी आगे बढ़ने का उपाय नहीं रह जाता उसी दिन घोर दुख का दिन आ जाता है। यह पा जाना कितना कठिन है, यह रत्न कितना दुर्लभ है, बाहर के लोग इस पर विचार ही नहीं करते – वे केवल अपने शास्त्रों को लेकर, समाज को लेकर, लोकाचार को लेकर, विरुद्ध स्वर उठाकर हल्ला मचाते हैं, बाधा पहुँचाते हैं, काम को विफल करते हैं, यही मानो उनका कर्तव्य है। सरोजिनी को शायद वह प्यार करता है। उस ओर से भी यदि प्रतिदान का भाव जाग उठा हो तो उसको वह कहाँ किस जगह पर प्रतिष्ठित करेगा? समाज तो दोनों के भिन्न हैं। कल भी उसे अपने वृद्ध पिता का चिन्तित गम्भीर मुख बार-बार याद आ रहा था। उपेन्द्र भैया के घर के भट्टाचार्य जी का तीखा स्वर हज़ारों बार उसके कानों में आकर बिंध गया था, मुहल्ले के शत्रु-मित्र सभी लोग का तेज़ सिर हिलाना उसके कलेजे पर बहुत बार धक्का पहुँचा चुका है, तो भी इस विरोधी जगत के सभी लोगों की सम्मिलित 'नहीं-नहीं', की आवाज़ के बीच केवल सरोजिनी का मौन लज्जानत मुख ही उसे सबल बनाकर रख सका था। लेकिन आज जब कोई भय नहीं है, एक दिन में अचिन्तनीय उपाय से सभी गाँठें खुल गयीं और सभी दुश्चिन्ताएँ टल गयीं, जान बच गयी।

ये सब बातें मन ही मन बोलकर वह चौंक पड़ा और तुरन्त ही मुँह ऊपर उठाकर उसने देखा कि सभी उसी तरह सिर नीचा किये हुए चुपचाप बैठे हुए हैं। सरोजिनी के मुँह की ओर उसने देखा, लेकिन प्रायः कुछ भी उसे दिखायी नहीं पड़ा। तब उसी को सम्बोधन करके उसने कहा, "तुम – आप मेरे पुराने डेरे पर एक दिन जिसकी साड़ी सुखाने के लिए टंगी हालत में देख आयी थीं, उसी का नाम है सावित्री। मैंने सोचा था, एक दिन खुद ही आपको सभी बातें बताऊँगा लेकिन किसी दिन वह सुयोग मुझे नहीं मिला, वह साहस भी मुझमें नहीं था।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "ज्योतिष बाबू, दोष मेरा है, यह मैं अनुभव कर रहा था, इसीलिये मेरे मन में सुख नहीं था।" यह कहकर वह थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला, "फिर भी किसी दिन मैंने किसी को धोखा नहीं दिया, सब बातें मैं जानता भी नहीं हूँ। फिर मुझे अब कुछ कहना भी नहीं है।"

ज्योतिष ने मुँह ऊपर उठाकर कुछ कहना चाहा। लेकिन गले से आवाज़ नहीं निकली।

सतीश ने शायद एक लम्बी साँस को रोककर कहा, "मैं जा रहा हूँ। मेरा एक अनुरोध है, मेरी बातों की आलोचना करके आप लोग मन ख़राब मत कीजियेगा। मैं किसी बहाने

से आप लोगों के सामने न आऊँगा – मुझे आप लोग भूल जाइयेगा।” यह कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया।

ज्योतिष ने बगल की ओर निगाह उठायी तो डरते हुए देखा कि सरोजिनी का सिर बिल्कुल ही उसके घुटनों के पास झुक पड़ा है, “अरे सरोजिनी! सरोजिनी!” कहकर उसके चिल्ला उठते ही सरोजिनी की शिथिल मुट्ठियाँ कुर्सी की बाँहों से खिसक गयीं और वह नीचे दरी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अभिमान और अपमान के क्रोध से ज्योतिष की बुद्धि आच्छन्न हो गयी थी कि सतीश के विदा हो जाने का यह काण्ड सरोजिनी को कितना बड़ा आघात पहुँचायेगा, इसका ख़्याल ही उसे नहीं था।

इसीलिए बड़ी शुश्रूषा के बाद सरोजिनी को जब होश आ गया और वह जब रोते-रोते हिलते-डोलते उस कमरे को छोड़कर चली गयी जब ज्योतिष के सिर पर मानो बिल्कुल ही वज्र गिर पड़ा।

बहन को वह केवल प्राणाधिक प्यार ही नहीं करता था, बल्कि अपनी सर्वांगसुन्दरी लावण्यवती शिक्षित बहन के उज्जवल आत्म-मर्यादा ज्ञान पर भी उसको अगाध विश्वास था। लेकिन भीतर ही भीतर वह इतना अधिक प्यार भी कर सकती है और यह सब किसी काम में भी न आयेगा यह सब जानते हुए भी एक चरित्रहीन लम्पट के पैरों में सब कुछ न्योछावर कर, होश गँवाकर सूखी घास की तरह गिर पड़ेगी, यह आशंका उसने कल्पना में भी नहीं की थी और उसके चेहरे पर वेदना का जो चित्र उसने अभी अंकित होते देख लिया, वह कितना बड़ा है इसका निरूपण करने की शक्ति उसमें न थी, तो भी वह बहुत देर तक जड़वत बैठा रह गया, फिर शशांकमोहन की तरफ़ देखकर बोला, “आप शायद आज रात की गाड़ी से कलकत्ता लौट जायेंगे?”

शशांकमोहन ने कहा, “नहीं, वहाँ ऐसा कोई ज़रूरी काम नहीं है।”

ज्योतिष और कुछ प्रश्न न करके अन्दर चला गया और अपने कमरे में जाकर दरवाज़ा बन्द करके लेट रहा। उस रात शशांकमोहन को अकेले ही भोजन करना पड़ा, क्योंकि ज्योतिष की आहट बिल्कुल ही नहीं मिली।

जगततारिणी एक-एक करके लड़के से सब कुछ सुनकर साँस छोड़कर बड़ी देर तक स्तब्ध ही रहीं। उसके बाद बोली, “यह सब मेरे ही दुर्भाग्य का फल है।” परलोकगत पति को याद करके उन्होंने कहा, “मैं खुद तो सारा जीवन इसी तरह जलती-भुनती-मरती रही हूँ, अब जो दिन आगे बाकी हैं, उनमें भी यदि लड़के-लड़की के कारण जलना न पड़ा तो मेरे पापों का पूरा प्रायश्चित कैसे होगा। अच्छा बेटा, तुमको जो पसन्द हो उसी के साथ बहन का ब्याह कर दो, मैं अब कुछ न बोलूँगी।”

फिर एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने कहा, “मन अन्तर्यामी है – इसीलिये अचानक उसका आना सुनकर ही उस दिन मेरी छाती धड़क उठी थी ज्योतिष।”

लेकिन ज्योतिष ने कोई बात नहीं कही। वह मन ही मन समझ रहा था कि काम इतना सहज नहीं है। इसीलिए जो कुछ हो गया, वह हो ही गया, कहकर आँखें बन्द करके बैठे

रहने से ही काम न चलेगा। हो सकता है कि एक दिन उस चरित्रहीन के पास खुद जाकर उसे समझा-बुझाकर लौटा लाना पड़े।

कल सारा दिन उसने सरोजिनी को एक बार भी कमरे से बाहर आते नहीं देखा, लेकिन आज तीसरे पहर चाय पीने के लिए बाहरी कमरे में प्रवेश करते ही उसने देख लिया कि सरोजिनी पहले से ही आ गयी है और शशांकमोहन के साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रही है।

ज्योतिष पास जाकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। यद्यपि बहन के श्रीहीन मलिन मुँह की तरफ़ देखने पर उसे कुछ भी समझना बाकी न रहा, फिर भी उसकी छाती पर से मानों एक भारी पत्थर उतर गया।

खा-पी लेने के बाद भी बड़ी देर तक बहुत-सी बातें हुईं, लेकिन उस दिन की किसी ने भी कोई चर्चा नहीं की। संध्या के बाद बहुत कुछ स्वच्छन्द चित्त से बहन को चले जाते देखकर ज्योतिष ने मन ही मन कहा, "दुर्घटना को मैंने जितने बड़े रूप में अनुमान किया था वह उतने बड़े रूप में नही है। हो सकता कि थोड़े ही समय में सब कुछ ठीक हो जायेगा।"

उस दिन बड़ी रात तक दोनों मित्रों में बातचीत होती रही, यहाँ तक कि अपने प्रथम झमेले को सम्भाल लेने के बाद भी सतीश के इतने बड़े घृणित आचरण के साथ मन ही मन शशांकमोहन की तुलना करके न देखेगी, यह बात दोनों को ही एक तरह असम्भव-सी मालूम हुई।

दूसरे दिन दोपहर को खाने-पीने के बाद सरोजिनी अपने ऊपर वाले सोने के कमरे के खुले जंगले के पास एक कुर्सी पर बैठकर रास्ते की तरफ़ देख रही थी। एकाएक उसे मालूम हुआ कि कुछ दूर पर एक माल-असबाब से लदी बैलगाड़ी के पीछे-पीछे जो दो आदमी छाता लगाये चले जा रहे हैं, उनमें से एक बिहारी है। सरोजिनी सतर्क होकर खिड़की की छड़ पकड़कर खड़ी हो गयी। गाड़ी धीरे-धीरे उसकी खिड़की के सामने आ पहुँची और एक आदमी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा तो साफ़ तौर से मालूम हो गया कि वह बिहारी है। सरोजिनी ने हाथ हिलाकर उसे बुलाया तो तुरन्त ही बिहारी अपने साथी को आगे बढ़ने को कहकर छाता बन्द करके खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। सरोजिनी ने कहा, "बिहारी, घुसने के साथ ही बायीं तरफ़ सीढ़ी है। ऊपर चले आओ।"

उस समय घर के सभी लोग दिवानिद्रा में पड़े हुए थे। बिहारी तुरन्त सीढ़ियों से सरोजिनी के कमरे में ऊपर चला गया और उसको प्रणाम करके पैरों की धूलि माथे पर चढ़ा ली।

सरोजिनी ने मन ही मन आशीर्वाद देकर कहा, "तुम लोगों की गाड़ी तो रात को ग्यारह बजे के बाद मिलेगी – अभी तो बहुत समय है। रसोइया महाराज साथ ही है, वह सब सामान कुली से उतरवा लेगा, तुम ज़रा बैठो।"

बिना पूछे ही वह समझ गयी थी कि सतीश यहाँ का डेरा छोड़कर कहीं दूसरी जगह जा रहा है।

बिहारी अपनी चादर के छोर से माथे का पसीना पोंछकर नीचे भूमि पर बैठ गया।

थोड़ी देर तक मौन रहकर सरोजिनी ने इस प्रकार भूमिका बाँधकर कहा, "अच्छा बिहारी तुम तो कभी ब्राह्मण की लड़की के सामने झूठ नहीं बोलते?"

बिहारी ने जल्दी से जीभ काटकर कहा, "बाप रे, ऐसा करने से क्या मेरी रक्षा होगी बहन! सात जन्म काशीवास करने पर भी तो यह पाप दूर न होगा।"

सरोजिनी ने स्निग्ध दृष्टि से इस देहाती धर्मभीरू बूढ़े के मुख की ओर देखकर स्नेह भरी हँसी के साथ कहा, "यह बात तो मैं जानती हूँ बिहारी, तुम कभी झूठ नहीं बोलते, लेकिन मैं जो कुछ पूछूँगी, वह तुम किसी से बता न सकोगे – अपने बाबू से भी नहीं।"

बिहारी ने कहा, "मुझे किसी से कहने की आवश्यकता क्या है बहनजी?"

सरोजिनी ने थोड़ी देर तक मौन रहकर असल बात को उठाया, पूछा, "अच्छा, सावित्री कौन है बिहारी?"

बिहारी ने सरोजिनी के मुख की ओर देखकर कहा, "मेरी सावित्री बेटी की बात पूछ रही हो बहनजी? मैं नहीं जानता बहन जी, कि यह मेरी बेटी, जिसे मैं जननी की तरह आदर देता था, किसके शाप से पृथ्वी पर जन्म लेकर कष्ट पा रही है। आहा, बेटी तो मानो लक्ष्मी की प्रतिमा है।"

बहुत दिन हो गये, बिहारी को सावित्री का नाम तक मुँह से निकालने का अवसर नहीं मिला था। उसका कण्ठ-स्वर गीला हो गया और नेत्रों की दृष्टि धुँधली हो गयी।

सावित्री का उल्लेख होते ही बूढ़े का मनोभाव इस प्रकार बदलते देखकर सरोजिनी आश्चर्य में पड़ गयी।

बिहारी ने धीरे से आँखें पोंछकर कहा, "जिस दिन वह मेरी बेटी राखाल बाबू के मेस में दासी-वृत्ति करने के लिये आयी, उस दिन उसको देखकर सब लोग अवाक हो गये? उसके मुख पर बराबर ही हँसी खिली रहती थी! राखाल बाबू थे मैनेजर और मैं था नौकर, लेकिन उसकी दृष्टि में सभी समान थे – सभी का समान आदर-यत्न करती थी। एकादशी की व्रतनिर्जला करते हुए कभी मैंने उसे उदास नहीं देखा बहन जी!"

बूढ़ा मानो अपना सम्पूर्ण हृदय खोलकर बातें कर रहा था। इसीलिए उसके स्वाभाविक भक्ति उच्छ्वास से सरोजिनी मुग्ध हो गयी और उसके विद्वेष की ज्वाला भी मानो पिघलकर आधी हो गयी। बिहारी कहने लगा, "बहनजी, शास्त्र में लिखा है लक्ष्मीजी ने एक बार किसी अपराध के कारण विष्णु की आज्ञा से दासीवृत्ति की थी, मेरी बेटी भी मानो वैसे ही किसी दोष से नौकरी करने आयी थी और तरह-तरह के दुख पाकर अन्त में चली गयी। जिस दिन वह चली गयी, वह दिन मानो अब तक भी मेरे हृदय में गुँथा हुआ है बहनजी।"

सरोजिनी ने धीरे से पूछा, "वह अब कहाँ हैं बिहारी?"

बिहारी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, उसके मुँह की ओर देखकर वह चुप हो रहा।

सरोजिनी ने फिर से पूछा, 'क्या तुम नहीं जानते बिहारी?"

बिहारी इस बार सिर हिलाकर बोला, "ठीक-ठीक मैं नहीं जानता लेकिन फिर भी कुछ

जानता हूँ। लेकिन वह बात बताने को तो वह मना कर गयी है, मैं तो बता न सकूँगा।"

सरोजिनी ने पूछा, "मना क्यों कर गयी हैं?"

क्यों कर गयी, यह तो बिहारी स्वयं भी समझ नहीं सकता था। फिर भी, इस निषेध को बहुत दिन तक मानकर चलना, वह किस प्रकार है यह जान न सकना, उसको इस जीवन में फिर एक बार आँखों से न देख सकना, यह सब बिहारी के लिए कितना असह्य था, इसे वह स्वयं ही जानता था। विशेषतः जब भी किसी बातचीत में सतीश की तीखी कड़ी व्यंग्य-भरी बातें सावित्री के विरुद्ध सुनता, तब सभी बातें खोलकर बता देने के लिए उसके मन में आँधी-सी बहने लगती थी, लेकिन इस पर भी बूढ़े ने आज तक अपनी शपथ को भंग नहीं किया। यदि किसी दिन असह्य जान पड़ा तो उसी क्षण इसी बात का स्मरण किया है कि इसके भीतर कोई विशेष बात है जो उसकी बुद्धि के परे है। सावित्री के प्रति उसकी श्रद्धा और विश्वास का अन्त नहीं था।

लेकिन अब एक दूसरी लड़की उस बात को जान लेने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगी, तब सारी बातें कह देने के लिए उसके हृदय में भी उथल-पुथल सी मच गयी। कुछ देर चुप रहकर उसने कहा, "मैं बता सकता हूँ बहनजी, यदि तुम मेरे बाबू से न कहो।"

सरोजिनी मन ही मन बड़े आश्चर्य में पड़ गयी। बिहारी जानता है, लेकिन सतीश नहीं जानता और उसी को बताने की विशेष रूप से सावित्री ने मनाही की है – इसका क्या कारण है, वह सोचने पर भी समझ न सकी। उसने कहा, "नहीं, बिहारी, मैं किसी से नहीं बताऊँगी, तुम कहो।"

बिहारी पलभर मौन रहा, फिर सम्भवतः यह सोचकर कि इस काम के असत्य का पाप उसको स्पर्श करेगा या नहीं वह धीरे-धीरे कहने लगा।

सावित्री सतीश को प्राणों से अधिक स्नेह करती थी और इसी कारण राखाल बाबू ने डाह से झगड़ा करके सतीश को डेरा छोड़ देने को बाध्य किया था और सतीश बाबू कभी-कभी शराब भी पीते थे इत्यादि कोई भी बात उसने नहीं छिपायी।

सरोजिनी मंत्रमुग्ध की भाँति सारी बातें सुनती रहीं। सम्भवतः ऐसे एकाग्रचित्त से इतने ध्यान से और किसी ने भी किसी की बातें नहीं सुनी होंगी। जिस राखाल बाबू से शशांकमोहन को ख़बर मालूम हुई थी, संयोगवश उस मनुष्य का इतिहास भी सरोजिनी से छिपा न रहा।

सावित्री का घर कहाँ है, या उसके नैहर या ससुराल का परिचय क्या है, इन सबका पता तो बिहारी न दे सका, फिर भी उसने बार-बार यह बात कही कि वह ब्राह्मण की लड़की है, विधवा है, सुन्दरी है, लिखना-पढ़ना जानती है – केवल भाग्य के फेर से वह दासीवृत्ति करने के लिए आयी थी। बिहारी ने कहा, "इतना अधिक वह प्यार करती थी, लेकिन बाबू मेरी बेटी से बाघ की तरह डरते थे बहनजी! शराब पीकर डेरे में आने का साहस तक उनको नहीं होता था। विपिन बाबू नामक बाबू का एक बदचलन मित्र था। उनके साथ मिलकर गाने-बजाने के लिए बाबू बुरी जगहों में जाया करते थे, ज्यों ही यह ख़बर मेरी बेटी के कानों में पहुँची उनका जाना एकदम बन्द हो गया। फिर तो उनमें यह साहस नहीं रहा कि सावित्री

की बात टालकर वहाँ जाते।" यह कहकर बिहारी ने गर्व से सरोजिनी के मुख पर दृष्टिपात किया।

सतीश के ऊपर एक और नारी के इतने बड़े अधिकार की बात से सरोजिनी की छाती में बर्छी सी चुभी, फिर भी उसने धीरे-धीरे पूछा, "अच्छा बिहारी, उनसे इतना डरने की सतीश बाबू को क्या आवश्यकता थी?"

बिहारी ने जैसा समझा था वैसा ही उसने बताया। बोला, "सावित्री बहुत ही तेजस्वी थी बहन जी, हमारे बाबू ही नहीं, डेरे भर के सभी लोग मन ही मन उससे डरते थे। एक दिन की बात मैं बता रहा हूँ। उस दिन बड़ी रात को कहीं से शराब पीकर और शराब की एक बोतल अपने साथ लिये बाबू डेरे पर लौटे। उन्होंने सोचा था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने डेरे पर चली गयी होगी। मैं जाग रहा था, मैंने दरवाज़ा खोल दिया। उन्होंने पूछा, "सावित्री चली गयी है न बिहारी?' मैंने कहा, "नहीं बाबू, आज वह नहीं गयी – यहीं है।' यह सुनते ही शराब की बोतल रास्ते में फेंककर वह धीरे-धीरे चोर की तरह मकान के अन्दर गये। डर के मारे उनका नशा पल भर में समाप्त हो गया। बताओ तो बहनजी, उसके सिवा बाबू पर और कोई क्या शासन कर सकेगा?"

सरोजिनी चुपचाप कुछ देर तक बैठी रही, फिर बोली, "सतीश बाबू क्या अब भी शराब पीते हैं बिहारी?"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं। लेकिन फिर आरम्भ कर देने में कितनी देर लगेगी बहनजी? इसीलिए तो आज दो दिनों से केवल यही सोच रहा हूँ कि इस दुस्समय में यदि सावित्री बेटी एक बार आ जाती!"

सरोजिनी ने उत्सुक होकर पूछा, "क्यों बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "मैं सदा से ही देखता आ रहा हूँ कि मन ख़राब होने पर ही बाबू शराब पीना शुरू कर देते हैं। एक उपेन बाबू से डरते हैं पर कौन जाने उनके साथ भी क्या हो गया है। उस रात को वह मकान में घुसे तो उस क्षण उनकी दृष्टि सावित्री पर पड़ गयी, देखते ही जो वह चले गये, उसके बाद से कोई भी किसी का नाम नहीं लेता। अब तुम ही बताओ बहन जी, उसके सिवा बाबू को और कौन सम्भाल सकता है?"

फिर थोड़ा रुककर कहने लगा, "बीमारी की ख़बर पाने के बाद से ये पाँच-छः दिन बाबू के किस प्रकार बीते हैं, यह मैंने अपनी आँखों से देखा है। परसों नींद से उठकर तार से ख़बर पाकर वे मुँह ढँककर लेटे रहे, फिर सारा दिन उठे ही नहीं। उसके बाद रात की गाड़ी से घर चले गये। मुख से केवल यही बात कह गये, "बिहारी, तुम सब सामान घर ले आना।"

सरोजिनी ने घबराकर पूछा, "कौन बीमार है बिहारी?"

बिहारी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "यहाँ से जाते समय क्या बाबू तुम लोगों को कुछ भी नहीं बता गये बहनजी?"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, कौन बीमार है?"

बिहारी ने लम्बी साँस लेकर कहा, "तो भूलकर सीधे चले गये हैं इस मकान में नहीं

आये? जिस दिन सबेरे यहाँ से उनके पास भोजन के लिए निमंत्रण गया था, उसी दिन चिट्ठी आयी थी कि बूढ़े बाबू बीमार हैं। इसीलिये वह खाने के लिए न आ सके। तार भेजकर स्वयं ही सारा दिन डाकघर में खड़े रहे। लेकिन कोई ख़बर नहीं मिली। उसके बाद परसों सबेरे एकदम अन्तिम ख़बर आयी। रात की गाड़ी से बाबू घर चले गये।"

सरोजिनी चौंक पड़ी, "सतीश बाबू के पिताजी मर गये?"

बिहारी ने कहा, "हाँ, बहनजी।"

"उनको क्या हो गया था?"

"उमर बहुत हो गयी थी। केवल किसी बहाने से प्राण निकल गये।" यह कहकर बिहारी ने भीगी आँखों को पोंछकर कहा, "और किसी बात के लिए मैं दुख नहीं करता लेकिन उस बूढ़े के अलावा बाबू को अपना कहने के लिए और कोई नहीं रह गया। इसीलिए इधर दो दिनों से मैं केवल यही सोच रहा हूँ कि अबसे वह क्या करने लगेंगे, इसे माँ दुर्गा ही जानती हैं।" यह कहकर बूढ़े ने चादर के छोर से अपनी दोनों आँखों को एक बार फिर अच्छी तरह पोंछ डाला।

सरोजिनी की आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने कहा, "इस समय से सतीश बाबू अच्छे भी तो हो जा सकते हैं। बुरे ही हो जायेंगे यह भय तुमको क्यों हो रहा है बिहारी?"

बिहारी अन्यमनस्क होकर बोला, "न जाने क्यों?" उसके बाद मुँह ऊपर उठाकर बोला, "बाबू अच्छे हो जायें, उनकी मति उस ओर न जाये यही मेरी कामना है, लेकिन जाते समय गाड़ी पर चढ़कर उन्होंने जो यह कहा था, 'जाने दो, एक तरह से रक्षा ही हुई, संसार में अब किसी के लिए चिन्ता न करनी पड़ेगी।' तुमसे मैं सच कह रहा हूँ बहनजी, उसी समय से जब भी वह बात स्मरण आती है, त्योंही छाती के भीतर आग-सी धधकने लगती है। उनके हाथ में अब रुपयों के बड़े ढेर आ जायेंगे। बाबू के संगी-साथी भी अच्छे नहीं हैं, बुरे मार्ग से चलने पर अब उनको कौन रोकेगा?" यह कहकर बिहारी ने अनजान में ही फिर एक बार सुनने वाले की छाती में गरम तीर भोंककर अपने दोनों हाथ माथे पर रख लिये।

सरोजिनी ने आघात सहकर मृदु स्वर से कहा, "अच्छी बात तो है बिहारी, उनको ही आने के लिए तुम चिट्ठी क्यों नहीं लिख देते?"

बिहारी ने कहा, "पता मैं नहीं जानता। यदि मै स्वयं ही एक बार काशी जा सकता तो जिस तरह भी होता खोजकर ढूँढकर उसको लौटा लाता, लेकिन मेरे लिए तो यह उपाय नहीं है। बाबू को अकेले छोड़ जाने की भी इच्छा नहीं होती! इसके अतिरिक्त मैं तो कभी काशी नहीं गया, वहाँ की जानकारी मुझे नहीं है।" यह कहकर उसने निरुपाय की भाँति सरोजिनी के मुँह की ओर देखा। स्पष्ट रूप से ही यह बात समझ में आ गयी कि सतीश का यह परम हितैषी बूढ़ा नौकर स्वामी के अवश्यम्भावी अमंगल की आशंका से घबराकर उससे चुपचाप आश्वासन पाने की प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन सरोजिनी ने उसे कोई सान्त्वना नहीं दी, केवल चुपचाप निहारती रही।

"तो अब मैं जा रहा हूँ बहनजी।" कहकर बिहारी उठ पड़ा और सरोजिनी के पैरों पर

झुककर प्रणाम करके फिर पद धूलि लेकर कमरे से बाहर चला गया। लेकिन दूसरे ही क्षण वह अकस्मात लौट आया और हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया।

"क्या है बिहारी?"

"एक बात की विनती करूँगा बहनजी!"

सरोजिनी ने बड़े कष्ट से म्लान हँसी हँसकर कहा, "कौन-सी बात?"

बिहारी ने वैसे ही हाथ जोड़े करुण स्वर से कहा, "मैं जात का ग्वाला, देहाती गँवार और बूढ़ा आदमी हूँ। बातें कहने में यदि कुछ भूल हो गयी हो तो आप ख़्याल मत कीजियेगा।"

सरोजिनी की आँखों मे आँसू भर आये। लेकिन प्राणपण से उन्हें रोककर गर्दन हिलाकर उसने कहा, "नहीं।"

उसके मुँह से यही एक 'नहीं' शब्द सुनकर बिहारी मानो निर्भय हो गया। उसने अपने को देहाती गँवार कहकर अपनी बुद्धिहीनता का परिचय दिया, फिर भी वास्तव में वह नासमझ नहीं था। इसीलिए सरोजिनी ने क्यों सावित्री की बातें सुनने के लिए उसे रास्ते से बुलाया था, क्यों वह इतने ध्यानपूर्वक उसकी कहानी सुन रही थी, इन सभी बातों का अर्थ उसके सामने अकस्मात सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट हो उठा। अनजान दशा में उसने इतनी देर तक इस तरुणी को इतनी वेदना दी, इसके लिए उसके हृदय में पश्चाताप की कोई सीमा नहीं रही। तब बिहारी ने अत्यन्त करुण स्वर में कहा, "मैं जानता हूँ, तुम्हारी बातों की बाबू कभी अवहेलना न कर सकेंगे, तुम इच्छा करने से बाबू को इस बुरे समय में रक्षा कर सकती हो, लेकिन मेरा मन कहता है कि तुमने मानो उनको त्याग दिया है माँ।" बिहारी ने पहली बार सरोजिनी को 'माँ' सम्बोधन किया। 'माँ' कहकर अपना काम बनाने की युक्ति बूढ़ा खूब जानता था।

सरोजिनी के आँसू रोकने पर भी अब न रुके, दोनों आँखों से बड़ी-बड़ी बूँदें बूढे क सामने ही झर पड़ीं। लेकिन झटपट उन्हें पोछकर उसने कहा, "नहीं बिहारी, मुझसे कुछ भी न होगा, मैं अब उनकी किसी बात में नहीं हूँ।"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "माँ कहकर पुकारा है, मैं आपके लड़के की जगह हूँ। उनसे जो कुछ भी गलती हुई हो, मैं अपना कसूर मानता हूँ।" यह कहकर बिहारी झुककर सरोजिनी के पैरों की धूलि सिर पर चढ़ाकर बोला, "लेकिन तुम तो मेरे बाबू को पहचानती ही हो? इस विपत्ति के दिन में अभिमान करके तुम उनको मार डालोगी, यह तो मैं कभी न होने दूँगा।"

सरोजिनी का घोर अभिमान पिघल गया। सतीश को क्षमा करने के लिए वह एक बार उन्मुख हो उठी, लेकिन उसके साथ ही बूढ़े के मुँह से सावित्री का सारा प्रसंग सुनना स्मरण हो जाने से उसका पिघला हुआ चित्त पल भर में फिर सूखकर काठ बन गया। उसने गर्दन हिलाकर शान्त कठोर स्वर में कहा, "बिहारी तुम डरो मत। सावित्री के आ जाने से ही फिर सब कुछ ठीक हो जायेगा। लेकिन मुझसे तुम लोगों का कुछ भी उपकार न होगा।"

यह निष्ठुर प्रत्युत्तर सुनने के लिए बिहारी बिल्कुल तैयार नहीं था। अपने सर्वविजयी प्रेम के सामने यह सूखा कण्ठ-स्वर ऐसा कठोर होकर सुनायी पड़ा कि वह कुछ क्षण के लिए विह्वल की भाँति केवल देखता रहा। उसके बाद फिर एक भी बात न कहकर, फिर एक बार प्रमाण कर वह बाहर निकल गया।

उनतालीस

क्षय रोग से ग्रस्त पत्नी को लेकर उपेन्द्र पाँच-छः महीने तक नैनीताल में रहकर अभी कुछ दिन हुए बक्सर आये हैं। यह है सुरबाला की अन्तिम इच्छा। उस दिन, संध्या के बाद स्निग्ध दीपक के प्रकाश में बड़ी देर तक मौन देखते रहने के बाद यह परलोक की यात्री धीरे-धीरे पति के हाथ पर अपना दायाँ हाथ रखकर बोली, "तुम्हारी बातों पर अब किसी दिन सन्देह नहीं होता। आज मुझे एक बात सच्चाई के साथ बता दोगे? भुलावे में नहीं डालोगे?"

उपेन्द्र ने स्त्री के मुँह पर झुककर कहा, "कौन बात पशु?"

सुरबाला पलभर चुप रहकर बोली, "तुमको मैं फिर पाऊँगी तो?"

उपेन्द्र ने स्त्री के माथे पर से रूखे बालों को हटाकर शान्त दृढ़ स्वर से कहा, "अवश्य पाओगी।"

"अच्छा कितने दिनों में पाऊँगी? मैं तो शीघ्र ही जा रही हूँ, लेकिन उतने दिनों तक कहाँ तुम्हारे लिये बैठी रहूँगी?"

"स्वर्ग में रहोगी। वहाँ से मुझे बराबर देख सकोगी।"

"लेकिन मैं अकेली किस तरह रहूँगी? अच्छा, सभी डाक्टर जवाब दे चुके हैं? ऐसी कोई दवा नहीं है जिससे मैं बचूँ? मेरे चले जाने से तुमको बहुत कष्ट होगा।"

एक बूँद आँसू का जल किसी प्रकार भी उपेन्द्र सम्भाल न सके, टप करके सुरबाल के ललाट पर चू पड़ा।

उसके सम्पूर्ण हृदय को मथ कर शिकवा फूट निकली – भगवान पति के हृदय में तुमने केवल इतना प्यार ही दिया, लेकिन इतनी भी शक्ति नहीं दी कि स्नेहास्पद को एक दिन भी अधिक पकड़ रखें।

सुरबाला अपने दुबले हाथ को उठाकर पति की आँखें पोंछकर बोली, "तुम्हारी रुलाई मैं सह नहीं सकती, मेरी और एक बात मानोगे?"

उपेन्द्र ने गर्दन हिलाकर कहा, "मानूँगा।"

सुरबाला ने कहा, "तब तो मेरी छोटी बहन शची के साथ छोटे बाबूजी का ब्याह कर देना। मैंने बहुत दिनों से उनको देखा नहीं है, दो-चार दिनों में पढ़ाई की कौन बड़ी हानि हो जायेगी, एक बार कलकत्ता से आने के लिए तार दे दो न।"

उपेन्द्र की छाती में फिर एक बाण बिंध गया। दिवाकर को सुरबाला कितना प्यार करती

थी, इसे वह जानते थे। पर उसकी अन्तिम इच्छा पूरी करने का कोई उपाय नहीं है, दिवाकर की परम कीर्ति को बहुत दिनों तक उन्होंने अपनी स्त्री से छिपा रखा था, आज भी उसको प्रकट नहीं किया। तार देने के अनुरोध को बातों से बहलाकर बोले, "लेकिन उसके साथ शची का ब्याह करने की राय तो पहले तुम्हारी नहीं थी पशु। केवल मेरी सम्मति से ही अन्त में तुमने अपनी राय दी थी। अब मेरा अपना विचार भी बदल गया है। शची के लिए बहुत अच्छे विवाह सम्बन्ध मैं ठीक कर दूँगा, लेकिन इस ब्याह की आवश्यकता नहीं है सुरो।"

सुरबाला ने कहा, "नहीं, यह नहीं होगा, छोटे बबुआ जी के साथ ही शची का ब्याह कर देना।"

उपेन्द्र आश्चर्य में पड़कर बोले, "क्यों बताओ तो?"

सुरबाला ने कहा, "उसका मुँह देखकर तुम किसी दिन फिर हमारे लिए पराये न हो सकोगे, इसके अतिरिक्त वह मकान में रहेगी तो तुमको भी देख सकेगी।"

उपेन्द्र ने अन्यमनस्क होकर कहा, "अच्छा, यदि असम्भव न हुआ तो कर दूँगा।"

इसके तीन दिन बाद ख़बर पाकर उपेन्द्र के मना करने पर भी माहेश्वरी आ गयी। सुरबाला ने उनकी गोद में सिर रखकर कहा, "मेरे चले जाने पर उनके ऊपर ज़रा निगाह रखना बहन, मैं तो जाती हूँ, वह फिर भी ब्याह न करेंगे, लेकिन भारी कष्ट होगा। तुम सभी लोग उनको देखना, तुम लोगों से यही मेरी अन्तिम विनती हैं" यह कहकर उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

माहेश्वरी उसकी छाती पर औंधी गिरकर रो उठी, मुँह से एक भी बात न निकाल सकी।

इसी प्रकार और भी तीन-चार दिन बीत गये। उसके बाद एक दिन सबेरे पति की गोद में माथा रखकर, समूचे मुहल्ले को शोक-समुद्र में निमग्न करके वह पति-साध्वी स्वर्ग को चली गयी।

उपेन्द्र शान्त और स्थिर भाव से पत्नी का अन्तिम संस्कार पूरा करके महेश्वरी को साथ लेकर अपने घर लौट आये। उपेन्द्र के पिता शिवप्रसाद बाबू पुत्र के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये थे। लेकिन अब लड़के का मुँह देखकर बहुत कुछ आश्वस्त हुए। मन ही मन बोले, "नहीं, जितना मैं डर गया था, उतना नहीं है।" यहाँ तक कि उन्होंने निकट भविष्य में एक और सुन्दर बहू घर में लाने की आशा को भी हृदय में स्थान दिया। लेकिन अन्तर्यामी ने सम्भवतः छिपे रहकर बूढ़े के लिए उस दिन लम्बी साँस ली थी।

कुछ ही दिनों के बाद उपेन्द्र को कोर्ट के लिए घर से निकलते देखकर शिवप्रसाद ने अत्यन्त सन्तोष का अनुभव किया, यहाँ तक कि आनन्द की अधिकता से पुत्र को कुछ क्षण के लिए अपने पास बुलाकर संसार की अनित्यता के विषय में बहुत-सी हितकर बातें कहकर अन्त में बोले, "उपेन्द्र, तुमको और क्या समझाऊँ बेटा, तुम स्वयं ही सब कुछ जानते हो, सब समझते हो। इस संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं है, आज जो है कल वह नहीं रहेगा, सब ही माया है। इस बात को सदा स्मरण रखना बेटा, कभी भविष्य को नष्ट मत करना। प्राणपण से उन्नति करने का यही तो समय है। कौन किसका है? शास्त्रों में लिखा

है, 'चलाचलमिदम् सर्व कीर्तिर्यस्य स जीवति!' अर्थात सम्मान कहो, प्रतिष्ठा कहो, सब कुछ है रुपया। रुपया कमाने पर ही सब कुछ निर्भर है। देखो न सतीश के बाबूजी किस प्रकार रुपया रख गये हैं बताओ तो?" यह कहकर गम्भीर भाव से वह सिर हिलाने लगे। उपेन्द्र मुँह झुकाये चुपचाप सब सुनकर 'जैसी आज्ञा' कहकर कचहरी चले गये।

कचहरी में सतीश के भैया से भेंट हो गयी। उन्होंने इस दुर्घटना के लिए अत्यन्त दुख प्रकट करके अन्त में सतीश की चर्चा छेड़ दी। उपेन्द्र की धारणा थी कि सतीश पिता की मृत्यु के बाद से घर पर ही है, लेकिन अब उसने सुन लिया कि वह घर पर तो है अवश्य, लेकिन यहाँ नहीं, गाँव के घर पर है। टुनू बाबू सतीश के सौतेले बड़े भाई हैं। किसी दिन भी उन्होंने सतीश को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा, एक घर में रहते हुए भी कभी उसका समाचार तक भी लेने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। वस्तुतः सतीश के साथ उनका सम्बन्ध नहीं था, यह कहना भी अनुचित नहीं है। पिता की मृत्यु होने से आधे का हिस्सेदार बनकर वह भैया की और भी विषदृष्टि में पड़ गया है। वह बोले, "इसके बीच ही प्रायः तीस हजार रुपया खर्च करके उसने खूब बड़ी दो डिस्पेंसरियाँ खोल दी हैं, सौ रुपये मासिक वेतन पर डाक्टर रख लिया। इसके अतिरिक्त मकान तक को भी अस्पताल में परिणत कर दिया है।"

उपेन्द्र ने सहज भाव से कहा, "हाँ यह उसकी इच्छा बहुत दिनों से थी, केवल रुपये के अभाव से ही वह इतने दिनों तक यह काम न कर सका था।"

टुनू बाबू ने व्यंग्य करके तनिक हँसकर कहा, "ऐसा तो मुझे भी जान पड़ता है उपेन। लेकिन केवल डिस्पेंसरी खोलने की इच्छा ही तो तुम जानते थे, उसके साधन-भजन का अर्थ तो तुम नहीं जानते भैया।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "साधन-भजन कैसा?"

टुनू बाबू बोले, "यही जैसे चक्र, कारण, पंचमकार इत्यादि। केवल फिलानथ्रपिस्ट नहीं है जी, 'सतीश स्वामी' अब एक उच्चकोटि के साधक हैं, गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ है, रुद्राक्ष की माला, ललाट पर सिन्दूर का तिलक, सदा ही घूमते हुए नेत्र। उसका एक हस्ताक्षर लेने के लिए रासबिहारी को मैंने भेजा था, वह तो डर के मारे दो दिन पास तक जा नहीं सका था, और इस चिट्ठी को पढ़कर देखो, उसके नौकर बिहारी ने मेरे पास लिख भेजी है, अभी तक उत्तर नहीं दिया गया है, इसलिए पाकेट में ही यह घूम रही है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रंग का मुड़ा हुआ काग़ज़ निकालकर उपेन्द्र के सामने रख दिया।

निरुपाय होकर बिहारी ने सतीश के बड़े भाई के पास उपाय करने की याचना करके चिट्ठी लिखवा ली है। आदि से अन्त तक चिट्ठी पढ़ी न जा सकी लेकिन जितनी पढ़ी गयी, उतनी ही ने उपेन्द्र को बड़ी देर तक स्तम्भित कर रखा।

उसके बचपन का सुहृद्, उसका दायाँ हाथ, उसका छोटा भाई, वही सतीश आज अधःपतन के इतनी निम्नस्तर पर उतर गया है कि गाँव में खुले रूप से यह सब वीभत्स कीर्तियाँ करके घूमते रहने में लज्जा अनुभव न कर इस बात पर गर्व कर रहा है कि वह

धर्म-साधना कर रहा है। सम्भवतः उस कुलटा दासी से भी सहयोग कर लिया है। इसके अतिरिक्त बिहारी की चिट्ठी के भाव से यह भी समझने में आता है कि गाँव के कुछ निकम्मे लोग भी उसके साथ जुट गये हैं।

उपेन्द्र अन्यमनस्क होकर चिट्ठी पाकेट में डालकर कचहरी से घर लौट आये। टुनू बाबू को लौटा देने की बात उसको स्मरण न रही।

बिहारी ने चिट्ठी डाक में छोड़ दी। आरम्भ में कई दिनों तक वह स्वयं टुनू बाबू की प्रत्याशा में उतावला हो रहा था। बाद को एक उत्तर के लिए अधीर होकर दिन बिताने लगा। लेकिन दिन पर दिन बीत गये, नहीं आये बड़े बाबू, नहीं आया उनका उत्तर।

विशेषतः 'थाको बाबा' के अत्याचार से ही बिहारी परेशान हो उठा है। ये हैं तांत्रिक साधु सिद्ध पुरुष। सतीश के मंत्रगुरू हैं। आठों पहर मदिरा और गांजा सेवन करने से स्वभाव दुर्वासा से भी उग्र हो चला है। मुँह इतना खराब हैं कि केवल क्रोध करने की दशा में ही नहीं, उनकी स्वाभाविक मानसिक अवस्था की बातचीत में भी कानों में उँगली देनी पड़ती है।

लेकिन यही है सम्भवतः तांत्रिक सिद्धी का लक्ष्य। इसके अतिरिक्त सतीश के गुरू भी तो हैं। बिहारी अपनी ओर से इनके प्रति कम श्रद्धा-भक्ति नहीं रखता था। लेकिन पहले ही बताया जा चुका है कि सतीश के किसी प्रकार के अनिष्ट की गन्ध पाते ही बिहारी हिताहित का ज्ञान खो बैठता है।

गुरु बाबा के प्रशिक्षण में सतीश और उसके दल के निशीथ की निभृत चक्रसाधना और उससे भी निभृत अनुसांगिक अनुष्ठान इतने दिनों तक बिहारी ने किसी प्रकार सहन कर लिया था, लेकिन जिस दिन मदिरा और गांजा का प्रसाद दिया गया, उस दृश्य को यह बूढ़ा नौकर किसी तरह भी सह न सका। सतीश की अनुपस्थिति में वह कमरे में घुसकर उनकी पदधूलि लेकर हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बोला, "बाबा, आप दिन के समय फिर कभी बाबू को गांजा-शराब मत पिलाइयेगा।"

आग में घृताहुति पड़ गयी। बाबा एक क्षण में सातवें सुर पर चढ़कर चिल्ला उठे, "तू साला मदिरा कहता है!"

बिहारी ने विनीत स्वर से कहा, "क्या जानूँ बाबा, हमारे देश में तो उसे मदिरा ही कहते हैं।"

बाबा ने कहा, "मदिरा! लेकिन साले, इससे तेरा क्या बनता-बिगड़ता है? तू बोलने वाला कौन है!"

बिहारी भी असहिष्णु हो उठा था, उसने भी दृढ़ स्वर से कहा, "मैं हूँ बाबू का नौकर।"

"वाह रे मेरे नौकर!" कहकर बाबाजी अश्लील गाली-गलौज सुनाकर दाँत कटकटाकर बोल उठे, "लेकिन मैं हूँ तेरे बाबू का भी बाबा, यह तू जानता है?"

बिहारी बैठा हुआ था। झटपट उठा और चिल्लाकर बोला, "ख़बरदार! मेरे सामने तुम ये सब बातें मत कहो, बताये देता हूँ।"

थाको बाबा तो योंही दिन-रात प्रायः बदहवास ही रहा करते थे, बिहारी के तिरस्कार से बिल्कुल ही कर्त्तव्य-ज्ञान से शून्य हो गये। बोले, "तू क्या करेगा रे साले!" यह कहकर सामने की खड़ाऊँ उठाकर बिहारी की सिर ताककर उन्होंने ज़ोर से फेंक दिया। बिहारी की नाक से रक्त की धारा बहने लगी और क्षणमात्र में ही उसके हृदय के किसी अज्ञात स्थान से चालीस साल पहले का गरम खून बिल्कुल ही मस्तिष्क में चढ़ गया। पल भर में उसने कमरे के कोने से बाबा का हाथ लम्बा त्रिशूल बाबा के माथे पर तान दिया। डरकर अपने दोनों हाथ सामने रखकर बाबा कुत्ते की तरह चिल्ला उठे और उस अमानुषिक चिल्लाहट से बिहारी भी सम्भल गया। वह हाथ का त्रिशूल यथास्थान रखकर नाक का खून पोंछते-पोंछते चला गया।

एक घण्टा बीत जाने पर सतीश ने पूछा, "क्या यह सच है?"

बिहारी ने कहा, "हाँ!" लेकिन उसने अपने रक्तपात का उल्लेख नहीं किया।

सतीश क्षण भर चुप रहकर बोला, "तुझे अब मैं इस घर में न रहने दूँगा। दो सौ रुपये लेकर तू अपने घर चला जा, मैं तेरा वेतन हर महीने तेरे घर भेज दिया करूँगा।"

बिहारी ने सिर झुकाकर कहा, "जो आज्ञा!"

उसने दुख प्रकट नहीं किया, क्षमा-याचना नहीं की, दो सौ रुपये चादर के छोर में बाँधकर, मालिक के चरणों की धूलि माथे पर चढ़ाकर संध्या के पहले ही गाँव छोड़कर चला गया।

जब तक वह दिखायी पड़ता रहा, सतीश ऊपर के बरामदे से उसकी ओर निहारता रहा। क्रमशः विधुपाल की दुकान की ओट में जब वह ओझल हो गया तब वह लम्बी साँस लेकर बोला, "जाने दो, इतने दिनों बाद बिहारी भी चला गया!"

इस बार आश्विन के प्रथम सप्ताह में ही महामाया की पूजा है। अभी उसमें विलम्ब है, लेकिन सतीश की मित्र-मण्डली में अभी से ही आलोचना चल रही है कि इस बार देवी की पूजा में क्या-क्या करना चाहिये। महाअष्टमी के लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिये। लेकिन भादो के मध्य में मलेरिया का प्रकोप अत्यन्त बढ़ गया। यहाँ तक कि दो-चार सान्निपातिक ज्वर के कारण डाक्टर की भी दौड़-धूप आरम्भ हो गयी।

आज कई दिनों से सतीश की तबियत अच्छी नहीं है। बिहारी जिस दिन चला गया, उसी रात को उसने ज्वर का लक्षण स्पष्ट अनुभव किया। सम्भवतः एकादशी के कारण ऐसा हो गया है सोचकर उसने दूसरे दिन सबेरे उसे उड़ा देना चाहा, लेकिन जो यथार्थ में है, जिसका भार है, उसे इस तरह सहज में उड़ाया नहीं जा सकता। सारा दिन उसको मानना ही पड़ा कि वह स्वस्थ नहीं है।

तीनों दिनों के बाद पूर्व प्रथानुसार चतुर्दशी की रात को ही धूमधाम से पूजा की तैयारी हुई थी, लेकिन सतीश ने स्वयं सम्मिलित होना अस्वीकार किया। तीसरे पहर गुरु बाबा ने आकर सतीश के माथे पर शान्ति का जल छिड़ककर कमण्डल दिखाकर हँसते हुए कहा, "बेटा, इस पर यम का भी अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त तुम्हीं तो मूलाधार हो, तुम्हारे

न रहने से तो सब ही चौपट है।"

गुरुजी की बात को सतीश टालता नहीं था। इसीलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध ही वह सहमत हो गया। वास्तव में बिहारी को विदा करने के बाद से कुछ भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। यद्यपि किसी प्रकार उसको विश्वास नहीं होता था कि बिहारी बिल्कुल ही चला गया है, फिर न आयेगा, तथापि जितना शीघ्र हो सके, उसको फिर पाने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा। इसके अतिरिक्त एक और चिन्ता उसको भीतर-ही-भीतर कष्ट दे रही थी। कौन जाने, बिहारी अपने घर ही गया है या हम लोगों के पश्चिम वाले मकान पर गया है। कहीं ऐसा न हो कि सारी बातों का प्रचार करके कोई बखेड़ा मचाने की चेष्टा कर रहा हो या और कोई चाल चल रहा हो। जो भी हो, उसे फिर एक बार आँखों से देखे बिना सतीश किसी प्रकार भी चैन नहीं पा रहा था।

संध्या के पूर्व ही दुमंजिले के कमरे में एकत्र होकर दो-एक प्याले पी लेने पर सतीश का वह निर्जीव भाव कट गया था। लेकिन फिर भी हृदय की ग्लानि उसे भीतर-ही-भीतर पीड़ा दे रही थी। ठीक उसी समय पास के कमरे में बिहारी की आवाज़ सुनकर सतीश पुलकित हो उठा और आश्चर्य से चौंक पड़ा।

उसने पुकारा, "बिहारी है क्या रे?"

बिहारी दरवाज़े के निकट आकर श्रद्धा के साथ बोला, "जी हाँ, क्या आज्ञा हैं?"

गुरु बाबा का चेहरा काला पड़ गया। उन्होंने कहा, "यह कमबख़्त फिर आ गया बेटा? साला इस कमरे में घुस क्यों आया?"

इसी कमरे में उनके निथीशचक्र का आयोजन हो रहा था।

सतीश ने इन सब प्रश्नों का उत्तर न देकर बिहारी से पूछा, "क्या तू अपने घर नहीं गया था रे?"

"जी नहीं, मैं काशी गया था।"

"काशी? काशी क्यों गया था?"

"माँजी को लाने।"

सतीश चौंक उठा। बिहारी किसको 'माँ' कहता है, सतीश यह जानता था। उसने कहा, "वह क्या काशी में रहती है?"

"जी हाँ!"

"तू उसका पता-ठिकाना जानता था?"

बिहारी ने कहा, "नहीं! लेकिन मैं जानता था, माँजी जहाँ कहीं भी क्यों न हों, विश्वनाथ बाबा के मन्दिर में किसी दिन भेंट हो ही जायेगी।"

"भेंट हुई थी?"

"जी हाँ!"

सतीश के हृदय के अन्दर हलचल-सी मचने लगी। कुछ क्षण शान्त रहकर अपने को सम्भालकर रूखे स्वर से उसने कहा, "लेकिन मुझे ख़बर न देकर वहाँ जाना तेरा अच्छा काम

नहीं हुआ। उन स्त्रियों में मान-सम्मान, लज्जा-शरम कुछ भी नहीं है। तेरे जैसे अहमक को पाकर यदि वह तेरे साथ चली आती, तो आज तू किस विपत्ति में पड़ जाता, बता तो?"

बिहारी चुपचाप खड़ा रहा।

सतीश तब आप ही आप फिर कहने लगा, "घर में घुसने तो देता ही नहीं फाटक के बाहर से ही दरबान में निकलवा देता। उसको लेकर इतनी रात को तू कैसी विपत्ति में पड़ जाता, सोच तो ले भला, क्या अकारण ही लोग तुझे गँवार ग्वाला कहते हैं। कालीचरण, ज़रा ठीक से एक प्याला दे देना भैया।"

आज्ञा मिलते ही कालीचरण ने मूलसाधक के हाथ में एक प्याला दे दिया।

बिहारी ने कहा, "बाबू, माँजी आपको बुलाती हैं।"

सतीश प्याला मुँह में लगाने जा रहा था। चौंककर बोला, "कौन बुला रही है? तूने क्या कहा है?"

बिहारी बोला, "माँजी।"

सतीश हतबुद्धि की भाँति हाथ की प्याली को पीकदानी में उड़ेलकर बोला, "तेरे साथ आयी है क्या? तो तूने पहले क्यों नहीं बताया?"

बिहारी ने उसका उत्तर न देकर फिर कहा, "वह इसी क्षण आपको बुला रही हैं।"

सतीश ने धीमे स्वर में कहा, "तू जाकर कह दे बिहारी, बाबू को बुखार आ गया है, इसीलिये बाहर के कई इष्ट-मित्र उनको देखने आये हैं। आध घण्टे बाद आऊँगा, जा कह दे।"

बिहारी ने अपने हाथ से दरवाज़े की ओर संकेत से दिखाकर धीरे से कहा, "माँजी यहीं तो खड़ी हैं, एक बार बाहर चले आइये।"

सतीश ने चौंककर उँगली के संकेत से पूछा, "इसी कमरे में?"

बिहारी ने गर्दन हिलाकर कहा, "हाँ, यहीं तो हैं।"

सतीश झटपट दो-चार लौंग-इलायची मुँह में डाल उठ पड़ा। धीरे-धीरे बाहर जाकर उसने देखा कि उसके पास के दरवाज़े की आड़ में ही सावित्री के आँचल का छोर दिखायी पड़ रहा है। वह अपने कानों से सब बातें सुन चुकी है, इसमें कुछ भी सन्देह उसे नहीं रहा। उसकी इच्छा हो रही थी कि मूर्ख बिहारी के गाल पर अच्छी तरह दो थप्पड़ जमा दे। सावित्री ने झाँककर धीरे से कहा, "भीतर आओ!"

इस कण्ठ-स्वर के सुर से मानो उसके हृदय के सब तार बँधे थे। सभी एक ही साथ बज उठें। उसके कमरे में घुसतें ही सावित्री ने कहा, "तुम कह रहे थे कि बुखार हो आया है?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "बुख़ार तो आ ही गया है!"

"कहाँ, देखूँ?" कहकर सतीश के पास आकर हाथ बढ़ाकर उसके ललाट का ताप अनुभव करके वह चौंक पड़ी। बोली, "हाँ सचमुच ही बुखार है। शरीर मानो जल रहा है। आओ, मैं बिछौना बिछा देती हूँ, चलो कमरे में सो रहो। बिहारी, बाबू के कमरे में जाकर बत्ती जला दे।" यह कहकर तिमंजिलें की सीढ़ियो की ओर बढ़ चली। उसने इसघर में आते

ही बाबू का शयन-गृह बिहारी से पूछ लिया था।

पलंग पर बिछौना तैयार ही था। केवल आँचल से ज़रा झाड़ते ही सतीश शान्त बालक की भाँति नेत्र बन्द करके लेट गया। सिरहाने और पैरों की ओर की दोनों खिड़कियाँ बन्द करके उसने बिहारी से पूछा, "साधु बाबा किस कमरे में रहते हैं?"

बिहारी के पास का कमरा दिखा देने पर सावित्री ने कहा, "उनकी क्या-क्या वस्तुएँ हैं, वहाँ नीचे रख आओ बिहारी। बाहर तो कितने ही कमरे खाली पड़े हैं, उनमें से किसी एक में वह खूब अच्छी तरह रह सकते हैं।" बिहारी चला जा रहा था। सावित्री ने पुकारकर कहा, "और बाबू को जो लोग देखने आये थे, उनको भी जाने को कह देना। कहना, बाबू को खूब ज्वर आया है, अब नीचे उतर न सकेंगे।"

सतीश किसी बात में भी सम्मिलित नहीं हआ। मुँह छिपाये लेटा रहा।

बिहारी वीर की भाँति दर्प दिखाता हुआ आदेश का पालन करने चल पड़ा। उसके चले जाने पर सावित्री ने कहा, "अब तुम उठना मत। मैं खाने-पीने की व्यवस्था ठीक करके आती हूँ।" यह कहकर द्वार बन्द करके वह दबे पाँव चली गयी। उसे भय था कि साधु बाबा विद्रोह कर बैठेंगे। इसीलिये वह छिपे तौर से दरवाज़े की आड़ में जा खड़ी हुई थी।

दूसरे ही क्षण उस ओर के दरवाज़े से प्रवेश करके बिहारी ने ज़ोर से कहा, "माँजी ने कहा, है, आप लोग घर चले जाइये। बाबू का ज्वर बढ़ गया है, आज वह नीचे न उतरेंगे।" फिर बाबाजी को लक्ष्य करके बोला, "महाराजजी, तुम्हारी चीज़-वस्तु, नीचे निवारण के कमरे के पास वाले कमरे में रख देने की आज्ञा माँजी ने दे दी है। तुमको वहीं रहना पड़ेगा।"

बाबा ने उग्रता नहीं दिखायी। उन्होंने शान्त भाव से पूछा, "माँजी कौन हैं बिहारी?"

बिहारी ने कड़े स्वर से उत्तर दिया, "इस पूछताछ की तुम्हें क्या आवश्यकता है, महाराजजी? जो कह रहा हूँ, वही करो।" मन-ही-मन बोला, 'कौन है, इसका पता तुमको लग जायेगा। बिना पैसा खर्च किये ही शराब-गांजा पीकर खड़ाऊँ मारने की कसर कल मैं निकालूँगा।'

सभी हतबुद्धि बुद्धि की भाँति एक-दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे और उठने की तैयारी करने लगे। कोई भी समझ न सका कि क्या बात है। लेकिन आदेश जब सच्चे आदेश के रूप में अकुण्ठित रूप से निकल आता है, तो वह किसी के ही मुँह से क्यों न आया हो, लोग निश्चित रूप से समझ जाते हैं कि उसको न मान लेने से काम नहीं चलेगा।

बिहारी ने रसोईघर में जाकर देखा सावित्री रसोइया महाराज से दूध गरम कराने का उद्योग कर रही है। उसने कहा, "रात हो गयी, अभी तक तो तुमने स्नान-संध्या पूजा नहीं की। दिन भर गाड़ी में एक बूँद पानी तक तुमने नहीं पिया। चलो, पहले तुमको स्नान की जगह दिखा दूँ तब तक बाबू का दूध गरम हो जायेगा।" यह कहकर वह सावित्री को एक प्रकार बलपूर्वक ही ले गया।

उसको भेजकर बिहारी ने बाबू के लिए तम्बाकू चढ़ाया। हाथ में गुड़गुड़ी लेकर चुपके से किवाड़ ठेलकर बाबू के कमरे में चला गया। सतीश चुपचाप पड़ा हुआ था। आँखें

खोलकर बोला, “कौन? बिहारी है क्या?”

“हाँ बाबू, तम्बाकू चढ़ाकर लाया हूँ।”

“यहाँ आ। वह कहाँ है रे?”

बिहारी ने कहा, “अभी तक एक बूँद पानी उनके मुँह में नहीं गया है। इसीलिए जबरन स्नान करने के लिए भेजकर तब आया हूँ बाबू!”

सतीश ने कहा, “अच्छा किया है लेकिन तुझे मैं ढूँढ रहा था बिहारी।”

बिहारी घबरा उठा, “क्यों बाबू, इस समय तबियत कैसी है?”

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, “अच्छी नहीं बिहारी। इसलिए मैं तुझे ढूंढ रहा था। दरवाज़े में सिटकनी लगाकर मेरे पास आकर ज़रा बैठ।”

बिहारी दरवाज़ा बन्द करके शंकित चित्त से मालिक के पैरों के पास आकर भूमि पर घुटने के बल बैठ गया।

सतीश ने पूछा, “अच्छा बिहारी, तू ग्रहकोप मानता है?”

बिहारीने आश्चर्य से कहा, “ग्रहकोप? ग्रहों का कोप भला मैं न मानूँगा? पोथी-पत्रा का लिखा क्या कभी झूठ हो सकता है बाबू?”

सतीश ज़रा चुप रहकर बोला, “इस बार मेरा एक बहुत बड़ा ग्रहकोप है बिहारी।”

बिहारी सिहर उठा, बोला, “नहीं, नहीं, ऐसी बात आप मत कहिये बाबू।”

सतीश ने दो बार सिर हिलाकर कहा, “मुझे पता लग गया है बिहारी, यह ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है, इस बार मैं बचूँगा नहीं।”

पलभर में बिहारी मालिक के दोनों पैर पकड़कर बोल उठा, “इस बात को मुँह से मत निकालिये बाबू, आपकी सारी विपत्ति लेकर मैं ही मर जाऊँ तो ठीक हो। मेरी परमायु लेकर आप जीवित रहिये बाबू, नहीं तो हम सभी लोग मर जायेंगें।” यह कहते-कहते बिहारी ज़ोर से रोने लगा।

सतीश ने गम्भीर होकर कहा, “मरने-जीने की बात तो ठीक बतायी नहीं जा सकती बिहारी, यदि मैं न भी बचूं, तुझसे मैं जो कुछ पूछता हूँ, सच-सच बतायेगा तो?”

बिहारी ने रोते-रोते कहा, “मैं आपके पाँव छूकर, शपथ खा रहा हूँ बाबू, एक भी बात मैं झूठ न बोलूँगा।”

“ कुछ भी तू छिपायेगा नहीं, बता।”

“नहीं बाबू, कुछ भी नहीं।”

तब सतीश ने कहा, “अच्छा बैठ जा।”

बिहाी आँखें पोंछकर अपनी जगह पर बैठ गया। सतीश ने पूछा, “सावित्री तुझे कहाँ मिली, बता तो?”

“यह तो मैं कह चुका हूँ, काशी में।”

“वहाँ विपिन बाबू के साथ तेरी भेंट हुई थी?”

बिहारी जीभ काटकर घृणा के साथ बोल उठा, “राम! राम वह हरामज़ादा हम लोगों

का कौन है कि उससे भेंट होती बाबू।"

सतीश ने कहा, "लेकिन तूने तो अपनी आँखों से उनको उसके बिछौने पर...!"

बिहारी ने दोनों हाथ उठाकर सतीश की बात पूरी भी न होने दी। एकाएक अत्यन्त उत्तेजित होकर अपने गालों पर, मुँह पर कई चपतें जड़कर कहने लगा, "उसका दण्ड यही है! यही! यही! तो भी बिना जाने ही कह दिया था इसलिए अब पाँच आदमियों के सामने मुँह दिखा सकता हूँ, नहीं तो मेरी यह जीभ इतने दिनों में सड़कर गिर गयी होती।"

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्या हो गया रे तुझे!"

बिहारी तब लज्जित होकर स्थिर भाव से बैठ गया और एक-एक करके सारी बातें कहने लगा। कुछ भी उसने बढ़ाया नहीं। एक बात भी छिपायी नहीं।

स्वयं जो कुछ जानता था, मोक्षदा के मुँह से, चक्रवर्ती से जो कुछ सुन चुका था, सावित्री से जो-जो बातें जान सका था, सब एक-एक करके उसने स्पष्ट रूप से सुना दीं।

सतीश पत्थर की मूर्ति की भाँति स्तब्ध होकर बैठा रहा। बिहारी के मुँह में भी अब कोई बात नहीं रही।

बहुत देर के बाद सतीश ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "इतने दिनों से ये सब बातें तूने बतायी क्यों नहीं बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "कितने ही दिनों से बताने के लिए मेरी छाती मानो फटती जा रही थी बाबू, लेकिन किसी तरह मुँह खोल नहीं सकता था।"

"क्यों, सुनूँ तो?"

'माँजी ने ही सिर की शपथ दिलाकर मना कर दिया था बाबू।"

सतीश फिर कुछ देर चुप रहकहर बोला, "अच्छा, मान लेता हूँ कि यही बात है, लेकिन उस दिन रात को सावित्री अपने ही मुँह से कह गयी थी कि वह विपिन के अतिरिक्त और किसी को नहीं चाहती, उनके ही साथ वह चली जा रही है। उसका क्या अर्थ है बताओ तो?"

बिहारी बोला, "यह बात मैं स्वयं भी समझ नहीं सकता बाबू। फिर भी मैं ठीक जानता हूँ यह झूठ है! झूठ! बिल्कुल झूठ है! यदि यह झूठ न हो तो मेरा एक भी लड़का न बचे बाबू। माँजी के जाते समय रोकर मैंने कहा था – क्यों इस मिथ्या कलंक के बोझ को तुमने स्वयं ही अपने सिर पर उठा रखा माँ? तो भी माँजी ने मुझे बता दने की आज्ञा नहीं दी स्वयं भी रोते-रोते उन्होंने मुझसे कहा – बिहारी, मेरे सिर की शपथ है भैया, ये सब बातें बाबू से तुम मत कहना। वे मुझस घृणा करें, और कभी मेरा मुँह न देखें वही मेरे लिए अच्छा होगा, तो भी उनसे मत बताना कि मैं अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मारकर चली जा रही हूँ।"

यह कहकर उस रात की करुण स्मृति की पीड़ा से बिहारी टपटप आँसू गिराकर रोने लगा।

लेकिन स्वामी की आँखों से भी आँसू की धारा बह रही थी, बूढ़ा नौकर यह देख न

सका।

बहुत देर बाद सतीश ने धीरे से आँसू पोंछकर कहा, "तू समझ नहीं सकता बिहारी, लेकिन मैं समझ गया हूँ कि किसलिए उसने अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मार दी थी। लेकिन असत्य की तो जीत नहीं होती बिहारी।"

तभी द्वार पर हाथ का आघात पड़ा, "यह क्या! दरवाज़ा बन्द करके सो गये क्या? सिटकनी खोल दो।"

बिहारी ने स्वामी के मुख की ओर देखा। लेकिन स्वामी नेत्र बन्द करके चुपचाप लेटे रहे।

बाहर से फिर आवाज़ आयी, "दरवाज़ा खोल न। हाथ जल गया है।"

बिहारी ने उठकर दरवाज़ा खोल दिया और वहाँ से चुपचाप चला गया।

चालीस

कटोरी में गरम दूध लिए सावित्री ने कमरे में आकर तिपाई पर झट से रख दिया। वह सफ़ेद चमकती हुई रेशमी साड़ी पहने थी, स्नान करने से लम्बे भीगे बाल पीठ पर लहराकर नीचे लटक रहे थे, कई छोटी-छोटी लटें मुँह पर ललाट पर आ पड़ी थीं। सतीश ने कनखियों से उसको देखा। उसको एकाएक जान पड़ा मानो उसने सावित्री को आज ही पहले-पहल देखा हो।

लेकिन वह सतीश के भीगे नेत्रों को उस दीपक के क्षीण प्रकाश में देख न सकी। तनिक और भी उसके निकट आकर मुस्कराकर बोली, "दरवाज़ा बन्द करके मालिक-नौकरों में क्या परामर्श हो रहा था, सुनूँ तो! इस बेहया आफत को किस प्रकार बाहर निकाल दिया जाय, यही न?"

सतीश कुछ नहीं बोला। कहीं बातें कहने से भीतर की दुर्बलता पकड़ में न आ जाये, इस भय से वह चुप ही रहा।

सावित्री ने कहा, "बचपन में बिल्ली के गले में घण्टी बाँधने की कहानी तुम पढ़ चुके हो न? मैं भी देखना चाहती हूँ कि घण्टी बाँधने के लिए कौन आगे आता है। तुम स्वयं या तुम्हारे वह साधूजी?"

इस पर भी सतीश ने कोई बात नहीं कहीं, जैसे चुप पड़ा था वैसे ही पड़ा रहा।

एक कुर्सी खींचकर सावित्री पास ही बैठ गयी। लेकिन इस बार उसका परिहासयुक्त स्वर गम्भीर हो उठा। बोली, "तमाशा छोड़ो। बात क्या है मुझे समझा सकते हो, उपेन भैया के साथ तुमने झगड़ा किया, अन्त में सुनती हूँ कि सरोजिनी के साथ भी झगड़ा करके तुम चले आये। वह तो किसी दिन मिट ही जायेगा, मैं जानती हूँ। लेकिन यह क्या हो रहा है। मेरा शरीर छूकर तुमने शपथ खायी थी, शराब न छुओगे। शराब तो भाड़ में जाये, गांजा भी पीने लगे हो। वह भी लुक-छिपकर साधारण रूप से नहीं, कितने ही अभागों के झुण्ड

बटोरकर गेरुआ वस्त्र पहनकर तंत्र-मंत्र का ढोल पीटकर खुल्लम-खुल्ला छाती फुलाकर पीना चल रहा है।"

सावित्री के मुँह से सरोजिनी का नाम सुनकर सतीश का शरीर जल उठा। वह समझ गया कि बिहारी ने कुछ भी बताना शेष नहीं छोड़ा है। एक बार उसके होंठों पर यह बात आयी कि – तुम्हारे ही कारण मेरा यह सर्वनाश हुआ है। तुम ही मेरे शनिग्रह हो! लेकिन उस बात को दबाकर गम्भीर स्वर से उसने संक्षेप में कहा, "छाती फुलाकर शराब-गांजा पीने में दोष क्या है?"

"दोष क्या है, तुम नहीं जानते?"

"नहीं।"

"अच्छा, यदि नहीं जानते, तो यह तुम जानते हो कि मेरा शरीर छूकर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि नहीं पियोगे?"

"तुम मेरी कौन हो कि कभी बरबस मुझे शपथ खिला ली थी तो वही एक बड़ी बाधा हो गयी।"

सावित्री ने किसी प्रकार हँसी दबाकर सिर हिलाकर कहा, "कोई नहीं हूँ मैं? बिल्कुल ही कोई नहीं?"

सतीश ने भी सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"फिर शराब का गिलास पीकदानी में उँड़ेलकर इलायचीदाने चबाते-चबाते क्यों चले आये थे?"

"केवल तुम बकने-झकने लगोगी, इसी भय से।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "फिर भी सावित्री कोई नहीं है। अच्छा, अब तनिक दूध पीकर सो जाओ।" यह कहकर वह उठ पड़ी और दूध की कटोरी हाथ में लेकर सतीश के सामने आ खड़ी हुई। सतीश ने आपत्ति नहीं की। वह उठ बैठा और सब दूध पीकर सो रहा।

सावित्री कटोरी हाथ में लिए चली जा रही थी। सतीश ने पुकारकर पूछा, "तुम्हारी संध्या-पूजा हो चुकी?"

सावित्री ने घूमकर कहा, "हाँ।"

"क्या खाया?"

"अभी तक खाया नहीं। अब जाकर खा लूँगी।"

"सोओगी कहाँ?"

"देखती हूँ, फाटक के बाहर कोई स्थान है या नहीं, न होगा तो पेड़ के नीचे सो रहूँगी।" यह कहकर वह आप ही आप हँसकर बोली, "अच्छा, यह बात मुँह से निकालते तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं होता? धन्य हो तुम!" यह कहकर अत्यन्त स्नेह से सतीश के ललाट पर लटके हुए बालों को हाथ से हटाते समय उसके ललाट का ताप अनुभव कर वह चौंक पड़ी। बिहारी ने कमरे में घुसते ही पूछा, "माँजी, तुम्हारा बिछौना...।"

सावित्री ने पास के कमरे को दिखाकर कहा, 'इसी कमरे में मेरा बिछौना ठीक कर दो

बिहारी, बाबू का ज्वर कुछ अधिक जान पड़ रहा है। मैं इसी पास वाली कोठरी में सोऊँगी। बीच का दरवाज़ा खुला रहेगा – तुमको भी आज इस कमरे के फ़र्श पर सोना होगा।"

सतीश से उसने कहा, "अब रात को जागते मत रहो तनिक सोने की चेष्टा करो।" यह कहकर वह धीरे-धीरे द्वार बन्द करके चली गयी।

थोड़ी देर बाद साधारण-सा कुछ खा-पीकर सावित्री लौट आयी। वह पास वाली कोठरी मे ही एक चटाई बिछाकर लेट रही और उसकी दोनों थकी आँखें देखते-देखते गाढ़ी नींद से मुँद गयी।

बड़े तड़के ही नींद टूट जाने पर हड़बड़ाकर सावित्री उठ पड़ी और उस कमरे में जाकर उसने देखा कि सतीश पीड़ा से छटपटा रहा है। ललाट पर हाथ रखकर उसने देखा ज्वर के ताप से जल रहा है। उसके शीतल स्पर्श से सतीश ने आँखें खोल दीं। उसकी दोनों आँखें अड़हुल के फूल की तरह लाल हो उठी थीं।

ज्वर की दशा देखकर सावित्री भय के मारे उसी बिछौने पर झट से बैठ गयी, पूछने की शक्ति उसमें नहीं रह गयी थी।

सतीश ने उसका हाथ खींचकर अपने जलते हुए ललाट पर रखकर कहा, "मैं कल ही जान गया था। कल ही मैंने बिहारी से कहा था – यही ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है – इस बार न बचूँगा।"

ज्वर की पीड़ा से उसने इस प्रकार ये बातें हाँफते-हाँफते कहीं कि उसे सान्त्वना देने की बात तो दूर रही, रुलाई न रोक सकने के कारण सावित्री का ही गला रुँध गया। वह सारी रात निश्चिन्त होकर सोती रही इसी कारण मन ही मन सिर पीट लेने की इच्छा हुई।

सतीश ने कहा, "मुझे यही एक भरोसा है कि तुम मेरे पास हो।" यह कहकर वह करवट बदलकर लेट रहा।

कल रात को उसने जिसको अभिमान और स्पर्द्धावश कहा था, "तुम मेरी कौन हो?" वह आज उसका सबसे बड़ा अवलम्ब है।

लेकिन थोड़ी देर बाद सतीश ने फिर करवट बदली। फिर सावित्री का हाथ खींचकर अपनी छाती पर रखकर बोला, "मैंने भी तो कुछ डाक्टरी पढ़ी है। मैं निश्चित जानता हूँ कि उस समय तक मुझे यह ज्ञान न रहेगा, लेकिन अभी तक मुझे खूब होश है, लेकिन इतना ज्ञान फिर मुझे न रह जाये तो उपेन भैया से कहना, उस दराज़ में मेरा वसीयतनामा है। मैं जानता हूँ वह मेरा मुँह न देखेंगे, लेकिन यह भी जानता हूँ कि मेरी मृत्यु के बाद वह मेरी अन्तिम इच्छा का अपमान भी न करेंगे। सावित्री, संसार में तुम्हारे अतिरिक्त उनसे बढ़कर मेरा और कोई स्वजन सम्भवतः नहीं है।"

वसीयतनामे का नाम सुनकर सावित्री आत्मविस्मृत सी हो गयी। इतने दिनों के उसके संयम का बाँध क्षणभर के आवेश में ही टूट गया। सतीश की छाती पर माथा रखकर वह बच्चे की तरह रोने लगी।

बिहारी लगभग सारी रात जागता रहा और भोर में सो गया था। वह चौंककर उठ बैठा

और हतबुद्धि की भाँति निहारता रहा।

तब सतीश ने दोनों हाथों से बलपूर्वक सावित्री का मुँह ऊपर उठाया और क्षणभर टकटकी बाँधे निहारता रहा और उसकी दोनों आँखों से बहते हुए आँसू के स्रोत को अपने आग की तरह जलते हुए होठों से पोंछकर चुपचाप पड़ा रहा।

उसका मुँह, उसकी ठुड्डी दोनों सावित्री के अश्रुप्रवाह से डूब जाने लगे। उस प्रवाह ने उसके प्रचण्ड ज्वर के ताप को भी कितना शीतल कर दिया, यह अन्तर्यामी से छिपा नहीं रहा, लेकिन संसार में उस बूढ़े बिहारी के विस्मय-विमुग्ध नेत्रों के अतिरिक्त उसका अन्य कोई साक्षी नहीं रहा।

बाहर शरत का स्निग्ध प्रवाह उस समय प्रकाश से खिलखिला रहा था। सावित्री अपने को सम्भालकर उठ बैठी और आँचल से अपने नेत्र पोंछकर प्रियतम के मुँह से आँसू के चिह्न यत्नपूर्वक पोंछ डालने के बाद उठकर उसने कमरे के सब दरवाज़े और खिड़कियाँ खोल दीं। खोलते ही सुनहरी किरणों से सारा कमरा भर उठा।

बिहारी के नेत्रों से उस समय आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें झर रही थीं। सावित्री अपने मुँह का भाव सम्भालकर सहज कण्ठ से बोली, "डर क्या है बिहारी, मेरे रहते उनको कोई भय नहीं है, बाबू अच्छे हो जायेंगे। मैं बाबू के कपड़े बदलकर बिछौना बदल दूँ, तब तक तुम डाक्टर साहब को बुला लाओ।" यह कहकर वह फिर लौट गयी।

डिस्पेंसरी के डाक्टर साहब आकर भली प्रकार सतीश की जाँच करके मुँह बिगाड़कर बोले, "यह तो निमोनिया के लक्षण देख रहा हूँ। डर नहीं है, रोग अभी तक बढ़ा नहीं है।"

सान्त्वना देकर डाक्टर साहब अपने हाथों से दवा तैयार करने के लिए नीचे चले गये। सतीश ने पीड़ा से तनिक हँसकर सावित्री के मुँह की ओर देखकर कहा, "मैं तिलभर भी नहीं डरता।" यह कहकर तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर, दिखाकर उसने कहा, "इसे पहचान सकती हो सावित्री? अपनी इच्छा से किसी दिन जिसे तुमने आँचल से बाँधा था, आज मैं ही तुम्हारे आँचल में बाँध देता हूँ।" यह कहकर सावित्री के आँसू से भीगे आँचल को खींचकर धीरे-धीरे चाभियों का गुच्छा उसने बाँध दिया। फिर सन्तोष की साँस लेकर करवट बदलकर वह लेटा रहा।

सावित्री पर बिहारी का दृढ़ विश्वास था। उससे सान्त्वना पाकर वह प्रफुल्ल हो उठा, लेकिन वह तो कोई लड़का था नहीं। कुछ ही दिनों के बाद सावित्री का मुख देखकर वह मन ही मन डर गया। वह स्पष्ट देख रहा था इस कर्मनिष्ठ सहनशील रमणी के शान्त मुख पर एक पीली छाया क्रमशः गाढ़ी होती जा रही है।

आठ-दस दिनों के बाद एक दिन संध्या को सावित्री को एकान्त में पाकर उसने स्वाभाविक कण्ठ से पूछा, "माँजी, इस बूढ़े को भुलावे में डालकर क्या होगा? तुम्हारा वह कोमल हृदय जो कुछ सह लेगा उसको क्या इस बूढ़े की हड्डी न सह पायेगी? इससे तो यही अच्छा है कि सब बातें मुझसे खोलकर कह दो, मैं देखूँ यदि कुछ उपाय कर सकूँ।"

सावित्री ने स्थिर रहकर कहा, "तुमको अभी तक मैंने बताया नहीं बिहारी, लेकिन तुम्हारे

नाम से उपेन बाबू के पास आज सबेरे मैंने चिट्ठी लिख दी है। दो दिन प्रतीक्षा करके देखती हूँ, यदि वह न आवें तो तुमको स्वयं एक बार उनके पास जाना होगा बिहारी।"

बिहारी ने उत्कण्ठित होकर कहा, "मुझसे पूछे बिना यह काम तूने क्यों किया माँ?"

"क्यों बिहारी, क्या वह न आवेंगे?"

बिहारी ने सिर हिलाकर धीरे से कहा, "वह आ भी सकते हैं, लेकिन एक बार मुझसे क्यों नहीं बता दिया माँ?"

"क्यों बिहारी?"

बिहारी संकोच से चुप रह गया। बात कहना आवश्यक था, लेकिन वह अत्यन्त अपमानजनक बात उसके मुँह से सहसा बाहर न निकल सकी।

सावित्री ने कहा, "इस समय उनका आना बहुत ज़रूरी है बिहारी!"

बिहारी ने बड़े कष्ट से संकोच दूर करके कहा, "यह तो मैं जानता हूँ माँ, लेकिन तुम्हारे उनके पास न रहने पर संसार के सब लोग यदि बाबू का बिछौना घेरे रहें तो भी उनको बचाया न जा सकेगा, इस बात पर तुम विचार क्यों नहीं करती माँ?"

सावित्री ने कहा, "मैंने सोचा है बिहारी। मैं घर में जहाँ भी हो, छिपी रहकर अपना काम करती रहूँगी, उपेन बाबू के आये बिना काम न चलेगा। इस विपत्ति में भला-बुरा भी क्या मैं नहीं समझती हूँ? नहीं, बिहारी, उनको आने दो।"

बिहारी ने सिर हिलाते हुए कहा, "उपेन बाबू की बात तो मैं नहीं जानता लेकिन बाबू की बात जानता हूँ। मैं मूर्ख अवश्य हूँ, लेकिन इन साठ वर्षों से तो संसार देख रहा हूँ! कितने पुरुष तुमसे अधिक भली-बुरी बात समझते हैं माँ? इसे जाने दो, तुम्हारे उनके पास से इस बार दूर जाने पर बाबू को अच्छा न कर सकूँगा, यह बात मैं तुम्हारे पाँव छूकर शपथ खाकर कह सकता हूँ। ऐसा कार्य तुम मत करो, तुम मेरे बाबू को छोड़कर और कहीं भाग न जाना।"

यह बात बिहारी की अपेक्षा सावित्री कुछ कम जानती थी, ऐसी बात नहीं है, लेकिन वह मौन रही। उसको अपने पास न पाने पर सतीश की विकलता कितनी बढ़ जायेगी इसे सतीश ही जाने, लेकिन इस भयंकर रोगशय्या पर पड़े रहने की दशा में सतीश को नेत्रों से ओझल करके सावित्री स्वयं भी कैसे जीवित रह सकेगी? उससे और सतीश से, उपेन की उसके प्रति घृणा छिपी नहीं थी। उनके आने पर स्वयं को छिपा ही रखना होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इन सभी बातों पर उसने मन ही मन विचार करके देख लिया था। लेकिन जिसके कारण इतने दिन उसने इतना कष्ट सहन किया है, उसके कारण यह दुख भी सहेगी, वह सोचकर ही उसने सतीश की बीमारी का पूरा विवरण उपेन्द्र के पास लिख भेजा था, आने के लिए अनुरोध भी किया था।

सावित्री ने दृढ़ कण्ठ से कहा, "नहीं बिहारी, यह मैं न होने दूँगी। यदि वे परसों तक न आयेंगे तो तुमको स्वयं जाकर उनको लाना होगा।"

बिहारी ने मलिन मुख से कहा, "यह बात तुम क्यों कह रही हो माँ। मैं हूँ नौकर, जो

आज्ञा होगी, मुझे करना पड़ेगा। लेकिन मैं भी तो मनुष्य हूँ। चोर की भाँति तुम्हारा छिपा रहना यदि मैं किसी दिन सह न सकूँ तो मुझे गाली न दे सकोगी माँ, यह मैं पहले ही बता देता हूँ।" यह कहकर वह उदास चित्त से चला गया।

लेकिन सावित्री की वह चिट्ठी उपेन्द्र को मिली ही नहीं। पिता और माहेश्वरी के बार-बार के अनुरोध से वह एक महीना पहले अपनी इच्छा के बिल्कुल ही विरुद्ध हवा-पानी बदलने के लिए पुरी जाने को बाध्य हुए थे। वहाँ किसी से परिचय न रहने के कारण प्रथम रात्रि तो उन्हें एक छोटे से होटल में काटनी पड़ी थी। इच्छा थी कि दूसरे दिन सबेरे कोई अच्छा स्थान ढूँढ लेंगे। लेकिन होटल के मालिक भुवन मुखर्जी ने उनकी पूरी आवभगत की, अलग कोठरी में बिछौना ठीक करा दिया और विश्वास दिलाया कि जितने दिन चाहे यहाँ रहने पर भी, सेवा में कोई त्रुटि न होगी।

सबेरे एक प्रौढ़ा स्त्री कमरे में झाड़ू देने आयी। उपेन्द्र का बार-बार निरीक्षण करके अन्त में उसने झाड़ू एक ओर फेंक दी और बोली, "बाबू को क्या कोई बीमारी हुई थी? बहुत ही निर्बल देख रही हूँ। पहले का वह चेहरा नहीं है, शरीर का वह रंग भी नहीं है।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य के साथ पूछा, "तुम क्या मुझे पहचानती हो?"

उस स्त्री ने कहा, "मैं तो मोक्षदा हूँ, आपको नहीं पहचानती?"

उपेन्द्र को स्मरण आ गया कि यह वही मोक्षदा है जो बहुत दिन पहले सतीश के मकान में नौकरी करती थी, उन्होंने कहा, "तुम यहाँ नौकरी करती हो?"

मोक्षदा ने लज्जित होकर कहा, "नहीं... हाँ... हाँ... एक तरह की नौकरी ही तो है। मुखर्जी ने कहा था अब कलकत्ता में रहने से क्या लाभ? चलो, किसी तीर्थस्थान में चलकर रहो। जो भी हो एक होटल खोलकर...।

उपेन्द्र ने बीच में रोककर कहा, "होटल अच्छी तरह चल रहा है न?"

उनकी विरक्ति मोक्षदा से छिपी न रही। उसने कहा, "यों ही चल रहा है। बाबू, इस उम्र में मुझे नौकरी क्यों करनी होगी, और मुखर्जी का आश्रय ही कैसे छोड़ देती! सच कहा जाये तो एक तरह से मैंने ही लड़की को पाला-पोसा था। वह मुझे मौसी कहकर पुकारती थी, सच्ची मौसी की तरह मैंने उसे गोद में सदा रखा था, इस बात को कौन नहीं जानता। सावित्री ने कहा, "मौसी मुझसे यह सब न होगा।' यही सही। मैंने बाबू लोगों के मेस में नौकरी लगा दी। वे लोग उसे नौकरानी नहीं समझते थे। घर की मालकिन की तरह मानते थे। न वह जाती, और न मुझे यह सब करना पड़ता। लेकिन जो कुछ भी कहो, हम लोगों के छोटे बाबू के ही कारण आज मुझे इतना दुख है।"

उपेन्द्र ने उत्सुक होकर पूछा, "छोटे बाबू कौन? सतीश?"

मोक्षदा ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ छोकड़ी ने किस दृष्टि से छोटे बाबू को देखा कि उसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया? और इतना ही नहीं, छोटे बाबू को उसने अपना शरीर छूने भी नहीं दिया। विपिन बाबू लखपति जमींदार हैं। मेरे डेरे पर दिन-रात दौड़-धूप मचाकर पाँवों के तलवे तक घिसते रहे। सोना-चाँदी के जड़ाऊँ गहनों के लिए दस

हजार रुपये रख देना चाहा, लेकिन छोकरी ने उनका मुँह तक भी नहीं देखा! कैसा तेज़ उस लड़की के चेहरे पर दिखायी पड़ रहा भैया, दस हजार रुपये की माया को फेंककर घर-द्वार, आवश्यक सामान वस्त्र तक छोड़कर एक साड़ी पहने चली गयी, और चेतला के किसी एक ब्राह्मण के घर छः महीने तक नौकरी करती रही। वहाँ काम करते-करते हड्डी-पसली तक निकल आयी। अन्त में वह कहाँ चली गयी, दुर्गा माता ही जानती है, अभागिनी मर गयी या जीती है!" यह कहकर मोक्षदा ने अपने पहले की स्मृति के आवेग से आँचल से आँखें पोंछ डालीं।

उपेन्द्र मौन होकर उसकी ओर निहारते रहे।

मोक्षदा ने आँखें पोंछकर रोने के स्वर से पूछा, "हाँ बाबू, छोटे बाबू अब कहाँ हैं? एक बार भेंट हो जाती तो मैं उनसे पूछती, उसका कोई समाचार जानते हैं या नहीं?"

उपेन्द्र ने मृदु स्वर से कहा, "सतीश इस समय कहाँ है यह मैं भी नहीं जानता। सुना है अपने गाँव के मकान पर है। अच्छा, यह सावित्री नाम की औरत कौन है मोक्षदा?"

मोक्षदा एक ही क्षण जल-भुनकर बोली, "कौन है? कुलीन ब्राह्मण की लड़की है। बाबू! असल कुलीन लड़की है। नौ वर्ष की उम्र में विधवा होकर घर में ही रहती थी। यही मुँहजला तुझसे ब्याह करूँगा, राज़रानी बनाऊँगा, कहकर फुसलाकर निकाल लाया, अन्त में हांड़ी की तरह उसे फेंककर भाग गया। मैं ही ऐसी हूँ कि इसका मुँह देखती हूँ – नहीं तो वह ब्राह्मण नहीं चमार है! चमार के हाथ का पानी पी सकते हैं, पर उसके हाथ का नहीं।"

उपेन्द्र समझ न सके कि वह क्या कह रही है। पूछा, "किसकी बात कह रही हो मोक्षदा?"

मोक्षदा ने उद्धत भाव से कहा, "मुँहजला भुवन मुखर्जी! नहीं तो तीनों लोक में ऐसा चमार दूसरा कौन है? यही उसकी बड़ी बहन का पति है, इसी का ऐसा काम!"

उपेन्द्र ने अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर पूछा, "जिनका यह होटल है वे ही?"

मोक्षदा ने कहा, "हाँ बाबू, यही दरिद्र बदमाश आदमी।" इसके बाद अनुपस्थित मुखर्जी को सम्बोधन कर कहने लगी, "लेकिन तू उसका क्या कर सका! अथाह सागर में तूने उसे डुबो दिया, उसके अतिरिक्त किसी दिन उसका शरीर क्या तू छू सका? ले आकर, आज नहीं, कल करके एक महीना बिताकर जिस दिन तूने कहा कि ब्याह नहीं होगा, उसी दिन मुँह पर लात मारकर उसने तुझे दूर किया। नादान लड़की थी, बुद्धि कम थी, तो भी क्या, फिर कभी उसके घर की चौखट तक भी तू लाँघ सका। वह तो कोई मोक्षदा नहीं थी कि दो-चार प्रेम की बातें कहकर भुलावे में डाल देता, दस हजार रुपये के जड़ाऊ गहनों को लात मारकर चली गयी।"

उपेन्द्र बड़ी देर तक मौन रहकर बोले, "अपने मुखर्जी को एक बार बुला सकती हो, दो बातें उनसे पूछूँगा?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाज़ार गया है।" फिर ठहरकर बोली, "बीच में एक दिन रास्ते में चक्रवर्ती महाराज से भेंट हो गयी। वह रोता था और कहता था, उस मेरी बेटी को सभी

प्यार करते थे। जैसा रूप था, वैसा ही गुण था, वैसी दया-माया भी उसमें थी!"

उपेन्द्र ने पूछा, "चक्रवर्ती महाराज कौन हैं?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगों के डेरे पर रसोई बनाते थे। सभी बातें जानते थे। बिहारी के मुँह से सुनकर सब बातें उन्होंने मुझसे कहा। चेतला के एक ब्राह्मण के घर में काम करते समय बीमार पड़कर उसने छुट्टी माँगी। बाबू क्या सभी ब्राह्मण ऐसे निष्ठुर होते हैं? उसने कहा, "तुम्हारी दवा में सात रुपये खर्च हुए हैं। तुम देकर जाओ।' उन रुपयों को चुकाने के लिए सावित्री पैदल ही सतीश बाबू के डेरे पर आयी। छोटे बाबू का स्वभाव खूब ऊँचा है। रुपया-पैसा माँगने पर वह जितना ही क्यों न हो, वह कभी 'नहीं' तो कहते ही नहीं। लेकिन उनका भाग्य ऐसा ही फूटा था कि उसी रात को कोई एक उनका मुँहजला मित्र अपने परिवार के साथ आ गया। दिन भर के बाद स्नान करके मेरी बेटी ज्यों ही घर में गयी, त्यों ही वे लोग आ पहुँचे। इष्टमित्र आ गये थे, तो रात भर रह जाते। सो नहीं क्रोध करके अपनी स्त्री का हाथ पकड़कर वापस चले गये। छोटे बाबू तो स्तम्भित हो गये। लेकिन मेरी सावित्री बड़ी अभिमानिनी लड़की है। क्या वह अपमान सह सकती थी? पानी तक न पीकर बेटी जो चली गयी, फिर तो कोई उसकी ख़बर नहीं मिली।"

उपेन्द्र स्तब्ध होकर बैठे रहे। उस रात का निष्ठुर इतिहास नेत्रों के आगे स्पष्ट हो उठा और बार-बार यही ध्यान आने लगा, मोक्षदा की कही यदि आधी भी सच हो तो जिसके नाम से वह घृणा करते आये हैं, वह कैसी अद्‌भुत नारी है!

मोक्षदा अपने काम पर चली गयी, लेकिन उपेन्द्र वहीं चुपचाप गूंगे की तरह बैठे रहे। छः महीने पहले वह ये सब बातें सुनते भी नहीं थे। जो असत्य है, जो मिथ्या है, लेशमात्र भी कलंक से कलुषित है, वह सर्वदा ही उनके लिए विषवत त्याज्य है। सतीश को जो छोड़ सका है, मोक्षदा की बातों से उसकी आँखों की पलकें भारी हो गयीं और दृष्टि धुँधली हो गयी। उसका संगमरमर-सा शुभ्र हृदय पत्थर की तरह कठोर था, फिर क्यों आज एक अज्ञात नारी की कलंकित प्रणय-वेदना की कथा सुनकर उस निष्कलंक शुभ्रता पर छाया आ पड़ी, इस पर विचार कर देखने से ज्ञात हो जाता है कि यह दुर्बलता उसी पत्थर के बीच दबी हुई थी। केवल सुरबाला जब उनकी आधी शक्ति हरण करके चली गयी, तब सुयोग पाकर ये ही सब विशाल झरने की भाँति उसकी पत्थर सदृश छाती को भेदकर बाहर निकल आये हैं। सुरबाला उनको कितना शक्तिहीन बना गयी है, यह बात जान लेने पर उपेन्द्र आज भयभीत हो जाते हैं।

लेकिन उस ओर उनका लक्ष्य नहीं था। वह केवल शून्य दृष्टि से सामने की ओर निहारते हुए बैठे रहे और किसी अनजान सावित्री के प्रेम का इतिहास उनकी सुरबाला की उन अनिर्वचनीय करुण दोनों आँखों की भाँति उनकी आँखों पर आँखें रखकर स्थिर हो गया।

उनको चेत हुआ भुवन मुखर्जी का कण्ठ-स्वर सुनकर। उसने आहट देकर कमरे में घुसकर कहा, "बाबू, आपने क्या मुझे बुलाया था?"

उपेन्द्र ने कहा, "बैठो! तुम सावित्री को जानते हो?"

मुखर्जी ने सिर झुकाकर कहा, "हाँ जानता हूँ।"

"उसके सम्बन्ध में तुम जो कुछ जानते हो, मुझे बता सकते हो?"

"जी हाँ, बता सकूँगा।" यह कहकर इस निर्लज्ज मनुष्य ने अपने गम्भीर अपराध का इतिहास एक-एक करके बता दिया। अन्त में बोला, "मैं भी भले आदमी का लड़का हूँ बाबू, लेकिन पहले यदि मैं उसे पहचान सकता, तो इस मार्ग में कदम रखकर रसोईदार ब्राह्मण का काम करके दिन बिताने न पड़ते। केवल मेरी यही धारणा है कि शरीर में प्राण रहते कोई भी उसका बिगाड़ न कर सकेगा।"

उपेन्द्र ने पूछा, "उसके प्रति तुम्हारा क्या विचार है?"

मुखर्जी ने कहा, "फिर भी मैं यह कह सकता हूँ कि वह भ्रष्ट नहीं हुई है।"

उसको विदा कर उपेन्द्र पूर्ववत निर्जीव मूर्ति की भाँति बैठे रहे। केवल उनका मन लगातार यह कहकर उन्हें कोसने लगा, तुमने अच्छा नहीं किया उपेन, अच्छा नहीं किया। जो निरुपाय नारी इतने बड़े प्रलोभनों को अनायास ही जीतकर चली जा सकती है, उसका अपमान करने का तुम्हें अधिकार नहीं था।

उसी दिन अपराह्न में उपेन्द्र भुवन मुखर्जी के यहाँ से चले गये।

लेकिन किसी प्रकार भी समुद्र की जलवायु उन्हें खड़ा न कर सकी। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता जाता था आँख-मुँह में जलन होने लगती थी, और ज्वर भी आ जाता था। और प्रतिदिन उन्हें तिल-तिल करके परलोकवासिनी पतिहीन सुरबाला के निकट ही ले जाने को बढ़ा जा रहा है, यही मानो वह अपने हृदय में स्पष्ट अनुभव करने लगे।

इस प्रकार समुद्र तट के इस निर्जन स्थान में उनकी इस लोक की अवधि जब प्रतिदिन समाप्त होने लगी तब एक दिन प्रातः की डाक से बिहारी की चिट्ठी घर के पते से पुनः भेजी जाने पर उपेन्द्र के हाथ में आ पहुँची।

जिसका स्मरण आते ही उनकी छाती में सुई चुभ जाने की भाँति पीड़ा होने लगती थी, अपने उसी चिरकाल के मित्र का अपमान, उसे त्याग देने का दुख उनके हृदय में दिन-पर-दिन कितना बढ़ता जा रहा था, इसे केवल अन्तर्यामी ही जान रहे थे, लेकिन जब उसी मित्र की बीमारी का समाचार लेकर बिहारी के पत्र ने चिकित्सा और शुश्रूषा की अभावपूर्ति का निवेदन किया, तब अनेक दिनों बाद उपेन्द्र के सूखे होंठों पर हँसी आ गयी। वह बेचारा तो जानता नहीं है कि जिसके जीवन के दिन अब गिने जाने की दशा पर आ पहुँचे हैं, उसी के हाथ में एक और मनुष्य की सेवा का भार सौंपना चाहता है! फिर भी उपेन्द्र उसी दिन अपना सामान बाँधकर पुरी से रवाना हो गये।

इकतालीस

ज्योतिष ने हाईकोर्ट से वापस लौटकर घर में पाँव रखते ही देखा कि सामने के बरामदे में दो आरामकुर्सियों पर शशांक और सरोजिनी दोनों आमने-सामने बैठकर बातचीत कर रहे

हैं।

शशांक उठ खड़ा हुआ और हँसकर लापरवाही से बोला, "आज काम-काज कुछ जल्दी पूरा हो गया। मैंने सोचा कि यहाँ ही चाय पीकर एक साथ ही क्लब चले जायेंगे।"

"अच्छा, अच्छा!" कहकर ज्योतिष अपनी हँसी को दबाकर घर के अन्दर चला गया।

सरोजिनी भैया के साथ अन्दर जाने की तैयारी करने लगी तो ज्योतिष घूमकर खड़ा हो गया और बनावटी भर्त्सना के स्वर से बोला, "अतिथि को अकेला छोड़कर, यह तेरी बुद्धि कैसी हो गयी है सरोजिनी?"

सरोजिनी लाल मुँह किये फिर कुर्सी पर बैठ गयी। बहन की यह लज्जा ज्योतिष की आँखों से छिपी न रही।

माँ के आदेश से उसे कचहरी से लौट आने पर कपड़े बदलकर हाथ-मुँह धोकर जलपान करना पड़ता था। माँ से भेंट होते ही उसने कहा, "शशांक आये हैं, आज जलपान की वस्तुएँ बाहर ही भेज दो ना।"

माँ ने कहा, "अच्छा! सरोजिनी सम्भवतः बाहर है?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर बताया। फिर कुछ चुप रहकर बोला, "अच्छा माँ, ऐसा आदमी तुम्हारी समझ में कहीं है, जिसमें कोई दोष न हो, केवल गुण ही गुण हों?"

इस प्रश्न को जगततारिणी प्रसन्नचित्त से ग्रहण न कर सकीं। बोलीं, "क्यों तू मुझसे बार-बार यही बात पूछता रहता है ज्योतिष? मैं तो अनेक बार कह चुकी हूँ, अब मुझे कोई आपत्ति नहीं। तू अच्छा समझे तो उसके ही हाथ में सरोजिनी को सौप दे न।"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर बताया। फिर कुछ चुप रहकर बोला, "अच्छा माँ, ऐसा आदमी तम्हारी समझ में कहीं है, जिसमें कोई दोष न हो, केवल गुण ही गुण हों?"

इस प्रश्न को जगततारिणी प्रसन्नचित्त से ग्रहण न कर सकीं। बोली, "क्यों तू मुझसे बार-बार यही बात पूछता रहता है ज्योतिष? मैं तो अनेक बार कह चुकी हूँ, अब मुझे कोई आपत्ति नहीं। तू अच्छा समझे तो उसके ही हाथ में सरोजिनी को सौंप दे न।"

ज्योतिष ने कहा, "दोष के बिना कोई मनुष्य नहीं है माँ। मैंने अनेक प्रकार से विचार करके देख लिया है, सरोजिनी दुखी न रहेगी। इसके अतिरिक्त वह बड़ी भी हो चुकी है। उसकी सम्मति के बिना काम करना भी उचित नहीं है।" यह कहकर उसने देखा कि सरोजिनी आकर धीरे-धीरे भैया की पीठ के पास खड़ी हो गयी है।

माँ भण्डारघर के भीतर से ही बातें कर रही थीं, इसीलिये कन्या के आने का उन्हें पता न चला। ज्योतिष की बात के उत्तर में उन्होंने विरक्ति के स्वर में कहा, "यह बात तो मैंने कभी नहीं कही ज्योतिष, कि इस लड़की का ब्याह उसकी सम्मति के बिना ही हो। मेरी जो इच्छा थी, उसे जब तुम दोनों भाई-बहन ने मिलकर पूरा न होने दिया, तभी क्या लड़की के मन का भाव मैं नहीं समझ गयी बेटा। मैं सब समझती हूँ। समझकर ही तो मुँह बन्द किये बैठी हूँ। अब मुझे झूठमूठ का उलाहना देना व्यर्थ है ज्योतिष।" यह कहकर वह जलपान की वस्तुएँ सजाने लगीं। संकोच से, लज्जा से सरोजिनी गड़ सी गयी लेकिन माँ को कुछ

भी ज्ञात न हुआ। ज्योतिष के उत्तर देने के पूर्व ही वह अपनी बात की पुनरावृत्ति के रूप में फिर कहने लगी, "जिसको देने से तुम्हारी बहन सुखी रहे उसे ही दे दो बेटा। मेरी सम्मति अब बार-बार जानने की आवश्यकता नहीं है। मेरा मत है, तुमसे कहे देती हूँ।"

बहन के अत्यन्त संकोच से ज्योतिष स्वयं बड़ा ही संकुचित हो रहा था। फिर जबरन मुस्कराकर बोला, "लेकिन मत प्रसन्न मन से देना चाहिये माँ।"

जगततारिणी ने कहा, "प्रसन्न मन से ही दे रही हूँ बेटा, प्रसन्न मन से ही दे रही हूँ। मुझे अब तुम लोग तंग मत करो।"

ज्योतिष ने क्षणभर मौन रहकर सोचकर स्थिर किया कि बात जब यहाँ तक पहुँच गयी है तब माँ की विरक्ति रहते भी आज ही इसका निर्णय कर लेना ठीक है। क्योंकि, उनके क्लब में लाइब्रेरी में आजकल प्रायः ही इस बात की चर्चा हो रही है। पर उचित क्या होगा यह बात भी समझ में नहीं आ रही है। घर में यह बात प्रायः ही उठ जाती है, लेकिन इसी प्रकार रुक जाती है – आगे बढ़ने नहीं पाती। शशांक को भी इस तरह अनिश्चित अवस्था में बहुत दिनों तक छोड़कर रखा नहीं जा सकता। इसीलिए वर-कन्या के सुनिश्चित इच्छा के विरुद्ध माँ की स्पष्ट अनिच्छा को ज्योतिष ने सिर पर धारण करके जो कुछ भी हो, इसी क्षण निश्चय कर डालने के लिए कहा, "तो मैंने सोच लिया है माँ कि दो-चार इष्ट मित्रों के सामने रविवार को ही यह बात पक्की हो जाये। क्या कहती हो?"

माँ ने कहा, "अच्छा तो है।"

सरोजिनी धीरे-धीरे अपने कमरे में चली गयी।

रविवार को सबेरे से ही ज्योतिष का बैठकखाना इष्टमित्रों से भरता जा रहा था। नवदम्पति को विवाह-सम्बन्धी बात पक्की हो जाने पर वहीं दोपहर के भोजन का भी आयोजन किया गया था। आज शशांक की वेशभूषा में ही केवल विशेष सजावट नहीं दिखायी पड़ रही थी, बल्कि उसके अंग-अंग से ऐसी कुछ श्री फूट उठी थी, जिससे वह अत्यन्त सुन्दर दिखायी दे रहा था। कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं, लेकिन उपस्थित नहीं थी केवल सरोजिनी। बेयरे से बुलवाने के बाद ज्योतिष स्वयं जाकर उसके कमरे के दरवाज़े पर कराघात करके शीघ्र आने के लिए अनुरोध कर आया था। किसी दूसरे दिन उसके इस व्यवहार की गणना अपराध में की जा सकती थी, लेकिन आज उसे क्षमा पाने का अधिकार है, जानकर भी अतिथिगण केवल स्नेहपूर्ण कौतुक से ज्योतिष को डाँट रहे थे।

उसके बाद अनेक बुलाहट पुकार आने पर लगभग दस बजे जब सरोजिनी उपस्थित हुई तब उसका मुख देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गये। उसका मुँह पीला पड़ गया था, नेत्रों के नीचे स्याही छा गयी थी, मानो सारी रात वह एक क्षण भी नहीं सोयी। ज्योतिष निर्वाक होकर केवल बहन के मुख की ओर निहारता हुआ बैठा रहा। बहन की आकृति देखकर वह मानो हतबुद्धि हो गया। लेकिन इसकी अपेक्षा भी सौ गुना बड़ा विस्मय क्षणभर बाद ही उसके भाग्य में बदा था, इसे वह जानता नहीं था। वह विस्मय मानो उपेन्द्र की छाया लेकर घर के अन्दर आ गया। ज्योतिष ने चौंककर कहा, "उपेन्द्र हो क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "उपेन्द्र बाबू!"

वस्तुतः दिन का समय न रहता तो सम्भवतः ये लोग पहचान ही न सकते। सहसा अपनी आँखों को मानो विश्वास नहीं होता, मानो सोचा ही नहीं जाता कि मनुष्य का चेहरा इतना बदल सकता है। उपेन्द्र एक कुर्सी पर बैठकर बोले, "शरीर अच्छा नहीं है, पुरी से आ रहा हूँ। आज यहाँ क्या है?"

सरोजिनी ने आकर उपेन्द्र का हाथ अपने हाथ में लेकर उनके मुँह की ओर देखकर कहा, "क्या कोई बीमारी हो गयी है उपेन बाबू?" कहते ही उसकी दोनों आँखें अश्रुपूर्ण हो गयीं। उपेन्द्र ने अपने मुरझाये हुए होंठों पर हँसी लाकर कहा, "बीमारी तो कोई नहीं है बहन।"

उपेन्द्र ने आज यही पहले-पहल सरोजिनी को बहन कहकर सम्बोधित किया। सरोजिनी ने झटपट आँखों के आँसू पोंछकर कहा, "चलिये, उस कमरे में चलकर बैठें।" यह कहकर उनका हाथ पकड़कर उस जनाकीर्ण कमरे से वह धीरे-धीरे बाहर चली गयी और उसके साथ ही इस कमरे का आनन्दोत्सव मानो बुझ-सा गया। ज्योतिष ने आकर जब सरोजिनी से कहा, "उपेन्द्र थोड़ी देर तक विश्राम करें, तुम एक बार उस कमरे में तो चलो।"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर उसी क्षण कहा, "नहीं, आज रहने दो।"

जगततारिणी ने समाचार पाकर कमरे में घुसकर रोने के स्वर में कहा, "कैसे इतना दुबला हो गया। लेकिन और कहीं तुम्हारा रहना न होगा उपेन, मेरे ही यहाँ रहकर डाक्टर को दिखाना पड़ेगा। नहीं तो यह बीमारी अच्छी न होगी।"

सरोजिनी ने ज़ोर देकर कहा, "हाँ उपेन भैया, तुमको हम लोगों के यहाँ ही रहना होगा।" उसने भी आज ही पहले-पहल उपेन्द्र को भैया कहकर पुकारा। उपेन्द्र चिकित्सा कराने के लिए पुरी से चले आये हैं, यह बात पूछे बिना ही सब लोग समझ गये थे।

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "वापस लौटकर हो सका तो आप लोगों के ही यहाँ रहूँगा, लेकिन आज मुझे एक घण्टे के भीतर ही छोड़ देना होगा।"

जगततारिणी ने आश्चर्य से कहा, "आज ही, इसी क्षण? क्यों उपेन?"

उपेन ने सतीश की बीमारी का उल्लेख करके उसके दातव्य का, चिकित्सालय आदि का समाचार जितना जानता था, सुनाकर जेब से बिहारी की चिट्ठी को निकालकर सरोजिनी के हाथ में देकर कहा, "साढ़े ग्यारह बजे ट्रेन है, जो कुछ भी हो थोड़ा सा खा-पीकर उसी से मुझे जाना पड़ेगा। यदि लौटकर आ सका तो आप लोगों के ही आश्रय में रहूँगा।"

जगततारिणी का मातृ हृदय पिघल उठा। उनके नेत्रों में फिर आँसू दिखायी पड़े। सतीश को वह मन ही मन अत्यन्त स्नेह करती थी। वही सतीश आज बीमार पड़ा है लेकिन उपेन्द्र यह शरीर लेकर उनकी सेवा करने चला है सुनकर उनकी छाती फटने लगी। वह आँखें पोंछते-पोंछते उपेन्द्र के खाने की व्यवस्था करने के लिए कमरे से बाहर चली गयी।

सरोजिनी ने चिट्ठी को आदि से अन्त तक दो बार पढ़ डाला, फिर उसे लौटाकर वह कुछ क्षण तक स्तब्ध होकर बैठी रही। उसके बाद बोली, "तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगी उपेन भैया!"

उपेन्द्र ने कहा, "इतना दिन चढ़ आने पर व्यर्थ ही स्टेशन जाकर क्या करोगी बहन?"

सरोजिनी ने कहा, "स्टेशन नहीं, सतीश बाबू के घर। मुझे तुम अपने साथ ले चलो।"

उपेन्द्र ने अवाक होकर कहा, "पागल हो गयी हो क्या? तुम वहाँ कैसे जाओगी?"

"तुम्हारे साथ।"

उपेन्द्र ने कहा, "छिः! यह क्या हो सकता है? ये लोग तुमको क्या जाने देंगे? और तुम भी वहाँ क्यों जाओगी?"

सरोजिनी ने दृढ़ता से सिर हिलाकर केवल कहा, "नहीं मैं जाऊँगी अवश्य।" यह कहकर वह चली गयी।

आफिस के कमरे में कोच पर बैठे ज्योतिष एकान्त में शशांक से बातचीत कर रहा था, सम्भवतः इसी विषय पर आलोचना हो रही थी। सरोजिनी ने धीरे-धीरे जाकर भैया की पीठ के पास खड़ी होकर उनके कन्धे पर हाथ रखा। ज्योतिष चौंक उठे, मुँह फेरकर बोले, "क्या है रे सरोजिनी?"

सरोजिनी ने भैया के कानों के पास मुँह ले जाकर धीरे से कहा, "सतीश बाबू बहुत बीमार हैं।"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर दुखित होकर कहा, "यही तो मैंने भी सुना है। उपेन इसी ग्यारह बजे की गाड़ी से जा रहा है क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ, मैं भी उनके साथ जाऊँगी।"

ज्योतिष ने चौंककर कहा, "तुम जाओगी? कहाँ जाओगी?"

सरोजिनी ने कहा, "वहीं।"

ज्योतिष उसकी ओर घूमकर बैठ गया, बोला, "वहाँ कहाँ? सतीश के घर पर क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ!"

शशांक दोनों आँखें विस्फारित करके निहारता रह गया। ज्योतिष ने उत्तेजित स्वर से कहा, "तू पागल हो गयी क्या रे? तू क्यों जायेगी?"

सरोजिनी ने शान्त दृढ़ कण्ठ से कहा, "मैं न जाऊँगी तो कौन जायेगा? नहीं भैया, वे बहुत बीमार हैं। मुझे जाना ही होगा।" और कुछ वह बोल न सकी, रुलाई से गला रुँध जाने के कारण वह भैया के कन्धे पर मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

ज्योतिष के नेत्रों पर से बहुत दिनों का एक काला परदा प्रचण्ड आँधी के आ जाने से पलभर में फटकर उड़ गया। कुछ क्षण वह मौन बैठा रहा, फिर बहन के माथे पर हाथ रखकर धीरे-धीरे सहलाते हुए बोला, "अच्छा, जा। साथ में दासी और दरबान जायें। वह किस दशा में रहता है पहुँचकर तुरन्त ही तार भेज देना। कल-परसों तक मैं भी डाक्टर को साथ लेकर आ जाऊँगा।" यह कहकर उसने ज्यों ही उसको सामने खींच लाने की चेष्टा की त्यों ही सरोजिनी दोनों हाथों से मुँह ढँककर कमरे से दौड़ती हुई भाग गयी।

शशांक ने मूढ़ की भाँति निहारते रहने के बाद वही प्रश्न किया, "सतीश बाबू बीमार हैं तो वह क्यों जायेंगी, यह तो मैं समझ नहीं सका ज्योतिष बाबू? यह सब क्या बात है,

बताइये तो?"

ज्योतिष के कानों में यह प्रश्न पहुँचा या नहीं, बताना कठिन है। वह मानो स्पष्ट देखकर आवेश में उठने वाले मनुष्य की भाँति कहते-कहते बाहर चला गया, "उसके लिये यह इतनी व्याकुल हो उठेगी यह तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। वह कहती है एक तरह, करती है कुछ दूसरी तरह – ये सब कैसी बातें हैं।"

स्टेशन से उतरकर उपेन्द्र ने जिस भद्र युवक से सतीश के गाँव का मार्ग पूछा – भाग्य से वह उसी की डिस्पेंसरी का कम्पाउण्डर था। उसके किसी काम से स्टेशन आया था। अपने बाबू के ही मकान पर ये लोग जाने वाले हैं, सुनकर, वह दौड़-धूप करके केवल एक पालकी सरोजिनी के लिए ठीक कर सका और उपेन्द्र से बोला, "वह महेशपुरी दिखायी पड़ रहा है, चलिये न बातचीत करते-करते पैदल ही चलें! जाने में आध घण्टा भी न लगेगा। नहीं तो बैलगाड़ी से जाने में बहुत देर लगेगी।"

उपेन्द्र की अवस्था पैदल चलने की नहीं थी। लेकिन बैलगाड़ी के भय से उन्होंने पैदल चलना ही स्वीकार कर लिया।

सरोजिनी को पालकी में बैठाकर और दरबान तथा दासी को उसके साथ करके उपेन्द्र उसके साथ रवाना हो गये। उसकी अवस्था सत्रह-अठारह वर्ष से अधिक नहीं थी – खूब चतुर और फुर्तीला था। नाम एककौड़ी था। उसे आशा थी, अपने पास किये डाक्टर साहब के साथ और एक साल तक रहने से वह भी अलग प्रैक्टिस कर सकेगा। उसके मत से डाक्टरी कोई विद्या नहीं है, केवल हाथ में थोड़ा-सा यश रहना चाहिये। नहीं तो जिसे बचना है, वह बचता है जिसको मरना है, वह किसी प्रकार भी नहीं बचता।

उपेन्द्र ने उससे कहा कि इस विषय में उसके साथ कोई मतभेद नहीं है, इसके बाद उन्होंने पूछा, "तुम्हारे बाबू अब कैसे हैं?"

एककौड़ी ने कहा, "बाबू? आज बाईस दिन हुए, वह तो अच्छे हो गये हैं। महाशय सभी दवाइयाँ मैंने ही दी है।" कहकर उसने कई बार अपनी छाती आप ही ठोकी।

उपेन्द्र ने बहुत कुछ निश्चिन्त होकर पूछा, "बीमारी क्या बहुत बढ़ गयी थी एककौड़ी बाबू?" एककौड़ी ने कहा, "बहुत। वह तो मर ही गये थे। माँजी आ नहीं जातीं तो वह शिवजी के लिए भी असाध्य रोग था। होगा नहीं महाशय जी, दिन-रात थाको बाबा के साथ रहकर शराब और गांजा। कालीजी को सिद्ध कर रहे थे न? इन सब बातों पर क्या हम डाक्टर लोग विश्वास करते हैं महाशय! हम लोग हैं साइण्टिफिक मैन। लेकिन माँजी ने आते ही थाको बाबा की बाबागिरी ख़तम कर दी, खींचकर उनका त्रिशूल फेंक दिया। उस क़मबख़्त ने कई दिनों तक क्या कम उपद्रव किया? विश्वास कीजिये, सबको बाबू मारने-खदेड़ने दौड़ता था। एक दिन साधारण सी बात पर मेरे ऊपर ऐसा दाँत कटकटा दिया महाशय। लेकिन मैं तो बहुत ही भला आदमी हूँ, किसी से मैं झगड़ा-विवाद करना नहीं चाहता। नहीं तो दूसरा कोई होता तो उस बदमाश का सिर काट लेता।" कहकर एककौड़ी ने अपना छाता आकाश में उछाल दिया।

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "माँजी कौन है?"

एककौड़ी ने कहा, "यह क्या मैं जानता हूँ महाशय! सभी लोग कहते हैं माँजी, मैं भी कहता हूँ माँजी।"

उपेन्द्र ने कहा, "उनको तुमने देखा है?"

एककौड़ी ने कहा, "हाँ, मैं एक प्रकार से देखता ही तो हूँ।"

उपेन्द्र ने पूछा, "उनकी उम्र क्या होगी बता सकते हो?"

एककौड़ी ने सोचकर कहा, "सम्भवतः चालीस-पचास की होंगी नहीं तो दूसरा कोई क्या बाबू को नियंत्रण में रख सकता था महाशय? डाक्टर साहब तो कहते हैं कि वह न आतीं तो सब समाप्त हो चुका था।"

एककौड़ी के साथ उपेन्द्र जब सतीश के घर पहुँचे तब दिन डूब ही रहा था। सरोजिनी पहले ही पहुँच गयी थी। फाटक के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे उनकी पालकी रखवाकर दरबान प्रतीक्षा कर रहा था। सामने ही दातव्य चिकित्सालय था, वहाँ लोगों की बहुत भीड़ लगी हुई थी।

एककौड़ी सबको साथ लिये नीचे के बैठकखाने में बिठाकर बिहारी को बुलाने गया, लेकिन उससे भेंट नहीं हुई। डाक्टर साहब भी बाहर रोगी देखने के लिए गये हुए थे। सभी लोग भीड़ लगाकर उसके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

उपेन्द्र को इन माँजी के विषय में अत्यन्त सन्देह था, इसलिए सरोजिनी को वहीं रुकने के लिए कहकर वह सीधे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गये।

सतीश बिछौने पर सो रहा था। उसके सिरहाने बैठकर सावित्री ध्यान से काग़ज़ देख रही थी। उस ओर से खुली खिड़की से सूर्यास्त की लाल आभा फ़र्श पर बिखर रही थी।

ऐसे ही समय में दरवाज़े का भारी परदा हटाने की आवाज़ सुनकर सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर देखा एक अपरिचित भले आदमी आ गये हैं।

घबराहट के साथ माथे का घूँघट ऊपर खींचकर उठकर खड़ी होने की चेष्टा करते ही आगन्तुक ने निकट आकर कहा, "आप उठिये मत, मैं हूँ उपेन। आप सावित्री हैं न!"

सावित्री ने सिर हिलाकर बताया, "हाँ।" लेकिन भय से, लज्जा से, संकोच से वह मानो मर-सी गयी।

उपेन्द्र ने पूछा, "सतीश सो रहा है? अब कैसा है?"

सावित्री ने पहले की ही तरह सिर हिलाकर बताया, "अच्छा है।"

उपेन्द्र तब धीरे-धीरे आकर पलंग के कोने पर बैठ गये। अपना कर्त्तव्य उन्होंने पहले ही निश्चित कर लिया था। बोले, "मुझे वह चिट्ठी आपने ही लिखी थी, यह मैं अब समझ गया हूँ। मुझे आने के लिए लिखकर अपने सुख-दुख अपने भले-बुरे को आपने कितना तुच्छ बना दिया था, आप यह मत समझिये कि इन बातों को मैं समझता नहीं हूँ। इससे तो अपना परिचय है।"

सावित्री को ऐसा जान पड़ा मानो वह स्वप्न देख रही हो। यह मानो कोई दूसरा ही

व्यक्ति है, सतीश का वह उपेन भैया नहीं है।

उपेन्द्र ने थोड़ी देर तक मौन रहकर कहा, “तुमसे मैं उम्र में बड़ा हूँ। तुमको मैं सावित्री कहकर पुकारूँगा। तुम मुझे भैया कहकर पुकारना। आज से तुम मेरी छोटी बहन हो।”

सावित्री ने चुपचाप उठकर उपेन्द्र के पाँवों के पास झुककर प्रणाम किया और दोनों हाथ बढ़ाकर उपेन्द्र के जूते का फीता खोलते-खोलते सिर झुकाये हुए पूछा, “आने में इतनी देर क्यों हुई? चिट्ठी क्या ठीक समय पर नहीं मिली?”

उपेन्द्र ने सावित्री के काम में बाधा नहीं दी। सहज भाव से बोले, “नहीं बहन, मिली नहीं। परसों पुरी में तुम्हारी चिट्ठी पाकर चला आ रहा हूँ लेकिन तुमको एक बहुत ही कठिन काम करना है बहन...” यहीं पर उपेन्द्र के मुँह की बात रुक गयी।

सावित्री ने जूते खोलकर एक ओर रख दिये। मोज़ा खोलते-खोलते उसने पूछा, “कौन काम है भैया?”

फिर भी उपेन्द्र चुप ही रहे। इसके बाद मानो ज़ोर लगाकर भीतर का संकोच दूर करके बोले, “लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त और किसी में यह काम करने की शक्ति नहीं है। इस काम को एक और कर सकती थी, वह थी सुरबाला।”

सावित्री चुपचाप प्रतीक्षा कर रही है, देखकर उपेन्द्र ने कहा, “सरोजिनी का नाम सुना है?”

सावित्री ने सिर हिलाकर कहा, “सुना है।”

“सम्भवतः सब कुछ सुन चुकी हो?”

सावित्री ने उसी प्रकार सिर हिलाकर बताया, उसे सब कुछ मालूम है।

तब उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, “सतीश की बीमारी की बात सुनकर उसे किसी प्रकार भी रोका नहीं जा सका। मेरे साथ वह भी चली आयी है। नीचे के कमरे में बैठी हुई है। उसका कोई उपाय करो बहन।”

सावित्री शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। बोली, “वह आयी है। मैं अभी जाकर... लेकिन मैं क्या उसके पास जा सकती हूँ भैया?”

इस संकेत को उपेन्द्र समझ गये। दोनों आँखें फैलाकर मुक्त कण्ठ से बोल उठे, “तुम जा नहीं सकती? मेरी छोटी बहन क्या संसार में किसी भी स्त्री से छोटी है कि कहीं भी उसे सिर ऊँचा करके खड़ी रहने में संकोच होगा? मेरी बहन होना क्या संसार में साधारण परिचय है बहन?”

सावित्री और न रुकी। पलभर में उसका सिर उपेन्द्र के दोनों पाँवों पर गिर पड़ा। बार-बार उन दुबले-पतले दोनों पाँवों की धूल सिर पर चढ़ाकर जब वह उठ खड़ी हुई तब उसके मुँह पर आवरण नहीं था। दोनों आँखों से आँसू झर रहे थे। आँसू से भीगे हुए उस मुख पर नारी चरित्र की वृहत महिमा उपेन्द्र टकटकी बाँधे निहारने लगे।

आँखे पोंछकर जब सावित्री कमरे से बाहर आयी तब उपेन्द्र ने पीछे से कहा, “जिसको बहन कहकर अपना परिचय दोगी, उससे कहना कि हम दोनों भाई-बहन ने आज तक कभी

संसार में छोटा काम नहीं किया है।"

सावित्री के चले जाने पर उन्होंने सोये हुए सतीश की ओर देखकर पुकारा, सत्तू! ओ सतीश!"

सतीश की नींद टूट गयी। हड़बड़ाकर वह उठ बैठा। आँखें मलकर निहारता रहा।

"तेरा उपेन भैया हूँ, मुझे तू पहचान नहीं रहा है?"

"उपेन भैया!" सतीश विह्वल नेत्रों से निर्वाक होकर निहारता रहा।

"क्यों रे, अभी तक तू मुझे पहचान न सका?"

सतीश ने मानो नींद के नशे में बात कही। मानो अभी तक उसका नशा टूटा नहीं था – इस प्रकार के रुख से बोला, "पहचान गया। तुम आ गये उपेन भैया!"

"हाँ भाई, मैं आ गया हूँ।"

"तो अपने पाँवों को एक बार ऊपर उठाओ न उपेन भैया। बहुत दिनों से तुम्हारे पाँवों की धूल सिर पर मैं चढ़ा नहीं सका हूँ।"

उपेन्द्र ने दोनों हाथ बढ़ाकर अपने मित्र को छाती से लगा लिया। कुछ देर तक अचेतन मूर्ति की भाँति दोनों एक-दूसरे की छाती से लगे रहे। फिर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "अब और देरी मत कर सतीश, ज़रा जल्द रोगमुक्त हो जा भाई, मेरे बहुत से काम तेरे लिए पड़े हुए हैं।"

"कौन काम उपेन भैया?" कहकर सतीश ने किसी के पाँवों की आहट सुनकर पीछे की ओर देखा तो स्तम्भित हो गया। सावित्री का हाथ पकड़े सरोजिनी चली आ रही थी।

वह एक बार उपेन्द्र की ओर देखकर फिर एक बार अच्छी तरह आँखें मलकर इन दोनों रमणियों के मुँह को चुपचाप निहारता रहा। वह अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहा है, यह बात उपेन्द्र और सावित्री दोनों ही समझ गये।

सरोजिनी क्षणभर सतीश के कंकाल जैसे पीले मुख की ओर देखकर जल्दी से आगे बढ़कर उसके पाँवों के पास बिछौने पर औंधी पड़कर अपनी रुलाई के वेग को रोकने लगी। किसी ने कोई बात नहीं कही। लेकिन इस रुलाई के भीतर बड़ी वेदना और क्षमा-याचना थी, वह किसी को समझना शेष नहीं रहा। सतीश चुपचाप मूर्ति की भाँति बैठा रहा। उसके हृदय का एक अंश अव्यक्त आनन्द की बाढ़ से जिस प्रकार तरंगित हो उठने लगा, दूसरा अंश उसी प्रकार कठिन समस्या के घात-प्रतिघत से भीत और क्षुब्ध हो उठा। बहुत देर किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। संध्या के अन्धकारपूर्ण शान्त कमरे में केवल सरोजिनी की दुर्निवार रुलाई का वेग उसके प्राणपण से दबा रखने के कारण रह-रहकर और भी उच्छवसित हो उठने लगा। वह नीरवता भंग हुई उपेन्द्र के कण्ठ-स्वर से। उन्होंने सरोजिनी के माथे पर धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ फेरकर कहा, "अपराध चाहे जिससे भी क्यों न हुआ हो सतीश, मेरी इस बहन को तू आज क्षमा कर दे। उसके हृदय के भीतर के अनेक दिनों से संचित दुखों ने आज तेरी सेवा के लिए ही मेरे साथ उसे भेज दिया है। लेकिन सावित्री बहन, इस प्रकार मुँह उदास बनाये खड़ी रहने से तो काम ही न चलेगा। तुम्हारे

इस मरणोन्मुख भाई के अनेक उत्पातों और बोझों को आज से तुमको ही सहन करना पड़ेगा बहन। आओ, मेरे पास आकर बैठो।"

सावित्री का नाम सुनकर सरोजिनी लज्जा, पीड़ा, वेदना सब कुछ भूलकर मुँह ऊपर उठाकर खड़ी हो गयी, इतनी देर तक वह उसे उपेन्द्र की कोई आत्मीय ही समझ रही थी। सावित्री चुपचाप आकर उपेन्द्र के निकट भूमि पर बैठ गयी। उपेन्द्र ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "तुम यह ख़्याल मत करना बहन कि तुमसे क्षमा माँगकर मैं तुम्हारी अमर्यादा करूँगा। लेकिन सतीश, तू मुझे क्षमा कर दे। तेरा जितना अपमान, जितना अनिष्ट मैंने किया है, सब भूल जा भाई।"

सतीश क्या कहता। वह अवाक होकर टकटकी लगाये निहारता रहा।

उपेन्द्र ने म्लान हँसी हँसकर कहा, "मैं समझ गया हूँ सतीश, तुम लोग क्या सोच रहे हो। सोच रही हो कि गम्भीर उपेन भैया बच्चों की तरह बक क्यों रहा है! लेकिन तुम लोग तो जानते नहीं हो भाई, कितने दिनों तक तुम लोगों के उपेन भैया का मुख एकदम ही मूक हो गया था। इसीलिए जितनी बातें इकट्ठी हो गयी थीं, सभी आज मतवाले की तरह बाहर निकल रही है।"

उपेन्द्र के वार्तालाप के ढंग से सतीश का हृदय एक प्रकार की अज्ञात आशंका से उथल-पुथल मचाने लगा, कई एक बात उसने जान भी लेनी चाही, लेकिन न तो उसे प्रश्न ही स्मरण पड़ा, न तो उसके मुँह से बात ही निकली वह जैसे निहार रह था वैसे ही निहारता रहा।

दूसरे ही क्षण सरोजिनी के मुँह की ओर देखकर उपेन्द्र ने सतीश से कहा, "तुम अच्छे हो जाओ। आशीर्वाद देता हूँ, तुम सुखी बनो – मैं अपनी इस बहन को लेकर चला जाऊँगा।" यह कहकर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे सावित्री के सिर पर उँगली से थपथपाकर कहा, "तुम्हारे अतिरिक्त मेरा भार लेने वाला कोई नहीं है बहन। और जैसी बीमारी है और किसी को अपने पास बुलाने का साहस भी नहीं होता। होना उचित भी नहीं। केवल तुम्हारी तरह जिसका जीवित रहना दूसरों की भलाई के लिए है, अपनी बहन को ही अपने को सौंप दे सकता हूँ। चलोगी बहन, मेरे साथ? सतीश को छोड़ जाने में कष्ट होगा। होने दो। उसकी अपेक्षा भी कितना अधिक दुख, कष्ट भगवान मनुष्य से सहाते हैं तब उसे सही मनुष्य बना देते हैं।"

सतीश के मन में इतनी देर का वही भूला हुआ प्रश्न मानो बिजली की भाँति नाच उठा। वह सहसा बोल पड़ा, "उपेन भैया, हमारी भाभी कैसी हैं? उनकी बीमारी सुनकर ही मैं चला आया था।"

उपेन्द्र ने एक क्षण के लिए दाँतों से होंठों को ज़ोर से दबाया। उसके बाद अपने अभ्यास के अनुसार ऊपर की ओर देखकर बोले, "पशु अब नहीं है, चली गयी।"

सरोजिनी चिल्ला उठी, "सुरबाला भी नहीं है?"

"नहीं।"

सतीश मोटे तकिये पर कुहनी टेककर मूर्च्छा से आहत हुए की भाँति शून्य दृष्टि से

बैठा देखता रहा।

"सुरबाला नहीं है, वह चली गयी।" यह बात उपेन्द्र के मुँह से सहज ही में निकल पड़ी। लेकिन यह 'नहीं' रहना कैसा है। यह 'जाना' कैसा जाना है सतीश से अधिक कौन जानता है! सरोजिनी की अपेक्षा किसने अधिक देखा है। सावित्री की अपेक्षा किसने अधिक सुना है।"

फिर भी सुरबाला नहीं है, वह मर गयी है। सतीश के मुँह की ओर देखकर उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "भगवान ने ले लिया, उसकी फिर नालिश क्या! लेकिन इस समय यदि दिवाकर पास रहता! माँ-बाप नहीं हैं, बचपन से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, वह भी जाने कहाँ चला गया। मालूम नहीं, मरने से पूर्व एक बार उसे देख पाऊँगा या नहीं।"

सतीश ने उसी प्रकार मूर्च्छाहत की भाँति पूछा, "दिवा का क्या हुआ उपेन भैया?"

उपेन ने कहा, "क्या जाने उसका क्या हुआ। कलकत्ता में हारान बाबू के घर में रहकर पढ़ने को ठीक कर दिया था। यह अत्यन्त लज्जा की बात किसी से कही भी नहीं जाती, कहने की इच्छा भी नहीं होती। घर के लोग आज तक जानते हैं कि वह कलकत्ता में पढ़ रहा है, सुरबाला उसको बहुत स्नेह करती थी, उस बेचारी ने मरने के पूर्व उसे देखना चाहा था, लेकिन उसकी यह साध भी मैं पूरी न कर सका। हारान बाबू की स्त्री के साथ वह कहाँ चला गया, इसका कुछ पता नहीं है।"

तीनों श्रोता एक ही साथ अव्यक्त कण्ठ से "क्या!" कहकर चिल्ला उठे, स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ में नहीं आया।

इसके बाद सभी चुप रहे। समूचा कमरा एक शून्य श्मशान की भाँति नीरव हो गया।

कोई भी उपेन्द्र के मुँह की ओर निहार भी न सका। लेकिन प्रत्येक को ही यह ज्ञात होने लगा कि उन लोगों का इतने दिनों का दुख-कष्ट मान-अभिमान मानो इस आकाशभेदी वेदना के सामने अत्यन्त तुच्छ हो गया है।

सावित्री, सतीश से सभी बातें सुन चुकी थी। सभी बातें वह जानती थी। वह सोचने लगी, इस विपुल शून्यता को इस मनुष्य ने किस वस्तु से भर रखा है! इस व्यथा को वह किस तरह अपने प्रतिदिन की जीवन यात्रा में ढोता फिरता है। कलेजे के भीतर इतनी हाहाकर, पर बाहर से कोई शिकायत नहीं। किसने इनका सुख-दुख इतना सहज और सुसह बना दिया है?"

उसने पाँवों पर धीरे-धीरे हाथ फेरते-फेरते कहा, "भैया, इन सब बीमारियों में तुम्हारे लिए पहाड़ की हवा खूब अच्छी होगी, ठीक है न?"

उपेन्द्र ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा, "हाँ बहन, यही बात तो डाक्टर भी कहते हैं, लेकिन भगवान जिसको बुलाते हैं, उसको कुछ भी फायदा नहीं करता। जाना ही पड़ता है।"

सावित्री ने कहा, "कुछ भी हो भैया, लेकिन हम लोग पहाड़ पर ही जाकर रहें।"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "अच्छा, ऐसा ही करना।"

महामाया की पूजा निकट आ गयी और सतीश के स्वस्थ होने के पूर्व ही बंगालियों

के सर्वश्रेष्ठ आनन्दोत्सव के दिन सुख-स्वप्न की भाँति बीत गये। और भी कुछ दिन यहाँ रहने की बात थी, लेकिन उपेन्द्र के शरीर की अवस्था देखकर सावित्री ने त्रयोदशी के दिन को यात्रा करने का दिन निश्चित कर लिया। उपेन्द्र की आपत्ति के विरुद्ध उसने हठ करके कहा, "यह नहीं होगा भैया। सतीश बाबू की बीमारी अब नहीं है। उनका शरीर सबल हो जाने तक प्रतीक्षा करने से तुमको मैं ढूँढकर न पाऊँगी। परसों हम लोगों को यहाँ से जाना होगा। तुम बाधा मत दो भैया।"

उपेन्द्र ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा, देखा जायेगा। लेकिन ऐसा होने से क्या तुम मुझे ढूँढकर पा जाओगी बहन?"

सावित्री तर्क न करके चली गयी। उपेन्द्र के दिन यहाँ शान्ति से बीत रहे थे, इसलिए जाने के लिये उनको कोई शीघ्रता नहीं थी। यात्रा का दिन इतना निकट है, यह भी सम्भवतः उन्होंने विश्वास नहीं किया, लेकिन सतीश का मुँह सूख गया, क्योंकि इस हठ के साथ उसका घनिष्ठ परिचय था। इसे वह भली प्रकार जानता था कि वह कोई बाधा नहीं मानती। जो कोई उसके सम्पर्क में है, उसी को अब तक दबकर रहना पड़ता है। इसीलिये त्रयोदशी किसी प्रकार भी न टलेगी। इसमें उनके मन में तनिक भी सन्देह नहीं रहा, लेकिन सामने ही बिहारी ने जब सजल नेत्रों से पूछा, "अब कितने दिनों में दर्शन दोगी माँ," तब भी सतीश चुप रहा।

सावित्री ने सतीश के मुँह की ओर कनखियों से देखकर गम्भीरता से कहा, "तुम्हारे बाबू का जिस दिन विवाह होगा बिहारी, उसी दिन फिर भेंट होगी। अवश्य तुम्हारे बाबू यदि कृपा करके बुलायेंगे तब।"

लगभग दस दिन पूर्व सरोजिनी को ले जाने के लिये जब ज्योतिष स्वयं आये थे, तभी उपेन्द्र की मध्यस्थता में विवाह की बात पक्की हो गयी थी।

सतीश ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। स्थिर हो गया था कि उसका समयाशौच बीत जाने पर ही विवाह हो जायेगा। सावित्री ने उसी बात की ओर संकेत किया और सतीश ने मौन रहकर सुन लिया।

जाने के दिन उपेन्द्र ने चिन्ता में पूछा, "तेरी तबियत क्या अच्छी नहीं है सतीश? कल से क्यों तू बहुत ही उदास दिखायी पड़ रहा है।"

सतीश ने उदास कण्ठ से कहा, "नहीं, खूब अच्छी तरह तो हूँ।"

उपेन्द्र के चले जाने पर सावित्री कमरे में आयी। उसकी दोनों आँखें लाल थीं, पलकें भीगकर भारी हो गयी थीं, उसकी ओर देखने से ही ज्ञात हो गया। सिर की शपथ की बात बार-बार स्मरण दिलाकर उसने कहा, "बात रखोगे?"

सतीश ने कहा, "रखूँगा।"

"शराब-गांजा हाथ से भी न छुओगे?"

"नहीं।

"मुझसे पूछे बिना तंत्र-मंत्र की ओर भी नहीं जाओगे?"

"नहीं।"

"जितने दिनों में शरीर एकदम ठीक न हो जायेगा, तब तक दो दिन के अन्तर से चिट्ठी लिखते रहोगे?"

"लिखूँगा।"

"उसमें कोई बात नहीं छिपाओगे?"

"नहीं।"

"तो अब मैं जा रही हूँ।" कहकर सावित्री शीघ्रता से नमस्कार करके बाहर चली गयी।

सतीश बिछौने पर बैठा हुआ था, लेट गया। विदा करने के लिए नीचे उतरने की चेष्टा नहीं की।

बाहर दो पालकियाँ तैयार थीं। पास खड़े रहकर उपेन्द्र डाक्टर साहब के साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। मोटी चादर से सारा शरीर ढककर सावित्री धीरे-धीरे ज्योंही दूसरी पालकी में जाने लगी, त्योंही बिहारी ने दौड़ते हुए आकर चुपके से कहा, "एक बार लौट चलो माँ, बाबू विशेष काम से बुला रहे हैं।"

सावित्री लौट गयी। उपेन्द्र ने बातें करते-करते उस पर लक्ष्य किया।

सावित्री को ठीक इसी बात का भय था। कमरे में प्रवेश करके उसने देखा, सतीश दूसरी ओर मुँह किये लेटा है। बिछौने के निकट जाकर हँसी का मन करके उसने कहा, 'बात क्या है? हम लोगों की ट्रेन छुड़वा दोगे क्या?"

सतीश ने मुँह फेरकर हाथ बढ़ाकर सावित्री की चादर को ज़ोर से पकड़कर कहा, "बैठो। तुमको जाने न दूँगा। यह मेरा गाँव है, मेरा मकान है, मेरी इच्छा के विरुद्ध तुमको ज़बर्दस्ती कोई ले जा सके, यह सामर्थ्य दस उपेन्द्रों में भी नहीं है।"

सावित्री अवाक हो गयी। उसने देखा, सतीश की आँखों में एक ऐसी तीव्र हिंस्र दृष्टि है जो किसी प्रकार भी स्वाभाविक नहीं कही जा सकती।

सावित्री समझ गयी, ज़बर्दस्ती करने से काम न चलेगा। बिछौने के एक छोर पर बैठकर भर्त्सना के स्वर में उसने कहा, "छिः! छिः! यह कैसी बात तुम कह रहे हो, वह तो मुझे बरबस नहीं ले जा रहे हैं। उनकी स्त्री नहीं है; भाई नहीं है, तुम नहीं हो – इतनी बड़ी भयंकर बीमारी में सेवा करने वाला कोई नहीं है, इसीलिए तो वह तुमसे माँगकर मुझे ले जा रहे हैं। इसको क्या **जबरन ले जाना कहते हैं?"**

सतीश ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा, "यह झूठी बात है, बहलाना है। वह अपने मित्र ज्योतिष बाबू का मुँह देखकर ही केवल तुमको मेरे पास से हटा लेना चाहते हैं। इधर दो दिनों से दिन-रात भली प्रकार सोच-विचारकर मैंने देख लिया है, जो मौन रहकर सहता रहता है, सभी उसके ऊपर अत्याचार करते हैं। इसका कोई कारण क्यों न हो, मैं तुमको जाने न दूँगा। कुछ भी हो, इस बात को लेकर तर्क-वितर्क करके मैं माथा खपाना नहीं चाहता। बिहारी से कहलवा दो कि तुम्हारा जाना न होगा। बिहारी...।"

सावित्री ने अपने हाथ से उसका मुँह दबाकर कहा, "तुम क्या पागल हो गये हो? अच्छा, मान लेती हूँ कि उनका मतलब अच्छा नहीं है, लेकिन तुम ही मुझे लेकर आज क्या करोगे,

बताओ तो भला?"

सतीश ने क्षण भर मौन रहकर कहा, "यदि मैं कहूँ कि तुमसे ब्याह करूँगा?"

सावित्री ने कहा, "यदि मैं कहूँ कि इस काम में मेरा मत नहीं है।"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे मतामत से कुछ नहीं होता।"

सावित्री ने भयभीत होकर हँसकर कहा, "क्या तुम जबरन मुझसे ब्याह करोगे?" यह कहकर अपने मुँह की हँसी को गम्भीरता में परिणत करके ललाट पर से रूखे बालों का स्नेह से धीरे-धीरे हटाती हुई बोली, "छिः! ऐसी बात कभी भ्रम से भी विचार में मत लाना। मैं हूँ विधवा, मैं हूँ कुलत्यागिनी, मैं हूँ समाज में लांछिता, मुझसे ब्याह करने का दुख कितना बड़ा है, इसे तुम तो समझते ही नहीं हो, लेकिन जो जन्म से ही शुद्ध है, शोक की आग ने जिन्हें जलाकर हीरे की तरह निर्मल बना दिया है, वह समझ गये हैं इसीलिए इस हतभागिनी को आश्रय देने के लिए ही अपने साथ लिये जा रहे हैं। उनकी मंगल-कामना को आज तुम आवेग में रहने के कारण देख न सकोगे, लेकिन इसी कारण उन पर झूठ-मूठ दोषारोपण करके तुम अपराधी न बनो।" यह कहते-कहते आँखों से आँसू लुढ़क पड़े।

आँखों के ये आँसू आज सतीश को शान्त न कर सके। वह और भी उत्तेजित होकर बोला, "झूठ है। तुमने इसी प्रकार अपने को मुझसे अलग रखकर मेरा सर्वनाश किया है। उपेन भैया ने ही कहा है, तुम संसार में किसी की अपेक्षा छोटी नहीं हो, यह सच है।"

सावित्री ने कहा, "नहीं, यह बात नहीं है। भैया अब समाज से परे हैं, इस लोक से परे हैं, उनके मुँह की जो बात सच है, दूसरे के मुँह दूसरे की आवश्यकता के अनुसार सच नहीं है। तुम कहोगे, सच हो या झूठ, मैं समाज को नहीं चाहता, मैं तुमको चाहता हूँ। लेकिन मैं तो यह नहीं कह सकती। समाज मुझे नहीं चाहता, यह मैं जानती हूँ, श्रद्धा के बिना प्रेम टिक नहीं सकता। समाज जिस स्त्री को उसके सम्मान का आसन नहीं देता, किसी भी स्वामी का सामर्थ्य नहीं कि अपने बल से उसके उस आसन को बचाकर रख सके। अजी, इस असाध्य साधना की चेष्टा मत करो।"

सतीश दोनों हाथ से सावित्री के दोनों हाथ ज़ोर से दबाकर बोल उठा, "सावित्री, इन सब बातों को सुनने का धैर्य आज मुझमें नहीं है, समझने की शक्ति भी नहीं है। आज केवल मुझे छूकर तुम यह सच बात सीधे तौर से कह दो कि तुम मुझे प्यार करती हो या नहीं?" यह कहकर वह मानो समस्त इन्द्रियों को, समूचे शरीर तक को, उन्मत करके सावित्री के मुँह की ओर निहारता रहा।

इन अत्यन्त व्यग्र व्यथित दोनों नेत्रों की ओर देखकर सावित्री की आँखों से फिर आँसू झरने लगे। उसने कहा, "प्यार करती हूँ या नहीं, नहीं तो किस बल से तम्हारे ऊपर इतना ज़ोर है? जिसके लिए मेरा इतना सुख है, मेरा इतना बड़ा दुख है? अजी, इसीलिए तो तुमको मैंने इतना दुख दिया, लेकिन किसी प्रकार अपना यह शरीर तुमको दे न सकी।" यह कहकर आँचल से अपनी आँखें पोंछकर बोली, "आज मैं तुमसे कोई बात न छिपाऊँगी। यह मेरा शरीर आज तक नष्ट अवश्य नहीं हुआ है, लेकिन तुम्हारे पाँवों में सौंप देने की योग्यता

भी तो इसमें नहीं है। इस शरीर से जो मैंने इच्छापूर्वक बहुतों का मन मोहित किया है, यह बात मैं किसी प्रकार भी भूल न सकूँगी। इससे चाहे जिसकी सेवा हो, पर तुम्हारी पूजा न हो सकेगी। आज किस प्रकार तुमको वह बात समझाऊँ। इतना प्यार यदि तुम्हें न करती तो इस प्रकार तुमको छोड़कर आज मुझे जाना न पड़ता।" यह कहकर सावित्री ने बार-बार आँखें पोंछीं।

सतीश स्तब्ध भाव से कुछ पड़ा रहा फिर एकाएक बोल उठा, "तो मैं और कुछ नहीं चाहता लेकिन तुम्हारा मन? इससे तो तुमने किसी को कभी मोहित नहीं किया, यह तो मेरा है।"

"नहीं। इससे किसी दिन किसी को मैंने मोहित करना नहीं चाहा, यह तुम्हारा ही है। यहाँ तुम ही चिरकाल से प्रभु हो।" यह कहकर उसने छाती पर हाथ रखकर कहा, "अन्तर्यामी जानते हैं, जितने दिन मैं जीवित रहूँगी, जहाँ, जिस दशा में रहूँगी, चिर दिन तुम्हारी ही दासी बनी रहूँगी।"

सतीश ने तुरन्त उसका हाथ अपने दायें हाथ में लेकर कहा, "भगवान का नाम लेकर तुमने यह जो स्वीकृति दे दी है, यही मेरे लिए यथेष्ट है, इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

उसकी बातों के ढंग से सावित्री मन ही मन फिर शंकित हो उठी।

ऐसे ही समय में बिहारी ने दरवाज़े के बाहर से पुकारकर कहा, "माँजी, बाबू ने कहा है – अब तो देर हो रही है।"

"चलो, आ रही हूँ," कहकर सावित्री उठ रही थी, सतीश ने उसे ज़ोर से पकड़कर कहा, "कभी तुमसे मैंने कुछ नहीं माँगा। आज जाते समय मुझे एक भिक्षा देती जाओ।"

"मेरे पास क्या है जो मैं तुमको दूँगी? लेकिन क्या चाहिए, बताओ।"

सतीश ने कहा, 'मैं यह भिक्षा चाहता हूँ, यदि कोई कभी हम दोनों के सम्बन्ध की बात पूछे तो मेरा स्वामित्व स्वीकार करोगी, बताओगी?"

सावित्री को इसी बात का डर था, फिर भी इस अद्‌भुत अनुरोध से हँस पड़ी। बोली, "क्यों, बताओ तो गवाहों के बल से अन्त में मुझे घर में डाल तो नहीं दोगे?"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे हृदय में रहने वाले अन्तर्यामी ही मेरे साक्षी हैं, दूसरे साक्षी की मुझे आवश्यकता नहीं है। और बाहर के बल से अन्त में तुमको घर में डाल लूँगा यही डर तुमको है? लेकिन अपने ज़ोर से आज ही यदि मैं तुमको घर में डाल लूँ तो कौन मुझे रोकने वाला है, बताओ तो?"

सावित्री ने फिर कुछ नहीं कहा।

सतीश ने कहा, "तुम्हारा जहाँ-तहाँ अपनी ही इच्छा के अनुसार रहना मुझे पसन्द नहीं है।"

सावित्री का मुख उत्तरोत्तर पीला पड़ता जा रहा था, लेकिन इस अवस्था में सतीश को उत्तेजित करने के भय से वह मौन रही। सतीश बोला, "उपेन भैया हैं, पत्थर के देवता। अगर रक्त-माँस के देवता होते तो मैं साथ न भेजता। अच्छा, आज जा रही हो तो जाओ, लेकिन जान पड़ता है कि वहाँ अधिक दिनों तक तुम्हारे रहने से मुझे सुविधा न होगी।"

"तुम्हारी जैसी इच्छा!" कहकर सावित्री नमस्कार करके चली गयी।

बयालीस

सन्ध्या को साढ़े पाँच बजे लकड़ी के कारखाने से छुट्टी पाने पर दिवाकर अराकान की एक सड़क पर जा रहा है। धूल से, धुएँ से, लकड़ी के बुरादे से उसका सम्पूर्ण शरीर भर उठा है। गले पर चादर नहीं है, कुर्ता फटा और मैला है। धोती की भी वही दशा है। दायें पाँव के जूते की एड़ी घिस जाने से चट्टी-सी बन गयी है, बायें पाँव का अँगूठा जूता के बाहर से दिखायी पड़ रहा है। सारा दिन पेट में अन्न नहीं गया है। इसी दश में हाँफते-हाँफते वह मकान वाली के मकान में आ पहुँचा। चार रुपए मासिक किराये पर वह निचले तल्ले की एक कोठरी में रहता है। पतले बरामदे के एक कोने में रसोई बनती है। एक ओर लकड़ी, उपलों, पानी की बाल्टी आदि आस-पास रखी हुई हैं।

दिवाकर के पाँवों की आहट पाकर पास की एक कोठरी से मकान वाली ने निकलकर कड़े स्वर से कहा, "आ गये, अच्छा हुआ! यह सब तुम लोग क्या कर रहे हो बाबू! रसोई-पानी नहीं, नहाना-खाना नहीं, रात-दिन केवल झगड़ा, लड़ाई दाँत पीसना। यह तो हमारे घर की लक्ष्मी को हटाने का उपाय कर रहे हो तुम लोग।"

दिवाकर उदास मुख से सिर झुकाये रहा। वह दोपहर को खाना खाने आया था, पर किरणमयी के साथ झगड़ा करके बिना नहाये-खाये अपने काम पर चला गया था। लेकिन उसकी अवस्था देखकर मकान वाली का क्रोध ठण्डा नहीं हुआ। उसने फिर कहा, "यह तो तुम्हारी ब्याही हुई स्त्री भी नहीं है बाबू कि इस पर इतना ज़ोर-जुलुम चला रहे हो। जैसे निकालकर ले आये थे, वैसे ही उसने भी अपना धर्म रखा है। अब तो तुम्हारी भी नौकरी लग गयी है। अब तुम अलग हो जाओ। अब उसको दुख क्यों देते हो बाबू? ऐसी जवान औरत खाये-पिये बिना सूखकर काँटा बन गयी।" थोड़ी देर तक मौन रहकर वह बोली, "नहीं तो इसकी चिन्ता ही क्या है। वही मोड़ पर जो मारवाड़ी बाबू है, वह रोज़ ही मेरे पास आदमी भेजता है। कहता है, सोने से सारा शरीर मढ़ दूँगा। और तुमको भी औरत के लिए चिन्ता क्या है बाबू? भात बिखेर देने से क्या कौए का अभाव रहता है? जाओ। हट जाओ, मेरी बात मानो। कई दिनों से कह रही हूँ तुम लोगों में मेलजोल अब नहीं होगा।"

दिवाकर ने बीच ही में रोककर कहा, "रहने दो। मेरी बात उठाने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन उनका भी क्या यही मत है? तुम ही उनकी मन्त्राणी हो क्या?"

ठीक उसी समय किरणमयी अपनी कोठरी से बाहर निकल आयी। अवस्था के परिवर्तन से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक सब प्रकार का परिवर्तन कितना शीघ्र हो जाता है यह देखने से अवाक रह जाना पड़ता है।

आज उसकी ओर देखकर कौन कहेगा यह वही सौन्दर्य की प्रतिमा किरणमयी है। छः मास पूर्व वही एक दिन समाज के धर्म को व्यंग्य करके मनुष्यत्व को पददलित करके, एक नासमझ

युवक को सौन्दर्य और प्रेम के मोह में फाँस कर उसे सब प्रकार की सार्थकताओं से दूर करके ले आयी थी, वही धोखाधड़ी की रस्सी स्वयं किरणमयी के ही गले में पड़ गयी है।

पाप के साथ निष्फल क्रीड़ा करते रहने के कारण दिवाकर के हृदय से जो वासना का राक्षस निकल पड़ा है, उससे आत्मरक्षा करने के लिए दिन-रात लड़ाई करती हुई किरणमयी आज घायल हो चुकी है।

उसके सिर के बाल सूखे, इधर-उधर बिखरे हुए हैं, वस्त्र मैला है, फटा-पुराना है। मुँह पर एक प्रकार की सूखी हुई क्षुधा मानो निराशा की चरम सीमा को पहुँच गयी है। सम्पूर्ण शरीर की श्रीहीनता देखने से दुख होता है। मूर्तिमयी अलक्ष्मी की भाँति वह धीरे-धीरे आकर बरामदे में एक खम्भे पर टिककर दोनों की ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी हो गयी।

उसे देखते ही भूख से व्याकुल दिवाकर गरज उठा।

निर्लज्जता की सीमा नहीं रही। वह मुँहज़ोर दिवाकर आज घर भर के लोगों के सामने ऐसी भाषा में चिल्ला-चिल्लाकर बोल सकता है, इस पर विश्वास करना सरल नहीं है, लेकिन वास्तव में उसने यह जो कहा, "क्या भाभी, यही बात है? अब मारवाड़ी, मुसलमान, बर्मी, मद्रासी, इनकी ही आवश्यकता है क्या? ओह, इसीलिए दिन-रात झगड़ा हो रहा है, इसीलिए मैं आँखों का जहर हो गया हूँ?"

किरणमयी पहले तो जैसे कुछ समझी ही नहीं, इसी भाव से केवल उसकी ओर निहारती रही। लेकिन उसका उत्तर दिया मकान वाली ने। वह थोड़ा-सा और आगे बढ़कर हाथ हिलाकर आँख-मुँह मटकाकर बोली, "वह क्यों न चाहेगी, बताओ। हम लोग तो गृहस्थी की कुलवधू हैं नहीं कि एक आदमी को पकड़कर बैठी रहेंगी। हम लोग हैं सुख के कबूतर, एकदम स्वतंत्र। जहाँ जिसके पास सुख मिलेगा, सोना-दाना मिलेगा, उसके पास चली जायेंगी। इसमें लज्जा ही क्या, और छिपाना क्यों?"

दिवाकर ने क्रोध से जलकर उसको धमकाकर कहा, "तू चुप रह मौगी। जिससे पूछ रहा हूँ वही बोले।"

इस बार मकान वाली बारूद की तरह भभक उठी। मरने को तैयार-सी होकर बोली, "मेरे ही मकान में रहकर मुझे ही मौगी कह रहा है। निकल जा मेरे मकान से।"

दिवाकर भी क्रुद्ध हो उठा। छः महीने पूर्व अपने बहुत बड़े दुःस्वप्न में भी सम्भवतः यह कल्पना करना सम्भव न होता कि वह एक अछूत गणिका द्वारा इतना अपमानित होने के बाद भी कमर कसकर तू-तू मैं-मैं कहकर झगड़ा कर सकता है? लेकिन वह तो अब उपेन्द्र सुरबाला के स्नेहपूर्ण आदर-प्यार से पोषित होने वाला दिवाकर रह नहीं गया है। इसीलिए वह भी नेत्र लाल करके गरज उठ, "क्या! मुझे निकल जाने को कहती है? क्या तू किराया नहीं लेती?"

मकान वाली ने भी वैसे ही गरज कर कहा, "वाह! बड़ा आया है किराया देने वाला! तुझे धिक्कार है, तुझे तो गले में डालने को भी रस्सी नहीं जुटती रे! कहती हूँ, निकल, नहीं तो झाड़ू माकर निकाल दूँगी।"

"अच्छा, निकलवा रहा हूँ!" कहकर दिवाकर ने दाँत पीसकर पागल की भाँति दौड़कर किरणमयी को धक्का लगा दिया। सारा दिन भूख-प्यास से थकी किरणमयी उस धक्के को सम्भाल न सकी। पहले तो वह रंग की एक खाली बाल्टी पर जा गिरी। फिर वहाँ से लुढ़ककर उपलों की दौरी पर मुँह के बल जा गिरी।

उन्मत्त दिवाकर बोला, "जा, निकल जा! कौन है तेरा मारवाड़ी, दूर हो!" यह कहकर वह घर के अन्दर घुस गया।

मकान वाली भयंकर रूप से चिल्ला उठी। कारख़ाने से अभी-अभी लौटने वाले मजदूरों का दल हाथ-मुँह की कालिख धो रहा था, चिल्लाहट से चौंककर हाथ का साबुन फेंककर वे दौड़ पड़े। मकान वाली नकनकाकर पुकार मचाने लगी, "बहू को मार डाला रे! इस बदमाश छोकरे को तुम लोग मारते-मारते निकाल बाहर करो, फिर मेरे घर में न आने पाये।"

मकान वाली के कहने पर ये लोग कमरे में घुसने को ज्योंही तैयार हुए, त्यों ही किरणमयी माथे का घूंघट खींचकर उठकर बैठ गयी और दृढ़ स्वर से बोली, "झगड़ा-वगड़ा किसके घर में नहीं होता? मेरे शरीर पर हाथ लगा है तो तुम लोगो का क्या? तुम लोग अपने घर जाओ।" यह कहकर वह तुरन्त उठ खड़ी हुई और कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिए।

बल-विक्रम दिखाने का सुयोग खोकर लोग उदास मन से लौट गये। मकान वाली बाहर खड़ी होकर गाल पर हाथ रखकर बोली, "विचित्र बात है!"

दरवाज़ा बन्द करके किरणमयी ने दियासलाई से बत्ती जलाई। लकड़ी का घर चौड़ा न रहने पर भी लम्बा था। एक ओर मूँज से बुनी चारपाई पर दिवाकर का बिछौना है, दूसरी ओर काठ के फ़र्श पर किरणमयी का बिछौना लपेटा हुआ है। पाँव की ओर कुछ मिट्टी के बरतन एक के ऊपर एक करके रखे हुए हैं और उसी कोने में लकड़ी के सिकहरे पर रर्सो की हांड़ी, कड़ाही, कलछुल आदि रखे हुए हैं। यहीं उनकी गृहस्थी के सामान हैं।

बत्ती जलाकर किरणमयी दरवाज़े के पास फ़र्श पर स्थिर होकर बैठ गयी। किसी के मुँह से कोंं बात न निकली। चारपाई पर दिवाकर सिर झुकाये चुपचाप बैठा था। इसी प्रकार बड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे। फिर धीरे-धीरे उठकर किरणमयी आकर सामने खड़ी होकर सहज भाव से बोली, "हांड़ी में भात रखा है, परोस देती हूँ, चलो, खा लो।"

दिवाकर ने रुँधे गले से कहा, "नहीं।"

उसके गले के स्वर से जान पड़ा कि वह अब तक रो रहा था।

किरणमयी ने कहा, "नहीं, क्यों? सारा दिन तुमने कुछ खाया नहीं। आज न खाने पर भी कल तो खाना ही होगा। खाने-पहनने में क्रोध करने से काम नहीं चलता। मैं भात परोस देती हूँ।"

दिवाकर उत्तर तक न दे सका। लज्जा तथा पश्चाताप से वह जल रहा था। सचमुच ही वह किरणमयी को प्यार करता था।

यहाँ आने के बाद से बहुत दिनों तक बाहर के लोगों के जानने पर भी, अन्दर ही अन्दर बहुत ही गुप्त रूप से दोनों के बीच आसक्ति और विरक्ति का जो संग्राम प्रतिदिन चल

रहा था, उसका प्रत्येक आघात दिवाकर चुपचाप सह रहा था।

कुछ दिनों से यह लड़ाई प्रकट और अत्यन्त घोर हो जाने पर भी ऐसी उत्तेजना बहुत बार हुई थी। लेकिन अब से पूर्व किसी दिन उसने इस प्रकार आत्मविस्मृत होकर पाशविक आचरण नहीं किया था। वास्तव में, किसी कारण से, किसी भी अत्याचार के कारण वह किरणमयी के शरीर पर हाथ उठा सकता है, और सचमुच ही उसने अभी-अभी उठा दिया है, इसे वह अब तक ठीक प्रकार से मन में समझ नहीं पा रहा था। इसीलिए कमरे में घुसकर वह स्वप्नाविष्ट की भाँति बिछौने पर आ बैठा था। लेकिन थोड़ी ही देर बाद जब किरणमयी ने अपनी सभी लाँछनाओं को झाड़ फेंककर मकान में लोगों के आक्रमण और उत्पीड़न से उसे बचा लिया और कमरे में घुसकर अन्दर से किवाड़ बन्द कर दिया तब उसको होश आ गया। किरणमयी का अनुरोध समाप्त भी नहीं हुआ था कि लहरें जिस प्रकार पहाड़ की जड़ पर टकराती हैं, उसी प्रकार उस रमणी के पाँवों पर मुँह के बल गिरकर उच्छ्‌वसित आवेग से वह रो उठ। बोला, 'मैं पशु हूँ। मुझे क्षमा कर दो भाभी।"

किरणमयी ने निर्विकार स्तब्ध रहकर पहले की ही भाँति सहज कण्ठ से कहा, "केवल तुम्हारा ही दोष नहीं है। मनुष्य मात्र को ही ये सब काम पशु बना देते हैं। मुझे भी पशु बना देने में एक तिल भी कसर नहीं रखी है बबुआ।"

दिवाकर ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा, "नहीं, नहीं। और किसी की बात से मुझे मतलब नहीं है भाभी। लेकिन मेरे आज के इस आचरण का प्रायश्चित कैसे होगा? मुझे बता दो। मैं वहीं करूँगा।"

किरणमयी ने कहा, "इसमें अपराध ही क्या है। क्या सुना नहीं है, क्रोध में मनुष्य मनुष्य की हत्या तक कर डालता है। तुमने तो केवल धक्का लगा दिया है। मैंने क्या अपराध नहीं किया? सब दोष क्या केवल तुम्हारा ही है। लेकिन जाने दो इन बातों को। सभी अभियोगों का आज अन्त हो गया। इससे भविष्य में तुमको भी आवश्यकता न पड़ेगी, मुझे भी नहीं। अब जाओ, हाथ-मुँह धोकर खाने बैठ जाओ। मैं खड़ी भी नहीं रह सकती।"

दिवाकर धीरे-धीरे उठ बैठा। किरणमयी के कण्ठ-स्वर से वह समझ गया था कि वह और बातें करना भी नहीं चाहती।

सारा दिन उपवास करने के बाद दिवाकर खाना खाकर बाहर मुँह धोने गया। उसके मन की ग्लानि भी घटती जा रही थी। मुँह धोकर प्रसन्नचित्त से कमरे में आकर कुछ आश्चर्य में पड़कर उसने देखा, किरणमयी ने उसका बिछौना समेटकर नीचे रख दिया है। उसने पूछा, "नीचे क्यों उतार दिया?"

किरणमयी ने अविचलित स्वर से कहा, "पहले बताने से सम्भवतः तुम्हारा खाना नहीं होता, इसलिए नहीं कहा, आज से हम लोगों की फिर कभी भेंट मुलाकात नहीं होगी। बहुत रात नहीं हुई है। आज कालीबाड़ी में जाकर सो रहो, कल सुविधा के अनुसार एक डेरा ढूँढ़ लेना। और यदि इस देश में न रहना चाहो तो परसों स्टीमर छूटेगा। मैं रुपया दे दूँगी, घर लौट जाना। सारांश यह है कि तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो। मेरे साथ अब तुम्हारा कोई

सम्बन्ध न रहेगा।"

दिवाकर हतबुद्धि की भाँति सुनता जा रहा था। उसको जान पड़ रहा था कि किरणमयी का ममताहीन एक-एक शब्द मानो पत्थर के टुकड़ों की भाँति उन दोनों के बीच सदा से लिए लिए एक अभेद्य दीवार खड़ी कर रहा है।

उसकी बातें समाप्त होने पर उसने कहा, "और तुम?"

"मेरी बात सुनने से तुमको कुछ भी लाभ नहीं, फिर भी यदि इस देश में रहोगे तो कल-परसों तक सुन ही लोगे!"

दिवाकर ने कह, "तो मकान वाली की बात ही सच है? वही गँवार मारवाड़ी...।"

किरणमयी ने कड़े स्वर से उत्तर दिया, "हो सकता है! लेकिन और जो कुछ भी हो, तुम्हारे कन्धे पर निर्भर होकर नीचे के मार्ग में उतर पड़ी थी, इसीलिए उसकी अन्तिम सीमा तक तुम्हारे ही आश्रय में उतरना पड़े तो यह ज़रूरी नहीं है। मेरी तबियत ठीक नहीं है, अब सोने जाती हूँ, और तुम व्यर्थ देर मत करो। कल सबेरे तुम्हारी चीज़ें तुम्हारे पास भेज दूँगी।"

दिवाकर ने कहा, "इतनी जल्दी? आज रात को मुझे यहाँ रहने न दोगी?"

"नहीं।"

दिवाकर ने थोड़ी देर तक रुके रहकर कहा, "तो क्या केवल मेरा सर्वनाश करने के लिए ही मुझे इस विपत्ति में खींच लायी थी? किसी दिन तुमने प्यार भी नहीं किया?"

किरणमयी ने कहा, "नहीं। लेकिन तुम्हारी नहीं, एक और मनुष्य का सर्वनाश कर रही हूँ, ऐसा सोचकर ही मैंने तुम्हारा नुकसान किया है। और मेरा? जाने दो मेरी बात। आदि से अन्त तक सब मुझसे भूलें ही हुई हैं। और इन्हीं भूलों के लिए आज मैं पाँव पड़कर तुमसे क्षमा माँग रही हूँ बबुआजी।"

इस निर्विकार पत्थर की प्रतिमा की भाँति उस मुख की ओर देखकर दिवाकर ने लम्बी साँस लेकर कहा, "मेरे सर्वनाश की धारणा तुमको नहीं है, इसीलिए तुम इतनी सरलता से क्षमा माँग सकती हो। लेकिन इस सर्वनाश की अपेक्षा भी आज मेरा प्रेम बहुत बड़ा है। इसीलिए अभी तक मैं जीवित हूँ नहीं तो छाती फट जाने से मैं मर गया होता। लेकिन एक बात तुम मुझे समझा कर कहो। जिसके पास तुम जाओगी उसको भी तो तुम प्यार नहीं करती, सम्भवतः उसे तुम पहचानती भी नहीं। तो भी मुझे छोड़कर तुम वहाँ क्यों जाना चाहती हो? मैंने तो किसी दिन तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं किया। लेकिन सचमुच ही क्या तुम जाओगी।"

किरणमयी ने सिर हिलाकर कहा, "सचमुच ही जाऊँगी।" इसके बाद वह बड़ी देर तक भूमि की ओर निहारती रही, फिर मुँह ऊपर उठाकर बोली, "नहीं, आज मैं कुछ भी छिपाऊँगी नहीं। मैं भगवान को नहीं मानती, न आत्मा को मानती हूँ। यह सब मेरे लिए व्यर्थ है। एकदम असत्य है। मैं मानती हूँ केवल इहकाल को और इस शरीर को। जीवन में केवल एक व्यक्ति के सामने मैंने हार मानी थी, वह थी सुरबाला। लेकिन जाने दो इस बात को, सच कहती हूँ बबुआजी, मैं मानती हूँ केवल इहकाल को और इस सुन्दर शरीर को। लेकिन

मेरा ऐसा फूटा भाग्य है, इसी से अनंग की भाँति पतंग को भी मैंने मोहित करना चाहा था।" यह कहकर लम्बी साँस छोड़कर किरणमयी चुप हो गयी।

दो क्षण चुप रहकर उसने मानो सहसा जागकर कहा, "उसके बाद एक दिन, जिस दिन सचमुच ही मैंने प्यार किया बबुआ, उसी दिन मैं जान गयी, क्यों मेरा सारा शरीर इतने दिनों तक इसके लिए उत्कण्ठित होकर प्रतीक्षा कर रहा था।"

दिवाकर ने व्यग्र होकर कहा, "किसके लिए भाभी?"

किरणमयी हँसकर मानो अपने मन में ही कहने लगी, "मैंने सोचा था, मेरे इस प्रेम की तुलना सम्भवतः तुम्हारे स्वर्ग में भी नहीं है, लेकिन वह स्वर्ग टिक न सका। उस दिन महाभारत की कहानियों के विषय में जिस स्त्री से मैं हार आयी थी, फिर उसी से हार मान लेनी पड़ी। प्रेम के द्वन्द्व में भी सिर झुकाकर मैं चली आयी। मोह का नशा हट गया, मैंने स्पष्ट देख लिया कि उसको सौन्दर्य के भुलावे में टालने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

दिवाकर को एक बार ऐसा जान पड़ा कि उसका निविड़ अन्धकार मानो स्वच्छ होता चला जा रहा है।

किरणमयी कहने लगी, "उस स्त्री से एक विषय सीखने का मुझे लोभ हुआ था, वह था अपने पति को प्यार करना, सम्भवतः मैं सीख भी सकती थी, लेकिन ऐसा फूटा भाग्य है कि वह मार्ग भी दो दिनों में बन्द हो गया। अच्छी बात है, तुमने क्या पूछा था बबुआ, तुमको मैं प्यार क्यों नहीं करती? प्यार तो किया था अवश्य। लेकिन में उम्र में बड़ी हूँ इसीलिए जिस दिन तुम्हारे उपेन भैया मेरे हाथ में तुमको सौंप गये थे, उसी दिन से मैंने तुमको छोटे भाई की तरह प्यार किया था। इसीलिए तो छः महीने से अपनी ही छलना से मैं क्षत-विक्षत हो रही हूँ। तुम्हारी आँखों की भूख से, तुम्हारे मुँह की प्रार्थना से मेरा सारा शरीर घृणा से, लज्जा से काँप उठता है, इसे क्या तुम एक दिन भी समझ न सके बबुआ? जाओ, अब तुम हट जाओ। मुझे पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी न रहे, लेकिन इस शरीर पर तुम्हारी लोलुप दृष्टि मैं अब सह नहीं सकती।" यह कहकर उसने बिछौना उठाकर दिवाकर के सामने फेंक दिया, और बोली, "अब तुम पर मेरा विश्वास नहीं रहा। मेरा एक और छोटा भाई आज भी जीवित है। उसी सतीश का मुँह देखकर मुझे तुमसे आत्मरक्षा करनी पड़ेगी। तुम जाओ।"

दिवाकर फिर दुबारा कुछ न कहकर बिछौना उठाकर बाहर के अन्धकार में विलीन हो गया।

तैंतालीस

सबेरे किरणमयी थके अलसाये शरीर से काम कर रही थी। कामिनी मकान वाली आकर दरवाज़े के सामने खड़ी होकर खूब हँसकर बोली, "चला गया छोकरा? आफत दूर हुई। कल तो मुझे मारने को ही तैयार हो गया था! अरे तेरा काम है औरत रखना? बकरों से यदि

जौ पर दंवरी चल सकती तो लोग बैल क्यों पालते?"

किरणमयी ने पूछा, "किसने कहा कि वह चला गया?"

मकान वाली ने हँसकर आँखें मटकाकर कहा, "लो, अब नखरा करने की आवश्यकता नहीं है। किसने कहा? मैं हूँ मकान वाली, मुझसे कहेगा कौन? मैंने अपने कानों से सुना है। नहीं तो क्या इतने दिनों तक मैं यह मकान रख सकती थी? किस समय इसे पाँच भूत मिलकर खा गये होते, यह क्या तुम जानती हो?"

किरणमयी चुपचाप घर का काम करने लगी। उत्तर न पाकर मकान वाली स्वयं कहने लगी, "मैं तो इतने दिनों से कह रही थी बहू कि निकाल बाहर करो इस आफत को। यह नहीं, रहने दो, कहाँ जायेगा? अरे कहाँ जायेगा, यह मैं क्या जानूँ इतना सोचते रहने से तो काम नहीं चलता। खाओ-पहनो, सुगन्धित तेल लगाओ, सोना-दाना शरीर पर चढ़ाओ, साथ ही साथ मौज उड़ाओ, ऐसा करोगी नहीं, तो देश की दुनिया से बाहर यह कैसा दलिद्दर प्रेम करना है बेटी?"

किरणमयी ने केवल एक बार मुँह ऊपर उठाकर अपनी आँखें झुका लीं। मकान वाली ने समझा कि उसकी बहुदर्शिता की उपदेशावाली काम कर रही है। "और यह क्या बेटी, तुम्हारा प्रेम करने का समय है? अभी तो चढ़ी जवानी है, इस समय तो दोनों हाथ से लूटोगी। इसके बाद दो पैसे हाथ में रखकर चैन से बैठना, उमर चढ़ जाने पर प्रेम करना। तुमको मना कौन करता है? हाथ में पैसे रहने पर क्या छोकड़ों का अभाव रहेगा? कितने चाहिए? तब तो दोनों पाँव एकत्र करके उठ न सकोगी।"

किरणमयी अन्यमनस्क थी। क्या पता सभी बातें उसके कानों में पहुँची या नहीं। लेकिन उसने कोई बात नहीं कही।

मकान वाली को अपने घर का काम-धन्धा करना था। इसीलिए वह देर न कर सकने के कारण दोपहर को फिर आने को कहकर चली गयी।

इस मकान में रहने वाले प्रायः सभी कारखाने में नौकरी करते हैं। सबेरे काम पर जाते हैं, दोपहर को खाने की छुट्टी मिलने पर घर चले जाते हैं, और स्नान-भोजन करके फिर काम पर चले जाते हैं। सन्ध्या के कुछ ही पूर्व उन्हें छुट्टी मिलती है।

आज भी सबेरे उनके काम पर चले जाने पर दो-ढाई बजे के बाद मकान वाली आकर फिर दरवाज़े के पास ही खड़ी हो गयी। मधुर कण्ठ से उसने कहा, "खाना-पीना हो गया बहू! क्या रसोई बनी थी?"

किरणमयी ने आज चूल्हे में आग तक नहीं जलायी थी। मकानवाली के पूछने पर बोली, "हां हो गया है। आओ, बैठो।"

मकानवाली दरवाज़े के पास बैठ गयी। वह कमरे में घुसते ही समझ गयी थी कि किरणमयी का मन ठीक नहीं है। इसलिए सहानुभूति के स्वर में बोली, "यह तो होगा ही बेटी, दो दिन मन खराब रहेगा। एक पशु-पक्षी को पालने-पोसने से मन कैसा उदास हो जाता है और यह तो आदमी है। जैसे भी हो, छः-सात महीने तक उसके साथ घर-गृहस्थी भी

तो चलानी पड़ी। यह दशा दो-चार दिन ही रहेगी, फिर तो कोई नाम तक नहीं लेता बहू, आँखों से बहुत-सी ऐसी घटनाएँ मैंने देखी हैं।"

किरणमयी ने बरबस हँसकर कहा, "यह तो सच ही है।"

मकान वाली ने आँखें मुँह नचाकर कहा, "सच नहीं है? तुम ही बताओ न बेटी, क्या सच नहीं है? फिर नया आदमी आये, नये ढंग से आमोद-प्रमोद करो। बस, सब ठीक हो जायेगा। क्या कहती हो, यही बात है न?"

किरणमयी ने सिर हिलाकर सम्मति तो अवश्य प्रकट कर दी लेकिन इस प्रकार इच्छा के विरुद्ध उसके वार्तालाप से उसका चित्त उद्भ्रान्त होता जा रहा था।

एकाएक मकान वाली ने आँखें-मुँह सिकोड़कर कण्ठ स्वर को धीमा करके कहा, "अच्छी बात स्मरण पड़ गयी बहू, उस गँवार मनुष्य के पास तो मैंने सबेरे ही ख़बर भेज दी थी। उससे तो अब सहा नहीं जाता, कहता है लोग काम पर चले जायेंगे। तो दोपहर को ही आऊँगा। कौन जाने, वह इसी समय न आ जा...।'

किरणमयी ने भयभीत होकर कहा, "यहाँ क्यों?"

मकान वाली ने इस बात को अत्यन्त कौतुकजनक समझकर बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, "मर जा छोकरी, वह न आयेगा तो क्या तू वहाँ जायेगी? तेरी बातें सुनने से तो हँसते-हँसते पेट की अँतड़ी तक टूट जाती हैं।" यह कहकर सूखी हँसी की छटा से लुढ़ककर बिल्कुल ही किरणमयी के ऊपर जा गिरी।

किरणमयी ने कोई बात नहीं कही, केवल थोड़ा-सा सरककर बैठ गयी। मकानवाली ने आत्मीयता के आवेश में आज पहले पहल उसे 'तू' कहकर सम्बोधन किया था।

लेकिन सखीत्व का यह अत्यन्त घनिष्ठता बढ़ाने वाला सम्भाषण इस नीच औरत के मुँह से निकलकर किरणमयी के हृदय के भीतर जाकर एकदम तीर की भाँति बिंध गया। उसके हृदय में आज भी जो महिमा मूर्च्छाहत की भाँति पड़ी हुई थी, इस एक ही शब्द के आघात से उसकी नींद टूट गयी। और क्षण भर में भद्र कुलवधू की लुप्त मर्यादा उसके मन में प्रदीप्त हो उठी। लेकिन फिर भी, अपने को सम्भालकर चुप रही।

मकान वाली ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह अपनी ही झक में कहने लगी, "तू देख लेना बहू, छः महीने में यदि मैं तेरा भाग्य न पलट दूँ, तो मेरा नाम कामिनी मकान वाली नहीं। तू केवल मेरे कहने के अनुसार चलना। मैं और कुछ भी नहीं चाहती।"

किरणमयी को ज्ञात हुआ, मानो यह स्त्री उसके कानों की समस्त स्नायुशिओं को जलती हुई सँड़सी से खींचकर निकाल रही है। लेकिन मना करने की बात उसके मुँह से नहीं निकली। केवल चुपचाप वह सुनती रही।

मकान वाली ने कहा, "गँवार मारवाड़ी है, दो पैसे पास हैं, जोश में आ गया है, दोनों हाथों से दुह ले। उसके बाद वह कमबख्त चला जाये भाड़ में। और कितने ही आ फंसेंगे। तूने इस प्रकार अपने को बना रखा है, नहीं तो तेरा रूप क्या साधारण रूप है बहू।"

उस समय बाहरी बरामदे से किसी के टूटे गले से पुकार आयी, "मकान वाली!"

"अब तो जाती हूँ," कहकर मकान वाली जाने लगी, लेकिन किरणमयी ने दोनों हाथ बढ़ाकर उसका आँचल ज़ोर से पकड़कर कहा, "नहीं-नहीं, यहाँ किसी प्रकार भी नहीं, इस कमरे में कोई भी आने न पाये।"

मकान वाली ने हतबुद्धि होकर कहा, "क्यों, कोई है यहाँ?"

किरणमयी ने कहा, "कोई रहे या न रहे, यहाँ नहीं, किसी प्रकार भी नहीं...।"

आगन्तुक का पद-शब्द क्रमशः निकट आने लगा।

मकानवाली ने कहा, "तू तो अब किसी की कुलवन्ती बहू नहीं है। लोग तेरे घर में आयेंगे, बैठेंगे इसमें डर किसका है, सुनूँ तो? तू है वेश्या।"

किरणमयी चिल्ला उठी, "क्या हूँ मैं? मैं वेश्या हूँ?"

उसको जान पड़ा जैसे आग की धारा उसके पैरों के तलवे से उठकर उसके मस्तक को छेदती हुई बाहर निकल गयी।

उसकी लाल आँखें और तीव्र कण्ठ-स्वर से मकान वाली ने विस्मित हो चिढ़कर कहा, "वह नहीं तो और क्या? नखरा देखने से शरीर जलने लगता है। अब हम लोग जो हैं, तुम भी वही हो। भला आदमी आ रहा है। ले, घर में बैठा।"

इस भले आदमी से मकान वाली पहले ही रुपया ले चुकी थी और भी कुछ पाने की आशा कर रही थी। भला आदमी दरवाज़े के निकट खड़ा हो गया और दाँत निकालकर हँसकर बोला, "क्यों मकान वाली, सब ठीक है?"

मकान वाली ने अपना आँचल खींचकर विनय के साथ कहा, "सब तुम लोगों की मेहरबानी है। जाओ, कमरे में जाकर बैठो। मैं पान लगाकर ला रही हूँ।" ज़रा हँसकर बोली, "अब तो यह घर-द्वार सब तुम्हारा ही है बाबूजी, इसे अच्छी तरह सजाना पड़ेगा, यह मैं बताये देती हूँ।"

"अच्छा-अच्छा, यह सब हो जायेगा।" यह कहकर वह आदमी ज़रा भी संकोच न करके कमरे में घुसकर खटिया पर बैठने लगा।

किरणमयी की स्नायु-शिराओं में लोहे से भी कड़ी दृढ़ता थी, इसीलिये इतनी देर तक वह सहन कर सकी थी, लेकिन अब न कर सकी। उसके रूप-यौवन पर लुब्ध इस अपरिचित हिन्दुस्तानी ग्राहक के कमरे में घुसते ही वह बेहोश होकर वायु झोंके से उखड़े हुए केले के वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़ी।

वह मनुष्य चौंककर देखने लगा और इस आकस्मिक विपत्ति के आने से हतबुद्धि सा हो गया। मकान वाली की चिल्लाहट से मकान की सभी स्त्रियों की कच्ची नींद टूट गयी, तुरन्त ही वे दौड़कर चली आयीं और कोई जल लाकर, कोई पंखा लाकर उस अभागिनी की शुश्रूषा करने में लग गयी।

और मकान वाली दरवाज़े पर बैठकर ऊँचे स्वर से लगातार घोषणा करने लगी कि इस काम में उसने अपने बाल पका दिये, लेकिन आज तक इस तरह के नखरे और ढोंग न सीख सकी। आज तक भी नागर को देखकर दाँत लगाने की युक्ति उसने नहीं सीखी।

एकाएक इस दुर्घटना के बीच फिर एक नयी गड़बड़ी सुनायी पड़ी। ख़बर मिली कि मुख्य द्वार पर कोई एक नया बाबू आया है, और दिवाकर तथा भाभी कहकर बड़ा शोरगुल मचा रहा है। नौकर से मकान वाली इस आगन्तुक बाबू का विशेष परिचय पूछ रही थी कि उसी समय एक लम्बे शरीर का पुरुष एक बहुत बड़ा चमड़े का बैग हाथ में लिये सामने आकर गम्भीर स्वर में पुकार उठा, "भाभी!"

उसके दायें हाथ की में एक हीरे की अँगूठी सूर्य की किरणों से चमक उठी। मकान वाली ने आदर के साथ खड़ी होकर पूछा, "किसको खोज रहे हैं?"

"दिवाकर यहाँ रहता है?"

मकान वाली ने कहा, "नहीं।"

"मेरी भाभी? किरणमयी किस कमरे में रहती हैं?"

मकान वाली के साथ ही साथ और भी दो-चार स्त्रियाँ गर्दन बढ़ाकर देख रही थीं। उनमें से किसी ने कहा, "वही तो मूर्च्छित होकर पड़ी हुई है जी।"

"मूर्च्छित हुई है? कहाँ? देखूँ!" कहकर आगन्तुक सज्जन भीड़ को ठेलकर कमरे में जा पहुँचा।

बेहोश किरणमयी उस समय भी भूमि पर पड़ी हुई थी। सारा शरीर पसीने से तर हो रहा है – आँखें मुँदी है, चेहरा पीला पड़ गया है, बाल भीगे बिखरे हुए हैं, शरीर का कपड़ा खिसक गया है...।

आगन्तुक था सतीश। उसकी दृष्टि उस हिन्दुस्तानी पर जा पड़ी। इस समय वह पास आकर टकटकी लगाये किरणमयी को देख रहा था। सतीश ने विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूछा, "ऐं तू कौन है?"

उसकी ओर से मकान वाली ने उत्तर दिया, "अहा! ये तो हमारे मारवाड़ी बाबू हैं। वही तो...।"

लेकिन परिचय देना समाप्त होने के पूर्व ही सतीश ने उस व्यक्ति को दरवाज़ा दिखाकर कहा, "बाहर जाओ।"

मारवाड़ी के पास रुपये हैं, यह है नवीन प्रेमि, विशेषतः इतनी स्त्रियों के सामने वह हीन भी नहीं हो सकता। इसलिए साहस के साथ उसने कहा, "क्यों?'

असहिष्णु सतीश ने तख्ते की फ़र्श पर ज़ोर से पैर पटककर धमकाकर कहा, "बाहर जाओ, उल्लू!"

सब लोगों के साथ मकान वाली तक चौंक उठी। और फिर कुछ न कहकर मारवाड़ी बाहर चला गया।

सतीश किरणमयी के शरीर को उसके खिसके हुए कपड़े ढककर एक पंखा लेकर ज़ोर से हवा करने लगा और दोनों को घेरकर उपस्थित स्त्रियाँ विचित्र कलरव करने लगीं। इन लोगों की तरह-तरह की आलोचना से थोड़ी ही देर में सतीश बहुत सी बातें जान गया। मकान वाली क्षोभ और अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करके बार-बार कहने लगी, "इतनी बड़ी उमर बीत

जाने पर भी ऐसी औरत मैंने कभी नहीं देखी कि वेश्या कहने से वह आँखें उलटकर दाँत लगाकर बेहोश हो जाये।"

कुछ देर के बाद होश आने पर किरणमयी माथे का कपड़ा सम्भालकर उठ बैठी। क्षणभर देखती रहकर क्षीण स्वर से बोली, "बबुआजी!"

सतीश ने प्रणाम करके पाँवों की धूलि सिर पर चढ़ाकर कहा, "हाँ भाभी, मैं ही हूँ। लेकिन बात क्या है, बताओ तो। जैसा पहनावा है वैसा ही घर-द्वार है, वैसी ही शरीर की शोभा है – कौन कहेगा कि यही हैं सतीश की दीदी! मानो कहीं की एक अनाथ पगली है। लड़कपन तो बहुत किया, अब कल के जहाज से घर चलो।" स्त्रियों की ओर देखकर कहा, "अब तुम लोग जाओ।"

किरणमयी निश्चल पत्थर की मूर्ति की भाँति मुँह झुकाये निहारती रही। उसके हृदय की बात अन्तर्यामी ही जानें। लेकिन बाहर से कुछ भी प्रकट नहीं हुआ। स्त्रियों के बाहर चले जाने पर सतीश ने कहा, "वह सुअर कहाँ हैं भाभी!"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाये बिना ही कहा, "इतने दिनों तक तो यहीं था, कल रात को दूसरी जगह चला गया है।"

"क्यों?"

"मैंने चले जाने को कहा था, इसलिए।"

"लेकिन बुलाने से क्या एक बार आयेगा नहीं?"

"बुलाकर देखती हूँ।" यह कहकर किरणमयी बाहर जाकर घर के नौकर को कालीबाड़ी भेजकर फिर लौट आयी। बोली, "तुम आओगे, यह बात मेरे लिए स्वप्न से भी बाहर की बात थी बबुआ।"

सतीश ने कहा, "मेरा आना क्या मेरे लिये भी स्वप्न से अतीत की बात नहीं है भाभी?"

"यह तो है ही।" कहकर किरणमयी फिर गर्दन झुकाये बैठी रही। उसको बहुत सी बातें जानने की आवश्यकता थी। सतीश अपने घर की दासी से पता लगाकर आया है, यह समझना कठिन नहीं है, लेकिन एकाएक इतने दिनों के बाद पता लगाकर लौटा ले जाने के लिए इतनी दूर आने का यथार्थ कारण अनुमान करना सचमुच ही कठिन था। लेकिन आने का कारण सतीश ने स्वयं ही प्रकट कर दिया। बोला, "कल जहाज छूटेगा। मैं तुम लोगों को लिवा ले जाने के लिए आया हूँ, भाभी।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "उपेन बबुआ ने भेजा है? बहुत अच्छा, दिवाकर को ले जाओ। मैं प्रार्थना करती हूँ वह चला जाये तो अच्छा है।"

सतीश ने कहा, "केवल दूसरों की आज्ञा पूरी करने के लिए ही इतनी दूर नहीं आया हूँ, अपनी ओर से भी मुझे इसकी आवश्यकता है। सोचती हो तो फिर इतने दिनों के बाद क्यों? मुझे कोई पता ही नहीं मिलता था। उसके बाद बाबूजी मर गये, स्वयं मैं भी जाने वाला ही था, सम्भवतः कभी भेंट ही न होती।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। उसकी दोनों आँखों से संसार का समस्त स्नेह

मानो सतीश के शरीर पर बरस पड़ा। क्षणभर के बाद वह करुण कण्ठ से बोली, "मैं किसके पास जाऊँगी बबुआ, मेरा अपना कौन है?"

"मेरे पास चलोगी भाभी, मैं हूँ।"

"लेकिन मुझे आश्रय देना क्या अच्छा होगा?"

सतीश ने कहा, "तुमको स्मरण नही है भाभी? बहुत दिन पूर्व इस भले-बुरे का सदा के लिए निश्चय हो चुका था, जिस दिन तुमने छोटा भाई कहकर पुकारा था। यदि तुमने कोई अन्याय किया होगा तो उसका उत्तर तुम दोगी, लेकिन मेरी जवाबदेही यही है कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ – तुम्हारा विचार करने का मुझे अधिकार नहीं है।"

ये बातें सुनकर किरणमयी का मन करने लगा कि कहीं भागकर एक बार जी भरकर रो ले, लेकिन अपने को सम्भालकर कहा, "लेकिन बबुआ, समाज तो है?"

सतीश ने बीच में रोककर कहा, "नहीं, नहीं है। जिसके पास रुपया है, जिसके शरीर में बल है, उसके विरुद्ध समाज नहीं रह सकता। ये दोनों वस्तुएँ मुझे कुछ परिमाण में मिल गयी हैं भाभी।"

उसके बातें कहने के ढंग से किरणमयी को हँसी आ गयी। फिर कुछ मौन रहकर बोली, "बबुआ, रुपया और शरीर के बल से तुम समाज को भले ही न मानो, लेकिन अपनी अश्रद्धा के साथ से इस पापिष्ठा को बचाओगे किस प्रकार?"

सतीश आवेश के साथ बोल उठा, "मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है, मैं हूँ गँवार, मूर्ख आदमी भाभी, इतने तर्कों का उत्तर भी मैं नहीं दे सकता। इतनी छान-बीन करके भले-बुरे का हिसाब भी मैं करना नहीं जानता। और यह क्या सतयुग है कि दुनिया भर के लोग उपेन भैया की भाँति युधिष्ठिर बन जायेंगे? यह तो है कलिकाल, अन्याय, कुकर्म तो लोग करेंगे ही, इनका लेखा-जोखा लिखकर कौन बैठा हुआ है? मेरा विचार उलटा है, उसे चाहे तुम अच्छा कहो या बुरा कहो भाभी, मैं देखता हूँ कि कौन क्या काम करता है, हारान भैया की मृत्यु के समय तुम्हारी वह पति-सेवा तो मैंने अपनी आँखों से देखी थी। वही तुम अब असती हो जाओगी, इस बात पर मैं मर जाने पर भी विश्वास न कर सकूँगा। चाहे जो कुछ भी हो, मैं तुमको लेकर ही जाऊँगा। बीमारी ने मुझे ज़रा सुस्त तो अवश्य बना दिया है, फिर भी इस मुहल्ले के लोगों में सामर्थ्य नहीं है कि तुमको सहायता देकर मेरे हाथ से तुम्हें छीन ले। कल तुमको कन्धे पर उठाकर मैं जहाज पर अवश्य चढ़ाऊँगा चाहे तुम कितनी ही आपत्ति क्यों न करो।"

किरणमयी हँस पड़ी। अपराध की समस्त कालिमा धुल के मिट गयी। सरल स्निग्ध हँसी की छटा से समूचा मुँह खिल उठा। क्षणभर के लिए जान पड़ा, मानो कोई भी निन्दनीय कार्य उसने नहीं किया, केवल रुष्ट होकर दो दिन के लिए ससुराल से अपने मैके चली आयी थी। स्नेहमय देवर लौटा ले जाने के लिए प्रार्थना कर रहा है।

उसी समय किवाड़ के बाहर से पुकारकर दिवाकर कमरे में आया। उसने कहा, "मुझे तुमने बुलवाया था?" यह कहने के साथ ही खटिया पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह इस प्रकार

चौंक पड़ा मानो भूत देखने से कोई चौंक पड़ता है। बाहर के उजाले से कमरे के अन्धकार में प्रवेश करके उसने पहले सतीश को नहीं देखा था। अब पहचानकर उसका चेहरा पीला पड़ गया।

सतीश ने हँसकर कहा, "मैं उपेन भैया नहीं हूँ, सतीश भैया हूँ – कुकर्मों का राजा। बैठ, उपेन भैया का परवाना लेकर आया हूँ, कल प्रातः ही साढ़े छः बजे के पहले पहला जहाज छूटेगा, स्मरण रखना।"

दिवाकर वहीं बैठ गया, दोनों घुटनों के बीच मुँह छिपाकर बड़ी देर के बाद उसने कहा, "मैं न जाऊँगा, सतीश भैया!"

सतीश ने कहा, "तेरी मिट्टी जायेगी। उपेन भैया की आज्ञा है – जीवित या मृत विद्रोही दिवाकर का सिर चाहिये ही।"

दिवाकर ने कहा, "तो उसका सिर ही ले जाना सतीश भैया। उसे मैं सबेरे छः बजे के भीतर ही लाकर दे दूँगा।"

सतीश ने एक प्रकार की आवाज़ निकालकर कहा, "अरे बाप रे! लड़के का क्रोध तो देखा। लेकिन तू जायेगा क्यों नहीं?"

दिवाकर ने कहा, "तुम क्या पागल हो सतीश भैया? संसार में क्या मुझे कोई हक है जिसके पास मैं अब जाकर सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकूँ?"

सतीश ने कहा, "ठीक है। सिर ऊँचा करने में आपत्ति हो तो झुकाकर ही खड़ा रहना। लेकिन तुझे जाना तो होगा ही। अरे तूने ऐसा कौन-सा बहुत बुरा काम किया है कि लज्जा से मरता जा रहा है? इतने ही दिनों में जो सब विचित्र कर्म मैंने कर डाले हैं, वहाँ चलकर, उन सबका हाल सुन लेना। पंचमकार तभी सब। भूतसिद्धि, वैताल सिद्धि – इन सबका नाम तुमने सुना है कभी? ले, चल, उपेन भैया अब वही उपेन भैया नहीं हैं। हम पाँच आदमियों ने मिलकर उनको एक तरह से ठीक बना दिया है। भाभी, जो कुछ ले चलना है, ले लो मैं टिकट खरीदने जा रहा हूँ।"

उसकी अन्तिम बात किरणमयी के कानों में खटक गयी। उसने पूछा, "ठीक बना देने का क्या अर्थ है बबुआ?"

सतीश ने हँसकर कहा, "चलने पर ही तुम देख सकोगी भाभी।"

उसकी सूखी हँसी को लक्ष्य कर क्षणभर मौन रहकर किरणमयी ने कहा, "लेकिन मैंने तो तुमको कह दिया बबुआ, मैं न जा सकूँगी।"

दिवाकर ने भी दृढ़ स्वर से कहा, "मैं भी किसी प्रकार नहीं जाऊँगा सतीश भैया, तुम झूठमूठ मेरे लिए रुपया नष्ट मत करो।"

सतीश उठने जा रहा था, हताश भाव से बैठ गया। उपेन्द्र की बीमारी की बात अब तक उसने छिपा रखी थी, लेकिन अब छिपा रखना सम्भव नहीं रहा। उसने कहा, "मैं बड़े गर्व के साथ कह आया हूँ कि उन लोगों को लाऊँगा ही। मेरी बात तुम लोग भले ही न रखो, लेकिन उन्होंने क्या तुम लोगों के प्रति कोई ऐसा बड़ा अपराध किया है, कि उनको

यह कष्ट तुम लोगों को देना पड़ेगा? मेरे अकेले लौट जाने से उनको कितना दुख होगा, यह तो मैं अपनी आँखों से ही देख आया हूँ। दिवाकर, ऐसा अधर्म मत कर रे! तुझे देखने के लिए ही उनका प्राण अभी अटका हुआ है, नहीं तो बहुत पहले ही चला गया होता।"

दोनों सुनने वाले एक ही साथ धीरे से चीख़ उठे।

सतीश कहने लगा, "इसी माघ के अन्त में यक्ष्मा रोग से जब पशु भाभी स्वर्ग को सिधार गयी, तभी समझ गया कि उपेन भैया भी चले जायेंगे। लेकिन उनके जाने की इतनी शीघ्रता है यह बात हम लोगों में से कोई भी नहीं जानता था। वे बाराबर से ही कम बातें करते हैं, स्वर्ग का रथ बिल्कुल ही दरवाज़े पर न आने तक उन्होंने एक भी ख़बर नहीं दी कि उनका सब कुछ तैयार है। तुझे डर नहीं है रे दिवाकर, निर्भय होकर तू चल। हमारे वह उपेन भैया अब नहीं हैं। अब सहस्रों अपराधों को भी वह अपराध नहीं मानते, केवल मुस्कराते रहते हैं। छिः! छि! इस धूल-बालू पर इस प्रकार तुम मत लेटो भाभी। अच्छा, हम लोग बाहर जा रहे हैं, तुम लेटो, उठो मत।" यह कहकर झटपट उठकर सतीश उसके पाँवों को ज़ोर से छूकर ही समझ गया कि किरणमयी बेहोश होकर पड़ी हुई है, स्वेच्छा से भूमि पर लेटी हुई नहीं है।

सतीश और दिवाकर दोनों ही एक दूसरे के मुँह की ओर निहारते स्तब्ध भाव से खेड़े रहे। कुछ देर बाद सतीश ने धीरे से कहा, "ठीक यही भय था मुझे दिवाकर। मैं जानता था कि यह ख़बर वे सह न सकेंगी। दिवाकर ने चकित होकर सतीश के मुँह की ओर देखा। सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "इतने निकट रहकर भी तुझे मालूम नहीं हुआ दिवाकर? और भय होता है कि सम्भवतः भाभी को मार डालने के लिये ही ले जा रहा हूँ। लेकिन तो भी ले जाना ही पड़ेगा। इस संसार में दो आदमी इस शोक को सह न सकेंगे। लेकिन एक तो स्वर्ग में है, और दूसरी... लेकिन जा, तू पानी ले आ दिवाकर। मैं हवा करता हूँ, यह क्या रे! तू कुछ बोलता क्यों नहीं?"

एकाएक दिवाकर सिर से पैर तक काँप उठा। दूसरे ही क्षण वह अचेतन किरणमयी के पैरों पर औंधा होकर कहने लगा, " मैं सब समझ गया हूँ भाभी, तुम मेरी पूज्यनीया गुरुजन हो। तो फिर क्यों इतने दिन छिपाकर तुमने मुझे नरक में डुबोया। मैं इस महापाप से कैसे छुटकारा पाऊँगा भाभी!"

चौवालीस

उपेन्द्र ने कहा था, "सावित्री, मेरी इन थोड़ी-सी हड्डियों को गंगाजी में डाल देना बहन, बहुत-सी ज्वालाओं से जल रहा हूँ, कुछ भी तो ठण्डा हो सकूँगा।"

सावित्री को वह आजकल कभी तो 'तुम' कभी 'तू' जो भी मुँह से निकलता था, वही कहकर पुकारते थे। सावित्री ने उनकी इस अन्तिम इच्छा और अन्तिम चिकित्सा के लिए कुछ दिन हुए, कलकत्ता के जोड़ासांको मोहल्ले में एक मकान किराये पर ले रखा था। आज

संध्या के बाद वर्षा की एक झड़ी हो गयी थी, पर आकाश के बादल फटे नहीं थे। उपेन्द्र ने बहुत देर के बाद अपनी थकी हुई दोनों आँखें खोलकर कहा, "सामने की खिड़की तू ज़रा खोल दे बहन, उस बड़े तारे को एक बार देख लूँ।"

सावित्री ने उसके माथे पर से रूखे बालों को धीरे-धीरे हटाते हुए मृदु स्वर से कहा, "शरीर में ठण्डी हवा लगेगी भैया।"

"लगने दो न बहन! अब उससे मुझे भय क्या है?"

आज ही केवल उसको भय नहीं है ऐसा नहीं, जिस दिन सुरबाला चली गयी, उसी दिन से नहीं है; लेकिन इसीलिये सावित्री का भय तो दूर नहीं हुआ है। जब तक साँसा तब तक आशा' सम्भवतः यही उसे मान्य है। इसी कारण जबकि मृत्यु सिरहाने के पास उसके साथ समान आसन जमाकर बैठ गयी है, तब भी वह तुच्छ हवा को नाक के अन्दर आने देने का साहस नहीं कर पा रही है। अनिच्छुक कण्ठ से उसने कहा, लेकिन तारा तो दिखायी नहीं पड़ता भैया, आकाश में तो बादल छाये हुए हैं।"

उपेन्द्र ने दोनों मलिन नेत्रों को उत्साह से विस्फारित करके कहा, "बादल? आह! असमय का बादल बहन, खोल दे, खोल दे एक बार देख लूँ फिर तो देख न सकूँगा।"

बाहर ठण्डी हवा बड़े वेग से बह रही थी। सावित्री ने ललाट पर, छाती पर हाथ रखकर देखा, ज्वर बढ़ रहा है। प्रार्थना करके वह बोली, "अच्छे हो जाओ, बादल तो कितने ही देखोगे भैया। बाहर आँधी चल रही है, आज मैं खिड़की न खोल सकूँगी।"

उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उपेन्द्र ने रुष्ट होकर कहा, "भला चाहती है तो खोल दे सावित्री, नहीं तो बरसात के दिनों में जब बादल उठेंगे, तब तू रो-रोकर मरेगी यह मैं कहकर ही जा रहा हूँ। मैं अब देखने का समय न पाऊँगा।"

सावित्री ने फिर कोई प्रतिवाद नहीं किया। उसने एक बूँद आँखों का आँसू पोंछकर उठकर खिड़की खोल दी।

उस खुली खिड़की के बाहर उपेन्द्र टकटकी बाँधे देखते रहे। आकाश के किसी अदृश्य छोर से रह-रहकर बिजली चमक उठती थी। उसकी चमक की छटा से सामने के गाढ़े काले बादल झलक उठते थे। उन्हें देखते-देखते उपेन्द्र की साध किसी प्रकार भी मिट नही रही है, ऐसा जान पड़ रहा था।

सावित्री स्वयं भी एक छड़ पकड़कर उसी ओर देखती हुई मौन खड़ी थी। उपेन्द्र की दृष्टि एकाएक उस पर पड़ गयी तो मन ही मन हँसकर वह बोले, "बन्द कर दे, बन्द कर दे, खिड़की बन्द करके मेरे पास आकर बैठ। लेकिन इतनी माया तो अच्छी नहीं है बहन! तनिक भी हवा शरीर पर तू लगने देना नहीं चाहती, लेकिन मेरे चले जाने पर तू क्या करेगी बता तो?"

सावित्री खिड़की बन्द करके पास आकर बैठ गयी। बोली, "तुम तो कह चुके हो कि मुझे काम देकर जाओगे। मैं जीवन भर उसी को करती रहूँगी। तुम मेरी आँखों के सामने ही दिन-रात रहोगे?"

"कर सकोगी?"

सावित्री ने धीरे से कहा, "कर क्यों न सकूँगी भैया। तुम्हारी बात के लिए तो वह 'नहीं' न कहेंगे।"

उपेन्द्र ने हँसते हुए कहा, "वह कौन? सतीश?"

सावित्री सिर झुकाये मौन ही रही।

उपेन्द्र ने उसके सलज्ज मौन मुख की ओर देखकर लम्बी साँस लेकर कहा, "सावित्री, सतीश मेरा कौन है, यह दूसरों के लिए समझना कठिन है। बाहर से जो दिखायी पड़ता है, उससे तो वह मेरा साथी है, मेरा आजन्म का सखा है। लेकिन जो सम्बन्ध दिखायी नहीं पड़ता, उससे सतीश मेरा छोटा भाई है, मेरा शिष्य है, मेरा सदा सेवक है। उसी रात को बहन, यदि तू अपना पूरा परिचय देकर हम लोगों को लौटा ले जाती तो सम्भव है, मेरा अन्तिम जीवन इतने दिन दुख में न बीतता। दिवाकर भी सम्भवतः मुझे इतनी व्यथा देने का सुयोग न पा सकता।"

अश्रुभरे नेत्रों से सावित्री ने कहा, "मेंने तुम लोगों को लौटाना चाहा था भैया, लेकिन किसी प्रकार भी उन्होंने मुझे जाने नहीं दिया, दोनों चौखटों पर हाथ रखकर मेरा मार्ग उन्होंने रोक दिया। कहा, "उनके सामने जाने से उनका अपमान करना होगा।"

"उनकी इच्छा।" कहकर उपेन्द्र चुप हो गये।

घर पर उपेन्द्र के पिता शिवप्रसाद गठिया रोग से श   य्या पर पड़े हुए थे। गृहस्थी का काम-धन्धा छोड़कर माहेश्वरी उनके साथ न आ सकी थी। लेकिन मझले भाई अभिभावक बनकर कलकत्ता के डेरे पर थे। उनके और एक दूसरे मनुष्य के पैरों की आहट सीढ़ी पर सुनायी पड़ीं

दूसरे ही क्षण वह कविराज को साथ लिये कमरे में आ गये। कविराज ने उपेन्द्र की नाड़ी देखकर ज्वर की परीक्षा करके ज्यों ही दवा बदलने का प्रस्ताव किया, त्यों ही उपेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा, "इसके लिए तो मुझे क्षमा करें वैद्यजी। आपसे छिपा तो कुछ नहीं है। तो फिर जाते समय और क्या दुख दीजियेगा?"

बूढ़े चिकित्सक के नेत्र भर आये। बोले, "हम लोग हैं चिकित्सक, अन्तिम क्षण तक हमें निराश न होना चाहिये बेटा। इसके अतिरिक्त भगवान यदि सारी आशाएँ समाप्त कर दे फिर भी कष्ट दूर करने के लिए दवा तो चाहिये ही।

उपेन्द्र और प्रतिवाद न करके चुप हो गया।

"तब दवा बदलकर प्रयोगविधि बताकर चिकित्सक चला गया। उनको भरोसा तो रंचमात्र भी न था। बल्कि आज वे खूब अच्छी तरह जान गये कि रोगी की मृत्यु का समय क्षण-प्रतिक्षण तीव्र गति से निकट आ रहा है।"

तीन दिन बाद सोमवार को सबेरे सावित्री एक तार हाथ में लिये आयी और बोली, "कल प्रातःकाल वे लोग जहाज पर चढ़ चुके हैं।"

"किसी का नाम सतीश ने नहीं दिया है? कहाँ है, देखूँ?"

उपेन्द्र के पसारे हुए हाथ पर सावित्री ने तार रख दिया।

तार के काग़ज़ को उन्होंने उलट-पुलटकर देखा फिर सावित्री को लौटाकर एक लम्बी साँस ली।

जाते समय सतीश उससे एकान्त में कह गया था कि किरणमयी से भेंट हो जाने पर जैसे ही होगा, वह उसको अवश्य लौटा लायेगा। अपना भाई-बहन का सम्बन्ध भी बताकर गया था।

इस परम आश्चर्यमय रमणी को एक बार देखने का कौतूहल सावित्री को बहुत दिनों से था, लेकिन नासमझ सतीश कहीं उसको इस घर में ही न ले आये, यह आशंका भी उसको थी। उसने कहा, "वे सब ओर से विचार करके काम नहीं करते, मुझे भय होता है भैया कि वे किरणमयी भाभी को यहीं न ले आयें।"

उपेन्द्र के होठों पर वेदना की सूखी हँसी दिखायी पड़ी। उन्होंने कहा, "इस घर में वह आयेगी क्यों बहन? इस देश में यदि वह लौट भी आये तो समझना होगा कि उसका दूसरा कारण है। लेकिन वह तो सावित्री नहीं है, वह तो कोई नासमझ नहीं है, तेरी तरह वह लोक और परलोक को समान बनाकर नहीं बैठी है, वह क्यों जान-बूझकर इस भयंकर व्याधि के गर्त में गिरने आयेगी, बता तो।"

सावित्री ने आँखें झुकाकर बड़े कष्ट से आँसू रोके। अपने को सम्भालकर उपेन्द्र ने फिर कहा, "एक आश्चर्य की बात तो यह देख सावित्री, किसी समय उसने सचमुच ही मुझसे प्रेम किया था।"

यह सुनकर सावित्री सचमुच ही आश्चर्य में पड़ गयी। क्योंकि यह बात उसने सतीश के मुँह से भी नहीं सुनी थी। "तो क्या वह बात सच नहीं थी भैया?"

उपेन्द्र ने कहा, "वह बात भी सच थी बहन। वह एक अद्‌भुत बात है। तुझे और सुरबाला को न जान लेने से मुझे ज्ञात होता कि ऐसी सेवा भी सम्भवतः और कोई स्त्री नहीं कर सकती। पति को इतना अधिक प्यार करना भी सम्भवतः किसी के सामर्थ्य में नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "लेकिन यह तो छलना नहीं हो सकती।"

उपेन्द्र ने सहमति जताकर कहा, "नहीं, छलना तो नहीं है, उसने तो कभी किसी को दिखाना नहीं चाहा, उसकी पति-सेवा के साक्षी केवल भगवान ही थे और हम दोनों – सतीश और मैं।"

थोड़ी ही देर के बाद उनको डाक्टर अनंगमोहन की बात स्मरण पड़ गयी। स्थिर रहकर वह बोले, "आज तो मेरा किसी पर क्रोध नहीं, घृणा नहीं, विद्वेष नहीं, विराग नहीं, आज मुझे बड़ी व्यथा के साथ ऐसा ख़्याल आ रहा है कि वह सारा जीवन केवल इधर-उधर टटोलती हुई ही घूमती रही है, लेकिन किसी दिन उसे कुछ भी नहीं मिला। उसने मुझे भी कभी प्यार नहीं किया। कुछ भी प्यार करती तो क्या इतनी व्यथा दे सकती? दिवाकर हम लोगों का क्या था, इसे तो वह जानती थी। उसके हाथ में ही तो मैं उसे सौंप गया था।

मैंने सोचा था, मेरे स्नेह की वस्तु को वह भी स्नेह की दृष्टि से देखेगी। ओह! कितनी बड़ी भूल मुझसे हुई थी!"

उपेन्द्र ने कुछ देर तक मौन रहकर कहा, "इसीलिये सोच रहा हूँ, सतीश बिना सोचे-समझे उसको साथ लिये यहीं कहीं न आ पहुँचे।"

सावित्री ने कहा, "नहीं, यह किसी प्रकार भी न हो सकेगा भैया। अपनी बहन के रहने की व्यवस्था वे कहीं करें, लेकिन यहाँ नहीं।"

उपेन्द्र कोई बात कहने ही जा रहे थे, लेकिन मुँह की बात मुँह में ही रह गयी। अघोरमयी किसी प्रकार बीमारी की ख़बर पाकर उपेन्द्र के गुणों की प्रशंसा करते हुए रोते-रोते कमरे में आ गयी।

इस बीमारी की भयंकरता की उनको विशेष कुछ धारणा नहीं थी। फिर भी, यह कहकर वह विलाप करने लगीं, "मुझ मुँहजली का जबकि भीख माँगते फिरने का समय आ गया है, और जबकि बिना खाये सूखकर मर जाना ही अनिवार्य हो गया है तब उपेन्द्र की सभी विपत्तियों को लेकर मैं ही क्यों नहीं मर जाती!"

उपेन्द्र ने इतने दुख में भी हँसकर कहा, "तुमको खाना क्यों न मिलेगा मौसी?" सावित्री को दिखाकर कहा, "मेरे जाने पर भी, अपनी इस बहन को रख जाता हूँ, यह तुम लोगों को कष्ट न देगी।"

अभी तक सावित्री पर नज़र नहीं पड़ी थी अघोरमयी की। उपेन्द्र के कहने पर कठोर परिश्रम और मानसिक पीड़ा के कारण क्लांत, श्रीहीन बहन की ओर देखकर उसके कौतूहल व विस्मय की सीमा नहीं रही, लेकिन निवृत्ति के लिये उन्होंने मुँह खोला ही था कि काम के बहाने सावित्री कमरे से चली गयी।

वृहस्पतिवार को दिन में दस-ग्यारह बजे सतीश जहाजघाट पर उतरकर गाड़ी किराये पर ले रहा था। उसने देखा कि बिहारी खड़ा है। मालिक को देखकर उसने पास आकर प्रणाम किया। किरणमयी पास ही खड़ी थी। बिहारी को सन्देह हुआ कि यह वह ही है। उसने इसके पहले कभी देखा नहीं था, केवल सुना था कि वह असाधारण सुन्दरी है। लेकिन मैले-कुचैले कपड़े पहने इस साधारण स्त्री में सौन्दर्य का विशेष कुछ भी न देखकर उसने समझा कि यह कोई दूसरी ही स्त्री हैं उसने धीरे-धीरे कहा, "माँजी, बाबू ने कहा है, यदि वह बहू आ गयी हों तो उसे और कहीं रखकर दो आदमी डेरे पर आयें, उसको साथ लेकर न आयें।"

सतीश भूख-प्यास और थकावट से यों ही दुखी हो रहा था। बिहारी का यह अपमानजनक प्रस्ताव किरणमयी के मुँह पर ही सुनकर वह जल उठा, बोला, "क्यों? उनको पेड़ के नीचे छोड़कर हम लोग उनके घर जायेंगे? जाकर कह दे, हम लोग वहाँ जाना नहीं चाहते।"

बिहारी का मुख उदास हो गया। किरणमयी ने निकट आकर रूखी हँसी हँसकर कहा, "यह तो ठीक बात है बबुआ। इसमें रुष्ट होने की तो कोई बात ही नहीं है। अब बाबू कैसे हैं बिहारी?"

बिहारी के उत्तर देने के पूर्व ही सतीश ने और भी रुष्ट होकर कहा, "तुझे किसने यह बात कहने के लिए भेजा है? सावित्री ने? देखता हूँ, उसका दिमाग़ बहुत चढ़ गया है।"

सावित्री के प्रति इस कड़ी बात को सुनकर बिहारी ने व्यथित होकर किरणमयी के मुँह की ओर देखकर कहा, "आप ठीक कह रही हैं माँजी। बाबू बिना समझे ही क्रोध कर रहे हैं। इन सब बीमारियों में कोई भी क्या वहाँ जाना चाहेगा? उपेन्द्र बाबू ने कल रात को सावित्री को बुलाकर स्वयं ही कहा था, डरने की बात नहीं है, किरणमयी मेरी बीमारी का नाम सुनकर इस मकान में ही क्यों, इस मुहल्लें में भी न आयेगी। सावित्री की तरह सभी को मरने जीने...।"

किरणमयी का मुख वेदना से एकदम विकृत हो गया। उसने कहा, "यह बात क्या बाबू ने कही थी बिहारी?"

बिहारी सिर हिलाकर उत्साह से कोई बात कहने ही जा रहा था कि सतीश ने धमकाकर कहा, "तू चुप रह। अभागा कहीं का!"

धमकी खाकर बिहारी सहम गया। किरणमयी ने कहा, "उस पर रुष्ट होने से क्या होगा बबुआ?" उसके बाद बिहारी की ओर देखकर कहा, – 'अपने बाबू से कहो, भय की बात नहीं है। उनकी आज्ञा पाये बिना मैं वहाँ न जाऊँगी।" फिर सतीश से कहा, "बबुआ, आज मुझे किसी होटल में रखकर क्या कोई छोटा-सा मकान किराये पर नहीं मिल सकता?"

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "कलकत्ता शहर में मकान की क्या चिन्ता है भाभी! एक घण्टे में सब ठीक कर दूँगा। आ रे दिवाकर, ज़रा जल्दी-जल्दी चल।" यह कहकर उसने किरणमयी को गाड़ी पर चढ़ा दिया और स्वयं कोचबक्स पर चढ़ बैठा।

गाड़ी के चले जाने पर क्षुब्ध और लज्जित बिहारी उदास मुख से धीरे-धीरे मकान की ओर चला गया।

सुविधा मिलते ही सावित्री भोर में झटपट गंगाजी में जाकर डुबकी लगा आती थी। सतीश के लौट आने के बाद, इधर लगाकर कई दिनों से वह प्रतिदिन ही गंगा स्नान करने जाती है।

चार-पाँच दिन बाद, एक दिन सबेरे स्नान-पूजा करके उठते ही उसने देखा, फाटक पर कुछ हल्ला-गुल्ला मचा हुआ है। एक बूढ़े ब्राह्मण स्नान करने के बाद नामावली ओढ़े मंत्र जपते-जपते घर जा रहे थे, कहीं से एक पगली ने आकर उनका मार्ग रोक लिया। कहीं छूकर गंगा-स्नान का सब पुण्य वह मिट्टी में न मिला दे, इस भय से बूढ़े घबरा गये। पगली विनय के साथ अद्भुत प्रश्न कर रही थी, "महाराज, आप भगवान पर विश्वास करते हैं? उनको पुकारने से वे आते है? कैसे आप लोग उन्हें पुकारते हैं? मैं पुकार नही सकतीं? मुझे विश्वास क्यों नही होता?"

प्रत्युत्तर में ब्राह्मण छूतछात के भय से संकुचित होकर कह रहे थे, "देख, अभी पहरेदार को पुकारता हूँ। राह छोड़ दे।"

दो-चार प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी खड़ी होकर कौतुक से देख रही थीं। उनमें से किसी ने कहा,

"यह पागल नहीं है। इसने रात भर शराब पी है।"

यह सुनकर पगली ने कातर होकर कहा, "मैं भले घर की लड़की हूँ, मैं शराब नहीं पीती। वहीं तो मेरा घर है। मैं केवल तुम लोगों से हाथ जोड़कर पूछती हूँ, क्या सचमुच ही भगवान है? तुम लोग क्या उनका चिन्तन कर सकती हो, उनकी भक्ति कर सकती हो? मैं क्यों नहीं कर सकती? मैं परसों से उनको कितना पुकार रही हूँ।" यह कहते-कहते उसकी दोनों आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

सावित्री ने भी उसे पागल समझा, लेकिन फिर भी, इस अपरिचिता उन्मादिनी के अश्रुजल से भीगी हुई व्याकुल प्रार्थना उसके सैकड़ों दुखों को वेदना से परिपूर्ण हृदय पर मानो हाहाकार करके जा पड़ी और पलभर में उसकी भी दोनों आँखें आँसू से भर गयीं। पगली की दृष्टि एकाएक इस ओर पड़ते ही बूढ़े हो छोड़कर सावित्री के सामने आकर वह बोली, "तुम भी तो संध्या-वन्दना करती हो, तुम मुझे बता सकती हो?"

चारों ओर भीड़ हो रही है, देखकर सावित्री ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया। ज्यों ही उसने उसका हाथ पकड़ लिया त्यों ही उसने चौंककर कहा, "आपने मुझे छू दिया।"

सावित्री ने कहा, "इसमें कोई दोष नहीं है। आप मेरे घर चलिए, मार्ग में चलते-चलते आपका उत्तर दूँगी।" यह कहकहर उस अभागिनी का हाथ पकड़े वह सड़क तक चली गयी।

दो-एक बात कहते ही समझ गयी कि यह स्त्री पागल नहीं है, लेकिन किसी ओर मन लगाने योग्य, मन की अवस्था भी इसकी नहीं है। बातचीत के बीच में ही वह एकाएक बोल उठी, "मैं भगवान से दिन-रात प्रार्थना करती हूँ कि उनके प्रति मैंने अपराध किये हैं इसीलिये उनकी बीमारी मुझे देकर उनको अच्छा कर दो। अच्छा बहन, ऐसा क्या हो सकता है? उपवास करके दिन-रात पुकारते रहने से क्या वास्तव में ही उनको दया आती है? तुम जानती हो?" कहकर उसने तीव्र दृष्टि से सावित्री के मुँह की ओर देखा।

सावित्री की समझ में नहीं आया कि इसका क्या उत्तर देना चाहिये। उसने कहा, "जाती हूँ, गंगा स्नान करके आती हूँ। गंगा-स्नान करने से बहुत पाप कट जाते हैं।" कहकर उत्तर के लिये प्रतीक्षा न कर चली गयी।

पैंतालीस

सावित्री के नेत्रों से सावन की धारा की भाँति आँसू की धारा बह रही है। आज उसकी ही गोद पर उपेन्द्र ने मृत्युशय्या बिछा दी है। दुबले-पतले ठण्डे पाँवों पर मुँह रखकर दिवाकर चुपचाप भीतर ही भीतर रोता हुआ अपने हृदय का असह्य दुख प्रकट कर रहा है। उसका परिताप, उसकी व्यथा अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कौन जानेगा? उसे और कौन जानेगा? उस ओर कमरे में माहेश्वरी भूमि पर पड़ी हुई करुण कण्ठ से रो रही है। इस घोर दुख से भरे शोक में केवल सतीश ही अकेला स्थिर भाव से बैठा हुआ है।

आज प्रातःकाल से ही उपेन्द्र के मुँह से रह-रहकर रक्त गिर रहा है। हजार प्रयत्न करने पर भी उसे रोका न जा सका। साँस क्रमशः भारी और तीव्र होती जा रही थी। उसी का दुस्सह क्लेश सहकर उपेन्द्र नेत्र बन्द किये हुए चुपचाप पड़े हुए थे। एक बार नेत्र खोलकर सावित्री के मुँह की ओर देखकर उन्होंने अस्फुट स्वर से पूछा, "रात कितनी है बहन, यह क्या बीतेगी नहीं?"

सावित्री ने आँचल से उनके होंठों पर से रक्तरेखा को पोंछकर झुककर कहा, "अब अधिक नहीं है भैया! क्या बहुत कष्ट हो रहा है?"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं बहन, सबको जैसा होता है वैसा ही हो रहा है, अधिक क्यों होगा?"

ज़रा चुप रहकर उन्होंने इसी प्रकार कहा, "सतीश भाभी का क्या पता नहीं लगा?"

आज चार दिनों से किरणमयी एकदम लापता हैं। कलकत्ता पहुँचने के दिन ही सतीश पास ही एक मकान किराये पर लेकर एक नौकरानी रखकर सब आवश्यक प्रबन्ध ठीक कर आया था। लेकिन उपेन्द्र की बीमारी बहुत बढ़ जाने से वह दो-तीन दिनों तक स्वयं आकर खोज ख़बर न ले सका। तीन दिनों के बाद जाकर उसने देखा कि किरणमयी ने किसी वस्तु को छुआ तक नहीं है। नयी हांडी खरीदकर वह जहाँ रख आया था, वहाँ उसी अवस्था में पड़ी हुई है। चूल्हे में कालिख का दाग़ भी नहीं है।

नौकरानी ने आकर कहा, "काम किसका करूँ बाबू? बहू उस दिन जो आयी, खिड़की की छड़ पकड़े राह की ओर निहारती हुई बैठी रही, फिर तो वह उठी ही नहीं, स्नान भी नहीं किया, मुँह में पानी तक भी नहीं डाला। बिछाया बिछौना पड़ा रहा, सोई भी नहीं। उसके बाद कल सबेरे से तो उसे देख भी नहीं रही हूँ। साज-सामान को जो कुछ करना हो करो बाबू, मैं सूने घर में पहरा न दे सकूँगी।"

यह सुनकर सतीश माथे पर हाथ रखकर थोड़ी देर तक बैठा रहा। अन्त में दासी के हाथ में और पाँच रुपये देकर लौट आया। तभी से आदमी भेजकर पता लगाने में उसने त्रुटि नहीं की, लेकिन कुछ भी फल नहीं हुआ।

सभी बातें उपेन्द्र के कानों तक पहुँच चुकी थीं।

अत्यन्त व्यथा के साथ बीच-बीच में सावित्री के मन में यह बात उठ खड़ी होती थी कि उस दिन प्रातःकाल गंगाघाट पर उसने जिसे देखा था, कहीं वही किरणमयी तो नहीं है? लेकिन किरणमयी तो असाधारण सुन्दरी है। उस पगली में भी सुन्दरता थी, लेकिन उसे सुन्दरी तो कहा नहीं जा सकता। लेकिन वह क्यों चली गयी, कहाँ गयी, किसलिये गयी?

उपेन्द्र के उत्तर में सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

फिर उन्होंने कोई प्रश्न नहीं किया और दूसरे ही क्षण वह तन्द्रा से आच्छन्न हो गये। इस प्रकार शेष रात बीत गयी।

दिन में दस बजे के लगभग फिर एक बार नेत्र खोलकर, ग़ौर से देखकर, मानो पहचानकर वह क्षीण कण्ठ से बोले, "यह कौन है, सरोजिनी है?"

सरोजिनी भूमि पर घुटनों के बल बैठकर बिछौने में मुँह छिपाकर रोने लगी। उपेन्द्र ने धीरे-धीरे दायाँ हाथ उठाकर उसके माथे पर रखकर कहा, "तुम आ गयी बहन? तुमको ही मैं मन ही मन ढूँढ रहा था, लेकिन किसी प्रकार भी स्मरण नहीं कर पा रहा था – आज न आने से सम्भवतः भेंट भी न होती।" यह कहकर वह मानो कुछ देर तक कोई चिन्ता करने लगे। स्पष्ट ही ज्ञात हो गया कि अब सभी बातें स्मरण करने की शक्ति ही नहीं है। एकाएक मानो स्मरण पढ़ते ही उन्होंने पुकारा, "सतीश कहाँ है रे?"

सतीश उस ओर की खिड़की पकड़े बाहर की ओर देखता हुआ चुपचाप खड़ा था। पास आने पर उपेन्द्र ने कहा, "तुम लोगों का ब्याह आँखों से देख जाने का समय नहीं मिला सतीश, लेकिन मेरी इस लक्ष्मी रूपिणी बहन को तू कभी दुख नहीं देना। अपना हाथ एक बार दे तो रे।" यह कहकर उन्होंने कंकाल सदृश हाथ को ऊपर उठाया। सावित्री के झुके मुँह की ओर देखकर क्षणभर के लिये सतीश की छाती धड़क उठी। लेकिन दूसरे ही क्षण उपेन्द्र के काँपते हुए हाथ को अपने बलिष्ठ दायें हाथ से पकड़ लिया।

उपेन्द्र ने मन ही मन जगततारिणी की बात स्मरण करके कहा, "तू सरोजिनी को तो जानता है। उनको मैंने वचन दिया था कि अपने सतीश भाई को मैं तुमको दूँगा! देखना रे, मेरे मर जाने के बाद कोई यह बात न कह सके कि तूने मेरी बात नहीं मानी।"

सतीश अपने आँसू रोक न सका। रोकर बोला, "नहीं उपेन भैया, कोई भी यह बात न कहेगा कि तुम्हारी बातों की अवज्ञा मैंने की है, लेकिन फिर भी छिपाने से तो काम न चलेगा – सभी बातें खोलकर बता देने की तो मुझे आवश्यकता है। मैं अच्छा नहीं हूँ, मुझमें बहुत से दोष हैं, मैं बहुत से अपराधों का अपराधी हूँ – इस पर भी किस प्रकार सरोजिनी ग्रहण करेंगी। बल्कि तुम मुझे यह अधिकार देकर जाओ कि किसी के भय से, किसी लोभ से, किसी दुर्बलता से उसको मैं अस्वीकार न करूँ जिसने मुझे प्यार करना सिखाया है।" यह कहकर उसने ज्योंही सावित्री के मुँह की ओर मुँह घुमाया, चारों आँखें मिल गयीं। लेकिन उसी क्षण दोनों ने आँखें झुका लीं।

उपेन्द्र हँस पड़े, बोले, "आज भी क्या वह बात मेरे लिये जान लेना शेष है सतीश? मैं सब जानता हूँ। सब जानकर ही मैं तुम लोगों को एक करके जाना चाहता हूँ।"

सतीश बोला, "लेकिन मुझे लेकर सरोजिनी सुखी हो सकेंगी?"

उत्तर देने की इच्छा से उपेन्द्र ने सतीश के मुँह की ओर देखा। देखते ही सावित्री उच्छ्वसित आवेग से बोल उठी, "यह भार तो मैंने अपने ऊपर ले लिया भैया। तुम निश्चिन्त रहो।"

उपेन्द्र चुप रहे। वह केवल उसके मुँह की ओर ताकते रहे।

कुछ देर बाद बोले, "आसक्ति का बन्धन अब तुम्हारे लिये नहीं है सावित्री। दुर्भाग्य ने यदि तुमको कुल के बाहर ही निकाल दिया है बहन, तो तुम फिर उसके भीतर जाने की चाह मत करना, मेरा अनुरोध है।"

सुनकर सावित्री पत्थर की मूर्ति की भाँति नेत्र झुकाये बैठी रही। आज सतीश एक और

का है, उस पर उसका तनिक भी अधिकार नहीं रहा। उसकी भावनाओं को, उसकी वासनाओं की, उसके परम सुख की, चरम दुख की, उसकी दुस्सह वेदना की आज उसके नेत्रों के सामने ही समाप्ति हो गयी, लेकिन उसने लम्बी साँस तक भी न निकलने दी। व्यथा से छाती के अन्दर ऐंठन पैदा होने लगी। लेकिन सब सहने वाली वसुमती जैसे अपने हृदय की दुर्गम अग्नि ज्वाला को सहती है ठीक उसी प्रकार सावित्री शान्त मुँह से सब सहकर स्थिर बैठी रही।

उपेन्द्र ने कहा, "मैं समझ रहा हूँ बहन, लेकिन भार सम्भाल न सकती तो क्या मैं तुझे यह भार दे जाता?"

प्रत्युत्तर में सावित्री ने केवल उनके माथे के ऊपर पड़े हुए बालों को हटा दिया।

एकाएक सतीश चिल्ला उठा, "ऐं, यह तो भाभी हैं!"

सावित्री ने चौंककर मुँह उठाकर देखा, यह तो वही गंगाघाट की पगली है, बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई अत्यन्त सावधानी से कमरे में आ रही है। पलभर में कमरे के लोग चकित हो गये।

किरणमयी के रूखे बाल मुँह पर, ललाट पर, पीठ पर, सर्वत्र बिखरे पड़े थे। साड़ी फटी हुई मैली थी, चितवन शून्य थी – यह मानो उन्माद शोक-मूर्ति धारण करके एकाएक कमरे में आ खड़ी हुई है।

सतीश की ओर देखकर धीरे-धीरे कहा, "खोजते-खोजते मुझे मकान मिलता ही नहीं था बबुआ। कितने ही लोगों से मैंने पूछा – कोई भी न बता सका कि मकान कहाँ है। आज मैं कालीबाड़ी से आ रही थी, भाग्य से बिहारी से भेंट हो गयी – इसी से उसके पीछे आ सकी?"

उपेन्द्र की ओर घूमकर उसने पूछा, "आज कैसे हो बबुआजी?"

उपेन्द्र ने हाथ हिलाकर बताया, "अच्छा नहीं हूँ।"

किरणमयी ने अत्यन्त वेदना के साथ कहा, "आह! मैं मर जाऊँ! सुरबाला अब नहीं है, सुनकर रोते-रोते मैं मर रही हूँ। वही तो मेरी गुरुआनी थी। उसी ने तो मुझसे कहा था, भगवान है।"

एकाएक उसकी आँखें दिवाकर के पीले चेहरे पर जा पड़ी। तुरन्त ही बोल उठी, "अहा! तुम ऐसे लज्जित क्यों हो रहे हो बबुआ, तुमको क्या इन लोगों ने लज्जित किया है?" यह कहकर उसने उपेन्द्र की ओर तीव्र दृष्टि निक्षेप करके कहा, "इसको तुम लोग दुख मत देना बबुआ, मेरे हाथ में जैसे तुमने इसे सौंप दिया था, उस सत्य को मैंने एक दिन के लिए भी नहीं तोड़ा – उसकी प्राणपण से रक्षा करती आयी हूँ। लेकिन, अब मेरे पास समय नहीं है – फिर तुम लोग इनको वापस ले लो।"

फिर एकाएक शान्त होकर स्निग्ध कण्ठ से बोली, "मेरे आँचल में काली माई का प्रसाद बँधा हुआ है बबुआ, थोड़ा-सा खाओगे? सम्भवतः अच्छे हो जाओगे। सुना है, इस तरह कितने ही लोग अच्छे हो गये हैं।"

एक दिन जिस रमणी के रूप की सीमा नहीं थी, विद्याबुद्धि का भी अन्त नहीं था, यह क्या वही किरणमयी है। आज वह क्या कह रही है, वह स्वयं भी नहीं जानती।

सतीश और सह न सका 'ओह!' कहकर कमरे से चला गया और इतने दिन बाद उपेन्द्र के नेत्रों से किरणमयी के लिए आँसू लुढ़क पड़े।

किरणमयी ने झुककर आँचल से उन आँसुओं को पोंछकर कहा, "आह! बबुआजी, अच्छे हो जाओगे।"

सावित्री पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसे अच्छी प्रकार क्षणभर देखकर कहा, "उस दिन गंगाघाट पर तुम्हीं से भेंट हुई थी न! ज़रा हट न जाओगी जिससे कि तुम्हारी ही तरह मैं भी बबुआ के पास बैठूँ!"

सरोजिनी ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "मुझे तो पहचानती हो?"

किरणमयी ने कहा, "पहचानती क्यों नहीं, तुम तो सरोजिनी हो।"

सरोजिनी ने कहा, "चलो भाभी, हम लोग उस कमरे में चलकर ज़रा बातचीत करें।" यह कहकर वह उसे पास के कमरे में खींच ले गयी।

कमरे के बाहर जाते ही उपेन्द्र अचेत हो गये। सम्भवतः वेदना और चोट उन्हें असह्य हो गयी थी। सावित्री वैसे ही उनको गोद में लिये बैठी रही। पानी तक मुँह में डालने के लिए वह न उठी।

दोपहर का सारा समय बेहोशी की दशा में बीत गया। लेकिन संध्या के बाद ज्वर बढ़ जाने के साथ ही साथ उनकी चेतना लौट आयी।

नेत्र खोलते ही उनकी दृष्टि पड़ी सावित्री पर। क्षीण स्वर से बोले, 'तू बैठी हुई है बहन! तुझे छोड़कर जाने की बात स्मरण आते ही मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं सावित्री!

सावित्री ने रोककर कहा, "मुझे भी अपने साथ-साथ ले चले भैया!"

उपेन्द्र ने उसका उत्तर ने देकर सतीश से कहा, 'भाभी कहाँ हैं?"

सतीश ने कहा, "नीचे सो रही हैं। मेरी नजर में ही है।"

"दृष्टि में ही बराबर रखना भाई, जितने दिनों में फिर उनका स्वभाव ठीक न हो जाये। लेकिन तुझे कोई भय नहीं है सतीश। उनके हृदय में कितना बड़ा आघात दुस्सह हो उठा है, उसे समझने की शक्ति हम लोगों में नहीं है, लेकिन वह आघात जितना ही प्रचण्ड क्यों न हो, वह इतनी बड़ी बुद्धि को चिर दिन आच्छन्न करके न रख सकेगा।"

सतीश बोला, 'यह तो मैं जानता हूँ, उपेन भैया। फिर तुम्हारे दिवाकर का भी भार मैं ही लेता हूँ यदि विश्वास करके तुम दे जाओ?"

प्रत्युत्तर में उपेन्द्र हँसने की चेष्टा करके करवट बदलकर लेट रहे। बहुत-सी बातों ने बहुत-सी उत्तेजनाओं ने जीवन-दीप के अन्तिम बचे-खुचे तेल को भी जलाकर समाप्त कर दिया। थोड़ी देर में देखा गया मुँह से रक्त बह रहा है, साँस है या नहीं, सन्देह की बात है।

सब लोगों ने पकड़कर उनको नीचे उतार दिया। उपेन्द्र के निष्छल जर्जर प्राण अपनी सुरबाला की खोज में निकल पड़े।

तभी सभी गला फाड़-फाड़कर रो पड़े। उनके गगनभेदी त्रेणी से घर काँप उठा। लेकिन नीचे के कमरे में किरणमयी उद्वेग-रहित अपमान से सो रही थी।

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2018

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर–घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन–जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी–सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी–सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी–छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर–घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला–सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन–संघर्ष–सृजन–प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		70.00
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		20.00
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22.	**वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव	60.00
23.	**मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव	40.00
24.	**बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव	30.00
25.	**अश्वसेना**/इसाक बाबेल	40.00
26.	**लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श	50.00
27.	**रिक्शावाला**/लाओ श	65.00
28.	**चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन	55.00
29.	**एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय	30.00
30.	**Mother**/*Maxim Gorky*	250.00
31.	**The Song of Youth**/*Yang Mo*	...

कहानियाँ

1.	**श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट)	450.00
2.	**वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ)	60.00

मक्सिम गोर्की

3.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1)	...
4.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2)	...
5.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3)	...
6.	**हिम्मत न हारना मेरे बच्चो**	10.00
7.	**कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी**	...

अन्तोन चेख़व

8.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1)	...
9.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2)	...
10.	**दो अमर कहानियाँ**/लू शुन	...
11.	**श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द	80.00
12.	**पाँच कहानियाँ**/पुश्किन	...
13.	**तीन कहानियाँ**/गोगोल	30.00
14.	**तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच	60.00
15.	**वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव	60.00
16.	**वसन्तागम**/रओ शि	50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
(भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
(ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
2. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
3. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) 160.00
4. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
(मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 150.00
6. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
7. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
8. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
9. **ओस की बूँदें और लाल ग़ुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00

10.	**इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय		...
11.	**लहू है कि तब भी गाता है**/पाश		...
12.	**लोहू और इस्पात से फूटता ग़ुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)		
	A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems)		60.00
13.	**पाठान्तर**/विष्णु खरे		50.00
14.	**लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे		60.00
15.	**ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ		60.00
16.	**बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी		50.00
17.	**सामान की तलाश**/असद ज़ैदी		50.00
18.	**कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश		50.00
19.	**पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश		75.00
20.	**सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी	(पेपरबैक)	...
		(हार्डबाउंड)	125.00
21.	**इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी		60.00
22.	**जादू नहीं कविता**/कात्यायनी	(पेपरबैक)	...
		(हार्डबाउंड)	200.00
23.	**फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी		80.00
24.	**राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी		15.00
25.	**यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार		50.00
26.	**यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज		60.00
27.	**देश एक राग है**/भगवत रावत		...
28.	**बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर		60.00
29.	**दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय		120.00
30.	**देखते न देखते**/मलय		65.00
31.	**असम्भव की आँच**/मलय		100.00
32.	**इच्छा की दूब**/मलय		90.00
33.	**इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार		90.00
34.	**तो**/शैलेय		75.00

नाटक

1.	**करवट**/मक्सिम गोर्की	40.00
2.	**दुश्मन**/मक्सिम गोर्की	35.00

3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी (पेपरबैक) 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
(साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/
गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5.	**मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन	20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1.	**एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको	...
2.	**मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुखोम्लीन्स्की	...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1.	**प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी	50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1.	**एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम	25.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फोन: 9936650658, 8853093555
वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com
वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम) ...
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 15.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 20.00
4. **यश की धरोहर**/ भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 80.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है**
   ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 60.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 10.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 15.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 15.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 15.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 15.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 10.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00

3.	**ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की	5.00
4.	**मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग	10.00
5.	**पेरिस कम्यून की अमर कहानी**	20.00
6.	**अक्टूबर क्रान्ति की मशाल**	15.00
7.	**जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी	5.00
8.	**लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस**	30.00
9.	**संशोधनवाद के बारे में**	10.00
10.	**शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट	10.00
11.	**मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए**	20.00
12.	**मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा**	15.00
13.	**चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही**	...
14.	**बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ**	...
15.	**राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव	30.00
16.	**फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव	75.00
17.	**नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन	55.00
18.	**कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह	100.00

मार्क्सवाद

1.	**धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स	100.00
2.	**कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स	25.00
3.	**साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स	150.00
4.	**फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स	40.00
5.	**फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स	20.00
6.	**लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स	35.00
7.	**उजरती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स	15.00
8.	**मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स	20.00
9.	**गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स	40.00
10.	**लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स	20.00

11.	**जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	30.00
12.	**समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	...
13.	**पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन	15.00
14.	**एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन	60.00
15.	**जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन	25.00
16.	**समाजवाद और युद्ध**/लेनिन	20.00
17.	**साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन	30.00
18.	**राज्य और क्रान्ति**/लेनिन	40.00
19.	**सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन	15.00
20.	**दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन	15.00
21.	**गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन	...
22.	**मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन	20.00
23.	**कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन	20.00
24.	**क्या करें?**/लेनिन	...
25.	**"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन	...
26.	**पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन	15.00
27.	**जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन	70.00
28.	**धर्म के बारे में**/लेनिन	20.00
29.	**तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन	10.00
30.	**मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव	30.00
31.	**जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव	35.00
32.	**लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन	50.00
33.	**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास**	90.00
34.	**माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में)	...
35.	**कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ	...
36.	**सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ	35.00
37.	**दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ	70.00
38.	**कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ	15.00
39.	**माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण**	50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** नयी 300.00
2. **ख्रुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00
3. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00
4. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव 100.00 (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)
6. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट ...
7. **महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज़ और लेख** (खण्ड 1) 35.00
8. **इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन 25.00
9. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की 50.00
10. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00 (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)
11. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन ...
3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन 65.00
4. **राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी 30.00
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 25.00

2. **फ्रे़डरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स ...

3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** ...

4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा**
(एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा 30.00

5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00

6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00

7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा ...

8. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक 30.00

2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00

3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ....

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय
बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर,
दिल्ली-110094

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	100.00
2.	**The Civil War in France**	80.00
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	40.00
4.	**Critique of the Gotha Programme**	25.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	35.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	20.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	40.00

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 30.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** 50.00
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** 40.00
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 40.00
30. **One Step Forward, Two Steps Back** ...
31. **The State and Revolution** ...

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** 35.00

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 25.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** 30.00
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 40.00
40. **The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* 175.00
    (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** ...

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 50.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** …
46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** …

OTHER MARXISM

1. **Political Economy, *Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 160.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/ *Howard Selsam & Harry Martel* …
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* …
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)**/** *Howard Selsam* 75.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics/***Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung /**George Thomson …
8. **Capitalism and After/**George Thomson …
9. **The Human Essence/**George Thomson 65.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions/***Bob Avakian* 125.00
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune/** *Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) …
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov …
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* …

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR** / *Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University** / *Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 / *Joshua S. Horn* ...
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) 35.00

CONTEMPORARY ISSUES

1. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint /** Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 15.00

2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism?** / *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?**
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality** / *Alok Ranjan* 15.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 20.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** /*Mary Lou Greenberg*...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin* 15.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

मजदूर बिगुल

एक प्रति : 5 रुपये
वार्षिक : 70 रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय
69 ए–1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ–226006
फ़ोन : 0522–4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
वेबसाइट : mazdoorbigul.net

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
   (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
   (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद**
   (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना

एक वैचारिक मुहिम है
भविष्य-निर्माण का एक प्रोजेक्ट है
वैकल्पिक मीडिया की एक सशक्त धारा है।

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फ़ाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास, शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन, दस्तक प्रकाशन और प्रांजल आर्ट पब्लिशर्स की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्त्रोतों – सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	120.00
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27.	**दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की	15.00
28.	**नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी	40.00
29.	**दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की	30.00
30.	**सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की	15.00
31.	**बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की	15.00
32.	**वांका**/अन्तोन चेखव़	15.00
33.	**तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	15.00
34.	**पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	...
35.	**काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	20.00
36.	**अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र	15.00
37.	**दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर	25.00
38.	**रामलीला**/प्रेमचन्द	15.00
39.	**दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द	25.00
40.	**ईदगाह**/प्रेमचन्द	...
41.	**लॉटरी**/प्रेमचन्द	20.00
42.	**गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द	...
43.	**बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द	20.00
44.	**मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द	...
45.	**हार की जीत**/सुदर्शन	...
46.	**इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव	40.00
47.	**चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन	55.00
48.	**उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर	35.00
49.	**हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव	25.00
50.	**दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	...
51.	**आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	30.00
52.	**झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	35.00
53.	**नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन	...
54.	**लाखी**/अन्तोन चेखव़	25.00
55.	**बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव	12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	10.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

कोंपल

बच्चों के समग्र वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए समर्पित अनुराग ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

एक प्रति : 20 रुपये,

वार्षिक : 100 रुपये (डाकव्यय सहित)

ਪੰਜਾਬੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਦਸਤਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ ਦਾ ਸਵੈ-ਜੀਵਨੀ ਨਾਵਲ (ਤਿੰਨ ਭਾਗਾਂ ਵਿੱਚ)

1. ਮੇਰਾ ਬਚਪਨ	130.00
2. ਮੇਰੇ ਵਿਸ਼ਵ-ਵਿਦਿਆਲੇ	100.00
3. ਮੇਰੇ ਸ਼ਗਿਰਦੀ ਦੇ ਦਿਨ	200.00
4. ਪ੍ਰੇਮ, ਪ੍ਰੰਪਰਾ ਅਤੇ ਵਿਦਰੋਹ / ਕਾਤਿਆਈਨੀ	20.00
5. ਥੀਏਟਰ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਤਰਕਸ਼ਾਸਤਰ / ਬ੍ਰੈਖ਼ਤ	15.00
6. ਆਈਜੇਂਸਤਾਈਨ ਦਾ ਫਿਲਮ ਸਿਧਾਂਤ	15.00
7. ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤੀ ਸੰਗੀਤ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ	10.00
8. ਪਹਿਲਾ ਅਧਿਆਪਕ / ਚੰਗੇਜ਼ ਆਇਤਮਾਤੋਵ (ਨਾਵਲ)	25.00
9. ਸ਼ਾਂਤ ਸਰਘੀ ਵੇਲਾ / ਬੋਰਿਸ ਵਾਸੀਲਿਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
10. ਭਾਂਜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਫ਼ਦੇਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	100.00
11. ਫੌਲਾਦੀ ਹੜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਸਰਾਫ਼ੀਮੋਵਿਚ (ਨਾਵਲ)	100.00
12. ਇਕਤਾਲ਼ੀਵਾਂ / ਬੋਰਿਸ ਲਵਰੇਨਿਓਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
13. ਮਾਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ (ਨਾਵਲ)	180.00
14. ਪੀਲ਼ੇ ਦੈਂਤ ਦਾ ਸ਼ਹਿਰ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	80.00
15. ਸਾਹਿਤ ਬਾਰੇ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	200.00
16. ਅਸਲੀ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਕਹਾਣੀ / ਬੋਰਿਸ ਪੋਲੇਵਾਈ (ਨਾਵਲ)	200.00
17. ਅੱਠੇ ਪਹਿਰ (ਕਹਾਣੀਆਂ)	125.00
18. ਬਘਿਆੜਾਂ ਦੇ ਵੱਸ / ਬਰੂਨੋ ਅਪਿਤਜ (ਨਾਵਲ)	100.00
19. ਮੀਤ੍ਰਿਆ ਕੋਕੋਰ / ਮੀਹਾਇਲ ਸਾਦੋਵਿਆਨੋ (ਨਾਵਲ)	100.00
20. ਇਨਕਲਾਬ ਲਈ ਜੂਝੀ ਜਵਾਨੀ	150.00
21. ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਦਿਆਂ ਦਿਲ ਆਪਣਾ ਮੈਂ / ਵ. ਸੁਖੋਮਲਿੰਸਕੀ	150.00
22. ਫਾਸੀ ਦੇ ਤਖ਼ਤੇ ਤੋਂ / ਜੂਲੀਅਸ ਫੂਚਿਕ (ਨਾਵਲ)	50.00
23. ਭੁੱਬਲ / ਫ਼ਰੰਜ਼ਦ ਅਲੀ (ਪਾਕਿਸਤਾਨੀ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਨਾਵਲ)	200.00
24. ਸਭ ਤੋਂ ਖਤਰਨਾਕ... (ਪਾਸ਼ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਉਪਲੱਬਧ ਸ਼ਾਇਰੀ)	200.00
25. ਧਰਤੀ ਧਨ ਨਾ ਆਪਣਾ / ਜਗਦੀਸ਼ ਚੰਦਰ	250.00

ਸ਼ਹੀਦ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਯਾਦਗਾਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

1.	ਉਜਰਤ, ਕੀਮਤ ਅਤੇ ਮੁਨਾਫਾ / ਮਾਰਕਸ	30.00
2.	ਉਜਰਤੀ ਕਿਰਤ ਅਤੇ ਸਰਮਾਇਆ / ਮਾਰਕਸ	20.00
3.	ਸਿਆਸੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ ਵਿੱਚ ਯੋਗਦਾਨ / ਮਾਰਕਸ	125.00
4.	ਲੂਈ ਬੋਨਾਪਾਰਟ ਦੀ ਅਠਾਰਵੀਂ ਬਰੂਮੇਰ / ਮਾਰਕਸ	50.00
5.	ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਉਤਪਤੀ / ਮਾਰਕਸ	45.00
6.	ਰਿਹਾਇਸ਼ੀ ਘਰਾਂ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
7.	ਫਿਊਰਬਾਖ : ਪਾਦਰਥਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ / ਮਾਰਕਸ-ਏਂਗਲਜ਼	60.00
8.	ਜਰਮਨੀ ਵਿੱਚ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ / ਏਂਗਲਜ਼	50.00
9.	ਮਾਰਕਸ ਦੇ "ਸਰਮਾਇਆ" ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	60.00
10.	ਫਰਾਂਸ ਅਤੇ ਜਰਮਨੀ 'ਚ ਕਿਸਾਨੀ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	20.00
11.	ਸੋਸ਼ਲਿਜ਼ਮ : ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਤੇ ਯੂਟੋਪੀਆਈ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
12.	ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	10.00
13.	ਲੁਡਵਿਗ ਫਿਉਰਬਾਖ ਅਤੇ ਕਲਾਸੀਕੀ ਜਰਮਨ ਦਰਸ਼ਨ ਦਾ ਅੰਤ / ਏਂਗਲਜ਼	30.00
14.	ਟੱਬਰ, ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਅਤੇ ਰਾਜ ਦੀ ਉੱਤਪਤੀ / ਏਂਗਲਜ਼	65.00
15.	ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਉਨਾਂ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ / ਲੈਨਿਨ	35.00
16.	ਰਾਜ ਅਤੇ ਇਨਕਲਾਬ / ਲੈਨਿਨ	50.00
17.	ਦੂਜੀ ਇੰਟਰਨੈਸ਼ਨਲ ਦਾ ਪਤਣ / ਲੈਨਿਨ	45.00
18.	ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ / ਲੈਨਿਨ	15.00
19.	ਰਾਜ / ਲੈਨਿਨ	10.00
20.	ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ, ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦਾ ਸਰਵਉੱਚ ਪੜਾਅ / ਲੈਨਿਨ	70.00
21.	ਇੱਕ ਕਦਮ ਅੱਗੇ ਦੋ ਕਦਮ ਪਿੱਛੇ / ਲੈਨਿਨ	125.00
22.	ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਕਿਵੇਂ ਕਰੀਏ / ਲੈਨਿਨ	65.00
23.	ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਕਲਾ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	150.00
24.	ਸਮਾਜਵਾਦ ਅਤੇ ਜੰਗ / ਲੈਨਿਨ	45.00
25.	ਖੱਬੇ ਪੱਖੀ ਕਮਿਊਨਿਜ਼ਮ ਇੱਕ ਬਚਗਾਨਾ ਰੋਗ / ਲੈਨਿਨ	65.00
26.	ਅਸੀਂ ਜਿਹੜਾ ਵਿਰਸਾ ਤਿਆਗਦੇ ਹਾਂ / ਲੈਨਿਨ	25.00
27.	ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਭਗੌੜਾ ਕਾਊਤਸਕੀ / ਲੈਨਿਨ	70.00
28.	ਆਰਥਕ ਰੋਮਾਂਚਵਾਦ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਚਿੱਤਰਣ / ਲੈਨਿਨ	50.00

29.	ਸੁਤੰਤਰ ਵਪਾਰ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਮਾਰਕਸ, ਏਂਗਲਜ਼, ਲੈਨਿਨ	10.00
30.	ਲੈਨਿਨਵਾਦ ਦੀਆਂ ਨੀਹਾਂ / ਸਟਾਲਿਨ	20.00
31.	ਫ਼ਲਸਫਾਨਾ ਲਿਖਤਾਂ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	25.00
32.	ਸੋਵੀਅਤ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	60.00
33.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਮਸਲੇ / ਪਲੈਖਾਨੋਵ	40.00
34.	ਰਾਜਨੀਤਕ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੇ ਮੂਲ ਸਿਧਾਂਤ	60.00
35.	ਫਿਲਾਸਫੀ ਕੋਈ ਗੋਰਖਧੰਦਾ ਨਹੀਂ	10.00
36.	ਦਵੰਦਵਾਦ ਜ਼ਰੀਏ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ	10.00
37.	ਇਤਿਹਾਸ ਨੇ ਜਦ ਕਰਵਟ ਬਦਲੀ	40.00
38.	ਇਨਕਲਾਬ ਅੰਦਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
39.	ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ ਦੀ ਅਮਿੱਟ ਦੇਣ	125.00
40.	ਚੀਨ ਵਿੱਚ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਮਾਓ ਦਾ ਇਨਕਲਾਬੀ ਵਿਰਸਾ	60.00
41.	ਮਾਓਵਾਦੀ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜਵਾਦ ਦਾ ਭਵਿੱਖ	60.00
42.	ਲੈਨਿਨ ਦੀ ਜੀਵਨ ਕਹਾਣੀ	100.00
43.	ਅਡੋਲ ਬਾਲਸ਼ਵਿਕ ਨਤਾਸ਼ਾ	30.00
44.	ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਏਂਗਲਜ਼ ਆਪਣੇ ਸਮਕਾਲੀਆਂ ਦੀਆਂ ਨਜ਼ਰਾਂ ਵਿੱਚ	75.00
45.	ਪੈਰਿਸ ਕਮਿਊਨ ਦੀ ਅਮਰ ਕਹਾਣੀ	10.00
46.	ਬੁਝ ਨਹੀਂ ਸਕਦੀ ਅਕਤੂਬਰ ਇਨਕਲਾਬ ਦੀ ਮਸ਼ਾਲ	10.00
47.	ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦੀ ਬਾਰੇ ਭਰਮ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥ	10.00
48.	ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਕਿਸਾਨ ਅੰਦੋਲਨ ਅਤੇ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਲਹਿਰ	10.00
49.	ਜੰਗਲਨਾਮਾ : ਇੱਕ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪੜਚੋਲ	10.00
50.	ਭਾਰਤੀ ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ	20.00
51.	ਅਮਿੱਟ ਹਨ ਮਜ਼ਦੂਰ ਸੰਗਰਾਮਾਂ ਦੀਆਂ ਚਿਣਗਾਂ	10.00
52.	ਸਮਾਜਵਾਦ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ, ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਮੁੜ ਬਹਾਲੀ ਅਤੇ ਮਹਾਨ ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
53.	ਕਿਉਂ ਮਾਓਵਾਦ ?	10.00
54.	ਸੋਵੀਅਤ ਯੂਨੀਅਨ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਬਾਰੇ ਪ੍ਰਚਾਰੇ ਜਾਂਦੇ ਝੂਠ	10.00
55.	ਰਿਜ਼ਰਵੇਸ਼ਨ : ਪੱਖ, ਵਿਪੱਖ ਅਤੇ ਤੀਸਰਾ ਪੱਖ	5.00
56.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਅਤੇ ਜਾਤ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

57. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਬਾਰੇ ਅੰਬੇਡਕਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 15.00
58. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ ਅਤੇ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 15.00
59. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ : ਜੀਵਨ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 10.00
60. ਭਾਰਤ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਜਾਤ-ਪਾਤ / ਪ੍ਰੋ. ਇਰਫ਼ਾਨ ਹਬੀਬ 10.00
61. ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ 18 ਸਾਲ 5.00
62. ਚੋਰ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਅਤੇ ਅਯਾਸ਼ ਨੇਤਾਸ਼ਾਹੀ 5.00
63. ਪਾਪ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ / ਡਾਈਸਨ ਕਾਰਟਰ 60.00
64. ਫਾਸੀਵਾਦ ਕੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਨਾਲ਼ ਕਿਵੇਂ ਲੜੀਏ ? 15.00
65. ਆਈਨਸਟੀਨ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰ 10.00
66. ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਨਾਲ਼ ਦੋ ਗੱਲਾਂ / ਪੀਟਰ ਕ੍ਰੋਪੋਟਕਿਨ 10.00
67. ਇਨਕਲਾਬ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ
(ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ) 30.00
68. ਅਜਿਹਾ ਸੀ ਸਾਡਾ ਭਗਤ ਸਿੰਘ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ 10.00
69. ਮੈਂ ਨਾਸਤਿਕ ਕਿਉਂ ਹਾਂ ? / ਭਗਤ ਸਿੰਘ 10.00
70. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਿਹਾ... / ਭਗਤ ਸਿੰਘ 5.00
71. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਤੇ ਉਸਦੇ ਸਾਥੀਆਂ
ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਵਿਕਾਸ / ਪ੍ਰੋ. ਬਿਪਨ ਚੰਦਰਾ 10.00
72. ਇਨਕਲਾਬੀ ਲਹਿਰ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਵਿਕਾਸ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ 10.00
73. ਸ਼ਹੀਦ ਚੰਦਰ ਸ਼ੇਖਰ ਆਜ਼ਾਦ / ਭਗਵਾਨ ਦਾਸ ਮਹੌਰ 10.00
74. ਗਦਰੀ ਸੂਰਬੀਰ / ਪ੍ਰੋ. ਰਣਧੀਰ ਸਿੰਘ 10.00
75. ਸ਼ਹੀਦ ਸੁਖਦੇਵ 20.00
76. ਸ਼ਹੀਦ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਸਰਾਭਾ 5.00
77. ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨਵੀਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕਿੱਥੋਂ ਕਰਨ ? 10.00
78. ਸੋਧਵਾਦ ਬਾਰੇ 5.00
79. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਕਿਉਂ ? / ਸੁਖਵਿੰਦਰ 15.00
80. ਵਧਦੀ ਅਬਾਦੀ 15.00
81. ਯੁੱਗ ਕਿਵੇਂ ਬਦਲਦੇ ਹਨ ? / ਡਾ. ਅੰਮ੍ਰਿਤ 10.00
82. ਧਰਮ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ 30.00
83. ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਾਤ-ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਮਹੱਤਵ 20.00
84. ਇੱਕ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਦਾ ਜਨਮ / ਗੈਨਰਿਖ ਵੋਲਕੋਵ 100.00
85. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਨਵਉਦਾਰਵਾਦ ਦੇ ਦੋ ਦਹਾਕੇ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ 20.00

86. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਦਾ ਕਲਾ ਦਰਸ਼ਨ 200.00
87. ਸਤਾਲਿਨ - ਇੱਕ ਜੀਵਨੀ / ਰਾਹੁਲ ਸਾਂਕਰਤਾਇਨ 150.00
88. ਪੋਰਨੋਗ੍ਰਾਫੀ : ਇਕ ਸਰਮਾਏਦਾਰਾ ਕੋਹੜ / ਅਜੇ ਪਾਲ 10.00
89. ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਅਧਾਰ / ਸੀਤਾ 10.00

ਅਨੁਰਾਗ ਟਰੱਸਟ (ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ)

1. ਇਵਾਨ / ਵਲਾਦੀਮੀ ਬਗਾਮਲੋਵ 35.00
2. ਵਾਂਕਾ / ਅਨਤੋਨ ਚੈਖੋਵ 10.00
3. ਕਿਸਮਤ ਆਪੋ-ਆਪਣੀ / ਜੈਨੇਂਦਰ 20.00
4. ਕੋਹੇਕਾਫ਼ ਦਾ ਕੈਦੀ / ਤਾਲਸਤਾਏ 30.00
5. ਛੱਤ ’ਤੇ ਫਸ ਗਿਆ ਬਿੱਲਾ ਅਤੇ ਹੋਰ ਕਹਾਣੀਆਂ 20.00
6. ਅਜੀਬੋ-ਗਰੀਬ ਕਿੱਸੇ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 20.00
7. ਦੋ ਹਿੰਮਤੀ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 15.00
8. ਨਵੇਂ ਜ਼ਮਾਨੇ ਦੀਆਂ ਪਰੀ-ਕਥਾਵਾਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 20.00
9. ਅਸੀਂ ਸੂਰਜ ਨੂੰ ਵੇਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ / ਮਿਕੋਲ ਗਿੱਲ 10.00
10. ਗੁਫਾ ਮਾਨਵਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਮੈਰੀ ਮਾਰਸ 20.00
11. ਕਿੱਸਾ ਇਹ ਕਿ ਇੱਕ ਪੇਂਡੂ ਨੇ ਦੋ ਅਫ਼ਸਰ ਸ਼ਹਿਰੀ ਅਫਸਰਾਂ ਦਾ ਢਿੱਡ ਕਿਵੇਂ ਭਰਿਆ / ਮਿਖਾਈਲ ਸ਼ਚੇਦ੍ਰਿਨ 15.00
12. ਸਦਾਨੰਦ ਦੀ ਛੋਟੀ ਦੁਨੀਆਂ / ਸੱਤਿਆਜੀਤ ਰਾਏ 10.00
13. ਬਾਜ਼ ਦਾ ਗੀਤ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ 10.00
14. ਬੱਸ ਇੱਕ ਯਾਦ / ਲਿਓਨਿਦ ਆਂਦਰੇਯੇਵ 10.00
15. ਦਾਦਾ ਅਰਖ਼ੀਪ ਅਤੇ ਲਿਓਨਕਾ / ਗੋਰਕੀ 20.00
16. ਦਾਨਕੋ ਦਾ ਬਲ਼ਦਾ ਹੋਇਆ ਦਿਲ / ਗੋਰਕੀ 10.00
17. ਘਰ ਦੀ ਲਲਕ / ਨਿਕੋਲਾਈ ਤੇਲੇਸ਼ੋਵ 20.00
18. ਗੁੱਲੀ-ਡੰਡਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
19. ਹਾਰ ਦੀ ਜਿੱਤ / ਸ਼ੁਦਰਸ਼ਨ 10.00
20. ਹਰਾਮੀ / ਮਿਖ਼ਾਇਲ ਸ਼ੋਲੋਖ਼ੋਵ 20.00
21. ਕਾਬੁਲੀਵਾਲ਼ਾ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ 10.00
22. ਮੁਸੀਬਤ ਦਾ ਸਾਥੀ / ਸੇਰੇਗਈ ਮਿਖਾਲਕੋਵ 10.00
23. ਪੋਸਟਮਾਸਟਰ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ 10.00

24. ਰਾਮਲੀਲਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
25. ਸੇਮਾਗਾ ਕਿਵੇਂ ਫੜਿਆ ਗਿਆ / ਗੋਰਕੀ 10.00
26. ਤੁਰਦਾ-ਫਿਰਦਾ ਟੋਪ / ਐੱਨ. ਨੋਸੋਵ 10.00
27. ਬੇਜਿਨ ਚਰਾਗਾਹ / ਇਵਾਨ ਤੁਰਗੇਨੇਵ 20.00
28. ਉਲਟਾ ਰੁੱਖ / ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਚੰਦਰ 35.00
29. ਵੱਡੇ ਭਾਈ ਸਾਹਬ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
30. ਇੱਕ ਛੋਟੇ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਜਿਹੜੇ ਬਰਫ਼ੀਲੀ ਠੰਡ 'ਚ ਕਾਂਬੇ ਨਾਲ਼ ਮਰੇ ਨਹੀਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ 10.00
31. ਬਹਾਦਰ / ਅਮਰਕਾਂਤ 10.00
32. ਹਿਰਨੋਟਾ / ਦਮਿਤਰੀ ਮਾਮਿਨ ਸਿਬਿਰੇਆਕ 10.00

——::——

नवें समाजवादी इन्क़लाब दा बुलारा

प्रतिबद्ध (तिमाही पंजाबी पत्रिका)

सम्पादकीय कार्यालय : शहीद भगतसिंह भवन
सीलोआनी रोड, रायकोट, लुधियाना- 141109 (पंजाब)
फोन : 09815587807 **ईमेल :** pratibadh08@rediffmail.com
ब्लॉग : http://pratibaddh.wordpress.com

एक अंक : 50 रुपये *वार्षिक सदस्यता :*
डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 150 रुपये विदेश : 50 अमेरिकी डॉलर या 35 पौण्ड

तब्दीली पसन्द विद्यार्थियाँ-नौजवानाँ दी

ललकार (पाक्षिक पंजाबी अखबार)

सम्पादकीय कार्यालय : *लखविन्दर* सुपुत्र मनजीत सिंह
मुहल्ला – जस्सडाँ, शहर और पोस्ट ऑफ़िस – सरहिन्द शहर,
जिला – फ़तेहगढ़ साहिब–140406 (पंजाब) फोन : 096461 50249
ईमेल : lalkaar08@rediffmail.com **ब्लॉग :** http://lalkaar.wordpress.com

एक अंक : 5 रुपये *वार्षिक सदस्यता :* डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 120 रुपये

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : **डी–68, निरालानगर, लखनऊ–226020**

फ़ोन : 0522–4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर–273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : info@janchetnabooks.org
वेबसाइट : www.janchetnabooks.org

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये Instamojo के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप Amazon और Flipkart से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरण:
ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI
Acc. No. 0762002109003796
Bank: Punjab National Bank

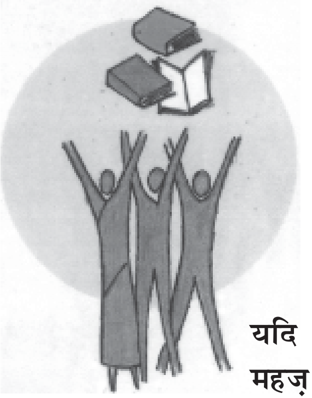

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल